प्रगण्य

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र

CTET REET UPTET
MP Samvida BTET
UTET, JTET HTET
CGTET HPTET

LEVEL-I एवं LEVEL-II परीक्षा हेतु

Part 1

प्रगण्य प्रकाशन
126, सेक्टर–6, विद्याधर नगर, जयपुर 302039

VISIT…

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र

Part 1

मूल्य : ₹350

कोई व्यक्ति या फर्म इस पुस्तक का नाम, डिजाइन, अन्दर की सामग्री पूर्ण या आंशिक रूप से तोड़–मरोड़कर व अदल–बदलकर छापने का साहस न करे, अन्यथा वह कानूनी तौर पर हर्जे व खर्चे का जिम्मेदार होगा। यद्यपि तथ्यों की सत्यता सुनिश्चित करने के सम्बन्ध में सभी सम्भव सावधानियाँ बरती गई है तथापि पुस्तक में किसी त्रुटि या अन्य दोषों के लिए प्रकाशक उत्तरदायी नहीं होगा। किसी भी परिवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र जयपुर (राजस्थान) होगा।

प्रकाशक :

प्रगण्य प्रकाशन

126, सेक्टर–6, विद्याधर नगर, जयपुर 302039

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक में बाल विज्ञान–मनोविज्ञान को मानस के समक्ष रखकर बाल विकास के कारण, महत्त्व, अर्थ पर विचार रखा गया है तथा इसकी सीमा का निर्धारण भी किया है। विकास के नियम, सिद्धान्त और प्रभावित करने वाले कारकों पर विचार रखते हुए, वंशानुक्रम एवं वातावरण पर भी इशारा हुआ है। चूँकि भूत पर ही वर्तमान का महल टिका होता है इसीलिए गर्भ के समय और पूर्व तथा बाद की समस्त स्थितियों को ध्यान में रखकर हमने क्रमवार इसकी व्याख्या प्रस्तुत की है। एक सचेष्ट माली की तरह चौकीदारी का ध्यान रखा है तथा शारीरिक विकास से लेकर बालक के क्रियात्मक, संज्ञानात्मक, भाषा, सामाजिक, संवेगात्मक तथा व्यक्तित्व विकास को पद्धति के अनुसार रखकर उन बातों को भी उठाया है, जिससे कि बाल अपराध को बढ़ावा मिलता है। बालक किस प्रकार चिन्तन करता है, किस प्रकार सीखता है, उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताएँ, व्यक्तित्व, बुद्धि आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। विशिष्ट, साधारण एवं समस्यात्मक बालक के अनन्तर विकासक्रम एवं स्वभाव पर भी बात उठाई गई है। बालकों के शिक्षण की विधियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। बालकों की उपलब्धि का मापन मानव विकास का केवल एक परिचय नहीं बल्कि हमारी मूलभूत समस्या का समाधान है। शिक्षा के क्षेत्र में बालकों को प्राप्त अधिकार, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा आदि को भी विषय–वस्तु में सम्मिलित किया गया है।

पुस्तक लेखन में प्रयास किया गया है कि प्रस्तावित पाठ्यक्रम के सभी बिन्दुओं पर चर्चा हो, जिससे छात्रों को विषय वस्तु के लिए अन्यत्र न जाना पड़े। सम्पूर्ण पाठ्य–सामग्री एक ही स्थान पर उपलब्ध कराने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। पाठ्य–पुस्तक अत्यन्त ही सरल तथा बोधगम्य भाषा में लिखने की चेष्टा की गई है। भाषा शैली का स्तर भी अत्यन्त उच्च रखते हुए इसे छात्रों के अनुरूप ही रखने का प्रयास किया गया है। आवश्यक स्थानों पर उदाहरण, दृष्टान्त तथा समुचित व्याख्या देकर विषय–वस्तु समुचित रूप से समझाने का प्रयास किया गया है। पुस्तक में अध्यायीकरण प्रस्तावित पाठ्यक्रम के अनुरूप रखा गया है, जिससे पाठकों को पाठ्यक्रमानुसार अध्ययन करने में सुविधा रहे।

हमें पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत संस्करण उन सभी के लिए उपयोगी सिद्ध होगा, जो बाल विकास तथा शिक्षण विधियों में रुचि रखते हैं। हमारा यह प्रयास रहा है कि इस विषय का अध्ययन करने वाले आम पाठकों के लिए भी यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो। पुस्तक के भावी संस्करणों में सुधार हेतु पाठकों के मूल्यवान एवं उपयोगी सुझाव सदैव आमंत्रित है।

लेखक

विषय–सूची

क्रम संख्या	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	बाल विकास	1–11
2.	वृद्धि और विकास	12–26
3.	वृद्धि एवं विकास के विभिन्न आयाम	27–50
4.	वंशानुक्रम एवं वातावरण	51–62
5.	अधिगम	63–78
6.	अधिगम के सिद्धान्त	79–108
7.	बालकों में चिन्तन एवं अधिगम	109–132
8.	अभिप्रेरणा एवं अधिगम	133–151
9.	व्यक्तिगत विभिन्नताएँ	152–160
10.	व्यक्तित्व	161–179
11.	बुद्धि	180–201
12.	विशिष्ट बालक	202–256
13.	समायोजन	257–275
14.	शिक्षण अधिगम की मूल प्रक्रियाएँ	276–291
15.	शिक्षण अधिगम की व्यूह रचनाएँ एवं विधियाँ	292–317
16.	मूल्यांकन	318–332
17.	उपलब्धि परीक्षण का निर्माण	333–352
18.	क्रियात्मक अनुसंधान	353–361
19.	निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009	362–372
20.	राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005	373–378

दीपक कुमार शर्मा

8859637150

मथुरा वृन्दावन

दीपक कुमार शर्मा

DEEPAK KUMAR SHARMA

MATHURA VRINDAVAN- 8859637150

दीपक कुमार शर्मा

8859637150

मथुरा वृन्दावन

अध्याय 1

बाल विकास

1.1 प्रस्तावना

बाल्यकाल मानव जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अवस्था है। यह विकास काल भावी जीवन की आधारशिला प्रस्तुत करता है। अतः सभी मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों तथा दार्शनिकों ने इस अवस्था के महत्त्व को स्वीकार करते हुए इस बात पर जोर दिया है कि इस आयु में बालक का पालन–पोषण और शिक्षण इस प्रकार किया जाये कि वह समाज, समुदाय तथा राष्ट्र के उत्तम नागरिक के रूप में विकसित हो सके।

फ्रायड के अनुसार–

प्राणी चार, पाँच साल की उम्र में जो कुछ बनना होता है बन जाता है।

अतः फ्रायड के अनुसार भी जीवन की प्रारम्भिक अवस्था महत्त्वपूर्ण अवस्था है।

कुछ समय पूर्व तक समाज की यह धारणा थी कि मानव शिशु शारीरिक रूप से प्रौढ़ों के समान ही होता है, जो कि विकास क्रम में धीरे–धीरे प्रौढों के रूप में परिवर्तित हो जाता है। व्यक्तियों की इसी धारणा के कारण बाल विकास तथा बाल मन के अध्ययन की आवश्यकता है। दार्शनिकों के प्रयासों से धीरे–धीरे बाल अध्ययन और बाल विकास के महत्त्व को समझा जाने लगा, जिसके फलस्वरूप बाल मन तथा बाल विकास के अध्ययन के लिए स्वतन्त्र रूप से अलग–अलग शाखाओं का आविर्भाव हुआ, जिन्हें **बाल मनोविज्ञान** तथा **विकासात्मक मनोविज्ञान** के नाम से जाना गया।

1.2 बाल मनोविज्ञान

बाल मनोविज्ञान दो शब्दों से मिलकर बना है– **बाल + मनोविज्ञान**। **बाल** का अर्थ है बालक अर्थात् वह प्राणी जो प्रौढ़ की श्रेणी में नहीं आया है, उसे बालक की श्रेणी में रखा जाता है। हम यह भी कह सकते हैं गर्भावस्था से लेकर किशोरावस्था तक की आयु के बच्चों को बालकों की श्रेणी में रखा जाता है। **मनोविज्ञान** से अभिप्राय मन के विज्ञान से है। अतः बाल मनोविज्ञान से तात्पर्य विज्ञान की उस शाखा से है, जो बालकों के मन (व्यवहारों) का अध्ययन गर्भावस्था से लेकर किशोरावस्था तक करती है।

बाल मनोविज्ञान के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अनेक परिभाषाएँ दी है, उनमें से कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. क्रो और क्रो के अनुसार–

बाल मनोविज्ञान, वह वैज्ञानिक अध्ययन है, जो व्यक्ति के विकास का अध्ययन गर्भकाल की प्रारम्भिक अवस्था से किशोरावस्था तक करता है।

2. जेम्स ड्रेवर के अनुसार–

बाल मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है, जो प्राणी के विकास का अध्ययन जन्म से परिपक्वास्था तक करती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बाल मनोविज्ञान बालकों के विकास और व्यवहार के सभी पक्षों का अध्ययन गर्भावस्था से किशोरावस्था तक वैज्ञानिक तरीकों से करता है, क्योंकि प्राणी का जीवन जन्म से नहीं अपितु गर्भाधान के समय से ही प्रारम्भ होता है। अतः बाल मनोविज्ञान इसी विकास का अध्ययन गर्भावस्था से किशोरावस्था तक करता है।

1.3 विकासात्मक मनोविज्ञान

साधारणतया बाल मनोविज्ञान और विकासात्मक मनोविज्ञान को एक ही अर्थ में लिया जाता है, किन्तु दोनों में पर्याप्त अन्तर है। **बाल मनोविज्ञान** बालक के विकास का अध्ययन केवल किशोरावस्था तक ही करता है जबकि **विकासात्मक मनोविज्ञान** अत्यन्त ही विस्तृत और व्यापक है। यह प्राणी के विकास का अध्ययन जन्म पूर्व से लेकर जीवन पर्यन्त करता है। विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है, जो जीवन–पर्यन्त किसी न किसी रूप में चलती रहती है।

विकास क्रम में होने वाले परिवर्तन समान नहीं होते हैं। जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में रचनात्मक परिवर्तन होते हैं, क्योंकि जीवन के पूर्वार्द्ध में वृद्धि तीव्र गति से होती है। जीवन के उत्तरार्द्ध में विनाशात्मक परिवर्तन होता है। रचनात्मक परिवर्तन प्राणी में परिपक्वता लाते हैं और विनाशात्मक परिवर्तन प्राणी को वृद्धावस्था की ओर ले जाते हैं। जीवन के उत्तरार्द्ध में विनाशात्मक परिवर्तन होते हैं। बाल मनोविज्ञान केवल बाल्यकाल में होने वाले रचनात्मक परिवर्तनों का ही अध्ययन करता है, जबकि विकासात्मक मनोविज्ञान एक व्यापक प्रत्यय है, जो प्राणी के विकास की विभिन्न शारीरिक और मानसिक दशाओं तथा परिवर्तनों का अध्ययन गर्भाधान से लेकर वृद्धावस्था तक करता है।

1.4 बाल मनोविज्ञान एवं विकासात्मक मनोविज्ञान में अन्तर

यद्यपि विकासात्मक मनोविज्ञान बाल मनोविज्ञान की ही एक शाखा है, किन्तु दोनों के उद्देश्य, कार्य क्षेत्र और दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर है। इस अन्तर को निम्न आधार पर समझा जा सकता है–

1. क्षेत्र में अन्तर

विकासात्मक मनोविज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक व विस्तृत है। यह बाल मनोविज्ञान का विस्तार है, क्योंकि यह प्राणी के विकास का अध्ययन जन्म पूर्व

www.praganya.org
www.praganya.org
www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

से लेकर वृद्धावस्था तक करता है। यह सम्पूर्ण जीव के विकास से सम्बन्धित है। इसके विपरीत बाल मनोविज्ञान का क्षेत्र केवल किशोरावस्था तक ही सीमित है। विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र की व्यापकता इस बात से भी ज्ञात होती है कि विकासात्मक मनोविज्ञान प्राणी के विकास क्रम में होने वाले रचनात्मक तथा विनाशात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तनों का अध्ययन करता है, जबकि बाल मनोविज्ञान केवल बालकों के रचनात्मक परिवर्तनों का ही अध्ययन करता है।

2. उद्देश्य में अन्तर

बाल मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य बालक के मन और व्यवहारों को समझना है। इस प्रकार के अध्ययन से शैक्षिक निर्देशन में सहायता मिलती है। इसके विपरीत विकासात्मक मनोविज्ञान का उद्देश्य बालक के भूत और भविष्य को उनके वर्तमान से जोड़ना है। इस कारण विकासात्मक मनोविज्ञान विकास की सभी अवस्थाओं का अध्ययन करता है। इसका प्रमुख उद्देश्य प्राणी की क्षमताओं के विकास की दिशा व गति निर्धारित करना है।

3. दृष्टिकोण में अन्तर

बाल मनोविज्ञान बालक की क्षमताओं का अध्ययन करता है। वह यह जानने का प्रयास करता है कि बालक के अन्दर कौन–कौनसी क्षमताएँ विद्यमान हैं। उनके व्यवहार प्रौढ़ों से किस प्रकार भिन्न हैं। विकासात्मक मनोविज्ञान बालक की क्षमताओं के विकास के अध्ययन पर बल देता है, जिसके आधार पर आज के बालक को कल के लिए प्रौढ़ता प्राप्त हो सके।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से बाल मनोविज्ञान तथा विकासात्मक मनोविज्ञान में पर्याप्त अन्तर दिखायी देता है।

1.5 बाल विकास का अर्थ

बाल विकास से तात्पर्य बालकों के सर्वांगीण विकास से है। बाल विकास का अध्ययन करने के लिए **विकासात्मक मनोविज्ञान** की एक अलग शाखा बनाई गयी जो बालकों के व्यवहारों का अध्ययन गर्भावस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त करती है, परन्तु वर्तमान समय में इसे **बाल विकास** में परिवर्तित कर दिया गया, क्योंकि बाल मनोविज्ञान में केवल बालकों के व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है, जबकि बाल विकास के अन्तर्गत उन सभी तथ्यों का अध्ययन किया जाता है, जो बालकों के व्यवहारों को एक निर्धारित दिशा प्रदान कर विकास में सहायता प्रदान करते हैं। हरलॉक ने इस सम्बन्ध में कहा है कि–

> बाल मनोविज्ञान का नाम बाल विकास इसलिए बदला गया, क्योंकि अब बालक के विकास के समस्त पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, किसी एक पक्ष पर नहीं।

1.6 बाल विकास की परिभाषाएँ

बाल विकास के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं–

1. क्रो एण्ड क्रो के अनुसार–

> बाल विकास वह विज्ञान है, जो बालक के व्यवहार का अध्ययन गर्भावस्था से मृत्युपर्यन्त तक करता है।

2. डार्विन के अनुसार–

> बाल विकास व्यवहारों का वह विज्ञान है, जो बालक के व्यवहार का अध्ययन गर्भावस्था से मृत्युपर्यन्त तक करता है।

3. हरलॉक के अनुसार–

> बाल विकास मनोविज्ञान की वह शाखा है, जो गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त होने वाले मनुष्य के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में हाने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करता है।

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि बाल विकास बाल मनोविज्ञान की ही एक शाखा है, जो बालकों के विकास, व्यवहार, विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्त्वों का अध्ययन करती है।

1.7 बाल विकास के क्षेत्र

बाल विकास का क्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत और व्यापक है। यह बालक के विकास के सभी आयामों, स्वरूपों, असामान्यताओं, शारीरिक व मानसिक परिवर्तनों तथा उनको प्रभावित करने वाले तत्त्वों, जैसे– परिपक्वता और शिक्षण, वंशानुक्रम और वातावरण आदि सभी का अध्ययन करता है। बाल विकास के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया जाता है–

1. बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन

प्राणी के जीवन प्रसार में अनेक अवस्थाएँ होती हैं। जैसे– गर्भकालीन अवस्था, शैशवावस्था, बचपनावस्था, बाल्यावस्था, वय संधि और किशोरावस्था। बाल विकास केवल बाल्यावस्था का ही अध्ययन नहीं करता अपितु विकास क्रम की सभी अवस्थाओं के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, बौद्धिक आदि सभी पहलुओं का अध्ययन करता है।

विकास क्रम की प्रत्येक अवस्था अपनी एक अलग विशेषता रखती है। प्रत्येक अवस्था में पहुँचने पर बालक की शारीरिक व मानसिक क्रियाओं का स्वरूप बदल जाता है, क्योंकि नित नयी परिस्थितियों के साथ समायोजन करने के लिए बालक अपने व्यवहार प्रतिमानों में परिवर्तन कर लेता है।

2. बाल विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन

बाल विकास बालक के किसी एक ही क्षेत्र से सम्बन्धित नहीं होता है। इसके अन्तर्गत विकास के विभिन्न पहलुओं: जैसे– शारीरिक विकास, मानसिक विकास, संवेगात्मक विकास, सामाजिक विकास, क्रियात्मक विकास, भाषा विकास, नैतिक विकास, चारित्रिक विकास और व्यक्तित्व विकास सभी का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाता है।

3. बाल विकास को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का अध्ययन

बाल विकास उन सभी तत्त्वों का अध्ययन करता है, जो बालक के विकास को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। बालक के विकास पर प्रमुख रूप से वंश परम्परा और वातावरण तथा परिपक्वता और शिक्षण का प्रभाव पड़ता है। बाल विकास की प्रक्रिया में इन तत्त्वों के कारण बालक का व्यक्तित्व एक विशेष रूप ग्रहण करता है। वंश परम्परा बालकों को गर्भाधान के समय ही उनके माता–पिता तथा पूर्वजों के विभिन्न शारीरिक व मानसिक गुण, योग्यताएँ व क्षमताएँ प्रदान कर देती है, जिनका प्रभाव जन्म के बाद आजीवन बालक के

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

विकास के विभिन्न पहलुओं पर पड़ता है। जन्म के बाद जो तत्त्व बालक के विकास को प्रभावित करते हैं, वे सभी वातावरणीय होते हैं। वातावरणीय तत्त्व भी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से निरन्तर बालक के विकास को विभिन्न रूपों में प्रभावित करते रहते हैं।

परिपक्वता और शिक्षण भी बाल विकास पर अपना अत्यधिक प्रभाव डालते हैं। परिपक्वता आन्तरिक होती है और शिक्षण बाह्य वातावरण से प्राप्त होता है। बालक के समुचित विकास के लिए दोनों का होना आवश्यक होता है। इस प्रकार बाल विकास बालकों के विकास का अध्ययन करते समय विकास को प्रभावित करने वाले सभी तत्त्वों का भी अध्ययन करता है।

4. बालकों की विभिन्न असामान्यताओं का अध्ययन

बाल विकास के अन्तर्गत केवल सामान्य बालकों के विकास का ही अध्ययन नहीं किया जाता, बल्कि बालकों के जीवन विकास क्रम में होने वाली असामान्यताओं और विकृतियों का भी अध्ययन किया जाता है। बाल विकास, असन्तुलित व्यवहारों, मानसिक विकारों, बौद्धिक दुर्बलताओं तथा बाल अपराधों के कारणों को जानने का प्रयास करता है और निराकरण हेतु उपाय भी बताता है।

5. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अध्ययन

बाल विकास केवल मानसिक दुर्बलताओं और रोगों का ही अध्ययन नहीं करता, बल्कि विभिन्न मनोवैज्ञानिक तरीकों से उनके उपचार भी प्रस्तुत करता है। मनोचिकित्सा बाल मनोविज्ञान और बाल विकास की ही देन है।

6. बाल व्यवहारों और अन्तः क्रियाओं का अध्ययन

मनुष्य गतिशील व सामाजिक प्राणी है। विभिन्न आयु स्तरों पर वह अपने समायोजन के लिए अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों, जैसे–परिवार के लोग, पड़ोसी, अध्यापक, खेल के साथी और समाज में सभी परिचितों के साथ अन्तः क्रियाएँ करता रहता है। बाल विकास, विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाली बालक की विभिन्न अन्तः क्रियाओं का अध्ययन कर यह जानने का प्रयास करता है कि ये क्रियाएँ कौन–सी हैं और इनसे बालकों के व्यवहार में क्या परिवर्तन होते हैं, ये परिवर्तन समायोजन में सहायक है या बाधक। बालक के समुचित विकास तथा समायोजन के लिए ये अन्तः क्रियाएँ आवश्यक हैं।

7. बालकों की रूचियों का अध्ययन

बाल विकास बालकों की रूचियों का अध्ययन कर उन्हें शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करता है। रूचियाँ एक अर्जित व्यवहार है, जो जन्मजात नहीं होती है, बल्कि सीखी जाती है। रूचियाँ कार्य करती हैं और लक्ष्य की पूर्ति को आसान बनाती हैं। यदि बालक को किसी कार्य में रूचि होती है, तो वह उसे शीघ्रता से अधिक मनोयोग के साथ पूरा कर लेता है।

8. बालकों की विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन

बाल विकास बालकों के बौद्धिक विकास की विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं, जैसे– अधिगम, कल्पना, चिन्तन, तर्क, स्मृति तथा प्रत्यक्षीकरण आदि का अध्ययन करता है। बाल विकास यह जानने का प्रयास करता है कि विभिन्न आयु स्तरों में ये मानसिक प्रक्रियाएँ किस रूप में पायी जाती हैं और उनके विकास की गति क्या होती है। इसी के आधार पर मानसिक प्रक्रियाओं का विकास किया जाता है।

9. बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं का अध्ययन

यद्यपि सभी आयु स्तरों पर विकास का एक निश्चित प्रतिरूप होता है, लेकिन फिर भी प्रत्येक क्षेत्र में सभी बालकों का विकास का एक निश्चित प्रतिरूप होता है। शारीरिक विकास में कुछ बालक अधिक लम्बे, कुछ नाटे तथा कुछ सामान्य लम्बाई के होते हैं। इसी प्रकार मानसिक विकास में भी कुछ प्रतिभाशाली, कुछ सामान्य और कुछ मन्द बुद्धि होते हैं। इसी प्रकार कुछ बालक सामाजिक तथा बहिर्मुखी होते हैं, जबकि कुछ अन्तर्मुखी। अतः विकास के सभी क्षेत्रों में व्यक्तिगत भिन्नता पायी जाती है।

10. बालकों के व्यक्तित्व का मूल्यांकन

बाल विकास के अन्तर्गत बालकों की विभिन्न शारीरिक और मानसिक योग्यताओं का मापन व मूल्यांकन किया जाता है। योग्यताओं के मापन व मूल्यांकन के लिए बाल विकास के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों द्वारा नित नये वैज्ञानिक तथा प्रमापीकृत परीक्षणों का निर्माण किया जाता है। ये परीक्षण विभिन्न आयु स्तरों पर बालकों की योग्यताओं का मापन कर उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हैं।

11. बालक–अभिभावक सम्बन्धों का अध्ययन

जन्म के पश्चात् सबसे पहले बालक को अपने माता–पिता का संरक्षण प्राप्त होता है। बालक के व्यक्तित्व निर्धारण और समुचित विकास में माता–पिता का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। जिन बालकों के सम्बन्ध अपने माता–पिता के साथ अच्छे नहीं होते हैं, वे अक्सर कुसमायोजित और अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते हैं। बाल विकास, बालक–अभिभावक सम्बन्धों के निर्धारक तत्त्वों तथा समस्याओं और उनके निराकरण का अध्ययन कर माता–पिता तथा बालकों के बीच अच्छे सम्बन्ध विकसित करने का प्रयास करता है, जिससे बालक परिवार, समाज व राष्ट्र के अच्छे नागरिक के रूप में विकसित हो सकें।

1.8 बाल विकास के अध्ययन का महत्त्व

वर्तमान समय में बाल विकास भी अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह एक स्वतन्त्र विज्ञान है। इसका अध्ययन सम्पूर्ण मानव विकास की इकाई माना जाता है, इसलिए क्रो एण्ड क्रो ने कहा कि–

> व्यक्ति तथा समाज के कल्याण के क्षेत्र में रूचि रखने वाले मनोवैज्ञानिक, शिक्षक, अभिभावक, सामाजिक कार्यकर्ता बालकों के अध्ययन को महत्त्व देने लगे हैं। बालक व्यक्ति का पिता है बालक के प्रथम छः वर्ष महत्त्वपूर्ण होते हैं, आदि लोकोक्तियों ने बाल विकास के अध्ययन के महत्त्व को बढ़ाया ही है।

इस प्रकार बाल विकास का अध्ययन सभी के लिए उपयोगी है। बालक किसी भी समाज व राष्ट्र की आधारशिला है। उनका स्वस्थ विकास समाज व राष्ट्र की प्रगति में योगदान देता है। माता–पिता भी बाल अध्ययन के द्वारा अपने बच्चे को समाज के अच्छे नागरिक के रूप में विकसित कर सकते हैं। उसकी प्रतिभाओं को जानकर उसकी शिक्षा की उचित व्यवस्था कर सकते हैं।

बाल विकास का अध्ययन माता–पिता तथा अन्य लोगों के लिए निम्न रूपों में लाभकारी हो सकता है–

1. विकासात्मक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त होना

विकास की प्रक्रिया के दौरान प्रत्येक बालक किसी विशिष्ट आयु में कुछ विशिष्ट

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

गुण प्रदर्शित करता है, जो उससे पूर्व या बाद की अवस्थाओं में या तो होते ही नहीं हैं या यदि होते भी हैं, तो सामान्य होते हैं विशिष्ट नहीं। इन्हीं **विशिष्ट गुणों** को विकासात्मक क्रियाएँ कहा जाता है। इन विकासात्मक क्रियाओं के आधार पर बालक के विकास की भविष्यवाणी की जा सकती है और विकासात्मक क्रियाओं के अनुसार उन गुणों को विकसित करने के लिए साधन व सुविधाएँ प्रदान की जा सकती हैं। जैसे- जन्म के बाद 1-12 माह की आयु में बालक चलने की क्रियाएँ करने लगता है, 3-4 माह में भाषा विकास होने लगता है आदि सभी क्रियाएँ अवस्था विशेष की विकासात्मक क्रियाएँ हैं।

2. बाल पोषण विधियों का ज्ञान

बाल विकास के अध्ययन से माता-पिता तथा अभिभावकों को बाल पोषण विधियों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक माता-पिता प्रथम शिशु के जन्म के समय बाल पोषण के ज्ञान से अनभिज्ञ होते हैं, लेकिन बाल विकास का अध्ययन माता-पिता को मातृत्व तथा पितृत्व के दायित्व जैसे गम्भीर प्रश्नों को हल करके बाल पोषण को सहज बनाता है।

3. व्यक्ति विभिन्नताओं की जानकारी प्राप्त होना

यद्यपि विकास का एक निश्चित प्रतिमान होता है और प्रत्येक विकासावस्था की अपनी कुछ प्रमुख विशेषताएँ होती हैं फिर भी जन्म के बाद दो बालकों के विकास में समानता नहीं पायी जाती है, जैसे- एक बालक कुशाग्र बुद्धि होता है, जबकि दूसरा सामान्य बुद्धि। बाल विकास के अध्ययन से व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पता चलता है, जिससे बालकों के शिक्षा निर्देशन में सहायता मिलती है।

4. विकास की अवस्थाओं का ज्ञान

बाल विकास का अध्ययन माता-पिता को यह जानकारी प्रदान करता है कि गर्भवस्था से लेकर बालक प्रौढ़ावस्था तक किस प्रकार विकसित होता है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में विकास के विभिन्न पहलुओं में कौन-कौन से परिवर्तन होंगे। विकास की अवस्था की जानकारी प्राप्त कर माता-पिता बालकों के समुचित विकास में अपना योगदान दे सकते हैं।

5. बालकों के प्रशिक्षण तथा शिक्षा में उपयोगी

बाल विकास के अध्ययन से यह जानकारी मिलती है कि किस अवस्था में बालक कितनी मानसिक योग्यता रखता है। बच्चे की मानसिक योग्यता और बुद्धि के अनुसार ही उसके प्रशिक्षण तथा शिक्षा की व्यवस्था की जाती है तथा विभिन्न कक्षाओं में उसकी योग्यतानुसार ही पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है।

6. बालकों के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक

बाल विकास का अध्ययन बाल विकास के विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्रदान करता है, जिससे माता-पिता, अभिभावकों तथा शिक्षकों को यह जानकारी प्राप्त होती है कि बालक के व्यक्तित्व निर्माण में कौन-से तत्त्व सहायक हैं और कौन-से बाधक। कौन-से तत्त्व व्यक्तित्व विकास के लिए परम आवश्यक हैं और कौन-से बाधक। आदि बातें बाल विकास के अध्ययन से ही ज्ञात होती हैं, जिन्हें जानकर बालकों के व्यक्तित्व विकास में सहायता प्राप्त होती है।

7. बालकों के व्यवहारों को नियन्त्रित करने में सहायक

बाल विकास का प्रमुख उद्देश्य बालकों का समुचित विकास कर उन्हें समाज व देश के अच्छे नागरिक के रूप में विकसित करना है। किसी भी बालक को समाज तभी स्वीकार करता है, जबकि उसका शारीरिक व मानसिक रूप से व्यवहार सामान्य हो। बाल विकास का अध्ययन माता-पिता तथा शिक्षकों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह प्रारम्भ से ही बालकों को इस प्रकार का निर्देशन दे कि प्रत्येक क्षेत्र में उनका व्यवहार नियन्त्रित व सामान्य हो।

8. बालकों के स्वभाव को समझने में सहायक

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में सभी बालकों के स्वभाव में परिवर्तन होता रहता है। कुछ बालकों का विकास तीव्र गति से होता है वह अपने प्रत्येक वातावरण के साथ आसानी से समायोजन कर सकते हैं, जबकि अन्तर्मुखी बालकों को यदि उचित निर्देशन प्राप्त नहीं होता है तो उनका विकास कुंठित हो जाता है, क्योंकि वह अपनी आवश्यकताओं को महसूस तो करते हैं, लेकिन उनका प्रकटीकरण नहीं कर पाते हैं। बाल विकास का अध्ययन ऐसे बालकों के स्वभाव को समझने तथा उन्हें उचित निर्देशन देकर उनके विकास में सहायता प्रदान करता है।

9. बालक के विकास के सम्बन्ध में पूर्वानुमान

कहावत है कि **पूत के पाँव पालने में ही दिखायी देते हैं।** बाल विकास का ज्ञान इस कहावत की पुष्टि करता है। बाल विकास और बाल व्यवहार के अध्ययन द्वारा बच्चे के भावी विकास के अध्ययन में भविष्यवाणी की जा सकती है। यदि किसी बालक का विकास आयु के विभिन्न स्तरों पर तीव्र गति से होता है, तो कहा जा सकता है कि बालक प्रतिभाशाली होगा, इसी प्रकार यदि सामान्य ढंग से होता है, तो कहा जा सकता है कि बालक सामान्य होगा। यदि मन्द गति से होगा तो बालक मन्द बुद्धि होगा।

10. परिवार या समाज की सुख-समृद्धि में सहायक

बाल विकास का अध्ययन केवल बालकों का ही सर्वांगीण विकास नहीं करता अपितु बालकों के उचित विकास द्वारा परिवार व समाज की शान्ति तथा सुख समृद्धि में सहायता प्रदान करता है, क्योंकि आज का बालक ही भविष्य का पिता तथा राष्ट्र निर्माता है। बालक का मन एक कच्ची मिट्टी के घड़े के समान है।

अतः यह कहा जा सकता है कि अध्यापक व अभिभावक में बच्चों की सफलता के लिये उन्हें विकास के बारे में पता होना चाहिए, जिससे यह ज्ञात हो सके कि बालक कैसे विकसित हो रहा है। यदि इसका प्रयोग नहीं होता, तो बालक का विकास ही बालक की प्रगति में बाधक होता है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि अध्यापक व अभिभावकों को बालक के विकास की दिशा का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

1.9 बाल विकास के सम्बन्ध मे प्रचलित भ्रान्तियाँ और परम्परागत विश्वास

यद्यपि 20वीं शताब्दी में बाल-विकास विषय का अत्यधिक विकास हुआ है फिर भी वर्तमान समय में बालकों और उनके विकास के सम्बन्ध में कुछ ऐसी भ्रान्तियाँ और परम्परागत विश्वास हैं, जो बालकों को प्रभावित करते हैं। ये भ्रान्तियाँ केवल ग्रामीण और अनपढ़ लोगों में ही नहीं हैं, बल्कि शहरी और पढ़े-लिखे माता-पिता और अभिभावकों में भी हैं। इन भ्रान्तियों के कारण माता-पिता की पालन-पोषण विधियाँ बालक के विकास के लिए उपयुक्त हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

प्रमुख परम्परागत विश्वास निम्नलिखित हैं–

1. बाल्यावस्था के सम्बन्ध में

माता–पिता में बालकों के सम्बन्ध में प्रमुख भ्रान्ति यह है कि–

बालक प्रौढ़ व्यक्ति का ही लघुरूप है।

इस भ्रान्ति के कारण माता–पिता अपने बालकों से यह उम्मीद करते हैं कि वे बाल्यावस्था में ही वयस्कों के समान सभी व्यवहार करने लगें। यदि वे करने में असमर्थ रहते हैं, तो उन्हें दण्ड दिया जाता है, आलोचना की जाती है तथा तिरस्कार किया जाता है। इससे बाल मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है, वे हीन भावना का शिकार हो जाते हैं और आत्मविश्वास खो देते हैं, जिससे उनका व्यक्तित्व विकास अवरूद्ध हो जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने इस विश्वास का खण्डन किया है। उनके अनुसार, **बालक ही प्रौढ़ बनता है,** किन्तु बाल्यावस्था में वह प्रौढ़ों के समान परिपक्व नहीं होता है।

2. बालकों के जन्म के सम्बन्ध में

बालकों के जन्म के सम्बन्ध में भी कुछ धारणाएँ प्रमुख हैं, जैसे– कुछ लोग मानते हैं कि शुभ नक्षत्र में पैदा होने वाला बच्चा भाग्यशाली होता है और उसका जीवन स्वयं के लिए तथा परिवार के लिए मंगलकारी होता है। इसी प्रकार जो बच्चा अशुभ नक्षत्र में पैदा होता है वह अमंगलकारी होता है तथा उसका जीवन परिवार तथा स्वयं के लिए कष्टप्रद होता है। इसी प्रकार सप्ताह के विभिन्न दिनों में जन्म लेने के सम्बन्ध में भी अलग–अलग अवधारणाएँ और परम्परागत विश्वास हैं। इसी प्रकार यदि किसी बालक के जन्म के समय तथा जन्म के बाद परिवार में कोई शुभ कार्य होता है और परिवार की प्रगति व समृद्धि होती है, तो उस बालक को भाग्यशाली मानकर उसे अन्य बालकों की तुलना में अधिक लाड़–प्यार दिया जाता है।

मनोवैज्ञानिकों तथा बाल विशेषज्ञों के मतानुसार यह धारणा भी निराधार है। ज्योतिष के अनुसार नक्षत्र व घड़ियाँ जीवन को प्रभावित अवश्य करती हैं, किन्तु जन्म से ही किसी शिशु को मंगलकारी या अमंगलकारी नहीं बनाती हैं। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री मैडम मारिया मॉण्टेसरी के अनुसार–

बालक में सच्ची शक्ति का आवास होता है तथा उसकी मुस्कुराहट ही सामाजिक प्रेम व उल्लास की आधारशिला है।

3. वंशानुक्रम के सम्बन्ध में

वंशानुक्रम के सम्बन्ध में एक प्रचलित अवधारणा यह है कि जैसे माता–पिता होते हैं, वैसी ही सन्तान भी बनती है। यदि माता–पिता शिक्षित, सुसंस्कृत तथा बुद्धिमान हैं, तो सन्तानें भी सभ्य तथा सुसंस्कृत होंगी। यदि माता–पिता निरक्षर तथा दुराचारी हैं, तो उनकी सन्तानें भी मूर्ख और दुराचारी बनेंगी। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में अवधारणा यह है कि जैसा बीज है, वैसा ही वृक्ष बनेगा उसे अच्छा बनाने के लिए प्रयास की आवश्यकता नहीं है। पुरानी कहावत भी है कि बोया पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से आयेगा।

वुडवर्थ के अनुसार–

आनुवंशिकता और वातावरण का सम्बन्ध जोड़ के समान नहीं बल्कि गुणनफल के समान है।

गैरेट के अनुसार–

इससे अधिक निश्चित बात और कोई नहीं है कि आनुवंशिकता और वातावरण एक–दूसरे को सहयोग देने वाले प्रभाव हैं और दोनों ही बालक की सफलता के लिए अनिवार्य हैं।

4. गर्भकालीन प्रभावों के सम्बन्ध में

कुछ लोगों की यह अवधारणा होती है कि गर्भवती माँ की विभिन्न क्रियाएँ, जैसे– भोजन, परम्परागत उपचार, झाड़फूँक तथा सामाजिक रीति–रिवाज और परम्पराएँ गर्भस्थ शिशु के विकास को प्रभावित करती हैं। जैसे– कुछ लोग मानते हैं कि यदि खट्टा और चटपटा खाती है, तो बेटा होगा। इस अवधारणा से घर के सदस्य गर्भवती स्त्री की देखभाल करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अधिकांशतः पुत्र की ही कामना करता है। अतः वे उस स्त्री की अधिक देखभाल करते हैं, जिससे यह संकेत मिलते हैं कि पुत्र की प्राप्ति होगी। परिवार के सदस्यों के इस प्रकार के व्यवहार का प्रभाव गर्भवती की मानसिक दशा पर पड़ता है, जिससे गर्भस्थ शिशु का विकास प्रभावित होता है।

गर्भकालीन उपयुक्त व सन्तुलित भोजन, अच्छा साहित्य, अच्छा मनोरंजन, माँ की सुखदायक अनुभूतियाँ सभी कुछ गर्भस्थ शिशु के विकास के लिए सकारात्मक होता है, किन्तु इस बात में कोई तथ्य नहीं है कि गर्भधारण के बाद शिशु का लिंग परिवर्तित किया जा सकता है। शिशु जन्म एक अलौकिक प्रक्रिया है। बेटा और बेटी दोनों ही समान रूप से महत्त्वशाली और समान क्षमताओं से युक्त होते हैं। कॉट, डगलस, स्मिथ और बैगिन के शब्दों में–

इस संसार में पैदा होने वाला प्रत्येक बालक भगवान का एक नया विचार है तथा सदैव तरोताजा रहने तथा चमकने वाली सम्भावना है।

5. यौन भेद के सम्बन्ध में

आदिकाल से ही स्त्री को निर्बल और पुरूष को सबल माना जाता है। हमारे धार्मिक ग्रन्थ भी पुत्री की तुलना में पुत्र जन्म की श्रेष्ठता को इसलिए अधिक मानते हैं कि माता–पिता को मोक्ष की प्राप्ति करायेगा। हमारे धर्म और प्राचीन मान्यताओं के कारण ही बालिकाओं की तुलना में बालकों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। कुछ स्थानों पर तो पुत्री के जन्म को अशुभ माना जाता है और जन्म के बाद उनको गला दबाकर मार दिया जाता है। जो माता–पिता बालक और बालिकाओं में भेद मानते हैं, वे बालकों को अधिक सुविधाएँ व लाड़–प्यार देते हैं और बालिकाओं को कम। माता–पिता की यह भावना बालिकाओं में हीन–भावना का विकास करती है और उनके विकास को अवरूद्ध करती है, किन्तु माता–पिता की यह भ्रान्ति बालक और बालिकाओं दोनों का समुचित विकास नहीं कर पाती है, क्योंकि अधिक लाड़–प्यार पाकर बालक अधिक उद्यण्ड हो जाता है। फ्रॉबेल का मानना है कि–

बालक स्वयं विकासोन्मुख होने वाला मानव पौधा है।

अतः बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए यह आवश्यक है कि उनके पालन–पोषण में यौन विभेद न किया जाये।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

1.10 बाल्यावस्था की विशेषताएँ

यद्यपि बाल्यावस्था को 6–12 वर्षायु तक माना जाता है। हरलॉक ने इसे 6 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक के बीच का समय माना है। इस अवस्था में बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताओं को निम्नांकित बिन्दुओं द्वारा व्यक्त किया जा सकता है–

1. शारीरिक व मानसिक स्थिरता

बालक के शारीरिक और मानसिक विकास में 6 या 7 वर्ष की आयु के बाद स्थिरता आ जाती है। वह स्थिरता उसकी शारीरिक व मानसिक शक्तियों को दृढ़ता प्रदान करती है। फलस्वरूप, उसका मस्तिष्क परिपक्व–सा और वह स्वयं वयस्क–सा जान पड़ता है, इसलिए रॉस ने बाल्यावस्था को **मिथ्या–परिपक्वता** का काल बताते हुए लिखा है–

> शारीरिक और मानसिक स्थिरता बाल्यावस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

बाल्यावस्था के विकास का महत्त्व अत्यधिक है। इस अवस्था में विकास का अध्ययन अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रकट करता है। कैरल के अनुसार–

> बालक के शारीरिक विकास और उसके सामान्य व्यवहार का सह–सम्बन्ध इतना महत्त्वपूर्ण होता है कि यदि हम समझना चाहें कि भिन्न–भिन्न बालकों में क्या समानताएँ हैं, क्या भिन्नताएँ हैं, आयु–वृद्धि के साथ व्यक्ति में क्या–क्या परिवर्तन होते हैं, तो हमें बालकों के शारीरिक विकास का अध्ययन करना होगा।

2. मानसिक योग्यताओं में वृद्धि

बाल्यावस्था में बालक की मानसिक योग्यताओं में निरन्तर वृद्धि होती है। उसकी संवेदना और प्रत्यक्षीकरण की शक्तियों में वृद्धि होती है। वह विभिन्न बातों के बारे में तर्क और विचार करने लगता है। वह साधारण बातों पर अधिक देर तक अपने ध्यान को केन्द्रित कर सकता है। उसमें अपने पूर्व–अनुभवों को स्मरण कराने की योग्यता उत्पन्न हो जाती है।

3. जिज्ञासा की प्रबलता

बालक की जिज्ञासा विशेष रूप से प्रबल होती है। वह जिन वस्तुओं के सम्पर्क में आता है, उनके बारे में प्रश्न पूछकर हर तरह की जानकारी प्राप्त करना चाहता है। उसके ये प्रश्न शैशवावस्था के साधारण प्रश्नों से भिन्न होते हैं। अब वह शिशु के समान यह नहीं पूछता है– वह क्या है? इसके विपरीत, वह पूछता है– यह ऐसे क्यों है? यह ऐसे कैसे हुआ है?

4. वास्तविक जगत् से सम्बन्ध

इस अवस्था में बालक शैशवावस्था के काल्पनिक जगत् का परित्याग करके वास्तविक जगत् में प्रवेश करता है। वह उसकी प्रत्येक वस्तु से आकर्षित होकर उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। स्ट्रैंग के शब्दों में –

> बालक अपने को अति विशाल संसार में पाता है और उसके बारे में जल्दी से जल्दी जानकारी प्राप्त करना चाहता है।

5. रचनात्मक कार्यों में आनन्द

बालक को रचनात्मक कार्यों में विशेष आनन्द आता है। वह साधारणतः घर से बाहर किसी प्रकार का कार्य करना चाहता है, जैसे–बगीचे में काम करना या औजारों से लकड़ी की वस्तुएँ बनाना। उसके विपरीत, बालिका घर में ही कोई–न–कोई कार्य करना चाहती है, जैसे–सीना, पिरोना या कढ़ाई करना।

6. सामाजिक गुणों का विकास

बालक, विद्यालय के छात्रों और अपने समूह के सदस्यों के साथ पर्याप्त समय व्यतीत करता है। अतः उसमें अनेक सामाजिक गुणों का विकास होता है। जैसे– सहयोग, सदभावना, सहनशीलता, आज्ञाकारिता आदि।

7. नैतिक गुणों का विकास

इस अवस्था के आरम्भ में ही बालक में नैतिक गुणों का विकास होने लगता है। स्ट्रैंग के मतानुसार–

> 6, 7 और 8 वर्ष के बालकों में अच्छे–बुरे के ज्ञान का एवं न्यायपूर्ण व्यवहार, ईमानदारी और सामाजिक मूल्यों की भावना का विकास होने लगता है।

8. बहिर्मुखी व्यक्तित्व का विकास

शैशवावस्था में बालक का व्यक्तित्व अन्तर्मुखी होता है, क्योंकि वह एकान्तप्रिय और केवल अपने में रूचि लेने वाला होता है। इसके विपरीत, बाल्यावस्था में उसका व्यक्तित्व बहिर्मुखी हो जाता है, क्योंकि बाह्य जगत् में उसकी रूचि उत्पन्न हो जाती है। अतः वह अन्य व्यक्तियों, वस्तुओं और कार्यों का अधिक से अधिक परिचय प्राप्त करना चाहता है।

9. संवेगों का दमन व प्रदर्शन

बालक अपने संवेगों पर अधिकार रखना एवं अच्छी और बुरी भावनाओं में अन्तर करना जान जाता है। वह उन भावनाओं का दमन करता है, जिनको उसके माता–पिता और बड़े लोग पसन्द नहीं करते हैं, जैसे– काम सम्बन्धी भावनाएँ।

10. संग्रह करने की प्रवृत्ति

बाल्यावस्था में बालकों और बालिकाओं में संग्रह करने की प्रवृत्ति बहुत ज्यादा पायी जाती है। बालक विशेष रूप से काँच की गोलियों, टिकटों, मशीनों के भागों और पत्थर के टुकड़ों का संचय करते हैं। बालिकाओं में चित्रों, खिलौनों और कपड़ों के टुकड़ों का संग्रह करने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

11. निरूद्देश्य भ्रमण की प्रवृत्ति

बालक में बिना किसी उद्देश्य के इधर–उधर घूमने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। मनोवैज्ञानिक बर्ट ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया है कि लगभग 9 वर्ष के बालकों में आवारा घूमने, बिना छुट्टी लिए विद्यालय से भागने और आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने की आदतें सामान्य रूप से पाई जाती है।

12. काम–प्रवृत्ति की न्यूनता

बालक में काम–प्रवृत्ति की न्यूनता होती है। वह अपना अधिकांश समय मिलने–जुलने, खेलने–कूदने और पढ़ने–लिखने में व्यतीत करता है। अतः वह बहुत ही कम अवसरों पर अपनी काम–प्रवृत्ति का प्रदर्शन कर पाता है।

13. सामूहिक प्रवृत्ति की प्रबलता

बालक में सामूहिक प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है। वह अपना अधिक से अधिक समय दूसरे बालकों के साथ व्यतीत करने का प्रयास करता है। रॉस के अनुसार–

> बालक प्रायः अनिवार्य रूप से किसी न किसी समूह का सदस्य हो जाता है, जो अच्छे खेल खेलने और ऐसे कार्य करने के लिए नियमित रूप से एकत्र होता है, जिनके बारे में बड़ी आयु के लोगों को कुछ भी नहीं बताया जाता है।

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

14. सामूहिक खेलों में रूचि

बालक को सामूहिक खेलों में अत्यधिक रूचि होती है। वह 6 या 7 वर्ष की आयु में छोटे समूहों में और काफी समय तक खेलता है। खेल के समय बालिकाओं की अपेक्षा बालकों में झगड़े अधिक होते हैं। 11 या 12 वर्ष की आयु में बालक दलीय खेलों में भाग लेने लगता है। स्ट्रैंग का विचार है–

> ऐसा शायद ही कोई खेल हो, जिसे दस वर्ष के बालक न खेलते हों।

15. रूचियों में परिवर्तन

बालक की रूचियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। वे स्थायी रूप धारण न करके वातावरण में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती रहती हैं। कोल एवं ब्रूस ने लिखा है–

> 6 से 12 वर्ष की अवधि की एक अपूर्व विशेषता है–मानसिक रूचियों में स्पष्ट परिवर्तन।

1.11 बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरूप

बाल्यकाल बालक के जीवन की आधारशिला है। अतः यह आवश्यक है कि बालक के विकास के सभी पक्षों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुये शिक्षा का स्वरूप निर्धारित किया जाये। अतः उसकी शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए–

1. भाषा के ज्ञान पर बल

स्ट्रैंग के अनुसार इस अवस्था में बालकों की भाषा में बहुत रूचि होती है। अतः इस बात पर बल दिया जाना आवश्यक है कि बालक, भाषा का अधिक–से–अधिक ज्ञान प्राप्त करे।

2. उपयुक्त विषयों का चुनाव

बालक के लिए कुछ ऐसे विषयों का अध्ययन आवश्यक है, जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें और उसके लिए लाभप्रद भी हों। इस विचार से निम्नलिखित विषयों का चुनाव किया जाना चाहिए–भाषा, अंकगणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, चित्रकला, सुलेख, पत्र–लेखन और निबन्ध–रचना।

3. रोचक विषय–सामग्री

बालकों की रूचियों में विभिन्नता और परिवर्तनशीलता होती है, अतः उसकी पुस्तकों की विषय–सामग्री में रोचकता और विभिन्नता होनी चाहिए। इस दृष्टिकोण से विषय–सामग्री का सम्बन्ध निम्नलिखित से होना चाहिए–पशु, हास्य, विनोद, नाटक, वार्तालाप, वीर पुरूष, साहसी कार्य और आश्चर्यजनक बातें।

4. पाठ्य–विषय व शिक्षण–विधि में परिवर्तन

इस अवस्था में बालक की रूचियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। अतः पाठ्य–विषय और शिक्षण–विधि में उसकी रूचियों के अनुसार परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। ऐसा न करने से उसमें शिक्षा के प्रति कोई आकर्षण नहीं रह जाता है। फलस्वरूप, उसकी मानसिक प्रगति रूक जाती है।

5. जिज्ञासा की सन्तुष्टि

बालक में जिज्ञासा की प्रवृत्ति होती है। अतः उसे दी जाने वाली शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए, जिससे उसकी इस प्रवृत्ति की तुष्टि हो।

6. सामूहिक प्रवृत्ति की तुष्टि

बालक में समूह में रहने की प्रबल प्रवृत्ति होती है। वह अन्य बालकों से मिलना–जुलना और उनके साथ कार्य करना या खेलना चाहता है। उसे इन सब बातों का अवसर देने के लिए विद्यालय में सामूहिक कार्यों और सामूहिक खेलों का उचित आयोजन किया जाना चाहिए। कोलेसनिक के अनुसार–

> सामूहिक खेल और शारीरिक व्यायाम–प्राथमिक विद्यालय के पाठ्यक्रम के अभिन्न अंग होने चाहिए।

7. रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था

बालक की रचनात्मक कार्यों में विशेष रूचि होती है। अतः विद्यालय में विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

8. पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था

बालक की विभिन्न मानसिक रूचियों को सन्तुष्ट करके उसकी सुप्त शक्तियों का अधिकतम विकास किया जा सकता है। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए विद्यालय में अधिक–से–अधिक पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं का संचालन किया जाना चाहिए।

9. पर्यटन व स्काउटिंग की व्यवस्था

लगभग 9 वर्ष की आयु में बालक में निरूद्देश्य इधर–उधर घूमने की प्रवृत्ति होती है। उसकी इस प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए पर्यटन और स्काउटिंग को उसकी शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।

10. संचय–प्रवृत्ति को प्रोत्साहन

बालक में संचय करने की प्रवृत्ति होती है। उसे जो भी वस्तु अच्छी लगती है, उसी का वह संचय कर लेता है। उसके माता–पिता और शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वे उसे शिक्षाप्रद वस्तुओं का संचय करने के लिए प्रोत्साहित करें।

11. संवेगों के प्रदर्शन का अवसर

कोल एवं ब्रूस ने बाल्यावस्था को **संवेगात्मक विकास का अनोखा काल** माना है। यह विकास तभी सम्भव है, जब बालक के संवेगों का दमन न किया जाय, क्योंकि ऐसा करने से उसमें भावना–ग्रन्थियों का निर्माण हो जाता है। अतः स्ट्रैंग का परामर्श है–

> बालकों को सामाजिक स्वीकृति–प्राप्त अपने संवेगों का दमन करने के बजाय तृप्त करने में सहायता दी जानी चाहिए, क्योंकि संवेगात्मक भावना और प्रदर्शन उनके सम्पूर्ण जीवन का आधार होता है।

12. सामाजिक गुणों का विकास

किलपैट्रिक ने बाल्यावस्था को **प्रतिद्वन्द्वात्मक समाजीकरण का काल** माना है। अतः विद्यालय में ऐसी क्रियाओं का अनिवार्य रूप से संगठन किया जाना चाहिए, जिनमें भाग लेकर बालक में अनुशासन, आत्म–नियन्त्रण, सहानुभूति, प्रतिस्पर्धा, सहयोग आदि सामाजिक गुणों का अधिकतम विकास हो।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

13. नैतिक शिक्षा

पियाजे ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया है कि लगभग 8 वर्ष का बालक अपने नैतिक मूल्यों का निर्माण और समाज के नैतिक नियमों में विश्वास करने लगता है। उसे इन मूल्यों का उचित निर्माण और इन नियमों में दृढ़ विश्वास रखने के लिए नियमित रूप से नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए। कोलेसनिक का मत है– बालक को आनन्द प्रदान करने वाली सरल कहानियों द्वारा नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए।

14. क्रिया व खेल द्वारा शिक्षा

सभी शिक्षा–शास्त्री बालक की स्वाभाविक क्रियाशीलता और खेल–प्रवृत्ति में विश्वास करते हैं। अतः उसकी शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए, जिससे वह स्वयं–क्रिया और खेल द्वारा ज्ञान का अर्जन करे।

15. प्रेम व सहानुभूति पर आधारित शिक्षा

बालक कठोर अनुशासन पसन्द नहीं करता है। वह शारीरिक दण्ड, बल–प्रयोग और डाँट–डपट से घृणा करता है। वह उपदेश नहीं सुनना चाहता है। वह धमकियों की चिन्ता नहीं करता है। अतः उसकी शिक्षा इनमें से किसी पर आधारित न होकर प्रेम और सहानुभूति पर आधारित होनी चाहिए।

फ्रायड और उसके अनुयायियों ने बाल्यावस्था को बालक का निर्माणकारी काल मानकर इस अवस्था को अत्यधिक महत्त्व दिया है। उनका कहना है कि इस अवस्था में बालक जिन वैयक्तिक, सामाजिक और शिक्षा–सम्बन्धी आदतों एवं व्यवहार के प्रतिमानों का निर्माण कर लेता है, उनको रूपान्तरित करना बहुत कठिन हो जाता है। इस दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों पर बालकों का निर्माण करने का महान् उत्तरदायित्व है। लगभग ऐसे ही विचारों को व्यक्त करते हुए ब्लेयर, जोन्स तथा सिम्पसन ने लिखा है–

> शैक्षिक दृष्टिकोण से जीवन–चक्र में बाल्यावस्था से अधिक महत्त्वपूर्ण और कोई अवस्था नहीं है। जो अध्यापक इस अवस्था के बालकों को शिक्षा देते हैं, उन्हें बालकों का, उनकी आधारभूत आवश्यकताओं का, उनकी समस्याओं का और उन परिस्थितियों का पूर्व ज्ञान होना चाहिए, जो उनके व्यवहार को रूपान्तरित और परिवर्तित करती हैं।

मनोवैज्ञानिक, बाल्यावस्था को शैक्षिक दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व देते हैं। इस अवस्था में शिक्षा का यथार्थवादी स्वरूप, जो उनकी आवश्यकता, प्रकृति तथा मूल प्रवृत्तियों के शोधन पर आधारित हो, वह बालकों के मूलभूत गुणों को विकसित करने तथा उन्हें स्वस्थ, सजग नागरिक बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

www.praganya.org

****

प्रगण्य प्रकाशन द्वारा CTET एवं प्रत्येक राज्य के TET (UPTET, MP Samvida, BTET, UTET, JTET, HTET, CGTET, HPTET) के लिए मॉडल पेपर की फ्री PDF प्रकाशित की जाती है। मॉडल पेपर की फ्री PDF प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित Whatsapp No. अपने कॉलेज के क्लास ग्रुप या कोचिंग के क्लास ग्रुप या अन्य स्टडी ग्रुप में जोंडे। आपके ग्रुप में मॉडल पेपर भेज दिए जाएँगें।

UPTET - 95301 43210
MP Samvida - 95302 43210
BTET - 95302 43210
UTET - 72209 29294
JTET - 72209 29239
HTET - 72209 29266
CGTET - 72209 28969
HPTET - 72209 28535

अभ्यासार्थ प्रश्न

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

1. बाल विकास का अर्थ है–
(1) व्यवहार में परिवर्तन
(2) बालक का गुणात्मक व परिमाणात्मक परिवर्तन
(3) बालक का गुणात्मक विकास
(4) व्यक्तित्व में परिवर्तन

2. बाल विकास की प्रकृति कैसी मानी जाती है?
(1) विज्ञानमयी (2) अप्राकृतिक
(3) अनिश्चित (4) अवैज्ञानिक

3. बाल अध्ययन का पिता कौन है?
(1) फ्रायड (2) ड्रेवर
(3) स्टेनले हॉल (4) डार्विन

4. बाल विकास की उपयोगिता है–
(1) बाल निर्देशन में (2) बालकों के स्वभाव को समझने में
(3) बालकों के शिक्षण में (4) उपर्युक्त सभी

5. पूर्व बाल्यावस्था की विशेषता क्या है?
(1) जिज्ञासा (2) खिलौनों में रुचि
(3) नवीन पद्धतियाँ (4) उपर्युक्त सभी

6. उत्तर बाल्यावस्था की विशेषता है–
(1) आत्मनिर्भर होना (2) मित्र मण्डली या समूह निर्माण
(3) स्वतन्त्र होना (4) उपर्युक्त सभी

7. बाल विकास कब सम्पन्न होता है?
(1) बाल्यावस्था में (2) शैशवावस्था में
(3) जीवनपर्यन्त चलता है। (4) किशोरावस्था में

8. बाल विकास को कितने भागों में बाँटा गया है–
(1) 2 (2) 5
(3) 4 (4) 3

9. शैक्षिक दृष्टि से बाल विकास की अवस्थाएँ हैं–
(1) किशोरावस्था (2) बाल्यावस्था
(3) शैशवावस्था (4) उपरोक्त तीनों

10. बाल विकास को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला कारक है–
(1) यौन शिक्षा (2) बुद्धि परीक्षण
(3) खेलकूद का मैदान (4) सुन्दर विद्यालय भवन

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.	9.	10.
(2)	(1)	(3)	(4)	(4)	(4)	(3)	(3)	(4)	(3)

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

11. बाल विकास में–
(1) गर्भावस्था से किशोरावस्था तक का अध्ययन होता है।
(2) प्रक्रिया पर बल दिया गया है।
(3) वातावरण और अनुभव की भूमिका पर बल दिया गया है।
(4) उपर्युक्त सभी पर

12. बाल विकास का अध्ययन क्षेत्र है–
(1) वैयक्तिक विभिन्नताओं का अध्ययन
(2) बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन
(3) वातावरण के बाल विकास पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन
(4) उपर्युक्त सभी

13. विकास शुरू होता है–
(1) उत्तर–बाल्यावस्था से (2) प्रसवपूर्व अवस्था से
(3) शैशवावस्था से (4) पूर्व–बाल्यावस्था से

14. **विकासात्मक बाल मनोविज्ञान** का जनक किसे माना जाता है?
(1) फ्रायड को (2) ब्रूनर को
(3) जीन पियाजे को (4) केली को

15. **खिलौनों की आयु** कहा जाता है–
(1) पूर्व बाल्यावस्था को (2) उत्तर बाल्यावस्था को
(3) शैशवावस्था को (4) इनमें से सभी

16. बाल मनोविज्ञान के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में मुख्य स्थान है–
(1) बालक का (2) प्रशासक का
(3) अध्यापक का (4) अभिभावक का

17. शैशवावस्था में शिशु होता है–
(1) सामाजिक
(2) आत्मकेन्द्रित
(3) संवेगात्मक दृष्टि से दृढ़
(4) संवेगात्मक रूप से अस्थिर

18. निम्न में से कौनसी पूर्व बाल्यावस्था की विशेषता नहीं है?
(1) दल/समूह में रहने की अवस्था
(2) अनुकरण करने की अवस्था
(3) प्रश्न करने की अवस्था
(4) खेलने की अवस्था

19. उत्तर बाल्यावस्था में बालक भौतिक वस्तुओं के किस आवश्यक तत्त्व में परिवर्तन समझने लगते हैं?
(1) द्रव्यमान
(2) द्रव्यमान और संख्या
(3) संख्या
(4) द्रव्यमान, संख्या और क्षेत्र

20. निम्न में से कौनसा विकासात्मक कार्य उत्तर बाल्यावस्था के उपयुक्त नहीं है?
(1) सामान्य खेल के लिए आवश्यक शारीरिक कुशलताएँ सीखना
(2) पुरूषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाओं को प्राप्त करना
(3) वैयक्तिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करना
(4) अपने हमउम्र बालकों के साथ रहना सीखना

21. बाल विकास के अध्ययन में निम्नलिखित में से किन बातों को शामिल किया जाता है?
1. आयु के साथ होने वाले परिवर्तनों का क्या स्वरूप होता है?
2. बालक में होने वाले परिवर्तनों का विशेष आयु के साथ क्या सम्बन्ध होता है?
3. बालकों में पाई जाने वाली व्यक्तिगत विभिन्नताओं के लिए किस प्रकार के आनुवंशिक एवं परिवेशजन्य प्रभाव उत्तरदायी होते हैं?
(1) 1 एवं 2
(2) 2 एवं 3
(3) 1 एवं 3
(4) ये सभी

22. विकास की प्रक्रिया में ..... जीवनमूल्यों, व्यक्तित्व, व्यवहार इत्यादि का विकास भी शामिल है।
1 दृष्टिकोणों 2. स्वभाव
3. रूचियों 4. आदतों
(1) 1 एवं 2 (2) 1,2 एवं 3
(3) 2,3 एवं 4 (4) ये सभी

23. शिक्षा मनोविज्ञान में ..... में होने वाले मानव विकास का अध्ययन किया जाता है।
1. शैशवावस्था 2. बाल्यावस्था
3. किशोरावस्था 4. वयस्कावस्था
(1) 1 एवं 2 (2) 1,2 एवं 3
(3) 1 एवं 3 (4) ये सभी

24. 6–11 वर्ष के आयु वर्ग के बालकों की विशेषता हैं–
(1) बालक स्वाभाविक एवं सक्रिय अधिगमकर्ता होते हैं।
(2) सीखने के लिए शिक्षकों पर निर्भर होते हैं।
(3) बालक, शिक्षकों से ज्ञान प्राप्त करते हैं।
(4) बालक सीखने में रूचि नहीं रखते हैं।

25. 6 या 7 वर्ष का बालक दूसरों के विचारों को स्वीकार करने के योग्य नहीं होता–
(1) क्योंकि वह बहुत छोटा होता है।
(2) क्योंकि वह अहम् केन्द्रित होता है।
(3) क्योंकि वह कल्पनाशील होता है।
(4) क्योंकि वह बुद्धिमान नहीं होता है।

11.	12.	13.	14.	15.	16.	17.	18.	19.	20.	21.	22.	23.	24.	25.							
(4)	(4)	(2)	(3)	(1)	(1)	(2)	(3)	(4)	(2)	(4)	(4)	(2)	(1)	(2)							

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

26. निम्न में से किसकी भूमिका पूर्व बाल्यावस्था में बालक के संवेगात्मक विकास हेतु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है?
(1) अध्यापकों की (2) संगी-साथियों की
(3) पड़ोसियों की (4) माता-पिता की

27. अधिकांश विद्वानों के अनुसार बाल्यावस्था की अवधि है-
(1) 5 से 10 वर्ष (2) 6 से 12 वर्ष
(3) 4 से 10 वर्ष (4) 2 से 8 वर्ष

28. कॉल व ब्रूस ने बाल्यावस्था को माना है-
(1) समस्यात्मक काल
(2) अनोखा काल
(3) मिथ्या परिपक्वता काल
(4) जिज्ञासा काल

29. बाल्यावस्था को **मिथ्या परिपक्वता काल** कहा है-
(1) रॉस ने (2) कॉल व ब्रूस ने
(3) एना फ्रायड ने (4) क्रो एवं क्रो ने

30. बाल्यावस्था में पायी जाने वाली प्रवृत्ति/प्रवृत्तियाँ है/हैं-
(1) निरूद्देश्य भ्रमण की प्रवृत्ति
(2) जिज्ञासा की प्रबलता
(3) रचनात्मक कार्यों में आनन्द लेना
(4) उपरोक्त सभी

31. **समूह अवस्था** या **चुस्ती की अवस्था** भी कहते हैं-
(1) शैशवावस्था को (2) बाल्यावस्था को
(3) प्रौढ़ावस्था को (4) किशोरावस्था को

32. बाल्यावस्था को निम्नलिखित में से किस नाम से जाना जाता है?
(1) टोली आयु (2) जीवन का अनोखा काल
(3) बक्की अवस्था (4) उपरोक्त सभी

33. परिपक्व बाल्यावस्था किसे कहते हैं?
(1) 6 से 9 वर्ष (2) 7 से 10 वर्ष
(3) 8 से 11 वर्ष (4) 9 से 12 वर्ष

34. बाल्यावस्था में कौनसी मूलप्रवृत्ति सबसे अधिक क्रियाशील रहती है?
(1) काम (2) जिज्ञासा
(3) रचनात्मकता (4) सामूहिकता

35. बाल्यावस्था में **परिपाक काल** की निम्न में से कौनसी अवधि है?
(1) 12 से लेकर 14 वर्ष
(2) 14 से लेकर 16 वर्ष
(3) 10 से लेकर 12 वर्ष
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

36. बाल्यावस्था में बालकों को साहसिक यात्राओं की रोमांचकारी कहानियाँ सुनाने सें उनमें-
(1) आज्ञा एवं अनुशासन के गुण उत्पन्न होते हैं।
(2) भय के संवेग समाप्त होते हैं।
(3) उत्साह का संचार होता है।
(4) आनन्द की भावना विकसित होती है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

37. बाल्यावस्था की एक प्रमुख विशेषता है-
(1) अधिगम की तीव्रता
(2) अपेक्षाकृत स्थिर विकास प्रक्रिया
(3) यथार्थवादी दृष्टिकोण
(4) उपर्युक्त सभी

38. शिक्षक बाल मनोविज्ञान के ज्ञान द्वारा बालकों की-
1. बुद्धि तथा रूचियों की जानकारी लेकर शिक्षा देता है।
2. प्रकृति को जानकर शिक्षा देता है।
3. आर्थिक स्थिति तथा पारिवारिक स्थिति की जानकारी लेकर शिक्षा देता है।
(1) केवल 1 (2) 1 एवं 3
(3) 2 एवं 3 (4) ये सभी

39. बाल मनोविज्ञान का अध्ययन निम्नलिखित में से किसके लिए सर्वाधिक आवश्यक है?
(1) माध्यमिक शिक्षक के लिए
(2) विश्वविद्यालय के शिक्षक के लिए
(3) प्राथमिक शिक्षक के लिए
(4) उपरोक्त सभी के लिए

40. निम्नलिखित में से किसे बाल मनोविज्ञान की उपयोगिता के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है?
(1) बालक के भविष्य के बारे में पूर्वकथन में सहायक
(2) बाल निर्देशन में सहायक
(3) शिक्षक की आर्थिक प्रगति में सहायक
(4) बालकों के व्यक्तिगत विकास को समझने में उपयोगी

41. प्राथमिक शिक्षण के लिए बाल मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि-
(1) यह बच्चों को अनुशासित बनाने में सहायक है।
(2) परीक्षा के परिणाम में उन्नति होती है।
(3) यह बच्चों को अभिप्रेरित करने के लिए सुविधाजनक तरीका बन जाता है।
(4) यह बच्चों के व्यवहार को समझने में शिक्षक की सहायता करता है।

42. बाल्यावस्था में विकास को **छद्म परिपक्वता का समय** किसने कहा है?
(1) रॉस ने (2) जेम्स ट्रेवर ने
(3) जीन पियाजे ने (4) एन.आर.भाटिया ने

26.	27.	28.	29.	30.	31.	32.	33.	34.	35.	36.	37.	38.	39.	40.	41.	42.					
(4)	(2)	(2)	(1)	(4)	(2)	(4)	(4)	(4)	(3)	(3)	(4)	(4)	(3)	(3)	(4)	(1)					

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

43. प्राथमिक कक्षा के शिक्षक के लिए निम्नलिखित में से किसका ज्ञान होना आवश्यक है?
(1) बाल मनोविज्ञान (2) शिक्षा-दर्शन
(3) स्वास्थ्य विज्ञान (4) सामाजिक विज्ञान

44. बालकों के स्वभाव को समझने के लिए शिक्षकों को निम्नलिखित में से किसका अध्ययन करना चाहिए?
(1) सामाजिक विज्ञान (2) प्राकृतिक विज्ञान
(3) बाल मनोविज्ञान (4) भूगोल

45. शिक्षक के लिए मनोविज्ञान/बाल मनोविज्ञान का ज्ञान क्यों जरूरी है?
(1) इसमें बच्चों की आधारभूत विशेषताओं को जानने का अवसर मिलता है।
(2) शिक्षण मनोवैज्ञानिक नियमों के अनुकूल होता है।
(3) आधुनिक शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है।
(4) शिक्षण सफल होता है।

46. बाल मनोविज्ञान किसके व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है?
(1) बालक (2) शिक्षक
(3) किशोर (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

47. **बाल मनोविज्ञान एक वैज्ञानिक अध्ययन है, जिसमें बालक के जन्म पूर्व काल से लेकर किशोरावस्था तक का अध्ययन किया जाता है।** यह कथन है-
(1) हरलॉक का (2) थॉमसन का
(3) क्रो एवं क्रो का (4) रॉस का

48. **Biographical Sketch of a infant** नामक पुस्तक का प्रकाशन किसने किया?
(1) डार्विन ने (2) प्लेटो ने
(3) रूसो ने (4) विलियम हिली ने

49. प्रथम बाल निर्देशन केन्द्र किसके द्वारा खोला गया?
(1) प्लेटो (2) विलियम हिली
(3) डार्विन (4) रूसो

50. **बाल मनोविज्ञान वह वैज्ञानिक अध्ययन है, जो व्यक्ति के विकास का अध्ययन गर्भकाल के प्रारम्भ से किशोरावस्था की प्रारम्भावस्था तक करता है।** यह परिभाषा किसने दी?
(1) क्रो एवं क्रो ने (2) वर्क ने
(3) जेम्स ड्रेवर ने (4) आरजेंक ने

51. **बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें जन्म से परिपक्व अवस्था तक विकसित हो रहे मानव का अध्ययन किया जाता है।** यह परिभाषा किसने दी?
(1) रूसो ने (2) आइजेंक ने
(3) ड्रेवर ने (4) कैटल ने

52. बाल विकास की परिभाषा का अध्ययन क्षेत्र है-
(1) बच्चों की वयस्क तथा वरिष्ठ नागरिकों के साथ तुलना करेगा।
(2) मानवीय सामर्थ्यों में परिवर्तन की व्याख्या करता है।
(3) जीवन अवधि के दौरान व्यवहार की व्याख्या ढूँढेगा।
(4) किसी बच्चे के संज्ञानात्मक, सामाजिक तथा दूसरे सामर्थ्यों के क्रमिक विकास के लिए उत्तरदायी रहेगा।

53. बाल्यावस्था को **प्रतिद्वन्द्वात्मक समाजीकरण** की अवस्था किसने कहा है?
(1) फ्रॉबेल ने (2) स्टेनले हॉल ने
(3) जरशील्ड ने (4) किलपैट्रिक ने

54. बाल विकास की सम्पूर्ण अवधि में मानसिक विकास की गति सर्वाधिक तीव्र किस अवस्था में होती है?
(1) शैशवावस्था में (2) किशोरावस्था में
(3) बाल्यावस्था में (4) प्रौढ़ावस्था में

55. जीन पियाजे का बाल विकास वर्गीकरण किस सिद्धान्त पर आधारित है?
(1) मनो सामाजिक विकास सिद्धान्त
(2) नैतिक विकास सिद्धान्त
(3) मनोलैंगिक विकास सिद्धान्त
(4) संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त

56. बाल विकास के शैक्षिक निहितार्थ से सम्बन्धित नहीं है-
(1) विद्यालय के बाग की देखभाल करना
(2) विद्यालय तथा समुदाय को जोड़ना
(3) प्रातःकालीन विद्यालयी सभाओं को सम्बोधित करना
(4) पिछड़े और गन्दे क्षेत्रों में लोगों की सेवा के लिए न जाना

57. निम्न में से कौनसा सिद्धान्त बाल विकास में वातावरण सम्बन्धी कारकों को ही महत्त्व देता है?
(1) परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त
(2) सामाजिक अधिगम सिद्धान्त
(3) विकास क्रम की एकरूपता का सिद्धान्त
(4) निरन्तरता का सिद्धान्त

58. **एक बालक पहले पूरे हाथ को, फिर अंगुलियों को और फिर हाथ और अंगुलियों को एक साथ चलाना सीखता है।** बाल विकास के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त कहलाता है-
(1) सामाजिक अधिगम सिद्धान्त (2) परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त
(3) एकीकरण का सिद्धान्त (4) इनमें से कोई नहीं

****

43.	44.	45.	46.	47.	48.	49.	50.	51.	52.	53.	54.	55.	56.	57.	58.						
(1)	(3)	(2)	(1)	(3)	(1)	(2)	(1)	(3)	(4)	(4)	(1)	(4)	(4)	(2)	(3)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगणय प्रकाशन की ... www.praganyaorg ...

अध्याय 2

वृद्धि और विकास

2.1 प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में पल-पल बदलाव आता है। जन्म के समय वह शिशु कहलाता है, कुछ समय बाद बालक, फिर किशोर, वयस्क, प्रौढ़ एवं वृद्ध कहलाता है। प्रारम्भिक अवस्था में वह अबोध कहलाता है, फिर शरारती, गम्भीर, विद्वान, ज्ञानी आदि विशेषणों से युक्त हो जाता है। व्यक्ति की आयु में वृद्धि के साथ-साथ उसकी शारीरिक और मानसिक योग्यताओं एवं क्षमताओं में भी वृद्धि होने लगती है। इस कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं व्यवहार में भी परिवर्तन होता रहता है। शिक्षा के क्षेत्र में बालक के व्यक्तित्व एवं व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। बालक की योग्यताओं एवं क्षमताओं में वृद्धि, व्यक्तित्व एवं व्यवहार में परिवर्तन जिन कारणों से होता है उनका अध्ययन शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता को करना आवश्यक है। बालक की आयु के साथ शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांवेगिक, नैतिक आदि पक्षों का किस प्रकार विकास होता है, इसका अध्ययन करना इस अध्याय का उद्देश्य है। व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परिवर्तन को अभिवृद्धि एवं विकास के नाम से जाना जाता है।

www.praganya.org

2.2 अभिवृद्धि

अभिवृद्धि का सामान्य अर्थ होता है आगे बढ़ना। बालक की अभिवृद्धि के सन्दर्भ में इसे उसके शरीर के आन्तरिक एवं बाह्य अंगों के आकार, भार और इनकी कार्यक्षमता में होने वाली वृद्धि के रूप में देखा जाता है। मानव शरीर में यह वृद्धि एक आयु तक (18-20 वर्ष) ही होती है, उसके बाद इन अंगों में वृद्धि नहीं होती है अर्थात् इस आयु तक व्यक्ति पूर्ण वयस्क हो जाता है। इस वृद्धि को देखा-परखा जा सकता है और इसका मापन भी किया जा सकता है।

www.praganya.org

मनोवैज्ञानिक फ्रेंक ने अभिवृद्धि को परिभाषित करते हुए लिखा-

> अभिवृद्धि से तात्पर्य कोशिकाओं में होने वाली वृद्धि से होता है, जैसे-लम्बाई और भार में वृद्धि।

मानव अभिवृद्धि की दो विशेषताएँ होती है- मानव की कार्यक्षमता और अभिवृद्धि की सीमा। इन्हीं विशेषताओं को समाहित करते हुए लाल एवं जोशी ने अभिवृद्धि को परिभाषित करते हुए लिखा-

> मानव अभिवृद्धि से तात्पर्य उसके शरीर के बाह्य एवं आंतरिक अंगों के आकार, भार एवं कार्यक्षमता में होने वाली उस वृद्धि से होता है, जो उसके गर्भ समय को परिपक्वता प्राप्त करने तक चलती है।

2.3 विकास का अर्थ

विकास एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है जो जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त तक अविराम चलती रहती है। विकास केवल शारीरिक वृद्धि की ओर ही संकेत नहीं करती वरन् इसके अन्तर्गत वे सभी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक परिवर्तन सम्मिलित रहते हैं, जो गर्भकाल से लेकर मृत्युपर्यन्त तक निरन्तर प्राणी में प्रकट होते रहते हैं।

विकास की प्रक्रिया में होने वाले सभी परिवर्तन समान नहीं होते हैं। जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में होने वाले परिवर्तन रचनात्मक और उत्तरार्द्ध में होने वाले परिवर्तन विनाशात्मक होते हैं। रचनात्मक परिवर्तन प्राणी में परिपक्वता लाते हैं और विनाशात्मक परिवर्तन उसे वृद्धावस्था की ओर ले जाते हैं। इस प्रकार विकास एक व्यापक शब्द है।

विकास को **क्रमिक परिवर्तनों की शृंखला** भी कहा जाता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताओं का उदय होता है तथा पुरानी विशेषताओं की समाप्ति हो जाती है। प्रौढ़ावस्था में पहुँचकर मनुष्य स्वयं को जिन गुणों से सम्पन्न पाता है, वे विकास की प्रक्रिया के ही परिणाम होते हैं।

2.4 विकास की परिभाषाएँ

1. हरलॉक के अनुसार-

> विकास केवल अभिवृद्धि तक ही सीमित नहीं है वरन् वह व्यवस्थित तथा समनुगत परिवर्तन है जिसमें कि प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ एवं योग्यताएँ प्रकट होती हैं।

इस परिभाषा में दो शब्दों **व्यवस्थित** और **समनुगत** पर अधिक बल दिया गया है। व्यवस्थित शब्द से तात्पर्य है कि विकास की प्रक्रिया में होने वाले परिवर्तनों में कोई न कोई क्रम अवश्य होता है और आगे वाले परिवर्तन पूर्व परिवर्तन पर आधारित होते हैं। समनुगत शब्द का अर्थ है परिवर्तन सम्बन्धहीन नहीं हाते हैं, उनमें आपस में परस्पर सम्बन्ध होता है।

2. मुनरों के अनुसार-

> विकास परिवर्तन शृंखला की वह अवस्था है जिसमें बच्चा भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक गुजरता है, विकास कहलाता है।

3. जेम्स ड्रेवर के अनुसार -

> विकास वह दशा है जो प्रगतिशील परिवर्तन के रूप में सतत् रूप से व्यक्त होती है। यह प्रगतिशील परिवर्तन किसी भी प्राणी में भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक होता है। यह विकास तन्त्र को सामान्य रूप में नियन्त्रित करता हे। यह प्रगति का मानदण्ड है और इसका आरम्भ शून्य से होता है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि विकास एक व्यापक शब्द है। बालक के गर्भ में आते ही विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जो सामान्यतः 9 माह या 10 माह या लगभग 280 दिनों तक होती है। इस अवधि में शरीर के अंगों का विकास होता है जब गर्भकालीन विकास पूर्ण हो जाता है, तो उसे जन्म लेकर बाहर आना पड़ता है। अतः इससे पता चलता है कि विकास एक परिवर्तनों की श्रृंखला है।

विकास की प्रक्रिया में होने वाले परिवर्तन वंशानुक्रम से प्राप्त गुणों तथा वातावरण दोनों का ही परिणाम होते हैं। विकास की प्रक्रिया में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को तो आसानी से देखा जा सकता है, किन्तु अन्य दिशाओं में होने वाले परिवर्तनों को देखने व समझने में समय लगता है।

2.5 वृद्धि एवं विकास में अन्तर

अभिवृद्धि और **विकास** का अर्थ समझने के लिए हमें उनके अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। सोरेन्सन के अनुसार– सामान्य रूप से अभिवृद्धि शब्द का प्रयोग शरीर और उसके अंगों के भार और आकार में वृद्धि के लिए किया जाता है। इस वृद्धि को नापा और तोला जा सकता है। विकास का सम्बन्ध अभिवृद्धि से अवश्य होता है, पर यह शरीर के अंगों में होने वाले परिवर्तनों को विशेष रूप से व्यक्त करता है, उदाहरणार्थ, हड्डियों के आकार में वृद्धि होती है, पर कड़ी हो जाने के कारण उनके स्वरूप में परिवर्तन भी हो जाता है। इस प्रकार, विकास में अभिवृद्धि का भाव सदैव निहित रहता है। फिर भी, लेखकों द्वारा दोनों शब्दों का प्रयोग साधारणतः एक ही अर्थ में किया जाता है।

अभिवृद्धि और विकास की प्रक्रियाएँ उसी समय से आरम्भ हो जाती है, जिस समय से बालक का गर्भाधान होता है। ये प्रक्रियाएँ, उनके जन्म के बाद भी चलती रहती है। फलस्वरूप, वह विकास की विभिन्न अवस्थाओं में से गुजरता है, जिनमें उसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि विकास होता है। अतः हम हरलॉक के शब्दों में कह सकते हैं–

> विकास, अभिवृद्धि तक ही सीमित नहीं है। इसके बजाय, इसमें प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ और नवीन योग्यताएँ प्रकट होती है।

अभिवृद्धि एवं विकास में अन्तर निम्नलिखित हैं–

क्र.सं.	अभिवृद्धि	विकास
1.	अभिवृद्धि से तात्पर्य मनुष्य के आकार बनावट एवं भार में होने वाली वृद्धि से है।	विकास से तात्पर्य मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक एवं चारित्रिक आदि ऊर्ध्वगामी परिवर्तनों से होता है।
2.	अभिवृद्धि सीमित होती है तथा परिपक्वता के स्तर तक होती है।	विकास की कोई सीमा नहीं होती है। यह जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती रहती है।
3.	अभिवृद्धि केवल मात्रात्मक होती है।	विकास मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार का होता है।
4.	अभिवृद्धि क्रमिक एवं श्रृंखलाबद्ध रूप से होती है।	विकास का कोई क्रम निश्चित नहीं होता।
5.	अभिवृद्धि प्रायः स्थूल रूप में दृश्यगत होती है।	विकास दृश्य तथा अदृश्य दोनों रूपों में होता है
6.	अभिवृद्धि विकास को प्रभावित करती है।	विकास अभिवृद्धि से बहुत कम ही प्रभावित होता है।
7.	अभिवृद्धि केवल धनात्मक होती है।	विकास धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों होता है।
8.	अभिवृद्धि केवल आनुवंशिक प्रभाव के कारण होती है।	विकास पर आनुवंशिकता के साथ ही वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि विकास अभिवृद्धि से कहीं अधिक व्यापक है तथा अभिवृद्धि विकास का एक अंग है।

2.6 विकास के रूप

विकास की प्रक्रिया में मुख्य रूप से चार प्रकार के परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं–

1. आकार में परिवर्तन

शारीरिक विकास क्रम में निरन्तर शरीर के आकार में परिवर्तन होता रहता है। आकारों में होने वाले परिवर्तनों को आसानी से देखा जा सकता है। शारीरिक विकास क्रम में आयु वृद्धि के साथ–साथ शरीर के आकार व भार में निरन्तर परिवर्तन आता रहता है।

2. अनुपात में परिवर्तन

विकास क्रम में पहले आकारों में परिवर्तन होता है, लेकिन यह परिवर्तन आनुपातिक होता है। प्राणी के शरीर के सभी अंग विकसित नहीं होते हैं न ही उनमें एक साथ परिपक्वता आती है। अतः सभी अंगों के विकास का एक निश्चित अनुपात नहीं होता है। जैसे– सम्पूर्ण विकास काल में हृदय का भार जन्म के भार का तेरह गुना बढ़ जाता है, जबकि मस्तिष्क का भार केवल चार गुना ही बढ़ता है। अतः विकास क्रम में शारीरिक अंगों के अनुपात में अन्तर आ जाता है। उदाहरण के लिए, शैशवावस्था में बालक स्व–केन्द्रित होता है जबकि बाल्यावस्था के आते–आते वह अपने आसपास के वातावरण तथा व्यक्तियों में रूचि लेने लगता है।

3. पुरानी रूपरेखा में परिवर्तन

प्राणी के विकास क्रम में नवीन विशेषताओं का उदय होने से पूर्व पुरानी विशेषताओं का लोप होता रहता है। जैसे– बचपन के बालों और दाँतों का समाप्त हो जाना, इसी प्रकार बचपन की अस्पष्ट ध्वनियाँ, खिसकना, घुटनों के बल चलना, रोना, चिल्लाना आदि गुण समाप्त हो जाते हैं।

4. नये गुणों की प्राप्ति

विकास क्रम में जहाँ एक ओर पुरानी रूपरेखा में परिवर्तन होता है वहीं उसका स्थान नये गुण प्राप्त कर लेते हैं। जैसे– स्थायी दाँत निकलना, स्पष्ट उच्चारण करना, उछलना–कूदना और भागने–दौड़ने की क्षमताओं का उदय होना आदि नये गुण प्राणी को विकास क्रम में ही प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार प्राणी के विकास क्रम में इन चारों प्रकार के परिवर्तनों का बड़ा महत्त्व है। यदि ये परिवर्तन न हों तो किसी भी प्राणी के लिए अपने भावी जीवन की नयी परिस्थितियों में स्वयं को समायोजित करना कठिन हो जायेगा।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

2.7 विकास के सिद्धान्त

यद्यपि विकास सार्वभौमिक तथा निरन्तर चलती रहने वाली क्रिया है, लेकिन प्रत्येक प्राणी का विकास निश्चित नियमों के आधार पर ही होता है। इन्हीं नियमों के आधार पर अनेक शारीरिक व मानसिक क्रियाएँ विकसित होती रहती हैं। विकास के कुछ प्रमुख नियम निम्नलिखित हैं–

1. सतत् या निरन्तर विकास का सिद्धान्त

विकास की प्रक्रिया अबाध गति से चलती रहती है, यह गति तेज या मन्द होती रहती है। जैसे–बालक के प्रथम तीन वर्षों में बालक के विकास की प्रक्रिया बहुत तीव्र रहती है। यह सिद्धान्त मानव विकास का सबसे प्रमुख सिद्धान्त है। विकास की प्रक्रिया चलती रहती है तथा शरीर के कुछ अंगों का विकास तीव्र गति से होता है तथा कुछ अंगों का विकास मन्द गति से होता है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं होता है। इस विषय में स्किनर महोदय का कथन है कि विकास प्रक्रियाओं की निरन्तरता का सिद्धान्त केवल इस बात पर जोर देता है कि शक्ति (विकास) में कोई आकस्मिक परिवर्तन न हो।

2. विकास क्रम का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत बालक का विकास एक निश्चित क्रम से होता है। जैसे– बालक जन्म के उपरान्त केवल रोता है और 3 महीने के बाद वह एक विशेष प्रकार की आवाज निकालता है। 6 माह के बाद वह आनन्द की ध्वनि निकालने लगता है। 7 माह में वह अपने माता–पिता के लिए पा, बा, दा आदि शब्दों का प्रयोग करने लगता है। जब बालक भाषा को बोलना सीख जाता है, तो उसे क्रमशः भाषा का पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है। शर्ले, गेसेल, पियाजे, एमिस आदि ने अपने प्रयोगों से इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है।

3. विकास की विभिन्न गति का सिद्धान्त

मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त के अन्तर्गत स्पष्ट किया कि व्यक्तियों के विकास की गति भिन्न–भिन्न होती है। यह भिन्नता विकास के सम्पूर्ण काल तक बनी रहती है। प्रायः यह देखा गया है कि जो बालक जन्म के समय लम्बा होता है वह बड़ा होने पर भी लम्बा रहता है, और जो छोटा होता है, वह साधारणतः छोटा रहता है।

4. परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त

बालक के शारीरिक, मानसिक, भाषायी, संवेगात्मक, सामाजिक और चारित्रिक आदि पक्षों के विकास में परस्पर सम्बन्ध होता है। उदाहरणस्वरूप मनुष्य के शरीर के बाह्य एवं आन्तरिक अंगों में वृद्धि होती है, उनका आकार एवं भार बढ़ता है, जिससे उसकी कार्यक्षमता का विकास होता है। गैरिसन एवं अन्य का कथन है–

> शरीर सम्बन्धी दृष्टिकोण व्यक्ति के भिन्न अंगों के विकास में सामंजस्य और परस्पर सम्बन्ध पर बल देता है।

5. सामान्य से विशिष्ट अनुक्रियाओं या प्रतिक्रियाओं का सिद्धान्त

बालक का विकास सामान्य अनुक्रियाओं से विशिष्ट प्रतिक्रियाओं तक होता है। हरलॉक ने इस विषय में कहा है–

> विकास की सब अवस्थाओं में बालक की प्रतिक्रियाएँ विशिष्ट बनने से पूर्व सामान्य प्रकार की होती हैं।

जैसे– बालक पहले कुछ बोलने में सरल शब्दों का प्रयोग करता है, परन्तु धीरे–धीरे सही नाम का ज्ञान होने पर वह वस्तु को उसी के नाम से पुकारता है।

6. समान प्रतिमान का सिद्धान्त

समान प्रतिमान के सिद्धान्त के अन्तर्गत हरलॉक ने बताया कि–

> प्रत्येक जाति, चाहे वह पशुजाति हो या मनुष्य जाति अपनी जाति के अनुरूप ही विकास के प्रतिमान का अनुसरण करती है।

उदाहरण–गाय का बच्चा जन्म लेते ही खड़ा हो जाता है, परन्तु मानव शिशु जन्म के समय मात्र रोना जानता है तथा संसार के प्रत्येक भाग में विकास के एक ही प्रतिमान होते हैं।

7. एकीकरण का सिद्धान्त

एकीकरण के सिद्धान्त के अन्तर्गत बालक पहले सम्पूर्ण अंग को और उसके उपरान्त अंग को आंशिक भागों के रूप में चलाना सीखता है। जैसे– बालक प्रत्येक वस्तु को एक ही तरह से उठाता है, परन्तु ज्ञान होने पर वह धीर–धीरे अंगुलियों एवं हाथों का प्रयोग करके आसानी से वस्तु को उठाता है। इससे ज्ञात होता है कि वह एकीकरण द्वारा सीखता है।

8. विकास की निश्चित दिशा का सिद्धान्त

मनोवैज्ञानिकों ने बताया है कि बालक का विकास एक निश्चित दिशा में ही होता है। जैसे– प्रारम्भ में बालक पहले अपना सिर उठाना सीखते हैं, उसके उपरान्त वह अन्य भागों पर नियन्त्रण करना सीखता है, क्योंकि मनुष्य का विकास निश्चित दिशा में होता है वह हमेशा सिर से पैर की ओर होता है। अतः तभी बालक को चलना–सीखने में 12 से 18 माह का समय लगता है।

9. वैयक्तिक विभिन्नता का सिद्धान्त

एक ही माता–पिता की दो सन्तानें समान नहीं होती हैं तथा प्रत्येक बच्चे को हम एक समान पर्यावरण नहीं दे पाते हैं। इससे बच्चों में वैयक्तिक भिन्नता और बढ़ जाती है। जैसे–लम्बाई के जीन्स प्राप्त होने पर बालक लम्बा होगा, परन्तु लम्बाई के जीन्स प्राप्त न होने से उसकी लम्बाई कम ही रहेगी, जिससे उसके मानसिक, संवेगात्मक एवं भाषायी विकास की गति धीमी हो जायेगी। स्किनर महोदय ने इस विषय में कहा है–

> विकास के स्वरूपों में व्यापक वैयक्तिक विभिन्नतायें होती हैं।

10. वंशानुक्रम व पर्यावरण की अन्तःक्रिया का सिद्धान्त

बालक के विकास पर वंशानुक्रम तथा पर्यावरण की अन्तःक्रिया का प्रभाव पड़ता है। माता–पिता से प्राप्त गुणों का विकास बालक प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश में रहकर करता हे। बालक के विकास के लिए आनुवंशिकता से प्राप्त गुण अन्तनिर्हित होते हैं, जिन्हें वातावरण की अन्तःक्रिया द्वारा ही परिष्कृत किया जाता है। स्किनर महोदय का इस सम्बन्ध में विचार है कि वंशानुक्रम उन सीमाओं को निश्चित करता है, जिनके आगे बालक का विकास नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार हम देखते हैं कि यदि बालक दूषित वातावरण में निवास करता है, तो उसे कुपोषण तथा अन्य रोग हो सकते हैं, जिससे उसका विकास प्रभावित होता है।

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

11. पुनर्बलन सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जॉन डोलार्ड और नील मिलर हैं। इनके अनुसार बच्चे का जैसे-जैसे विकास होता है, अधिगम करता जाता है। इन्होंने बाल्यावस्था के अनुभवों को वयस्क व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण कारकों के रूप में स्वीकार किया है। इन्होंने अचेतन कारकों के अतिरिक्त चिन्ता और अधिगमित भव को व्यक्तित्व गतिशीलता में बहुत अधिक महत्त्व दिया है। इनके अनुसार भोजन, पानी, ऑक्सीजन और ताप कुछ अर्जित आवश्यकताएँ हैं, परन्तु इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्जित व्यवहार पूर्णतः पर्याप्त नहीं होता है। अतः बालक को अधिक जटिल व्यवहार का अधिगम इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करना होता है। जैसे- नवजात शिशु का स्तनपान से सम्बन्धित अर्जित व्यवहार उसकी भोजन की आवश्यकता के लिए अधिक समय तक पर्याप्त नहीं होता है, उसे भूख की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए कुछ अधिक स्तनपान के जटिल व्यवहारों को सीखना होता है। इनके अनुसार अधिगम के चार महत्त्वपूर्ण अवयव हैं- अन्तर्नोद (अभिप्रेरणा), संकेत (उद्दीपक), प्रत्युत्तर (स्वयं का व्यवहार) तथा पुनर्बलन (पुरस्कार)।

12. सामाजिक अधिगम सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक बन्दूरा और वाल्टर्स ने सामाजिक अधिगम के महत्त्व की पुष्टि अनेक प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर की है। बन्दूरों ने एक प्रयोग में बच्चों को एक फिल्म दिखाई, जिसमें एक वयस्क व्यक्ति के व्यवहार को प्रदर्शित किया गया था। फिल्म के तीन भाग थे। प्रत्येक बच्चे को केवल एक प्रकार की फिल्म दिखाई गई। पहली फिल्म में फिल्म का हीरो आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित करता था और इस व्यवहार के लिए उसे दण्ड दिया जाता था। दूसरी फिल्म में हीरो आक्रामक व्यवहार करता था और अपने इस आक्रामक व्यवहार के लिए पुरस्कृत होता था। तीसरी फिल्म में आक्रामक व्यवहार के लिए हीरो को न ही पुरस्कृत किया जाता था और न ही दण्डित किया जाता था। फिल्म को दिखाने के बाद प्रत्येक बच्चे को उन्हीं परिस्थितियों में रखा गया, जिन परिस्थितियों से सम्बन्धित उन्हें फिल्म दिखाई गई थी। इन परिस्थितियों में रखकर बच्चों के व्यवहार का निरीक्षण कर यह देखा गया है कि बच्चों ने उस व्यवहार और दण्ड से सम्बन्धित था। सामाजिक अधिगम सिद्धान्त में व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों में केवल वातावरण सम्बन्धी कारकों को ही महत्त्व दिया है, वंशानुक्रम कारकों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है।

उपरोक्त सिद्धान्तों से सिद्ध होता है कि मानव के विकास को इन सिद्धान्तों के सन्दर्भ में उचित प्रकार से जाना जा सकता है तथा यह तथ्यात्मक रूप से सही तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सत्यता की कसौटी पर जाँच और परख हैं। मानव का विकास इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर ही होता है।

2.8 विकास के सिद्धान्तों का महत्त्व

विकास के सिद्धान्तों का ज्ञान माता-पिता एवं शिक्षकों के लिए आवश्यक है। इससे हमें बालक के व्यवहार एवं विकास से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त होती हैं अन्यथा हम बालक की योग्यता से अधिक कार्यों की अपेक्षा करते हैं। इसका ज्ञान होने से हम बालकों को निम्न प्रकार से सहायता या उनका समन्वित विकास करते हैं-

1. बालकों को विकास के लिए उचित प्रेरणा प्रदान करते हैं।
2. उसके विकास के लिए उचित वातावरण प्रदान करने में सहायता प्राप्त होती है।
3. विकास के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों से बालक में जो तनाव उत्पन्न होता है, उसे दूर करने में सहायता होती है।
4. इस सिद्धान्तों के ज्ञान से शिक्षक बालक के विकास की गति को जानकर ही उसे मार्गदर्शित करता है।

अतः इन सिद्धान्तों का ज्ञान शिक्षकों एवं सामान्य व्यक्तियों के लिये भी परम आवश्यक एवं उपयोगी है।

2.9 विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

वकास एक लम्बी और अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। व्यक्ति का विकास अनेक चरणों में होता है। विभिन्न वैज्ञानिकों ने विकास की अवस्थाओं को अलग-अलग प्रकार से वर्गीकृत किया है। ये अवस्थाएँ निम्नानुसार हैं-

रॉस के अनुसार-

1.	शैशवावस्था	1-3 वर्ष
2.	पूर्व बाल्यावस्था	3-6 वर्ष
3.	उत्तर बाल्यावस्था	6-12 वर्ष
4.	किशोरावस्था	12-18 वर्ष

हरलॉक के अनुसार-

बाल विकास और बाल अध्ययन की दृष्टि से हरलॉक के द्वारा किया गया वर्गीकरण सर्वमान्य माना गया है। यह बालकों के विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करता है-

1.	गर्भावस्था	गर्भाधान से जन्म तक
2.	शैशवावस्था	जन्म से दो सप्ताह तक
3.	बचपनावस्था	तीसरे सप्ताह से दो वर्ष तक
4.	पूर्व बाल्यावस्था	तीसरे वर्ष से छः वर्ष तक
5.	उत्तर बाल्यावस्था	सातवें वर्ष से बारह वर्ष तक
6.	वयः सन्धि	बारह वर्ष से चौदह वर्ष तक
7.	पूर्व किशोरावस्था	तेरह से सत्रह वर्ष तक
8.	उत्तर किशोरावस्था	अठारह से इक्कीस वर्ष तक
9.	प्रौढ़ावस्था	इक्कीस से चालीस वर्ष तक
10.	मध्यावस्था	इकतालीस से साठ वर्ष तक
11.	वृद्धावस्था	साठ के बाद

इस प्रकार वैज्ञानिकों ने गर्भावस्था से वृद्धावस्था तक की अवस्था को कुछ निश्चित अवस्थाओं में विभक्त किया है। प्रमुख अवस्थाएँ व उनकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. गर्भकालीन अवस्था

यह अवस्था गर्भाधान से जन्म के समय तक मानी जाती है। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. इस अवस्था में विकास की गति अन्य अवस्थाओं से तीव्र होती है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

2. समस्त रचना, भार और आकार में वृद्धि तथा आकृतियों का निर्माण इसी अवस्था में होता है।
3. इस अवस्था में होने वाले परिवर्तन मुख्यतः शारीरिक ही होते हैं।

2. शैशवावस्था

जन्म से लेकर 15 दिन की अवस्था को शैशवावस्था कहा जाता है। इस अवस्था को *समायोजन* की अवस्था भी कहा जाता है। माता-पिता द्वारा शिशु की उचित देखभाल करके नये वातावरण के साथ उसका समायोजन किया जाता है।

3. बचपनावस्था

यह अवस्था दो सप्ताह से प्रारम्भ होकर दो वर्ष तक चलती है। यह अवस्था दूसरों पर निर्भर होने की होती है। इस अवस्था के अन्त तक वह अपनी माँसपेशियों पर नियन्त्रण करना सीख जाता है और चलने-बोलने और भोजन करने की क्रियाओं को स्वयं करने लगता है।

संवेगात्मक विकास की दृष्टि से इस अवस्था में बच्चे के भीतर लगभग सभी प्रमुख संवेग जैसे- प्रसन्नता, क्रोध, हर्ष, प्रेम, घृणा आदि उदय हो जाते हैं। यह अवस्था संवेग प्रधान होती है। इस अवस्था में संवेगों का प्रकटीकरण त्वरित होता है, किन्तु वे क्षणिक होते हैं।

4. बाल्यावस्था

यह अवस्था शारीरिक व मानसिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती है। अध्ययन की दृष्टि से इसे दो भागों में बाँटा गया है-

1. पूर्व बाल्यावस्था 2 से 6 वर्ष
2. उत्तर बाल्यावस्था 7 से 12 वर्ष

इस अवस्था में बालक में ङ्गजिज्ञासुङ्ग प्रवृत्ति अधिक हो जाती है, जिससे वह अपने माता-पिता तथा शिक्षकों से तरह-तरह के सवाल करता है।

बाल्यावस्था में बालकों में समूह प्रवृत्ति का विकास होता है। वह खेल व साथियों के साथ रहना पसन्द करता है।

बाल्यावस्था बालक को जीवन की अनेक वास्तविकताओं से परिचित कराती है जिनके बीच रहकर वह अपने जीवन की समस्याओं को हल करने का तरीका सीख लेता है जो उसके किशोर जीवन के लिए आधार का कार्य करता है।

5. वयः सन्धि

वयः सन्धि बाल्यावस्था और किशोरावस्था को मिलाने में सेतु का कार्य करती है। यह अवस्था बहुत कम समय की होती है, लेकिन शारीरिक विकास की दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था की प्रमुख विशेषता यौन अंगों की परिपक्वता तथा काम शक्ति का उदय होना है।

बालिकाओं में यह अवस्था सामान्यतः 11 से 13 वर्ष के बीच प्रारम्भ हो जाती है और बालकों में बारह से तेरह वर्ष के बीच।

शरीर में आन्तरिक तथा बाह्य परिवर्तनों के कारण कभी-कभी बालक और बालिका संवेगात्मक रूप से विचलित हो जाते हैं और सामाजिक नियन्त्रण खो देते हैं। इस अवस्था में माता-पिता को बच्चों को शरीर में होने वाले परिवर्तनों के विषय में अच्छी तरह से बताना चाहिए।

6. किशोरावस्था

यह अवस्था तेरह वर्ष से प्रारम्भ होकर इक्कीस वर्ष तक चलती है। इस अवस्था को अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में बाँटा गया है-

1. पूर्व किशोरावस्था 13-16 वर्ष
2. उत्तर किशोरावस्था 17-21 वर्ष

वैज्ञानिकों ने इस अवस्था को जीवन की स्वर्णिम अवस्था माना है। इस अवस्था की कुछ विशेषताएँ हैं-

1. सामाजिकता
2. कामुकता

यह अवस्था *समस्या बाहुल्य* की अवस्था है। इस समय किशोरों को शारीरिक व मानसिक समायोजन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। शारीरिक और मानसिक परिवर्तन के फलस्वरूप उनके संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक जीवन का स्वरूप एकदम परिवर्तित हो जाता है।

7. प्रौढ़ावस्था

किशोरावस्था के पश्चात् 21 से 40 वर्ष की अवस्था प्रौढ़ावस्था कहलाती है। यह अवस्था कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों के निर्वाह की अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्यों को पाने की कोशिश करता है। यह पारिवारिक जीवन में प्रवेश की अवस्था है। अतः इस अवस्था में पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति के लिए महत्त्वपूर्ण निर्णय लेता है। इस अवस्था में भी व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों जैसे परिवार के सदस्यों, सम्बन्धियों, वैवाहिक जीवन, व्यवसाय और समाज के सदस्यों के साथ समायोजन करना पड़ता है। सफल समायोजन के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अधिक सोच-विचारकर महत्त्वपूर्ण निर्णय ले, क्योंकि किसी भी क्षेत्र में उचित समायोजन न हो पाने पर व्यक्ति कुण्ठा और नैराश्य का शिकार हो जाता है।

8. मध्यावस्था

41 से 60 वर्ष की आयु को मध्यावस्था माना गया है। इस अवस्था में प्राणी के भीतर शारीरिक व मानसिक परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में काम शक्ति का ह्रास होने लगता है और व्यक्ति की रूचि बदलने लगती है। इस समय व्यक्ति सुख शान्ति व प्रतिष्ठा से जीने की कामना करता है। सामाजिक सम्बन्धों के प्रति भी मनोवृत्तियाँ दृढ़ हो जाती हैं। इस समय व्यक्ति को अपनी सन्तान के साथ समायोजन करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है, क्योंकि आयु के अन्तराल के कारण दोनों के विचार सोचने के तरीकों आदि मनोवृत्तियों में अन्तर होता है। उचित समायोजन के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों के साथ उचित तालमेल रखे, जिससे उसकी वृद्धावस्था मानसिक सन्तुष्टि व शान्ति के साथ व्यतीत हो।

9. वृद्धावस्था

जीवन की अन्तिम अवस्था वृद्धावस्था है जो 60 वर्ष से प्रारंभ होकर जीवन के अंतिम समय तक मानी जाती है। यह अवस्था **ह्रास की अवस्था** होती है। इस अवस्था में शारीरिक व मानसिक क्षमताओं का ह्रास होने लगता है। स्मरण शक्ति कम होने लगती है। यह अवस्था व्यावसायिक जीवन से अवकाश की अवस्था होती है। अतः वृद्ध व्यक्तियों की यह धारणा बन जाती है कि अब परिवार व समाज को उनकी आवश्यकता नहीं है। वे दूसरों पर बोझ हैं। उनकी यह धारणा

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

उनमें मानसिक तनाव उत्पन्न करती है। वे जिद्दी और क्रोधी हो जाते हैं, जिससे परिवार के साथ समायोजन में कठिनाई होती है।

2.10 विकास को प्रभावित करने वाले कारक

यद्यपि बालक का विकास वंशानुक्रम और वातावरण का गुणनफल होता है, लेकिन फिर भी कुछ तत्त्व वंशानुक्रम और वातावरण को प्रभावित कर उसके विकास में सहायता प्रदान करते हैं या फिर विकास को अवरूद्ध करते हैं। बालकों के विकास पर जिन तत्त्वों का प्रभाव पड़ता है वे निम्नलिखित हैं–

1. पोषण

किसी भी बालक के विकास में पोषण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गर्भकालीन अवस्था से लेकर जीवनपर्यन्त तक प्राणी को जीवित तथा स्वस्थ बने रहने के लिए उत्तम पोषण की आवश्यकता होती है। सन्तुलित व पौष्टिक भोजन (प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, खनिज–लवण, विटामिन) शारीरिक व मानसिक विकास में सहायक हैं।

2. बुद्धि

किसी भी बालक की बुद्धि या बौद्धिक क्षमताएँ उसके विकास के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करती हैं। परीक्षणों के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया है कि तीव्र बुद्धि बालकों की तुलना में मन्द बुद्धि बालकों का विकास कम होता है। टर्मन ने बालकों का पहली बार चलने और बात करने की अवस्था का अध्ययन किया और बताया कि बहुत प्रखर बुद्धि बालकों में चलने की क्रिया 13वें महीने तथा बोलने की क्षमता 11वें महीने में प्रकट हुई जबकि दुर्बल बुद्धि के बालकों में यही क्रियाएँ क्रमशः 30वें और 15 वें महीने में प्रकट हुई।

3. यौन

यौन भेद भी शारीरिक विकास को ही नहीं मानसिक विकास को भी प्रभावित करता है। यह देखा जाता है कि जन्म के समय लड़के लम्बाई में लड़कियों की तुलना में कुछ अधिक लम्बे होते हैं परन्तु बाद की अवस्था में लड़कियों का विकास तेजी से होता है और वे लड़कों की तुलना में पहले ही शारीरिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती हैं। काम शक्ति भी लड़कियों में लड़कों से एक दो वर्ष पूर्व ही आ जाती है। दस ग्यारह वर्ष की अवस्था आने तक समान आयु की लड़की लड़कों की अपेक्षा कुछ लम्बी हो जाती है। बुद्धि परीक्षणों में भी यह देखा गया है कि मानसिक विकास में भी लड़कियाँ लड़कों की तुलना में पहले मानसिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती हैं। यौन भेद का भी विकास पर प्रभाव पड़ता है।

4. अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियाँ

मानव शरीर के अन्दर कुछ ऐसी ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं जो शरीर के लिए ऐसे स्त्रावों को उत्पन्न करती हैं, जो शारीरिक मानसिक विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। उदाहरण के लिए गले में स्थित पेराथायराइड ग्रन्थि अस्थियों के निर्माण में सहायता प्रदान कर शारीरिक विकास में योगदान देती है। इसी प्रकार थॉयराइड ग्रन्थि **थॉयरॉक्सिन** स्त्रावित करती है, जो शारीरिक व मानसिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। थाइमस और थीनियल ग्रन्थि की अति क्रियाशीलता से शरीर का सामान्य विकास रूक जाता है, जिससे बच्चों में बचपनावस्था के लक्षण बहुत दिन तक बने रहते हैं। गोनड ग्रन्थि की कम क्रियाशीलता में किशोरावस्था आने में विलम्ब होता है और क्रियाशीलता बढ़ने पर यौन परिपक्वता जल्दी आ जाती है।

5. प्रजाति

वैज्ञानिकों के अनुसार प्रजातीय भिन्नता से विकास प्रभावित होता है। यह माना जाता है कि एक प्रजाति के लोग दूसरी प्रजाति के लोगों से न केवल शारीरिक गठन, वर्ण और आकृति में भिन्न होते हैं अपितु मानसिक योग्यताओं और बुद्धि में भी पृथक् होते हैं। हरलॉक ने इस मत को नहीं माना है।

6. रोग एवं चोट

गर्भकालीन अवस्था से लेकर बाद की अवस्थाओं की बीमारियों तथा आघातों का बालक के विकास पर प्रभाव बढ़ता है। बचपन की गम्भीर बीमारियों और मानसिक आघातों का दुष्प्रभाव बालक के शारीरिक व मानसिक विकास पर पड़ता है। इसके विपरीत जो बालक स्वस्थ रहता है, उसका विकास सामान्य ढंग से होता है।

7. परिवार

पारिवारिक वातावरण कई रूपों से विकास को प्रभावित करता है जैसे– माता–पिता के आपसी सम्बन्ध, परिवार में बालक की स्थिति, परिवार का आकार, बाल पोषण की विधियाँ आदि। यदि परिवार का आन्तरिक वातावरण अच्छा होता है, तो बालक का पालन–पोषण उचित ढंग से किया जाता है, सीखने के उचित अवसर प्रदान किये जाते हैं। सभी बालकों के साथ समान व्यवहार किया जाता है, बालक–बालिका में अन्तर नहीं समझा जाता है, वहाँ बालकों का विकास सभी क्षेत्रों में सामान्य ढंग से होता है। इसके विपरीत जिन परिवारों में माता–पिता में आपसी तनाव रहता है, बालकों का पालन–पोषण उचित ढंग से नहीं किया जाता है, सभी बालकों के साथ समान व्यवहार नहीं किया जाता है, उन्हें सीखने के पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं किये जाते हैं, वहाँ बालकों का विकास विभिन्न क्षेत्रों में सामान्य ढंग से नहीं होता है।

परिवार में पुरुष, स्त्री और बच्चों में जो सम्बन्ध होते है, उन्हें पारिवारिक सम्बन्ध कहते हैं। परिवार में अभिभावक और बालक दोनों किसी न किसी प्रकार एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं। बालकों को आरम्भ से ही अच्छे निर्देशन में रखना अभिभावकों का उत्तरदायित्व है। प्रारम्भ से ही स्नेहपूर्ण वातावरण में रखने से मनमुटाव, कलह और संघर्ष की स्थिति के उत्पन्न होने की सम्भावना कम होती है। अभिभावक बालक सम्बन्ध अच्छे रहे इसके लिए पहले आवश्यक है कि माता–पिता के सम्बन्ध मधुर हों।

8. विद्यालय

प्रायः चार–पाँच वर्ष की आयु से सभी बालक स्कूल जाते हैं। विद्यालय के द्वारा बालक को विभिन्न क्षेत्रों में सीखने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है। विकास परिपक्वता के साथ–साथ शिक्षा का भी परिणाम है। अतः यदि विद्यालय का वातावरण अच्छा होता है, तो बालकों को पर्याप्त शिक्षण दिया जाता है। शिक्षक अपने व्यवहार और ज्ञान से बालकों का चतुर्मुखी विकास करता है, तो बालकों का विकास सही ढंग से होता है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

9. पास-पड़ोस का वातावरण

घर के वातावरण के साथ-साथ बालक जिस वातावरण में रहता है, उसका प्रभाव भी उसके विकास पर पड़ता है। यदि पास-पड़ोस अच्छा है, खेल का साथ और मित्र अच्छे हैं, तो बालक में अच्छी सामाजिकता का विकास होता है। इसके विपरीत पास-पड़ोस खराब होने से बालक बुरी संगत में पड़कर बाल अपराधी बन जाते हैं।

10. सांस्कृतिक वातावरण

प्रत्येक देश और समाज की अपनी एक संस्कृति होती है जिसके अनुरूप प्रत्येक परिवार अपने बालकों का पालन-पोषण करता है। अतः बालकों का विकास अपनी संस्कृति के अनुरूप होता है।

11. शुद्ध वायु एवं प्रकाश

पौष्टिक भोजन के साथ-साथ शुद्ध वायु भी जीने के लिए नितान्त आवश्यक है। शुद्ध वायु रक्त का शुद्धीकरण करती है, जिससे कोशिकाओं की कार्यक्षमता बनी रहती है और शरीर स्वस्थ रहकर सुचारू रूप से कार्य करता है, जैसे- ग्रामीण परिवेश में पले बालकों का बौद्धिक विकास भले ही न हो उनका शारीरिक विकास अच्छा होता है। इसके विपरीत शहरों के तंग मकान में, जहाँ प्राकृतिक शुद्ध वायु का नितान्त अभाव होता है, वहाँ बालकों का शारीरिक विकास भली प्रकार नहीं हो पाता है।

इसी प्रकार नेत्रों की ज्योति को बनाये रखने के लिए भी कार्य करने के स्थानों में पर्याप्त प्रकाश की आवश्यकता होती है। यदि प्राकृतिक प्रकाश व्यवस्था न हो तो कृत्रिम प्रकाश व्यवस्था ही पर्याप्त होनी चाहिए अन्यथा बालकों की नेत्र ज्योति प्रभावित होती है।

www.praganya.org

2.10.1 बाल विकास को प्रभावित करने वाले पारिवारिक कारक

1. अभिभावक अभिवृत्तियाँ

बाल विकास बहुत कुछ अभिभावकों की अभिवृत्तियों से प्रभावित और निर्धारित होता है। कम आयु वाले अभिभावक अपने बालकों के प्रति उत्तरदायित्वों का निर्वाह उस प्रकार और उतनी अच्छी तरह से नहीं करते हैं, जितना कि अधिक आयु वाले अभिभावक करते हैं।

कुछ संरक्षकों में अपने बालकों के प्रति अति-संरक्षण की अभिवृत्ति होती है। यदि यह अभिवृत्ति अभिभावकों में अधिक दिनों तक चलती है, तो बालक में अनेक प्रकार के विशिष्ट लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे-बेचैनी, उत्तेजित, शीघ्र परेशान होने की प्रवृत्ति, ध्यान लगाने की कम योग्यता, दूसरों पर आश्रित होना, दूसरों से शीघ्र प्रभावित होना, अपनी योग्यताओं पर विश्वास न होना आदि।

कुछ अभिभावक अपने बच्चों का तिरस्कार करने वाले होते हैं। इससे बालक में आक्रामकता, निर्दयता, झूठ बोलने की प्रवृत्ति, कुसमायोजन, समाज विरोधी व्यवहार, असहायता की भावना, कुण्ठा तथा अधिक दिखावा करने की प्रवृत्ति आदि उत्पन्न हो जाती है।

कुछ अभिभावक प्रायः कठोर स्वभाव वाले होते हैं। अभिभावकों के कठोर स्वभाव के कारण बालकों में अनेक विशिष्ट लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे अति संवेदनशीलता, अधिक शर्मीलापन, हीनता की भावना, शीघ्र भ्रमित होना।

www.praganya.org

2. परिवार की भावना

आजकल विकासशील और विकसित देशों में न्यूक्लियर परिवार अधिक लोकप्रिय हो रहे हैं। इन परिवारों में बालकों का विकास अच्छा होता है। बड़े परिवारों की अपेक्षा छोटे परिवारों में पारस्परिक सम्बन्ध अधिक अच्छे होते हैं।

समाजशास्त्रियों के अनुसार मध्यम आकार का परिवार सर्वश्रेष्ट होता है। इस परिवार में माता-पिता के अतिरिक्त तीन या चार बच्चे होते हैं, पारिवारिक और अभिभावक-बालक सम्बन्धों की दृष्टि से यह परिवार कई प्रकार से श्रेष्ठ होता है। जिस परिवार में एक ही बालक होता है, वह अपनी आयु के अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक परिपक्व होता है। उसका परिवार और समूह में सामाजिक समायोजन अच्छा होता है। उसे अपने माता-पिता से स्नेह भी अधिक प्राप्त होता है।

छोटे परिवारों में अभिभावक अपने बच्चों के साथ अधिक समय देते हैं। बच्चों को समान और अधिक सुविधाएँ मिलने की सम्भावना होती है। एक बड़ा परिवार जिसमें 6 या अधिक बच्चे होते हैं, उसमें बच्चों को अधिक सुविधाएँ दे पाना कठिन होता है। उन पर नियन्त्रण करना भी एक कठिन कार्य होता है। बहुधा इस प्रकार के परिवार सुनियोजित नहीं हुआ करते हैं। अतः ऐसे परिवारों में बाल-विकास में विविधता अधिक देखने को मिलती है।

3. टूटे परिवार

जब परिवार में किसी व्यक्ति की मृत्यु, तलाक या परिवार के बड़े-बूढ़े अथवा पिता अधिक दिनों के लिए परिवार से बाहर रहते हैं, तो इन अवस्थाओं में चल रहे परिवार टूटे परिवार कहलाते हैं। ऐसे परिवारों में आर्थिक समस्याएँ अधिक जटिल होती हैं। यह भी अवस्था हो सकती है कि परिवार में माँ न हो और बच्चों का पालन-पोषण पिता को करना पड़ रहा हो अथवा पिता न हो और बच्चों का पालन-पोषण माँ को अकेले ही करना पड़ रहा हो। इन सभी परिस्थितियों का बालक के विकास पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

4. माता-पिता का व्यवसाय

बाल विकास को प्रभावित करने वाला यह एक महत्त्वपूर्ण कारक है। पिता के व्यवसाय का परिवार के बच्चों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। अधिक आयु के बच्चों की सामाजिक प्रतिष्ठा बहुत कुछ पिता के व्यवसाय से निर्धारित होती है। जो बालक अपने पिता के व्यवसाय को बताने में शर्म का अनुभव करते हैं, उन बच्चों में पिता के प्रति विपरीत अभिवृत्तियाँ निर्मित होती हैं। माँ का व्यवसाय भी बालकों के व्यवहार को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। यदि माँ किसी व्यवसाय में होती है, तो छोटे बच्चों को अकेले रहना पड़ता है, जिससे उनमें अकेलेपन और अप्रसन्नता की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती है।

5. परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर

बाल-विकास को परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर कारक भी महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। मध्यम श्रेणी परिवार के बच्चों से यह आशा की जाती है कि वह सामाजिक अनुरूपता स्थापित करेंगे अर्थात् बच्चे समाज के नियमों मूल्यों और व्यवहार प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार करेंगे। वह कोई ऐसा कार्य न करें, जिसे कि परिवार की बदनामी या आलोचना हो। जब बालकों के परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर उनके मित्रों के परिवारों के सामाजिक आर्थिक स्तर से निम्न होता है, तब बालक हीन भावना महसूस कर सकता है और यदि बालक

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

के परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर उच्च है, तो बालक अपने परिवार, माता और पिता पर गर्व का अनुभव करता है। यह हीन भावना और गर्व के अनुभव भी बाल-विकास को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है।

6. अभिभावकों का पक्षपात

अधिकांश अभिभावक बालकों के साथ समानता का व्यवहार नहीं कर पाते हैं। एन. बेले ने अपने एक अध्ययन में देखा कि माँ अपने बेटे का बेटियों की अपेक्षा अधिक पक्ष लेती है तथा पिता अपनी बेटी का बेटों की अपेक्षा अधिक पक्ष लेता है। इसके अतिरिक्त पहले बच्चे को भी माँ अधिक स्नेह करती है और अधिक पक्ष लेती है। इसके अलावा माता-पिता उस बच्चे का भी पक्ष लेते हैं, जो नियमित रूप से स्कूल जाता है, जिसकी अच्छी आदतें होती हैं या जो परिवार में अधिक लोकप्रिय होता है। जब माता-पिता अपने कई बच्चों में से केवल एक या कुछ का पक्ष लेते हैं तथा अन्य का नहीं, तो इस अवस्था का बाल-विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

7. जन्म क्रम

बाल विकास पर बालक के जन्म-चक्र का भी प्रभाव पड़ता है। अध्ययनों में यह देखा गया है कि माता-पिता पहले बालक के प्रति अच्छी अभिवृत्ति ही नहीं रखते हैं, बल्कि पहले बालक को वरीयता अधिक देते हैं। पहले बालक में परिपक्वता, अनुरूपता और आश्रितता अधिक होती है। पहले बालक के बाद जो बालक होते हैं, उनके साथ भी माता-पिता का व्यवहार अच्छा होता है, लेकिन बाद के बच्चे पहले बच्चे की अपेक्षा अपने आपको तिरस्कृत समझते हैं। इससे बाद के बच्चों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2.10.2 बाल विकास को प्रभावित करने वाले विद्यालय सम्बन्धी कारक

स्कूल शिक्षा का महत्त्वपूर्ण श्रेष्ठ और सक्रिय साधन है। बालक के व्यक्तित्व विकास में स्कूल की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 5-6 वर्ष की अवस्था में जब बालक विद्यालय में प्रवेश लेता है, तो उसकी अन्तःक्रियाओं का दायरा बढ़ जाता है। विद्यालय के मित्रों और अध्यापकों के साथ उसकी अन्त-क्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती है। लगभग 7 वर्ष की अवस्था में बालक की यह अन्तःक्रियाएँ अधिक बढ़ने लग जाती है। 11-12 वर्ष की अवस्था तक उसकी विद्यालय से सम्बन्धित अन्तःक्रियाएँ परिवार की अपेक्षा अधिक हो जाती है।

1. नर्सरी स्कूल और बाल विकास

नर्सरी स्कूल के बच्चों पर किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि नर्सरी स्कूल के वह बच्चे जिनके माता-पिता का समायोजन अच्छा होता है, स्कूल में ऐसे बच्चों का समायोजन भी अच्छा होता है। इन बच्चों के दोस्त जल्दी बन जाते हैं। ये बच्चे स्कूल के कार्यों में भी अन्य समायोजित बच्चों की अपेक्षा अधिक अच्छे होते हैं। ये मित्रवत् होते हैं, अन्य साथी बच्चों में लोकप्रिय होते हैं, मौलिकता और निर्माणशीलता के गुण अधिक मात्रा में होते हैं, इनमें बौद्धिक जिज्ञासा भी अन्य बच्चों की अपेक्षा कम मात्रा में होती है।

2. प्राइमरी विद्यालय और बाल विकास

जो बच्चे प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश से पूर्व नर्सरी स्कूल में शिक्षा ग्रहण कर चुके होते हैं, उन्हें नये वातावरण में समायोजन करने में उतनी कठिनाई नहीं होती, जितनी कि उन बालकों की जिनका विद्यालय में पहली बार प्रवेश हुआ है। इसी प्रकार जिन बच्चों को अच्छा पारिवारिक वातावरण और प्रशिक्षण मिला है उनका विद्यालय में समायोजन अन्य बच्चों की अपेक्षा जल्दी और अच्छा हो जाता है।

3. कक्षा-कक्ष का वातावरण

कक्षा के वातावरण का भी बालक के विकास एवं अधिगम पर प्रभाव पड़ता है। यदि कक्षा-कक्ष का वातावरण, प्रजातन्त्रात्मक, सहयोगपूर्ण है, तो विद्यार्थी में कक्षा के अन्य विद्यार्थियों के साथ मित्रवत् व्यवहार एवं सहयोग की भावना विकसित होती है। जिन विद्यालयों में कक्षा अध्यापक ही सर्वेसर्वा होता है, कक्षा-कक्ष का वातावरण निरंकुशवादी कहलाता है। इस प्रकार के वातावरण में पढ़ने वाले विद्यार्थियों में विद्रोह की प्रवृत्ति, निष्क्रियता की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में पायी जाती है। ऐसी कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी अध्यापक की अनुपस्थिति में कोई रचनात्मक कार्य नहीं कर पाते हैं। उन कक्षाओं में जहाँ अध्यापक विद्यार्थियों को पूरी छूट देता है और कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के सुझावों को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है, उनमें विद्यार्थियों में परस्पर द्वेष का भाव पाया जाता है। इन विद्यार्थियों में रचनात्मकता का अभाव पाया जाता है।

4. अध्यापक-विद्यार्थी सम्बन्ध

एक छोटे बच्चे के लिए अध्यापक माँ का प्रतिस्थापित रूप है। दूसरी ओर कुछ बड़े बालकों के लिए शिक्षक वह वयस्क व्यक्ति है, जो आदरणीय और प्रशंसा पाने वाला है, जिसके व्यवहार का अनुकरण करना चाहिए। अध्यापक की अभिवृत्तियों के प्रति विद्यार्थी अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। इन सब बातों का बालक के विकास और अधिगम पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

एक अध्यापक यदि कक्षा में डरा-धमका कर या मार-पीटकर शिक्षा देता है, तो कक्षा के विद्यार्थी भी कठोर स्वभाव वाले हो जाते हैं।

जब बालक निम्न वर्ग से सम्बन्धित होते हैं, तो बालकों और अध्यापकों के मूल्य में खाई होती है। ऐसा बालक या तो शिक्षकों की आज्ञा का पालन नहीं करता या आक्रामक रवैया अपनाता है या उदासीन हो जाता है अथवा कक्षा में अनुपस्थित रहता है। ऐसे विद्यार्थी धीमी गति से सीखते हैं।

5. विद्यालय का अनुशासन

विद्यालय का अनुशासन भी बालक के व्यवहार और अभिवृत्तियों को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। जब विद्यालय में अनुशासन प्रभुत्वात्मक होता है, तो ऐसे वातावरण उत्पन्न हो जाती है, जैसे- अधिक संवेदनशीलता, अन्तर्मुखी व्यक्तित्व, संदेह करना, शर्मीलापन, अलग-अलग और अकेला रहने की प्रवृत्ति आदि। जब विद्यालय में अनुशासन प्रजातांत्रिक प्रकार का होता है, तो बालकों में प्रसन्नता, सहयोग, आत्म महत्त्व और विश्वास की योग्यता आदि व्यक्तित्त्व विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

कुछ विद्यार्थी ऐसे होते हैं, जिनकी कक्षा में उपलब्धि उनकी योग्यताओं को देखते हुए अपेक्षाकृत कुछ कम होती है। विद्यार्थी की कम शैक्षिक उपलब्धि का कारण परिवार, स्कूल और विद्यार्थी से स्वयं से सम्बन्धित हो सकता है। इन सबका प्रभाव बालक के विकास और अधिगम पर पड़ता है।

एक अन्य अध्ययन में यह देखा गया कि प्राथमिक स्कूल के अनुभवों और बच्चों के स्वयं के प्रति प्रत्यक्षीकरण में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस अध्ययन

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

में यह देखा गया कि जो बच्चे यह समझते हैं कि शिक्षक की दृष्टि में वह अच्छे बच्चे हैं। ऐसे बच्चों का व्यवहार अधिक उपयुक्त होता है तथा ऐसे बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि भी अपेक्षाकृत अधिक अच्छी होती है। बच्चों को सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास में स्कूल के साथ समूह का प्रभाव सर्वाधिक पड़ता है।

6. स्कूल और चरित्र

परिवार के बाद विद्यालय भी बालक के नैतिक और चारित्रिक विकास पर महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभाव पड़ता है। विद्यालय के शिक्षक, सहपाठी और वातावरण आदि सभी कुछ बालक के नैतिक विकास में कुछ योगदान अवश्य देते हैं। एक विद्यालय जिस का सामान्य अनुशासन और व्यवस्था ठीक होती है, वहाँ पढ़ने वाले बालकों को चारित्रिक विकास के लिए सुन्दर वातावरण मिलता है।

7. स्कूल और सामाजिक विकास

विद्यालय में शिक्षकों और बालकों के मित्र भी बालक के सामाजिक विकास में योगदान देते हैं। विद्यालय में बालक को अपनी आयु के अनेक बालकों के साथ बैठने और सीखने का अवसर ही नहीं मिलता है, बल्कि उसे बड़े बच्चों के सामाजिक अनुभव सुनने और सामाजिक व्यवहार को देखने का अवसर मिलता है। फलस्वरूप वह समाज के विभिन्न मूल्यों से सम्बन्धित व्यवहार का अधिगम करता है। विद्यालय में वह सहयोग, मित्रता, उत्तरदायित्त्व और आत्मनिर्भरता आदि सीखता है।

2.11 मानव विकास के विभिन्न आयाम

मानव विकास का क्षेत्र अति व्यापक है। इसमें शारीरिक, मानसिक, भाषायी संवेगात्मक, सामाजिक, चारित्रिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक आदि सभी प्रकार के पक्षों में विकास समाहित होता है, परन्तु शिक्षा मनोविज्ञान में मानव के विशेष रूप से बालक के शारीरिक, मानसिक, भाषायी, संवेगात्मक, सामाजिक एवं चारित्रिक पक्षों के विकास का अध्ययन किया जाता है। इन पक्षों का संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत है–

1. शारीरिक विकास

व्यक्ति के शारीरिक विकास का सम्बन्ध उसके शरीर के ढाँचे, नाड़ी तन्त्र, शरीर के आंतरिक संस्थान, जैसे– रक्त संचार संस्थान, पाचन संस्थान, आदि में माँसपेशियों और अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियों में वृद्धि से बालक में संवेगात्मक स्थिरता, गामक क्षमता एवं अन्य परिवर्तन होते हैं और ये परिवर्तन बालक के व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

2. मानसिक विकास

बालक के मानसिक विकास से तात्पर्य उसकी मानसिक क्रियाओं एवं योग्यताओं के विकास से होता है। इनके अन्तर्गत बुद्धि, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, निरीक्षण, रूचि, ध्यान, कल्पना, चिन्तन, तर्क, निर्णय, स्मृति, विस्मृति, आदि मानसिक क्रियाओं एवं योग्यताओं का विकास आता है और इन क्रियाओं एवं योग्यताओं के विकास से मानव व्यवहार प्रभावित होता है।

3. भाषायी विकास

बालक के भाषायी विकास से तात्पर्य है उसके भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए जो ध्वन्यात्मक साधन उसके पास है, जिसे भाषा कहते हैं उसका विकास। बालक की वाक् शक्ति जन्मजात होती है, परन्तु भाषा का विकास उसके वातावरण से अन्तः क्रिया द्वारा होता है। भाषा विकास का सम्बन्ध सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने के भाषायी कौशलों के विकास से होता है।

4. संवेगात्मक विकास

बालक के संवेगों के विकास को संवेगात्मक विकास कहते हैं। बालक में मूल प्रवृत्तियों के रूप में कोई संवेग छिपा होता है– जैसे पलायन के पीछे भय। जब ये संवेग बालक के व्यवहार के स्थायी आधार बन जाते हैं, तो इन्हें स्थायी भाव कहा जाता है। जैसे–जैसे बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है, उसके संवेगों में भी विकास होता है।

5. सामाजिक विकास

सामाजिक विकास से तात्पर्य व्यक्ति का समाज एवं उसकी शैली को सीखने और उसके साथ समायोजन करने से होता है। बालक जिस समाज में रहता है उसकी भाषा, रहन–सहन, रीति–रिवाज, परम्पराएँ आदि को सीखने में उसे अपने आपसे समायोजन करना होता है। जो बालक इनके लिखने एवं अभ्यास में अच्छा समायोजन कर सकता है वह सामाजिक रूप से अधिक विकसित कहलाता है। संक्षेप में सामाजिक परिस्थितियों से समायोजन सामाजिक विकास कहलाता है।

6. चारित्रिक विकास

चारित्रिक विकास से तात्पर्य है– सामाजिक एवं धार्मिक निर्देशों के अनुसार आचरण करना। इसके लिए बालक को अपने ऊपर नियन्त्रण करना होता है। यह नियन्त्रण जितना खूबसूरती से व्यक्ति कर सकता है, वह उतना ही चारित्रिक रूप से विकसित कहलाता है। सामाजिक विकास में समाज के रीति–रिवाजों, रहन–सहन, भाषा, परम्पराओं आदि को सीखना और प्रयोग करना होता है। चरित्र में सामाजिक एवं धार्मिक नियमों के अनुसार, आचरण करना होता है। अतः दोनों में अन्तर है।

2.12 वृद्धि एवं विकास का शैक्षिक महत्त्व

अभिवृद्धि एवं विकास के सिद्धान्तों की जानकारी अध्यापक और अभिभावक के लिए निम्नानुसार लाभप्रद हो सकती है–

1. विकास एक सतत् प्रक्रिया है। अतः अध्यापक एवं अभिभावकों को चाहिए कि बालक के सम्पूर्ण विकास के लिए धैर्यपूर्वक सतत् प्रयत्न करते रहें।
2. व्यक्तिगत विभिन्नता के ज्ञान से अध्यापकों एवं अभिभावकों के विकास की प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक बालक को उसकी स्वयं की क्षमता, योग्यता और सीमाओं के अन्दर विकास के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए।
3. विकास क्रम के सिद्धान्त द्वारा हमें यह ज्ञात हो सकता है कि अमुक बालक की अमुक अवस्था तक क्या विकास होना चाहिए और इसके अनुसार हम बालक के लिए पर्यावरणीय अनुभवों का संगठन कर उस अवस्था तक की पूर्णता प्राप्त करने के लिए प्रयास कर सकते हैं।

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

4. सामान्य से विशिष्ट एवं समन्वय के सिद्धान्त का उपयोग अधिगम प्रक्रियाओं और अधिगम अनुभवों की योजना एवं संगठन करने के लिए कर सकते हैं जिससे बालक को विकास के सन्दर्भ में अधिकतम लाभ मिल सके।
5. परस्पर सम्बन्ध के सिद्धान्त के ज्ञान से अध्यापक एवं अभिभावक यह समझ सकते हैं कि बालक के व्यक्तित्व के किसी एक पक्ष के विकास की ओर ही अधिक ध्यान नहीं देना है वरन् सम्पूर्ण विकास की ओर ध्यान देना है अन्यथा एक ही पक्ष के विकास के कारण विकास के अन्य पक्ष प्रभावित होंगे।
6. चक्राकार विकास के सिद्धान्त की जानकारी से अध्यापक एवं अभिभावक बालक के विकास के किसी स्तर तक उसके समायोजन के लिए पर्याप्त वातावरण प्रदान कर सकते हैं।
7. निश्चित दिशा के सिद्धान्त के आधार पर अध्यापक एवं अभिभावक बालकों के लिए उचित अधिगम अनुभव एवं पर्यावरणीय अवस्थाओं का संचालन कर सकते हैं और उस दिशा में विकास में वृद्धि कर सकते हैं।
8. वंशक्रम एवं पर्यावरण की अंतःक्रिया के सिद्धान्त से बालक की सीमाओं की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं और उन सीमाओं में अधिकतम विकास के लिए उचित एवं पर्याप्त पर्यावरणीय स्थितियों का निर्माण किया जा सकता है।

****

अगर आप B.Ed, D.Ed, BSTC या शिक्षण अध्यापन के क्षेत्र में पढ़ाई कर रहे हैं तो आपसे निवेदन है कि निम्नलिखित Whatsapp No. अपनी कक्षा के व्हाट्सएप ग्रुप में जोड़ें। अगर आपका व्हाट्सएप ग्रुप नहीं बना हुआ है तो कृपया कम से कम 20 विद्यार्थी मिलकर व्हाट्सएप ग्रुप बना लें।

REET	-	94604 43210
UPTET	-	95301 43210
MP Samvida	-	95302 43210
BTET	-	95302 43210
UTET	-	72209 29294
JTET	-	72209 29239
HTET	-	72209 29266
CGTET	-	72209 28969
HPTET	-	72209 28535

आपके क्लास के व्हाट्सएप ग्रुप में शिक्षा संबंधी सभी प्रतियोगी परीक्षा के पेपर्स, मॉडल पेपर्स एवं अन्य अध्ययन सामग्री भेजी जाएगी। आपका शुरू से मार्गदर्शन किया जाएगा, ताकि आप प्रतियोगी परीक्षा में अतिशीघ्र सफलता प्राप्त कर सकें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विकास का अर्थ है–
(1) परिवर्तनों की उत्तरोत्तर शृंखला
(2) अभिप्रेरणा के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों की उत्तरोत्तर शृंखला
(3) अभिप्रेरणा एवं अनुभव के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों की उत्तरोत्तर शृंखला
(4) परिपक्वता एवं अनुभव के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों की शृंखला

2. मानव अभिवृद्धि से तात्पर्य है–
(1) मानव शरीर के आकार, भार व कार्यशक्तियों में वृद्धि
(2) मानव का ज्ञान बढ़ना
(3) व्यक्तित्व का विकास होना
(4) आध्यात्मिक विकास होना

3. वृद्धि और विकास है–
(1) एक-दूसरे के विरोधी (2) एक-दूसरे के समान
(3) एक-दूसरे के पूरक (4) इनमें से कोई नहीं

4. विकास उत्पाद है–
(1) अधिगम का
(2) परिपक्वता का
(3) अधिगम तथा परिपक्वता का
(4) अभ्यास का

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

5. विकास की दिशा होती है–
(1) निश्चित
(2) अनिश्चित
(3) निश्चित व अनिश्चित दोनों प्रकार की
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

6. वृद्धि के बारे में क्या सही नहीं है?
(1) अभिवृद्धि शारीरिक होती है।
(2) अभिवृद्धि मात्रात्मक होती है।
(3) अभिवृद्धि मापनीय होती है।
(4) अभिवृद्धि जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

7. विकास के सन्दर्भ में निम्न में से कौनसा कथन सत्य नहीं है?
(1) विकास की प्रत्येक अवस्था के अपने खतरे है।
(2) विकास उकसाने/बढ़ावा देने से नहीं होता है।
(3) विकास सांस्कृतिक परिवर्तनों से प्रभावित होता है।
(4) विकास की प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएँ होती है।

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.		
(3)	(1)	(3)	(3)	(1)	(4)	(2)		

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

8. निम्न में से कौनसा कथन विकास के बारे में सत्य नहीं है?
(1) विकास अन्तःक्रिया का फल है।
(2) विकास एक व्यवस्थित श्रृंखला का अनुगामी है।
(3) विकास एक व्यक्तिगत प्रक्रिया है।
(4) विकास विशिष्ट से सामान्य की ओर होता है।

9. निम्नलिखित में से कौनसा/से परिवर्तन बालकों की अभिवृद्धि को दर्शाता है/हैं?
(1) बालक के शरीर की लम्बाई में परिवर्तन
(2) बालक की अस्थियों के आकार एवं मात्रा में परिवर्तन
(3) बालक के कुल शारीरिक भार में परिवर्तन
(4) उपरोक्त सभी

10. विकास के सम्बन्ध में कौनसा कथन सही है?
(1) विकास में अभिवृद्धि निहित रहती है।
(2) विकास सतत् परिवर्तन की प्रक्रिया है।
(3) विकास में सभी परिवर्तन निश्चयात्मक होते हैं।
(4) विकास एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।
सही विकल्प चुनें–
(1) केवल 1 सही है (2) केवल 2 सही है
(3) 1 और 2 सही हैं (4) उपर्युक्त सभी सही है

11. मानवीय मूल्यों जो प्रकृति में सार्वत्रिक है, के विकास का अर्थ हैं?
(1) मतारोपण (2) अंगीकरण
(3) अनुकरण (4) अभिव्यक्ति

12. निम्नलिखित में से किसका प्रभाव बालक के विकास पर पड़ता है?
(1) परिवार (2) समाज
(3) विद्यालय (4) ये सभी

13. मानव विकास को प्रभावित करने वाला/वाले मुख्य कारक है/हैं–
(1) वंशानुक्रम (2) पर्यावरण
(3) वंशानुक्रम व पर्यावरण (4) इनमें से कोई नहीं

14. **विकास के अधिगम सिद्धान्त** का प्रतिपादन किसने किया?
(1) जेम्स ड्रेवर (2) रॉबर्ट रिचर्डसन सीयर्स
(3) क्लार्क हल (4) मैक्डूगल

15. सार्थक अधिगम की प्रक्रिया विकास की किस अवस्था से आरम्भ होती है?
(1) किशोरावस्था से (2) वयस्कावस्था से
(3) शैशवावस्था से (4) बाल्यावस्था से

16. किस अवस्था में घनिष्ठ मित्रता की प्रवृत्ति पाई जाती है?
(1) किशोरावस्था में (2) बाल्यावस्था में
(3) शैशवावस्था में (4) उपरोक्त में से कोई नहीं

17. निम्नलिखित में से कौनसा कारक बाल विकास को प्रभावित नहीं करता है?
(1) संस्कृति (2) प्रजाति
(3) वृद्धि (4) उपलब्धि

18. मानव विकास की किस अवस्था में बच्चों के सीखने की गति सर्वाधिक होती है?
(1) बाल्यावस्था (2) शैशवावस्था
(3) प्रौढ़ावस्था (4) किशोरावस्था

19. मानव का विकास निम्न में से किस पर निर्भर होता है?
(1) उसकी वृद्धि पर
(2) उसके वातावरण पर
(3) उसकी बुद्धि पर
(4) उसकी वृद्धि तथा वातावरण से मिलने वाली परिपक्वता पर

20. निम्नलिखित में से किस अवस्था में बच्चे अपने समवयस्क समूह के सक्रिय सदस्य हो जाते हैं?
(1) किशोरावस्था (2) प्रौढ़ावस्था
(3) पूर्व बाल्यावस्था (4) बाल्यावस्था

21. संकल्पनाओं की व्यवस्थित प्रस्तुति विकास के निम्नलिखित किस सिद्धान्त के साथ सम्बन्धित हो सकती है?
(1) विद्यार्थी भिन्न दरों पर विकसित होते हैं।
(2) विकास सापेक्ष रूप से क्रमिक होता है।
(3) विकास के परिणामस्वरूप वृद्धि होती है।
(4) विकास विषमजातीयता से स्वायत्तता की ओर अग्रसर होता है।

22. निम्नलिखित में से कौनसा विकास का सिद्धान्त है?
(1) विकास की सभी प्रक्रियाएँ अन्तःसम्बन्धित नहीं है।
(2) सभी की विकास दर समान नहीं होती है।
(3) विकास हमेशा रेखीय होता है।
(4) यह निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया नहीं है।

23. वृद्धि शब्द का प्रयोग ..... परिवर्तनों के लिए तथा विकास का प्रयोग ..... परिवर्तनों के साथ–साथ ..... परिवर्तनों के लिए भी होता है।
(1) व्यावहारिक, व्यावहारिक, परिमाणात्मक
(2) व्यावहारिक, परिमाणात्मक, व्यावहारिक
(3) परिमाणात्मक, परिमाणात्मक, व्यावहारिक
(4) परिमाणात्मक, व्यावहारिक, परिमाणात्मक

24. मानव विकास की किस अवस्था के बाद व्यक्ति परिपक्व हो जाता है?
(1) बाल्यावस्था (2) शैशवावस्था
(3) प्रौढ़ावस्था (4) किशोरावस्था

www.praganya.org

8.	9.	10.	11.	12.	13.	14.	15.	16.	17.	18.	19.	20.	21.	22.	23.	24.					
(4)	(4)	(4)	(2)	(4)	(3)	(2)	(3)	(1)	(4)	(2)	(4)	(1)	(2)	(2)	(3)	(4)					

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

25. शिक्षण की विभिन्न विधियों के प्रयोग के लिए कौनसी अवस्था सर्वाधिक उपयुक्त है?
(1) बाल्यावस्था (2) शैशवावस्था
(3) प्रौढ़ावस्था (4) किशोरावस्था

26. **मैं कौन हूँ, मैं क्या हूँ, मैं भी कुछ हूँ,** आदि जैसी प्रबल भावनाएँ, बालक के विकास की किस अवस्था की सूचक होती है?
(1) किशोरावस्था (2) शैशवावस्था
(3) प्रौढ़ावस्था (4) बाल्यावस्था

27. एक 13 वर्षीय बालक बात-बात में अपने बड़ों से झगड़ा करने लगता है और हमेशा स्वयं को सही साबित करने की कोशिश करता है। वह विकास की किस अवस्था में है?
(1) प्रारम्भिक बाल्यावस्था
(2) किशोरावस्था
(3) युवावस्था
(4) बाल्यावस्था

28. रॉस के अनुसार शैशवावस्था मानी जाती है-
(1) 1 से 3 वर्ष (2) 1 से 5 वर्ष
(3) 1 से 4 वर्ष (4) 1 से 6 वर्ष

29. शिक्षा की दृष्टि से मानव विकास की कौनसी अवस्थाएँ महत्त्वपूर्ण हैं?
(1) शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था
(2) बाल्यावस्था, किशोरावस्था, वयस्कावस्था
(3) सिर्फ किशोरावस्था
(4) इनमें से कोई नहीं

30. किस अवस्था के प्रथम 6 वर्षों में बालक बाद के 12 वर्षों से अधिक सीख लेता है?
(1) शैशवावस्था
(2) बाल्यावस्था
(3) किशोरावस्था
(4) इनमें से कोई नहीं

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

31. शैशवावस्था में शिशु को निम्न प्रकार शिक्षा दी जानी चाहिए-
(1) आत्म प्रदर्शन के अवसर
(2) चित्रों व कहानियों द्वारा शिक्षा
(3) विभिन्न अंगों की शिक्षा
(4) उपरोक्त सभी

32. स्टेनले हॉल ने किस अवस्था को बड़े संघर्ष, तनाव व तूफान की अवस्था कहा है?
(1) गर्भावस्था (2) शैशवावस्था
(3) बाल्यावस्था (4) किशोरावस्था

33. किशोरावस्था कठिन काल कहा जाता है -
(1) शारीरिक विकास में तीव्रता के कारण
(2) मूल्यों, आदर्शों व संवेगों में संघर्ष के कारण
(3) आवेगों व संवेगों में परिवर्तन के कारण
(4) उपरोक्त सभी

34. किशोरावस्था की मुख्य विशेषता है-
(1) काम शक्ति की परिपक्वता
(2) स्वतन्त्रता व विद्रोह की भावना
(3) जीवन दर्शन का निर्माण
(4) उपरोक्त सभी

35. किशोरावस्था के विकास का/के सिद्धान्त है/हैं-
(1) त्वरित विकास का सिद्धान्त
(2) क्रमशः विकास का सिद्धान्त
(3) उपरोक्त दोनों
(4) इनमें से कोई नहीं

36. विकासात्मक कार्य का प्रत्यय दिया है?
(1) चार्ल्स डार्विन ने (2) डाल्टन ने
(3) फ्रायड ने (4) हेविंगहर्स्ट ने

37. किशोरावस्था का आरम्भ होता है-
(1) 8 वर्ष की आयु से (2) 11 वर्ष की आयु से
(3) 12 वर्ष की आयु से (4) 16 वर्ष की आयु से

38. किशोरावस्था की चारित्रिक विशेषता है-
(1) समायोजन का अभाव
(2) मानव धर्म का महत्त्व
(3) संस्कृति व सभ्यता का संरक्षण
(4) उपरोक्त सभी

39. शैशवावस्था में संचयीकाल किसे कहते हैं?
(1) जन्म से 3 वर्ष (2) 1 से 3 वर्ष
(3) 2 से 5 वर्ष (4) 3 से 6 वर्ष

40. किशोरों की रूचि में स्थायित्व किस काल में आता है?
(1) 12-14 वर्ष (2) 13-15 वर्ष
(3) 14-16 वर्ष (4) 16-18 वर्ष

41. शैशवावस्था की विशेषता नहीं है-
(1) शारीरिक विकास में तीव्रता
(2) दूसरों पर निर्भरता
(3) मानसिक विकास में तीव्रता
(4) नैतिकता का होना

25.	26.	27.	28.	29.	30.	31.	32.	33.	34.	35.	36.	37.	38.	39.	40.	41.					
(1)	(1)	(2)	(1)	(1)	(1)	(4)	(4)	(4)	(4)	(3)	(4)	(2)	(4)	(1)	(4)	(4)					

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

42. बचपन के साम्प्रतिक दृष्टिकोण की मान्यता है–
(1) बहुत तरीके से बच्चे प्राप्तवयस्कों के बराबर होते हैं।
(2) बच्चों को युवा प्राप्तवयस्कों के रूप में सबसे अच्छा माना जाता है।
(3) बचपन आधारित रूप से प्रतीक्षा अवधि है।
(4) बचपन वृद्धि एवं परिवर्तन की एक अनूठी अवधि है।

43. **शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, समरस व प्रगतिशील विकास है।** यह कथन है–
(1) प्लेटो का
(2) रूसो का
(3) अरस्तू का
(4) पेस्टालॉजी का

44. मानव की अभिवृद्धि एक निश्चित आयु तक होती है। यह मानी जाती है–
(1) 10 वर्ष तक (2) 18 वर्ष तक
(3) 40 वर्ष तक (4) 60 वर्ष तक

45. बच्चे के विकास के सिद्धान्तों को समझना शिक्षक की सहायता करता है–
(1) शिक्षार्थी की आर्थिक पृष्ठभूमि को पहचानने में
(2) शिक्षार्थियों को क्यों पढ़ाना चाहिए, यह औचित्य स्थापित करने में
(3) शिक्षार्थियों की भिन्न अधिगम-शैलियों को प्रभावी रूप से सम्बोधित करने में
(4) शिक्षार्थी के सामाजिक स्तर को पहचानने में

46. **विकास कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है।** यह विचार किससे सम्बन्धित है?
(1) अन्तःसम्बन्ध का सिद्धान्त
(2) निरन्तरता का सिद्धान्त
(3) एकीकरण का सिद्धान्त
(4) अन्तःक्रिया का सिद्धान्त

47. मानव विकास कुछ विशेष सिद्धान्तों पर आधारित है। निम्नलिखित में से कौनसा मानव विकास का सिद्धान्त नहीं है?
(1) आनुक्रमिकता (2) सामान्य से विशिष्ट
(3) प्रतिवर्ती (4) निरन्तरता

48. विकास के सन्दर्भ में मैक्डूगल ने–
(1) व्यक्तित्व का विश्लेषण किया।
(2) मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार का विश्लेषण किया।
(3) बालक के शारीरिक विकास का विश्लेषण किया।
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

49. जन्म से पूर्वकाल में कितनी अवस्थाएँ होती हैं?
(1) 2 (2) 3
(3) 4 (4) 5

50. विकास के परिप्रेक्ष्य में समय के साथ होने वाले परिवर्तनों में निम्न में से क्या शामिल है?
(1) रूप (2) दर
(3) अनुक्रम (4) इनमें से सभी

51. निचली कक्षाओं में शिक्षण की खेल पद्धति मूलरूप से आधारित है–
(1) शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमों के सिद्धान्तों पर
(2) शिक्षण-पद्धतियों के सिद्धान्तों पर
(3) विकास एवं वृद्धि के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर
(4) शिक्षण के समाजशास्त्री सिद्धान्तों पर

52. बाल विकास का कौनसा सिद्धान्त यह बताता है कि शारीरिक विकास की दृष्टि से पिछड़े बालक संवेगात्मक, सामाजिक एवं बौद्धिक विकास में भी उतने ही पीछे रह जाते हैं?
(1) परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त
(2) विकास क्रम की एकरूपता का सिद्धान्त
(3) एकीकरण का सिद्धान्त
(4) विकास की दिशा का सिद्धान्त

53. निम्नलिखित में से कौनसा बालक के विकास को प्रभावित करने वाला आन्तरिक कारक है?
1. बुद्धि 2. शारीरिक कारण 3. आनुवंशिक गुण
(1) केवल 1 (2) 1 एवं 2
(3) केवल 3 (4) ये सभी

54. निम्नलिखित में से कौनसा बालक के विकास को प्रभावित करने वाला बाह्य कारक है?
1. आर्थिक स्थिति 2. सामाजिक स्थिति 3. जीवन की घटनाएँ
(1) 1 एवं 2 (2) 2 एवं 3
(3) 1 एवं 3 (4) ये सभी

55. बाल विकास का निम्नलिखित में से कौनसा सिद्धान्त यह बताता है कि लगभग सभी बालकों के गत्यात्मक और भाषायी विकास में एक निश्चित प्रतिमान और क्रम दिखाई पड़ता है?
(1) निरन्तरता का सिद्धान्त
(2) विकास क्रम की एकरूपता का सिद्धान्त
(3) एकीकरण का सिद्धान्त
(4) विकास की दिशा का सिद्धान्त

56. बाल मनोविज्ञान में अध्ययन किया जाता है–
(1) बालक के जन्म से लेकर बाल्यावस्था तक का
(2) बालक के जन्म के पूर्व गर्भावस्था से लेकर किशोरावस्था तक का
(3) बालक के जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक का
(4) बालक के जन्म से लेकर युवावस्था तक का

42.	43.	44.	45.	46.	47.	48.	49.	50.	51.	52.	53.	54.	55.	56.							
(4)	(4)	(2)	(3)	(2)	(3)	(2)	(2)	(4)	(3)	(1)	(4)	(4)	(2)	(2)							

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

57. बाल विकास का कौनसा सिद्धान्त यह बताता है कि जिन बच्चों में औसत से अधिक वृद्धि होती है, वे शारीरिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास में भी काफी आगे बढ़े हुए पाए जाते हैं?
(1) परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त
(2) विकास क्रम की एकरूपता का सिद्धान्त
(3) एकीकरण का सिद्धान्त
(4) विकास की दिशा का सिद्धान्त

58. बाल विकास का निम्नलिखित में से कौनसा सिद्धान्त यह बताता है कि बालक सबसे पहले अपने सिर और भुजाओं की गति पर नियन्त्रण करना सीखता है और उसके बाद फिर अपने पैरों पर?
(1) विकास क्रम की एकरूपता का सिद्धान्त
(2) परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त
(3) विकास की दिशा का सिद्धान्त
(4) एकीकरण का सिद्धान्त

59. बाल विकास का कौनसा सिद्धान्त यह बताता है कि एक बालक पहले पूरे हाथ को, फिर अँगुलियों को और फिर हाथ और अँगुलियों को एक साथ चलाना सीखता है?
(1) परस्पर सम्बन्ध (2) सामाजिक अधिगम
(3) एकीकरण (4) निरन्तरता

60. बाल विकास के विभिन्न सिद्धान्तों के आधार पर निम्नलिखित में से कौनसा/कौनसे कथन सत्य है/हैं?
1. विकास की प्रक्रिया क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ती है।
2. विकास धीरे-धीरे एवं निश्चित समय पर होता है।
3. एक ही जाति विशेष के सभी सदस्यों में विकास की कुछ समान विशेषताएँ दिखाई पड़ती है।
(1) केवल 1 (2) 1 एवं 3
(3) केवल 2 (4) ये सभी

61. बाल विकास का निम्नलिखित में से कौनसा सिद्धान्त यह बताता है कि बालकों का विकास उनकी वैयक्तिकता के अनुरूप होता है?
(1) वैयक्तिक अन्तर का सिद्धान्त
(2) निरन्तरता का सिद्धान्त
(3) विकास क्रम की एकरूपता का सिद्धान्त
(4) परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त

62. बाल विकास के सिद्धान्तों का ज्ञान अध्यापक को ऐसी उपयुक्त ..... परिस्थितियों तथा विकास वातावरण के निर्माण में सहयोग दे सकता है, जिससे बालकों का अधिक से अधिक पूर्ण एवं सर्वांगीण विकास हो सके।
(1) आर्थिक (2) सामाजिक
(3) शिक्षण-अधिगम (4) वैयक्तिक अधिगम

63. विशेष अवधि के दौरान, विकास प्रगति करता है, लेकिन अवधि में समायोजन के लिए विराम करता है। यह विराम के निम्नलिखित किस नियम को अनुसरित करता है?
(1) समन्वय का सिद्धान्त
(2) निरन्तरता का सिद्धान्त
(3) चक्राकार प्रगति का सिद्धान्त
(4) समान-प्रतिमान का सिद्धान्त

64. निम्न में से कौनसा सिद्धान्त बाल विकास में वातावरण सम्बन्धी कारकों को ही महत्त्व देता है?
(1) विकास क्रम की एकरूपता का सिद्धान्त
(2) सामाजिक अधिगम का सिद्धान्त
(3) निरन्तरता का सिद्धान्त
(4) परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त

65. निम्न में से किसने **सामाजिक अधिगम सिद्धान्त** का प्रतिपादन किया था?
(1) डोलार्ड (2) मिलर
(3) पियाजे (4) वैण्डुरा और वाल्टर्स

66. **किशोरावस्था वह अवस्था है, जिसके द्वारा एक विकासमान व्यक्तित्व बाल्यावस्था सें प्रौढ़ावस्था तक पहुँचता है।** यह कथन किसका है?
(1) जरशील्ड (2) कारमाइकेल
(3) किलपैट्रिक (4) हन्ट

67. **किशोर प्रौढ़ों को अपने मार्ग में बाधा समझता है, जो उसे अपनी स्वतन्त्रता का लक्ष्य प्राप्त करने से रोकते हैं।** यह किसने कहा है?
(1) कॉलसनिक (2) ड्रेवर
(3) स्टेनले हॉल (4) बिग्गी

68. **यौन, यदि समस्त जीवन का नहीं, तो किशोरावस्था का अवश्य ही मूल तत्त्व है।** यह किसने कहा है?
(1) थॉर्नडाइक (2) स्किनर
(3) हैडो कमेटी रिपोर्ट (4) रॉस

69. जब माता-पिता के बच्चे उनके विपरीत विशेषताओं वाले विकसित होते हैं, तो यहाँ पर सिद्धान्त लागू होता है-
(1) समानता का
(2) विभिन्नता का
(3) मूल जीवाणु की निरन्तरता का
(4) प्रत्यागमन का

70. मानव व्यवहार का विकास निम्नलिखित में से किस कारक पर निर्भर होता है?
(1) अभिवृद्धि (2) परिपक्वन
(3) विकास (4) उपरोक्त सभी

57.	58.	59.	60.	61.	62.	63.	64.	65.	66.	67.	68.	69.	70.								
(1)	(3)	(3)	(4)	(1)	(3)	(3)	(2)	(4)	(1)	(1)	(4)	(4)	(4)								

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

71. शिक्षक के लिए विकास सिद्धान्तों की समझ जरूरी है, क्योंकि–
(1) शिक्षक बाल–विकास का प्रत्यक्ष पोषक है।
(2) विकास सिद्धान्त बालकों की शिक्षा, खेलकूद तथा पाठ्यक्रम चयन सम्बन्धी मार्गदर्शन में उपयोगी सिद्ध होते हैं।
(3) शिक्षक इनकी समझ के फलस्वरूप उत्तम शिक्षण व्यवस्था कर पाता है।
(4) उपर्युक्त सभी सही है।

72. बालकों में होने वाले विकास को समझने के लिए क्रमिक विकास सिद्धान्त के प्रणेता कौन हैं?
(1) क्रो एवं क्रो
(2) स्टेनले हॉल
(3) किंग एवं थॉर्नडाइक
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

73. वृद्धि और विकास के सन्दर्भ में निम्नलिखित में से कौनसा/से कथन सत्य है/हैं?
1. वृद्धि विकास की प्रक्रिया का एक चरण होता है।
2. विकास स्वयं में एक विस्तृत अर्थ रखता है एवं वृद्धि इसका एक भाग होता है।
3. विकास एक सतत् प्रक्रिया है, जो बालक के परिपक्व होने के बाद भी चलती रहती है।
(1) केवल 1 (2) 1 एवं 2
(3) 2 एवं 3 (4) ये सभी

74. **अभिवृद्धि से तात्पर्य कोशिकाओं में होने वाली वृद्धि से है।** यह कथन है–
(1) हरलॉक का (2) फ्रेंक का
(3) फ्रायड का (4) स्किनर का

75. किशोरावस्था पर सबसे अधिक कार्य करने वाले मनोवैज्ञानिक है–
(1) एना फ्रायड (2) स्टेनले हॉल
(3) हॉलिंगवर्थ (4) किंग

76. शैशवावस्था में यौन इच्छाओं का अध्ययन करते हुए पितृ विरोधी व मातृ विरोधी ग्रन्थि के रहस्य का उद्घाटन किया है–
(1) स्किनर ने (2) गैस्टालर ने
(3) जुंग ने (4) फ्रायड ने

77. बालक की वृद्धि एवं विकास के अध्ययन की निम्न में से उपयुक्त विधि है–
(1) तुलनात्मक विधि (2) मनोविश्लेषण विधि
(3) सांख्यिकीय विधि (4) विकासात्मक विधि

78. किशोरावस्था की प्रमुख विशेषता नहीं है–
(1) संवेगों का आधिक्य (2) संचय की प्रवृत्ति
(3) कल्पना की बहुलता (4) मानसिक विकास

79. मिश्रित आयु वर्ग वाले विद्यार्थियों की कक्षा में व्यवहार रखने वाले शिक्षक के लिए ..... का ज्ञान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।
(1) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
(2) विकासात्मक अवस्थाओं
(3) उनके अभिभावकों के व्यवसाय
(4) सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि

80. निम्न में से कौनसा कथन विकास के सम्बन्ध में सही नहीं है?
(1) विकास प्रतिमानों की कुछ निश्चित विशेषताओं की भविष्यवाणी की जा सकती है।
(2) विकास का उद्देश्य वंशानुगत सम्भाव्य क्षमता का विकास करना है।
(3) विकास के विभिन्न क्षेत्रों में सम्भाव्य खतरे नहीं होते हैं।
(4) प्रारम्भिक विकास बाद के विकास से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

81. आपकी कक्षा की एक छात्रा रजनी की लम्बाई पिछले वर्ष की तुलना में लगभग 6 इंच बढ़ गई है, उसके इस परिवर्तन को आप क्या कहेंगे?
(1) रजनी का विकास तेजी से हो रहा है।
(2) रजनी में वृद्धि तेजी से हो रही है।
(3) रजनी ज्यादा काम करने लगी है।
(4) रजनी पढ़ाई में कमजोर होती जा रही है।

82. विकास के सम्बन्ध में निम्नलिखित में से कौनसा कथन सत्य नहीं है?
(1) विकास की प्रक्रिया एक निश्चित दिशा में होती है।
(2) वृद्धि और विकास की क्रिया वंशानुक्रम और वातावरण का संयुक्त परिणाम है।
(3) किसी बच्चे में वृद्धि और विकास की गति को ध्यान में रखकर उसके आगे बढ़ने की दिशा और स्वरूप के बारे में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है।
(4) विकास हमेशा सामान्य से विशेष की ओर चलता है।

83. आप अपने विद्यालय के कुछ छात्रों के विकास पर पिछले 2 वर्षों से विश्लेषण कर रहे हैं। आपके विश्लेषण का सार निम्न में से क्या हो सकता है?
(1) विकास की प्रक्रिया क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ती है।
(2) विकास धीरे–धीरे एवं निश्चित समय पर होता है।
(3) विकास की दिशा सामान्य से विशिष्ट की ओर होती है।
(4) ये सभी

84. **विकास प्राणी में प्रगतिशील परिवर्तन है, जो निश्चित लक्ष्यों की ओर निरन्तर निर्देशित होता रहता है।** यह कथन निम्न में से किसका है?
(1) हरलॉक का (2) जीन पियाजे का
(3) ड्रेवर का (4) फ्रायड का

****

71.	72.	73.	74.	75.	76.	77.	78.	79.	80.	81.	82.	83.	84.								
(4)	(3)	(3)	(2)	(2)	(4)	(4)	(2)	(2)	(3)	(2)	(3)	(4)	(3)								

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

अध्याय 3

वृद्धि और विकास के विभिन्न आयाम

3.1 प्रस्तावना

मानव विकास का क्षेत्र अति व्यापक है। इसमें शारीरिक, मानसिक, भाषायी संवेगात्मक, सामाजिक, चारित्रिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक आदि सभी प्रकार के पक्षों में विकास समाहित होता है, परन्तु शिक्षा मनोविज्ञान में मानव के विशेष रूप से बालक के शारीरिक, मानसिक, भाषायी, संवेगात्मक, सामाजिक एवं चारित्रिक पक्षों के विकास का अध्ययन किया जाता है।

3.2 शारीरिक विकास

व्यक्ति के शारीरिक विकास का सम्बन्ध उसके शरीर के ढाँचे, नाड़ी तन्त्र, शरीर के आंतरिक संस्थान, जैसे- रक्त संचार संस्थान, पाचन संस्थान आदि में माँसपेशियों और अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियों में वृद्धि से है। बालक में संवेगात्मक स्थिरता, गामक क्षमता एवं अन्य परिवर्तन होते हैं और ये परिवर्तन बालक के व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

3.2.1 शारीरिक विकास का अर्थ

शारीरिक विकास से तात्पर्य बालकों में आयु के अनुसार शारीरिक आकार, शारीरिक अनुपात, अस्थियों, माँसपेशियों, दाँत तथा तन्त्रिका तन्त्र में समुचित विकास से होता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि बालकों में शारीरिक विकास हमेशा एक समान गति से नहीं होता। कभी तो वह तेजी से होता है और कभी मन्द गति से। इसके साथ ही बालक का शारीरिक विकास उसके समस्त प्रकार के व्यवहार के साथ-साथ विकास के अन्य सभी पक्षों को भी सार्थक रूप से प्रभावित करता है। इस प्रकार शारीरिक विकास के अन्तर्गत शरीर रचना, स्नायुमण्डल, माँसपेशीय वृद्धि, गामक तन्त्र, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ आदि प्रमुख रूप से आती है। चूँकि बालक के शारीरिक विकास का उसके मानसिक तथा सामाजिक विकास पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है इसलिए शैक्षिक दृष्टि से बालक के शारीरिक विकास को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। गति व प्रकृति की दृष्टि से विकास की विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास की प्रक्रिया में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य होती है। शिक्षा शब्दकोश में शारीरिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुये लिखा है-

> शारीरिक विकास शरीर की संरचना के आकार, प्रकृति, क्रिया आदि में परिवर्तन है। उदाहरणार्थ अस्थियों का उत्तरोत्तर कैल्सीकरण, चेहरे के आकार में परिवर्तन, सीने की आकृति आदि अथवा शारीरिक प्रशिक्षण के कारण अधिक सक्षम क्रियायें करना।

हरबर्ट सोरेन्सन ने शारीरिक विकास को इस प्रकार स्पष्ट किया है-

> शारीरिक विकास उत्तरोत्तर परिवर्तन एवं परिपक्वता की ओर उन्नति का संकेत करता है।

3.2.2 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

बाल्यावस्था की अवधि 6 वर्ष की आयु से लेकर 12 वर्ष की आयु तक होती है। इस अवस्था को भी 6 से 9 वर्ष तक की आयु को तीव्र गति से विकास की अवस्था तथा 9 से 12 वर्ष तक की आयु को परिपक्वता की अवस्था के रूप में जाना जाता है अर्थात् बाल्यावस्था के प्रथम तीन वर्षों के दौरान शारीरिक विकास अति तीव्र गति से व बाद के तीन वर्षों अर्थात् 9 से 12 वर्ष में कुछ परिपक्व काल भी कहते हैं। बाल्यावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन निम्न प्रकार के होते हैं-

1. भार

बाल्यावस्था में बालक के भार में पर्याप्त वृद्धि होती है। 12 वर्ष के अन्त में उसका भार 80 और 95 पौंड के बीच में होता है। 9 या 10 वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओं से अधिक होता है। इसके बाद बालिकाओं का भार अधिक होना आरम्भ हो जाता है।

2. लम्बाई

लम्बाई में वृद्धि की दृष्टि से यह काल विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। इस दौरान शरीर की लम्बाई लगभग 5 से 7 सेमी. प्रतिवर्ष की गति से बढ़ती है। बाल्यावस्था के प्रारम्भ में जहाँ बालकों की लम्बाई बालिकाओं की लम्बाई से लगभग 1 सेमी. अधिक होती है, वहीं इस अवधि की समाप्ति पर बालिकाओं की औसत लम्बाई बालकों की औसत लम्बाई से लगभग 1 सेमी. अधिक हो जाती है।

3. सिर तथा मस्तिष्क

बाल्यावस्था में सिर का विकास तो होता है, किन्तु शरीर और सिर का अनुपात वयस्क के शरीर और सिर के अनुपात की समानता की ओर प्रवृत्त होने लगता है अर्थात् शरीर के अन्य अंगों की तुलना में सिर अभी अपेक्षाकृत बड़ा होता है। शरीर के विभिन्न अंगों की अनुपातहीनता धीरे-धीरे कम होती जाती है। शैशवावस्था के अन्त तक मस्तिष्क का विकास वयस्क मस्तिष्क का 90 प्रतिशत होता है, जो बाल्यावस्था के अन्त तक बढ़कर 95 प्रतिशत हो जाता है। इस प्रकार बाल्यावस्था में मस्तिष्क आकार तथा भार दोनों ही दृष्टि से लगभग पूर्णरूपेण विकसित हो जाता है।

4. धड़ का विकास

बाल्यावस्था में बालक एवं बालिकाओं के धड़ का विकास बहुत महत्त्व रखता है। इस आयु में शरीर बलिष्ठ, पुष्ट तथा शक्तिशाली होने लगता है, जिसमें बालक अपने अंगों एवं शक्तियों के संचालन पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेते हैं। बालकों के कन्धे चौड़े होने लगते हैं तथा कूल्हे पतले होने लगते हैं। बालिकाओं के कन्धे पतले व कूल्हे चौड़े होने लगते हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

5. माँसपेशियाँ

बाल्यावस्था में माँसपेशियों का विकास मन्द गति से होता है। 8 वर्ष की आयु में माँसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का 27 प्रतिशत होता है, जो 12 वर्ष में बढ़कर 33 प्रतिशत हो जाता है।

6. हड्डियाँ

बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या तथा उनकी दृढ़ता दोनों मे ही वृद्धि होती है। शिशु के शरीर की कुछ झिल्लियों के हड्डियों के रूप में बदल जाने के कारण हड्डियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। यहाँ इस बात का भी संकेत देना उचित होगा कि वृद्धि की प्रक्रिया में कुछ कोमल हड्डियाँ मिलकर एक हो जाती है, जिसके कारण भी हड्डियों की संख्या में बदलाव आता है। बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या 270 से बढ़कर 350 हो जाती है। इस अवस्था के दौरान हड्डियों का दृढ़ीकरण अथवा अस्थिकरण तेजी से होता है, जिसके फलस्वरूप बालकों की हड्डियों का लचीलापन समाप्त होने लगता है तथा उनमें कड़ापन आने लगता है।

7. दाँत

लगभग 6 वर्ष की आयु में बालक के दूध के दाँत गिरने और उनके बजाय स्थायी दाँत निकलने आरम्भ हो जाते हैं। 12 या 13 वर्ष तक उसके सब स्थायी दाँत निकले आते हैं, जिनकी संख्या लगभग 32 होती है। बालिकाओं के स्थायी दाँत निकल आते हैं, जिनकी संख्या लगभग 32 होती है। बालिकाओं के स्थायी दाँत बालकों से जल्दी निकलते हैं।

8. हाथ व पैर

बाल्यावस्था में बालकों के पैर लम्बे और सीधे हो जाते हैं तथा बालिकाओं के पैर अन्दर की ओर कुछ झुकाव ले लेते हैं। भुजायें भी लम्बी होने लगती हैं।

9. यौन अंगों का विकास

बालकों तथा बालिकाओं दोनों के प्रजनन अंगों का विकास भी बाल्यावस्था में होने लगता है, किन्तु बालकों में यह विकास धीमी गति से होता है। 11-12 वर्ष तक आते-आते बालिकाओं के यौन अंगों का विकास तीव्र गति पकड़ लेता है।

10. हृदय गति

शैशावस्था की तुलना में बाल्यावस्था में हृदय के धड़कने की गति कम हो जाती है। 18 वर्ष के बालकों का हृदय प्रति मिनट 85 बार धड़कता है।

उक्त समस्त विकास के द्वारा बाल्यावस्था के अन्त तक मानव शरीर एक निश्चित आकार लेना शुरू कर देता है, जो किशोरावस्था में लगभग पूर्ण हो जाता है।

3.2.3 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

क्रो व क्रो ने लिखा है-

> स्वस्थ विकास का निवास की उत्तम दशाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उचित या अनुचित प्रकाश से आयोजित मनोरंजन और विश्राम, अपौष्टिक भोजन, कम हवादार निवास-स्थान एवं दोषपूर्ण वंशानुक्रम के समान तत्त्व स्वस्थ विकास में बाधक होते हैं।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित है-

1. आनुवंशिकता या वंशानुक्रम

बालक के शारीरिक विकास पर उसके माता-पिता, पूर्वजों तथा वंशजों के स्वास्थ्य, शारीरिक रचना, दोषों व रोगों का प्रभाव पड़ता है। प्रायः स्वस्थ माता-पिता की सन्तानें स्वस्थ और रोगी कमजोर माता-पिता की सन्तानें रोगी और कमजोर होती है।

2. वातावरण

क्रो व क्रो के अनुसार-

> बालक के स्वाभाविक विकास में वातावरण के तत्त्व सहायक या बाधक होते हैं।

शुद्ध वायु, पर्याप्त धूप, स्वच्छता आदि इस प्रकार के कुछ मुख्य तत्त्व हैं। तंग गलियों और बन्द मकानों में रहने वाले बालक किसी-न-किसी रोग के शिकार बनकर अपने स्वास्थ्य को खो देते हैं। पर्याप्त धूप का सेवन करने वाले बालकों को सर्दी, जुकाम, खाँसी और आँखों की कमजोरी आदि रोग कभी नहीं होते हैं। स्वच्छता, सुन्दर स्वास्थ्य का मुख्य आधार है। यदि बालक का शरीर, पहनने के वस्त्र, रहने का स्थान, खाने का भोजन आदि स्वच्छ होते हैं, तो उसका शारीरिक विकास द्रुत गति से होता चला जाता है।

3. भोजन

बालक के शारीरिक विकास पर भोजन का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। पौष्टिक व संतुलित भोजन करने वाले का शारीरिक विकास समुचित एवं स्वाभाविक तरीके से होता है। पौष्टिक भोजन की उपलब्धता आर्थिक स्तर पर भी निर्भर करती है, आर्थिक रूप से सम्पन्न बालक प्रायः हृष्ट-पुष्ट होते हैं। निर्धन बच्चे निर्बल होते हैं। पौष्टिक भोजन के अभाव में बालक उचित शारीरिक विकास से वंचित रह जाता है।

4. परिवार की स्थिति तथा रहन-सहन का ढंग

परिवार की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का बालक के शारीरिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक रहन-सहन, सामाजिक परम्परायें तथा खान-पान का प्रभाव भी उसके शारीरिक विकास पर पड़ता है।

5. विश्राम एवं निद्रा

बालक के शारीरिक विकास के लिए पूर्ण निद्रा तथा विश्राम आवश्यक है। शैशवावस्था में शिशु को 12 घण्टे की नींद आवश्यक होती है। बाल्यावस्था में 10 घण्टे की नींद तथा किशोरावस्था में 8 घण्टे की नींद आवश्यक होती है। विश्राम और निद्रा शरीर की थकावट को दूर कर नई ताजगी प्रदान करती है, जिससे बालक के शारीरिक विकास को अनुकूल अवसर प्रदान करती है।

6. दिनचर्या

बालक की दिनचर्या का प्रभाव उसके शारीरिक विकास पर पड़ता है। नियमित दिनचर्या से बालक का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। अच्छे शारीरिक विकास के लिए आवश्यक है कि बालक की दिनचर्या पर विशेष ध्यान दिया जावे। उसके खाने, नहाने, पढ़ने, खेलने, सोने आदि दैनिक क्रियाओं का समय नियमित रहना चाहिए। बालक में प्रारम्भ से ही नियमित दिनचर्या की आदत डालनी चाहिए।

7. प्रेम

बालक के उचित शारीरिक विकास का आधार प्रेम है। यदि उसे अपने माता-पिता का प्रेम नहीं मिलता है, तो वह दुःखी रहने लगता है। यदि उसके माता-

www.praganya.org
www.praganya.org
www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

पिता की अल्पायु में मृत्यु हो जाती है, तो उसे असह्य कष्टों का सामना करना पड़ता है। दोनों दशाओं में उसके शरीर का सन्तुलित विकास होना असम्भव हो जाता है। शिक्षक को भी बालक के प्रति प्रेम का व्यवहार करना चाहिए।

8. खेल एवं व्यायाम

खेल तथा व्यायाम भी शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं। बालक की दिनचर्या में नियमित रूप से खेल और व्यायाम शामिल होना चाहिये, जिससे माँसपेशियाँ एवं हड्डियाँ मजबूत होती है तथा इससे पाचन शक्ति भी ठीक रहती है। बालकों को खुली हवा और मैदान में खेलने व व्यायाम करने देना चाहिए। शारीरिक विकास की प्रक्रिया इससे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है। अतः बालकों के लिए खेल एवं व्यायाम की आवश्यकता को अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए।

9. सुरक्षा

शिशु या बालक के सम्यक् विकास के लिए उसमें सुरक्षा की भावना होना अति आवश्यक है। इस भावना के अभाव में वह भय का अनुभव करने लगता है और आत्म-विश्वास खो बैठता है। ये दोनों बातें उसके विकास को अवरुद्ध कर देती हैं।

10. दुर्घटना

दुर्घटनाएँ भी बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं। यदि बचपन में बालक किसी दुर्घटना से प्रभावित हुआ है, जैसे-उसकी हड्डी टूट गयी, जल गया हो, किसी जानवर ने काट लिया हो तो उसका शरीर प्रभावित होता है, जिससे उनके विकास की गति अवरुद्ध होती है।

11. अन्य कारक

बालक के शारीरिक विकास को अन्य कारक भी प्रभावित करते हैं, जैसे-

1. रोग के कारण उत्पन्न विकृति
2. भौगोलिक परिस्थितियाँ
3. परिवार की निर्धनता आदि।

उपरोक्त कारकों की विवेचना से यह ज्ञात होता है कि शारीरिक विकास कितना महत्त्वपूर्ण होता है। अतः यह आवश्यक है कि अध्यापकों एवं माता-पिता को बालक के शारीरिक विकास तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी हो, जिससे वे बालक के विकास को एक निश्चित स्वरूप एवं गति प्रदान करने में सहायता प्रदान कर सकें।

3.2.4 शारीरिक विकास की विशेषताएँ

बालक के शारीरिक विकास की विशेषताएँ निम्न प्रकार है-

1. बालक के शारीरिक विकास के साथ-साथ बालक के शरीर का आकार, भार, लम्बाई, सिर, मस्तिष्क, हड्डियाँ एवं दाँत आदि भी बढ़ते हैं।
2. शारीरिक विकास के साथ ही स्नायु तन्त्र भी विकसित होता है।
3. अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ भी शारीरिक विकास के साथ अभिवृद्धि करती है।
4. बालक के शारीरिक विकास में वैयक्तिक भिन्नता के कारण अन्तर पाया जाता है।
5. शारीरिक विकास में उत्तरोत्तर परिवर्तन होता रहता है।

3.2.5 शारीरिक विकास का शैक्षिक महत्त्व

बालकों के शारीरिक विकास के ज्ञान का महत्त्व शिक्षकों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यदि शरीर स्वस्थ है और सही दिशा में विकसित हो रहा है, तभी छात्रों से यह आशा की जा सकती है कि वे सन्तुष्ट होकर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। अविकसित शरीर बालक को शिक्षा प्राप्ति के लिए तत्पर नहीं होने देता है। अतः यदि हम चाहते हैं कि हमारे छात्र शिक्षा के क्षेत्र में अपनी बहुमुखी प्रतिभा का प्रदर्शन करें, तो उनके शारीरिक विकास पर ध्यान देना जरूरी है। शिक्षक के लिए छात्र के शारीरिक विकास पर उचित ध्यान दिया जाना निम्न दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है-

1. शारीरिक विकास मानसिक विकास का आधार है तथा बालकों को ज्ञानार्जन हेतु प्रेरित करने में सहायक है। यदि किसी वर्ग के अधिकतर बालकों की शारीरिक अभिवृद्धि अन्य बालकों की तुलना में अधिक होती है, तो इससे अन्य बालकों में एक तरह की हीनता का भाव उत्पन्न हो सकता है जिसका बुरा प्रभाव उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है। इसी प्रकार यदि वर्ग में किसी छात्र की शारीरिक अभिवृद्धि अन्य बालकों की तुलना में काफी कम हैं, तो यह भी शिक्षक के लिए चुनौती हो सकती है, क्योंकि इस तरह के छात्रों में समायोजन से सम्बन्धित कई समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं। अतः शिक्षक को छात्रों की शारीरिक अभिवृद्धि की जानकारी होना आवश्यक है, ताकि वे छात्रों के साथ उन्हीं की शारीरिक जरूरतों के अनुकूल शैक्षिक माहौल तैयार कर उन्हें शिक्षित कर सके।
2. शारीरिक रूप से स्वस्थ बालकों में अधिगम क्षमता अधिक पायी जाती है तथा ऐसे बालकों को पढ़ने में कम थकान का अनुभव होता है। ऐसे बालक अधिक समय तक विषयवस्तु पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं तथा उपलब्धि व निष्पादन परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त करते है। अतः ऐसे बालकों के प्रति शिक्षकों एवं सहपाठियों का व्यवहार स्नेहपूर्ण एवं सहयोगात्मक होता है।
3. शारीरिक विकास तथा परिपक्वता से बालकों का मानसिक एवं सामाजिक विकास भी प्रभावित होता है, इसलिए शिक्षकों को स्कूल के कार्यक्रमों को इस ढंग से तैयार करना चाहिए कि उससे प्रत्येक छात्र को सफलता मिल सके तथा उसका आत्मसम्मान बना रहे। उदाहरणार्थ जो छात्र शारीरिक रूप से दुर्बल हैं उनका एक अलग कार्यक्रम बनाया जाये, जिसमें केवल शारीरिक रूप से कमजोर छात्र ही भाग लें, जिसमें ऐसे छात्रों में किसी प्रकार की हीनता की भावना नहीं उत्पन्न होगी तथा उनका आत्मसम्मान भी बरकरार रहेगा तथा शिक्षक भी स्कूल में शारीरिक रूप से दुर्बल छात्रों के साथ न्याय करने में सक्षम हो पाएंगे।
4. स्कूल में प्रायः खेलकूद तथा शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम का स्वरूप प्रतियोगितात्मक होता है तथा इस कार्यक्रम में मात्र कुछ ही ऐसे शारीरिक रूप से हृष्ट-पुष्ट छात्र होते हैं, जो इसमें भाग लेकर खिताब जीत जाते हैं, जिससे इसका प्रभाव सभी छात्रों पर अच्छा नहीं होता है व उनकी शैक्षिक लब्धि पर भी बुरा असर पड़ता है। अतः शिक्षकों को चाहिए कि वे इन कार्यक्रमों के स्वरूप में इस ढंग का परिवर्तन करें कि इसमें सभी छात्रों की समान भागीदारी हो, ताकि

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

सभी में समान रूप से शैक्षिक अभिरूचि कायम रहे।

5. खेल क्रियायें व दस्तकारी कार्य कराते समय शिक्षक को ध्यान रखना चाहिए कि वे उनके शारीरिक व क्रियात्मक विकास अनुकूल हो। जहाँ तक सम्भव हो, बालकों को सक्रिय खेल खेलने के लिए प्रेरित करना चाहिए, जिससे उनके शरीर के शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक विकास भी ठीक ढंग से हो, क्योंकि शिक्षक ही यह बात अच्छी तरह समझ सकते हैं कि खेल द्वारा जो शारीरिक व मानसिक विकास होता है। उससे छात्रों में सूझ उत्पन्न होती है तथा उनमें सृजनात्मक क्षमतायें भी उत्पन्न होती है। इनसे बालकों के व्यक्तित्व विकास पर भी सीधा असर पड़ता है। खेल से बालकों में सहयोगिता, उदारता तथा सच्चाई जैसे शीलगुण भी विकसित होते हैं।
6. पाठ्यक्रम में भी ऐसे पाठों को निर्धारित किया जा सकता है व पढ़ाया जा सकता है जिनके माध्यम से स्वास्थ्यकर खान-पान, छोटी-मोटी बीमारियों का खान-पान से सम्बन्ध आदि को सैद्धान्तिक रूप से समझाया जा सके।
7. शिक्षक को छात्रों की आयु के अनुरूप खो-खो, रिंगबॉल आदि खेल खिलाने चाहिए तथा कभी-कभी खेलों के माध्यम से ही पाठों को समझाना चाहिए।

इस तरह स्पष्ट है कि बालकों के शारीरिक विकास का बहुत अधिक शैक्षिक महत्त्व है। यही कारण है कि आजकल स्कूलों में प्रायः ऐसे कार्यक्रम तैयार किये जाते हैं, जिनसे बालकों में उचित शारीरिक विकास सम्भव हो सके।

3.3 मानसिक विकास

बालक के मानसिक विकास से तात्पर्य उसकी मानसिक क्रियाओं एवं योग्यताओं के विकास से होता है। इनके अन्तर्गत बुद्धि, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, निरीक्षण, रूचि, ध्यान, कल्पना, चिन्तन, तर्क, निर्णय, स्मृति, विस्मृति, आदि मानसिक क्रियाओं एवं योग्यताओं का विकास आता है और इन क्रियाओं एवं योग्यताओं के विकास से मानव व्यवहार प्रभावित होता है।

3.3.1 मानसिक विकास का अर्थ

सामान्य शब्दों में शिशु के मानसिक विचार से तात्पर्य शिशु की समझ से होता है। जन्म के समय शिशु में मानसिक विकास का स्तर करीब-करीब शून्य होता है। जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती जाती है तथा उसे नई-नई अनुभूतियाँ होती जाती है, उसका मानसिक विकास होता जाता है। मानसिक विकास से तात्पर्य मानसिक क्षमताओं के विकास से होता है। इस मानसिक क्षमता में संवेदनशीलता, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्यय निर्माण, अवलोकन, ध्यान, स्मृति, कल्पना, चिन्तन, तर्क, निर्णय, बुद्धि, भाषा, अधिगम क्षमता आदि संज्ञानात्मक शक्तियाँ आती हैं। जन्म के समय शिशु का मस्तिष्क अविकसित होता है और उसका मानसिक विकास नगण्य होता है। शिशु के शारीरिक विकास के साथ-साथ अर्थात् उसकी आयु में वृद्धि के साथ-साथ उसका मस्तिष्क विकसित होता जाता है अर्थात् उसका मानसिक विकास होता है। विकास की अवस्थाओं के अनुरूप ही बालक में मानसिक शक्तियों के विकास में परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार मानसिक विकास वह विकास है, जो जन्म से परिपक्वता तक सतत् जारी रहता है, जिससे मानसिक क्षमताएँ और क्रियाएँ उत्तरोत्तर एवं विशेष ढंग से संगठित होती जाती है। शिक्षा शब्दकोश में बालक के मानसिक विकास को परिभाषित करते हुये लिखा है-

> मानसिक विकास जन्म-पूर्व अवस्था से प्रौढ़ता तक व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं और मनोवैज्ञानिक व्यवहार का उत्तरोत्तर विकास एवं संगठन है।

जेम्स ड्रेवर के अनुसार-

> व्यक्ति के जन्म से परिपक्वता तक की मानसिक क्षमताओं एवं क्रियाओं के उत्तरोत्तर प्रकटन एवं संगठन की प्रक्रिया को मानसिक विकास कहा जाता है।

इस परिभाषा से मानसिक विकास के प्रमुख तथ्यों पर इस प्रकार प्रकाश पड़ता है-

1. मानसिक विकास का सम्बन्ध मानसिक क्षमताओं तथा मानसिक कार्य से होता है।
2. मानसिक विकास की प्रक्रिया उत्तरोत्तर अर्थात् क्रमिक होती है
3. मानसिक विकास की प्रक्रिया जन्म से पूर्ण परिपक्वता आने तक चलती रहती है।

3.3.2 बाल्यावस्था में मानसिक विकास

बाल्यावस्था में मानसिक विकास की गति शैशवावस्था से धीमी होती है। इस अवस्था में बालकों में समझने, स्मरण करने, विचार करने, समस्या समाधान करने, चिंतन करने, प्रत्यक्ष ज्ञान करने, निर्णय लेने की शक्ति का विकास होता है। क्रो एवं क्रो के अनुसार-

> जब बालक लगभग 6 वर्ष का हो जाता है, तब उसकी मानसिक योग्यताओं का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है।

उसमें रुचि, जिज्ञासा, निर्णय, चिन्तन, स्मरण और समस्या-समाधान के गुणों का पर्याप्त विकास हो जाता है। विभिन्न आयु में वह अपने इन गुणों का इस प्रकार प्रदर्शन करता है-

1. छठवाँ वर्ष

बालक बिना हिचके हुए 13-14 तक की गिनती सुना देता है, सरल प्रश्नों के उत्तर दे देता है और शरीर के विभिन्न अंगों के नाम बता देता है। यदि उसे कोई चित्र दिखाया जाये, तो वह उसमें बनी हुई वस्तुओं का वर्णन कर सकता है और उनमें समानताएँ एवं असमानताएँ भी बता सकता है।

2. सातवाँ वर्ष

बालक में दो वस्तुओं में अन्तर करने की शक्ति का विकास हो जाता है। वह लकड़ी, कोयला, जहाज और मोटरकार में अन्तर बता सकता है। वह छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन, जटिल वाक्यों का प्रयोग और साधारण समस्याओं का समाधान करने की योग्यता रखता है।

3. आठवाँ वर्ष

बालक में छोटी कहानियों और कविताओं को अच्छी तरह दोहराने, 16 शब्दों के वाक्यों को बिना गलती किए हुए बोलने, एक पैरा की कहानी पर 5 या 6 प्रश्नों के उत्तर देने और प्रतिदिन की साधारण समस्याओं का समाधान करने की योग्यता होती है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

4. नवाँ वर्ष

बालक को दिन, समय, तारीख, वर्ष और सिक्कों का ज्ञान होता है। वह 5–6 तुकान्त शब्दों को बताने और 6–7 शब्दों को उल्टे क्रम में दोहराने में सफल होता है। वह सामान्य शब्दों का प्रयोग करने लगता है और देखी हुए फिल्म की 60% बातें बता सकता है।

5. दसवाँ वर्ष

बालक तीन मिनट में 60–70 शब्द बोल सकता है और छोटी–छोटी कहानियों को याद करके सुना सकता है। उसे दैनिक जीवन के नियमों, परम्पराओं, सूचनाओं आदि का थोड़ा–बहुत ज्ञान हो जाता है।

6. ग्यारहवाँ वर्ष

बालक में तर्क, जिज्ञासा और निरीक्षण की शक्तियों का काफी विकास हो जाता है। वह पशु–पक्षियों, कीट–पतंगों आदि का भी निरीक्षण करके ज्ञान प्राप्त कर लेता है। बालक कई कठिन शब्दों की व्याख्या करने लगता है, विभिन्न वस्तुओं में तुलना करने लगता है।

7. बारहवाँ वर्ष

बालक में तर्क और समस्या–समाधान की शक्ति का काफी विकास हो जाता है। उसमें कठिन शब्दों की व्याख्या करने और साधारण बातों के कारण बताने की योग्यता होती है। वह देखी हुई फिल्म की 75% बातें बता सकता है।

बारहवें वर्ष में बालक और बालिकाओं में तर्क करने, समस्या समाधान करने की योग्यता आ जाती है। उसके अन्दर कठिन शब्दों की व्याख्या करने और साधारण बातों के कारण बताने की योग्यता होती है। वह देखी हुई घटना की 75 प्रतिशत बातों को बाद में भी बता सकता है।

बाल्यावस्था में बालक परिस्थितियों को समझने लगता है तथा उनका सामना करने का प्रयास करता है। उसकी रूचि नये कार्यों, वस्तुओं एवं व्यक्तियों में बढ़ती है उसमें समायोजन की क्षमता का विकास हो जाता है।

3.3.3 मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

प्रत्येक अवस्था में होने वाले मानसिक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। परिवार, वातावरण या अन्य परिस्थितियों से सम्बन्धित कारक मानसिक विकास की गति को तीव्र एवं मन्द कर देते हैं। क्रो एवं क्रो ने मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के विषय में लिखा है–

> विभिन्न कारक मानसिक विकास को प्रभावित करते हैं। वंशानुगत स्नायुतंत्र की संरचना सम्भावित विकास की दर एवं सीमा को सुनिश्चित करती है। कुछ अन्य शारीरिक दशायें या वैयक्तिक और वातावरण सम्बन्धी कारक मानसिक प्रगति को तीव्र अथवा मन्द कर सकते हैं।

मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं–

1. वंशानुक्रम या आनुवंशिकता

मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन से सिद्ध किया है कि बालक के मानसिक विकास को प्रभावित करने में वंशानुक्रम सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है, क्योंकि मनुष्य मानसिक योग्यतायें तथा गुण आनुवंशिक रूप से लेकर ही उत्पन्न होता है जिन्हें वातावरण के द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। इस विषय में ग्रेटस एवं अन्य ने लिखा है–

> किसी व्यक्ति का उससे अधिक विकास नहीं हो सकता है, जितना कि उसका वंशानुक्रम सम्भव बनाता है।

अर्थात् कोई भी व्यक्ति उससे अधिक विकास नहीं कर सकता है, जितना कि उसका वंशानुक्रम सम्भव बनाता है।

2. परिवार का वातावरण

परिवार के वातावरण का बालक के मानसिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दुःखद और कलहपूर्ण वातावरण में बालक का उतना मानसिक विकास होना सम्भव नहीं है, जितना कि सुखद और शान्त वातावरण में। इस सम्बन्ध में कुप्पूस्वामी का मत है–

> एक अच्छा परिवार, जिसमें माता–पिता में अच्छे सम्बन्ध होते हैं, जिसमें वे अपने बच्चों की रुचियों और आवश्यकताओं को समझते हैं एवं जिसमें आनन्द और स्वतन्त्रता का वातावरण होता है, प्रत्येक सदस्य के मानसिक विकास में अत्यधिक योगदान देता है।

3. परिवार की सामाजिक स्थिति

उच्च सामाजिक स्थिति के परिवार के बालक का मानसिक विकास अधिक होता है। इसका कारण यह है कि उसको मानसिक विकास के जो साधन उपलब्ध होते हैं, वे निम्न सामाजिक स्थिति के परिवार के बालक के लिए दुर्लभ होते हैं। इसकी पुष्टि में स्ट्रैंग के अग्रांकित शब्द उद्धृत किये जा सकते हैं–

> उच्च सामाजिक स्थिति वाले परिवार के बच्चे बुद्धि की मौखिक और लिखित परीक्षाओं में स्पष्ट रूप से श्रेष्ठ होते हैं।

4. परिवार की आर्थिक स्थिति

टर्मन ने अपने परीक्षणों के आधार पर बताया है कि प्रतिभाशाली बालक दरिद्र क्षेत्रों से आने के बजाय अच्छी आर्थिक स्थिति वाले परिवारों से अधिक आते हैं। इसका कारण यह है कि इन बालकों को कुछ विशेष सुविधाएँ उपलब्ध रहती है; जैसे– उचित भोजन, उपचार के पर्याप्त साधन, उत्तम शैक्षिक अवसर, आर्थिक कष्ट से सुरक्षा आदि।

5. माता–पिता की शिक्षा

अशिक्षित माता–पिता की अपेक्षा शिक्षित माता–पिता का बालक के मानसिक विकास पर कहीं अधिक प्रभाव पड़ता है। स्ट्रैंग का कथन है–

> माता–पिता की शिक्षा, बच्चों की मानसिक योग्यता से निश्चित रूप से सम्बन्धित है।

6. उचित प्रकार की शिक्षा

बालक के मानसिक विकास के लिए उचित प्रकार की शिक्षा अति आवश्यक है। ऐसी शिक्षा जो उसके मानसिक गुणों और शक्तियों का विकास करती है। अरस्तु का यह कथन पूर्णतया सत्य है –

> शिक्षा मनुष्य की शक्ति का, विशेष रूप से उसकी मानसिक शक्ति का विकास करती है।

7. विद्यालय

अच्छा विद्यालय, बालक के मानसिक विकास का वास्तविक और महत्त्वपूर्ण कारक है। कुप्पूस्वामी के शब्दों में –

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

अच्छा विद्यालय ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है, जो छात्रों की रुचियों और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न क्रियाओं से परिपूर्ण रहता है। ऐसा विद्यालय स्वस्थ मानसिक विकास का एक वास्तविक कारण है।

8. शिक्षक

बालक के मानसिक विकास में शिक्षक का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि शिक्षक का मानसिक विकास अच्छा है, यदि वह बालक के प्रति प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करता है और यदि वह शिक्षण–विधियों एवं उचित शिक्षण–विधियों एवं उचित शिक्षण–सामग्री का प्रयोग करता है, तो बालक का मानसिक विकास होना स्वाभाविक है।

9. शारीरिक स्वास्थ्य

शारीरिक स्वास्थ्य ही मानसिक विकास का मुख्य आधार है। अरस्तु ने भी कहा है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है। शारीरिक दृष्टि से सबल और स्वस्थ बालक अधिक परिश्रम करके अस्वस्थ बालक की अपेक्षा अपने मानसिक विकास की गति को अच्छे ढंग से विकसित कर सकता है। इसीलिए प्राचीन काल से ही इस ओर ध्यान दिया जाता रहा है।

10. समाज

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज ही उनके मानसिक विकास की गति और सीमा को निर्धारित करता है। यदि समाज अपने नागरिकों के लिए अच्छे विद्यालय, पुस्तकालय, वाचनालयों एवं मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था करता है, तो बालक के मानसिक विकास को सतत् विकसित किया जा सकता है। इन सुविधाओं के न होने से बालकों के मानसिक विकास की गति, दिशा और सीमा संकुचित हो जाती है।

बालक की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले मानसिक परिवर्तनों का क्रमबद्ध अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि मानसिक विकास एक बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। यदि मानसिक विकास का स्वरूप एवं उनके प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी हो तो मानसिक विकास को तीव्र गति प्रदान की जा सकती है। शिक्षा बालकों के मानसिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। माता–पिता और शिक्षकों का यह आवश्यक कर्त्तव्य है कि वे बालकों को उचित अवसर व वातावरण प्रदान करके उच्चतम मानसिक विकास के लिए सहायता प्रदान करें।

www.praganya.org

3.3.4 मानसिक विकास की विशेषताएँ

मानसिक विकास की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. मानसिक विकास शिशुओं की आयु के साथ बढ़ता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जन्म के समय बालकों में एक सामान्य आवेश का चिह्न पाया जाता है। इसके 3 महीने बाद बालकों में संवेगात्मक विकास होता है जिसमें बालकों में दुःख तथा आनन्द दो तरह के संवेग विकसित होते हैं। इसके कुछ महीने बाद शिशु में प्रत्यक्षात्मक विश्लेषण करने की अवस्था आने पर वे शेष सप्रत्यय विकसित करना शुरू कर देते हैं तथा अपनी स्मृति के आधार पर प्रत्येक वस्तु का स्मृति चित्र भी बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। अतः बालकों में मानसिक विकास आयु के साथ अधिक परिपक्व होता जाता है।
2. बालकों में मानसिक विकास के साथ–साथ उनकी आवश्यकताओं एवं रूचियों में विस्तार होता है। जन्म के 2 सप्ताह से 2 साल की अवधि में भूख–प्यास से सम्बन्धित आवश्यकताएँ बाल्यावस्था तक आते–आते खिलौनों व खेल की आवश्यकता में बदल जाती है।
3. मानसिक विकास का सम्बन्ध मानसिक क्षमताओं एवं क्रियाओं से होता है।
4. मानसिक विकास के साथ ही बालकों के मन में नये–नये विचार एवं चिंतन आना शुरू हो जाता है। बालक किसी घटना का विश्लेषण कर उससे नये–नये अनुभव प्राप्त करने की क्षमता विकसित कर लेता है, जो भविष्य में काम आती है।
5. मानसिक विकास के साथ ही बालकों में समय सम्बन्धी शब्दावली भी विकसित हो जाती है। 6–7 साल की अवस्था तक बालक प्रायः सुबह, रात, ग्रीष्म, सर्दी जैसे शब्दों को जान जाता है।
6. 15 महीने तक जो शिशु अपनी इच्छा एवं मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति हाव–भाव एवं संकेत से करते हैं। मानसिक विकास में वृद्धि होने से वे उसे शब्दों के रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता विकसित कर लेते हैं। आरम्भ में भाषा में अस्पष्टता होती है, परन्तु धीरे–धीरे उसमें स्पष्टता एवं शुद्धता आने लगती है।
7. मानसिक विकास में वृद्धि के साथ ही बालकों में योजना बनाने की क्षमता का विकास हो जाता है।
8. मानसिक विकास से बालकों में गत अनुभवों से उपयुक्त लाभ उठाने की क्षमता विकसित हो जाती है।

मानसिक विकास में एक क्रमबद्धता होती है। यह विकास की प्रक्रिया जन्म से परिपक्वता तक क्रमिक ढंग से चलती रहती है। जैसे–जैसे बालक अपने मानसिक विकास के उच्चतम शिखर के नजदीक आता जाता है, उसकी मानसिक क्षमतायें काफी सुदृढ़ होती जाती है तथा प्रायः 18–19 साल तक अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच जाती है। अतः यही अवस्था मानसिक विकास की शिखर अवस्था मानी जाती है।

3.3.5 मानसिक विकास और शिक्षा

विभिन्न अवस्थाओं में मानसिक वृद्धि और विकास के स्वरूप का ज्ञान और मानसिक योग्यताओं और क्षमताओं में आयु के साथ–साथ होने वाले परिवर्तनों की अमूल्य जानकारी अध्यापक के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस उपयोगिता को संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता हैः–

1. विभिन्न आयु स्तरों पर पाठ्यक्रम सम्बन्धी और सहगामी क्रियाओं तथा अनुभवों के चयन और नियोजन में इससे सहायता मिल सकती है।
2. किस विधि और तरीके से पढ़ाया जाये, सहायक सामग्री तथा शिक्षण साधन किस प्रकार प्रयोग में लाए जायें, शैक्षणिक वातावरण किस प्रकार का हो, यह सब निश्चित करने में भी अध्यापक को इससे सहायता मिलती है।
3. विभिन्न अवस्थाओं और आयु स्तर पर बच्चों की मानसिक बुद्धि और विकास को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में भी इससे सहायता मिल सकती है।
4. इसकी सहायता से अध्यापक को यह ज्ञात हो जाता है कि एक विशेष प्रकार की पढ़ाई और कार्य, जिन्हें करने के लिए कुछ विशेष

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

विकसित मानसिक शक्तियों की आवश्यकता होती है, उपयुक्त समय पर उन शक्तियों के विकसित होने पर ही प्रारम्भ कराने चाहिए। अनावश्यक शीघ्रता और देरी, दोनों ही इस अवस्था में हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं।

5. इस प्रकार के ज्ञान द्वारा अध्यापक अपने शिष्यों की मानसिक शक्तियों और क्षमताओं के पूर्ण विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान कर सकता है। वह उन्हें समाधान और सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण दे सकता है। बिना सोचे समझे तोते की तरह रटने और अन्धों की तरह इधर-उधर हाथ मार कर कार्य में सफल होने के लिए प्रयास करने की अपेक्षा तर्क शक्तियों तथा सूझ -बूझ के आधार पर याद रखने और अन्य कार्य सम्पन्न करने में भी वह उनकी सहायता कर सकता है। उनके निरीक्षण, प्रत्यक्षीकरण, सामान्यीकरण सम्बन्धी योग्यता को विकसित करने में भी उनकी मानसिक शक्तियों की वृद्धि और विकास के स्तर को ध्यान में रखते हुए वह उनकी पूरी मदद कर सकता है।

इस तरह से एक अध्यापक मानसिक वृद्धि और विकास के सभी पहलुओं और उनके विभिन्न स्तरों पर होने वाले सामान्य और विशिष्ट परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए अपने शिष्यों को मानसिक वृद्धि और विकास के पथ पर अच्छी तरह से अग्रसर कर सकता है। वह न केवल उनकी मानसिक शक्तियों और योग्यताओं के विकास में ही सहायता करता है, बल्कि उन्हें इन शक्तियों और योग्यताओं का उसके स्वयं और समाज के लाभ को ध्यान में रखते हुए विवेक और बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग करने में भी समर्थ बना सकता है।

3.3.6 मानसिक विकास का शैक्षिक महत्त्व

बालक के मानसिक विकास का शैक्षिक महत्त्व निम्नलिखित है-

1. उच्च विकसित मानसिक विकास वाले बालक शिक्षण में विशेष रूचि लेते हैं।
2. मानसिक रूप से विकसित बालक कठिन विषयवस्तु को सरलता से समझ लेते हैं।
3. ऐसे बालक तथ्यों का सामान्यीकरण एवं निर्णय लेने में अधिक कुशल होते हैं।
4. इस प्रकार के बालक उपलब्धि परीक्षण में भी अपनी योग्यता के अनुसार ही अच्छे अंक अर्जित करते हैं।
5. इस प्रकार के बालकों में समस्या समाधान की विशिष्ट योग्यता होती है तथा वे स्वयं ही अपनी समस्या का समाधान खोजने में सक्षम होते हैं।

3.4 बालक का सामाजिक विकास

जन्म के समय शिशु में सामाजिकता लगभग शून्य होती है अर्थात् शिशु न तो सामाजिक होता है और न ही असामाजिक। जैसे-जैसे उसका शारीरिक और मानसिक विकास होता है, वैसे-वैसे उसका सामाजिक विकास भी होता है। अपने परिवार के सदस्यों, अपने समूह के साथियों, अपने समाज की संस्थाओं और परम्पराओं एवं अपनी स्वयं की रुचियों और इच्छाओं से प्रभावित होकर वह अपने सामाजिक व्यवहार का निर्माण और अपना सामाजिक विकास करता है। सामाजिक व्यवहार में स्थिरता न होकर परिवर्तनशीलता होती है। अत: समय और परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है और सामाजिक विकास एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ता जाता है। इस प्रकार समाजीकरण की प्रक्रिया दूसरे व्यक्तियों के साथ शिशु के प्रथम सम्पर्क से आरम्भ होती है और आजीवन चलती रहती है।

3.4.1 सामाजिक विकास का अर्थ

सामाजिक आदर्शों, परम्पराओं एवं रूढ़ियों के अनुसार समाज के अन्य लोगों के सहयोग से जो व्यवहार किया जाता है, उसे सामाजिक विकास के अन्तर्गत रखा जाता है। सामाजिक विकास व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया है। विद्वानों ने सामाजिक विकास की परिभाषाएँ इस प्रकार दी हैं-

1. हरलॉक के अनुसार-

सामाजिक विकास का अर्थ सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता प्राप्त करना है।

2. सोरेन्सन के अनुसार-

सामाजिक अभिवृद्धि और विकास का अर्थ है अपनी और दूसरों की उन्नति के लिए योग्यता की वृद्धि।

3. रॉस के अनुसार-

सहयोग करने वालों में **हम की भावना** का विकास और उनके साथ काम करने की क्षमता का विकास तथा संकल्प समाजीकरण कहलाता है।

3.4.2 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

इस अवस्था में सामाजिक विकास बहुत तेजी से होता है। इस अवस्था में बालक बाह्य रूप से समाज के सम्पर्क में आता है जिस कारण सामाजिक विकास में तीव्रता होती है। बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है-

1. लगभग 6 वर्ष की आयु में बालक प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश करता है। वहाँ वह एक नए वातावरण से अनुकूलन करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना और नए मित्र बनाना सीखता है।
2. अनुकूलन करने के उपरान्त, बालक के व्यवहार में उन्नति और परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। फलस्वरूप, उसके स्वतन्त्रता, सहायता और उत्तरदायित्व के गुणों का विकास होने लगता है।
3. इस अवस्था में बालक-बालिकायें किसी न किसी टोली या समूह के सदस्य होते हैं और टोली या समूह के खेल, वस्त्रों की पसन्द आदि का ही वे अनुसरण करते हैं। उनके समूह या टोली द्वारा ही उचित-अनुचित आदर्शों का भी निर्धारण किया जाता है। इस प्रकार बालक के विकास को नई दिशा प्राप्त होती है।
4. समूह का सदस्य होने के कारण बालक में अनेक सामाजिक गुणों का विकास होता है। उसमें सहयोग, साहस, उत्तरदायित्व, सहनशीलता, सद्भावना, आत्मनियन्त्रण, न्यायप्रियता आदि गुणों का उदय होने लगता है।
5. इस अवस्था में लड़कों की दौड़ने-भागने वाले खेलों, घर के बाहर

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

घूमने, मारधाड़ वाले कार्य एवं मारधाड़ वाली फिल्में देखने में अधिक रूचि होती है, जबकि बालिकायें नाच–गाना, कढ़ाई–बुनाई तथा घरेलू कार्यों में अधिक रूचि लेती है। क्रो एवं क्रो के अनुसार– इस अवस्था में बालक को अपने प्रिय कार्यों में बहुत रूचि हो जाती है, पर बालकों और बालिकाओं के इन कार्यों में स्पष्ट अन्तर दिखायी देने लगता है।

6. इस अवस्था में बालक अपने शिक्षक का सम्मान अवश्य करता है, परन्तु उनका परिहास करने की प्रवृत्ति भी उसमें होती है।
7. बाल्यावस्था में बालक–बालिकाएँ प्रायः घर के बाहर रहना चाहते हैं, परन्तु उनके व्यवहार में शिष्टता होती है। वे दूसरों पर अपना प्रभाव एवं छाप छोड़ना चाहते हैं वे अपने को दूसरे के समक्ष शिक्षित एवं सुसंस्कृत होने का आभास कराना चाहते हैं।
8. बाल्यावस्था में बालक–बालिकाएँ सामाजिक स्वीकृति तथा प्रशंसा पाने के तीव्र इच्छुक होते हैं। वे अन्य व्यक्तियों के समक्ष ऐसे कार्य तथा आचरण को प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं, जिन्हें अन्य व्यक्ति पसन्द करे तथा वे प्रशंसा भी करें। वे छोटे बच्चों की सहायता करने, पारिवारिक कार्यों में सहायता करने, पढ़ने, लिखने तथा बड़ों के आदेशों का पालन करते हैं।
9. प्रेम तथा स्नेह से वंचित बालक और बालिकायें इस आयु में उद्दण्ड स्वभाव के हो जाते हैं। वे अपने माता–पिता, परिवार तथा बुजुर्गों आदि का स्नेह, दुलार और संरक्षण पाने के लिए तीव्र इच्छुक होते हैं, जिससे उनके अंदर सकारात्मक सामाजिक गुण विकसित होते हैं तथा इसके विपरीत प्रेम व स्नेह से वंचित बालकों में नकारात्मक सामाजिक गुण विकसित होते हैं।
10. इस अवस्था में बालक–बालिकाएँ मित्रों का चुनाव करते हैं और कक्षा के सहपाठी, आस–पड़ोस के समान उम्र के बालकों को ही अपना मित्र बनाते हैं। वे अपने मित्रों के दृष्टिकोण, विचार, आदत आदि के लिए उनका अनुसरण करते हैं।
11. इस अवस्था में बालक में नई बातों की खोज करने की रूचि उत्पन्न हो जाती है। वह अपनी टोली, पड़ोस, विद्यालय तथा अन्य स्थानों के व्यक्तियों के सम्बन्ध में नई बातों की खोज करता है और अपने साथियों को उन्हें बताने में गर्व तथा आनन्द का अनुभव करता है।
12. क्रो एण्ड क्रो के अनुसार–

> 6 से 10 वर्ष तक बालक अपने वांछनीय तथा अवांछनीय व्यवहार में निरन्तर प्रगति करता रहता है। वह बहुधा उन्हीं कार्यों को करता है, जिनके किये जाने का कोई उचित कारण नहीं जान पड़ता है।

बाल्यावस्था में बालक बालिकाओं द्वारा आचरित किये जाने वाले सामाजिक व्यवहारों के अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इस अवस्था में सामाजिक जीवन का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। जिस कारणवश बालकों के समाजीकरण के अवसर व सम्भावनाओं में बढ़त होती है।

3.4.3 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले सामाजिक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. वंशानुक्रम

मनावैज्ञानिक मानते हैं कि सामाजिक विकास पर वंशानुक्रम का कुछ न कुछ प्रभाव तो अवश्य ही पड़ता है। वंशानुक्रम व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास को भी प्रभावित करता है। अनेक सामाजिक गुण व्यक्ति को अपने माता–पिता, पूर्वजों एवं वंशजों से प्राप्त होते हैं। बालक के अन्दर अनेक सामाजिक गुण जैसे–परोपकार, दया, आपसी सहयोग, निर्धन की सहायता करना आदि आनुवंशिक व माता–पिता के आधार पर ही आते हैं।

2. शारीरिक एवं मानसिक विकास

शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का बालक के सामाजिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। शारीरिक व मानसिक रूप से विकसित बालक का सामाजिक विकास भी अच्छे से होता है बल्कि वहीं अस्वस्थ शारीरिक व मानसिक विकास वाले बालक का सामाजिक विकास भी सही से नहीं होता। अपंग, बीमार, अल्पबुद्धि वाले बालक प्रायः समाज से तिरस्कृत रहते हैं तथा उनमें हीन भावना का उदय हो जाता है। वे स्वयं को अन्य बालकों के साथ समायोजित नहीं कर पाते हैं। प्रतिभाशाली बालक भी स्वयं को अपने मानसिक विकास के कारण सामाजिक रूप से समायोजित करने में असमर्थ होता है।

3. संवेगात्मक विकास

बालक के सामाजिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण आधार उसका संवेगात्मक विकास है। क्रोध व ईर्ष्या करने वाला बालक दूसरे की घृणा का पात्र बन जाता है। उसके विपरीत, प्रेम और विनोद से परिपूर्ण बालक सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है। ऐसी स्थिति में दोनों बालकों के सामाजिक विकास में अन्तर होना स्वाभाविक है। वस्तुतः जैसा कि क्रो एवं क्रो ने लिखा है –

> संवेगात्मक और सामाजिक विकास साथ–साथ चलते हैं।

4. परिवार

बालक के सामाजिक विकास का प्रारम्भ परिवार से ही होता है। परिवार के वातावरण, संस्कृति, सदस्यों का आचरण, शिक्षास्तर, सहयोग, लालन–पालन आदि का प्रभाव बालक के सामाजिक विकास पर पड़ता है। परिवार के बड़े लोगों का जैसा आचरण होता है, बालक भी वैसा ही आचरण करने का प्रयत्न करता है। अतः परिवार के सदस्य तथा माता–पिता के आचरण का बच्चों के व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

5. आर्थिक स्थिति

परिवार व माता–पिता की आर्थिक स्थिति का बालकों के सामाजिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। धनी माता–पिता के बालक अच्छे माहौल में रहते हैं, अच्छे व्यक्तियों से मिलते–जुलते हैं, अच्छे विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते हैं। अतः उनका उच्च सामाजिक विकास होना स्वाभाविक ही है। इसके विपरीत निर्धन माता–पिता के बच्चे उत्तम वातावरण, उचित सम्पर्क तथा अच्छे विद्यालयों के अभाव में समुचित सामाजिक विकास से वंचित रह जाते हैं।

6. पालन–पोषण की विधि

माता–पिता द्वारा बालक के पालन–पोषण की विधि उसके सामाजिक विकास पर बहुत गहरा प्रभाव डालती है, उदाहरणार्थ, समानता के आधार पर पाला जाने वाला बालक कहीं भी अपनी हीनता का अनुभव नहीं करता है और बहुत

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

लाड़–प्यार से पाला जाने वाला बालक दूसरे बालकों से दूर रहना पसन्द करता है। अत: दोनों का सामाजिक विकास दो भिन्न दिशाओं में होता है।

7. समाज

समाज का बालक के सामाजिक विकास में विशेष स्थान होता है। समाज के कार्य, आदर्श और प्रतिमान बालक के दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं। बालक स्वयं को समाज के अनुसार ही समायोजित करने का प्रयास करता है। अतः ग्राम, शहर, जनतन्त्र व राजतन्त्र में व्यक्ति का सामाजिक विकास भिन्न–भिन्न प्रकार से होता है।

8. विद्यालय

परिवार के उपरान्त बालक के सामाजिक विकास में विद्यालय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्यालयों में बालक सहपाठी व अध्यापकों से मिलते–जुलते हैं तथा परस्पर सहयोग करके विभिन्न सामूहिक क्रियाओं में भाग लेते हैं, जो उनकी सामाजिक विकास की गति को निर्धारित करता है, परन्तु यदि विद्यालय का वातावरण भययुक्त एवं वमन पर आधारित होगा, तो बालक का सामाजिक विकास कुण्ठित होगा।

9. शिक्षक

बालक के सामाजिक विकास पर अध्यापकों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। छात्र अपने शिक्षक का ही अनुकरण करते हैं। यदि अध्यापक शान्त, शिष्ट तथा सहयोगी होता है, तो छात्र में भी शिष्टता, धैर्य एवं सहकारिता का गुण विकसित होता है और यदि शिक्षक क्रोधी और अशिष्ट होगा तो विद्यार्थी भी उसी के समान बन जाते हैं। एक योग्य शिक्षक बालक के सामाजिक विकास पर निश्चय ही प्रभाव डालता है।

10. समूह या टोली

समूह या टोली के सदस्य के रूप में बालक इतना व्यवहार–कुशल हो जाता है कि समाज में प्रवेश करने के बाद उसे किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता है। हरलॉक के इन शब्दों में–

> समूह के प्रभावों के कारण बालक सामाजिक व्यवहार का ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त करना है जैसा प्रौढ़–समाज द्वारा निर्धारित की गई दशाओं में उतनी सफलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

11. खेलकूद

बालक के सामाजिक विकास पर खेलकूद का विशेष प्रभाव पड़ता है। खेलों के माध्यम से उनमें सामाजिक गुणों का विकास होता है, जो उनके जीवन भर काम आता है। स्किनर एवं हैरिमन ने लिखा है कि–

> खेल का मैदान बालक का निर्माण स्थल है यहाँ उसे प्रदान किये जाने वाले सामाजिक और यांत्रिक उपकरण उसके सामाजिक विकास को निश्चित करने में सहायता देते हैं।

12. अन्य कारक

बालक के सामाजिक विकास को अन्य कारक भी प्रभावित करते हैं। जैसे– संस्कृति, सिनेमा, कैम्प जीवन, रेडियो, सामाचार–पत्र, साहित्य, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, धार्मिक संस्थाएँ आदि जो बालक के सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

विभिन्न अवस्थाओं के सामाजिक विकास एवं उनको प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि एक मानव जीवन में सामाजिक विकास बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि सामाजिक प्राणी बनने के लिए समाजीकरण की प्रक्रिया बहुत आवश्यक है। सामाजिक विकास का बालक के शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। शिक्षण संस्थाओं में स्वस्थ सामाजिक अन्तर्क्रिया के अवसर प्रदान करके समाजीकरण की प्रक्रिया को मजबूत बनाया जाता है। सामाजिक वातावरण निरन्तर परिवर्तनशील रहता है, जिसके अनुसार व्यक्ति को स्वयं को समायोजित करना होता है।

3.4.4 सामाजिक विकास की विशेषताएँ

मनोवैज्ञानिकों ने बालक के सामाजिक विकास की निम्नलिखित विशेषताओं को स्पष्ट किया है–

1. सामाजिक विकास के अनुरूप बालक में समाज के नियमों के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता विकसित हो जाती है।
2. सामाजिक विकास से बालक में समाज के लोगों एवं सामाजिक क्रियाओं के प्रति एक धनात्मक मनोवृत्ति विकसित होती है।
3. सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप व्यवहार करने की योग्यतायें बालक प्राप्त कर लेता है।
4. सामाजिक विकास के अनुरूप बालक समाज में अनुमोदित सामाजिक भूमिकायें करना सीखता है।

3.4.5 सामाजिक विकास का शैक्षिक महत्त्व

1. बालक–बालिकाओं के सामाजिक विकास के लिए सामाजिक दृष्टि से आवश्यक खेल आदि खिलाने चाहिए।
2. बालक–बालिकाओं को एक साथ खेलने देना सामाजिक दृष्टि से अनुकूल है, जिससे उनमें आपसी समझ–बूझ बढ़ती है।
3. समुचित सामाजिक विकास से बालक आज्ञाकारी एवं अनुशासन प्रिय होते हैं।
4. बाहर घूमने जैसे पिकनिक, कैम्प आदि के माध्यम से भी बालकों का सामाजिक विकास होता है। शैक्षिक पर्यटन भी सामाजिक विकास में उपयोगी है।
5. बालकों को विद्यालय के प्रत्येक कार्य में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित करने से भी उनका सामाजिक विकास होता है।
6. ऐसे बालक सामाजिक समस्याओं के निराकरण में सहयोग करते हैं।

3.5 संवेगात्मक विकास

बालक के संवेग उसके संवेगात्मक विकास और व्यवहार के आधार हैं। प्रेम, हर्ष और उत्सुकता के समान अभिनन्दनीय संवेग उसके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास में योग देते हैं, जबकि भय, क्रोध और ईर्ष्या जैसे निन्दनीय संवेग उसके विकास को विकृत और कुण्ठित कर सकते हैं। गेट्स व अन्य ने लिखा है कि–

> बालक का संवेगात्मक व्यवहार उसके विकास के अन्य पहलुओं के अनुरूप होता है और उनसे उनका अन्त: सम्बन्ध होता है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

3.5.1 संवेगात्मक विकास का अर्थ

बालक के संवेगों के विकास को संवेगात्मक विकास कहते हैं। बालक में मूल प्रवृत्तियों के रूप में कोई संवेग छिपा होता है– जैसे पलायन के पीछे भय। जब ये संवेग बालक के व्यवहार के स्थायी आधार बन जाते हैं, तो इन्हें स्थायी भाव कहा जाता है। जैसे–जैसे बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है, उसके संवेगों में भी विकास होता है।

संवेग, व्यक्ति को किसी कार्य को सीखने उसके सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक विकास को प्रभावित करता है। संवेग, वास्तव में उपद्रव की अवस्था है। इसमें व्यक्ति सामान्य नहीं रहता है। संवेग की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं –

1. रॉस के अनुसार–

संवेग चेतना की वह अवस्था है जिसमें रागात्मक तत्त्व की प्रधानता रहती है।

2. वेलण्टाइन के अनुसार–

जब रागात्मक प्रकृति का वेग बढ़ जाता है तभी संवेग की उत्पत्ति होती है।

3. वुडवर्थ के अनुसार–

संवेग, व्यक्ति की उत्तेजित दशा है।

4. जरशील्ड के अनुसार–

किसी भी प्रकार के आदेश आने, भड़क उठने तथा उत्तेजित हो जाने की अवस्था को संवेग कहते हैं।

5. पी.टी. यंग के अनुसार–

संवेग मनोवैज्ञानिक कारकों से उत्पन्न सम्पूर्ण व्यक्ति के तीव्र उपद्रव की अवस्था है, जिसमें व्यवहार, चेतना, अनुभव और अभारावयव के कार्य सन्निहित रहते हैं।

इन परिभाषाओं से संवेगों की निम्नलिखित विशेषताओं की अभिव्यक्ति होती है –

1. संवेग की अवस्था में व्यक्ति सामान्य नहीं रहता, उत्तेजित होता है।
2. संवेग में अनुभूति चेतन होती है और शारीरिक परिवर्तन होते हैं।
3. संवेग मनोवैज्ञानिक परिस्थिति या उत्तेजक के कारण उत्पन्न होते हैं।

अत: स्पष्ट है कि संवेग एक विशेष मानसिक दशा है जिसमें व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक दशा तथा व्यवहार में परिवर्तन होता है। विभिन्न अवस्थाओं में बालक का संवेगात्मक विकास और व्यवहार, शिक्षक के लिए विशेष अध्ययन का विषय है।

3.5.2 बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

शैशवावस्था के बाद बालक बाल्यावस्था में प्रवेश करता है। 6 वर्ष की आयु से किशोरावस्था आरम्भ होने तक का समय बाल्यावस्था कहलाता है। संवेगात्मक विकास की दृष्टि से बाल्यावस्था एक अनोखी अवस्था है। बाल्यावस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति में सामाजिकता का भाव आने लगता है तथा बालक संवेगों की अभिव्यक्ति पर नियन्त्रण करने लगता है। इस अवस्था में संवेगों में स्थिरता आनी शुरू हो जाती है व उग्रता कम होने लगती है। शैशवावस्था में उत्पन्न संवेगों को बालक इस अवस्था में नियन्त्रित ढंग में अभिव्यक्त करना सीख जाते हैं। इस अवस्था के संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ अग्रलिखित हैं–

1. संवेगों की उग्रता में कमी

बाल्यावस्था में संवेगों की उग्रता में कमी आने लगती है, क्योंकि अब समाजीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाने के कारण बालक अवांछनीय संवेगों को दूसरे के सामने प्रकट नहीं होने देता है तथा उसमें उन संवेगों के दमन की क्षमता उत्पन्न होने लगती है।

2. जिज्ञासा की प्रबलता

बाल्यावस्था में बालक–बालिकाओं में जिज्ञासा प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल होती है। इसी प्रबल जिज्ञासा के कारण ही बालक जिन–जिन वस्तुओं के सम्पर्क में आता है, उनके सम्बन्ध में क्यों तथा कैसे से सम्बन्धित प्रश्न पूछकर उनकी कार्य प्रणाली का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है।

3. ईर्ष्या की भावना

बाल्यावस्था में बालक/बालिकाओं में ईर्ष्या की भावना विकसित हो जाती है तथा वे किसी न किसी कारण से अपने भाई–बहनों या साथियों को चिढ़ाते हैं, झूठे आरोप लगाते हैं, निन्दा करने लगते हैं तथा अक्सर उन पर व्यंग्य कसते देखे जाते हैं। प्रायः बालक अपना कोई अधिकार छीन लिये जाने पर दूसरे बालक से ईर्ष्या करते हैं, जिसका उनके संवेगात्मक विकास पर भी अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है।

4. क्रोध की अधिकता

बाल्यावस्था में क्रोध का संवेग भी प्रबल हो जाता है, जिसका मुख्य कारण हताशा है। इच्छा पूर्ति में बाधा पड़ने पर अथवा कार्यों की अनावश्यक आलोचना करने पर बालक को क्रोध आ जाता है, जिनकी अभिव्यक्ति वह मौन रहकर, उदास होकर अथवा भाई–बहन या साथियों से झगड़ा करके व वस्तुओं को उठा–पटक करके करता है।

5. निराशा

बाल्यावस्था में बालक में निराशा की भावना भी आने लगती है। परिवार, समाज तथा विद्यालय के द्वारा बनाये गये अनुशासन सम्बन्धी नियम जब बालकों की इच्छापूर्ति में बाधक होते हैं, तो इच्छाओं के पूरी न होने के कारण भी बालकों में निराशा की भावना उत्पन्न होती है।

6. भय

बाल्यावस्था में भी बालक में भय का संवेग जाग्रत होता है जो शैशवावस्था के भय से कुछ भिन्न होता है। इस अवस्था में भय का सम्बन्ध प्रायः भावी कार्यों से होता है जैसे परीक्षा में अच्छे अंक न प्राप्त करने का भय, गृहकार्य न करने पर स्कूल में दण्ड मिलने का भय तथा कक्षा में प्रश्न का उत्तर न देने पर अध्यापक द्वारा पिटाई का भय आदि।

7. उल्लास की अधिकता

बाल्यावस्था में बालक/बालिकाओं के संवेगात्मक विकास में उल्लास की अधिकता हो जाती है। वे अच्छे कपड़े, अच्छा खाना, खेलने की छूट, दृश्य स्थल के प्रमाण आदि के अवसर मिलने पर अधिक उल्लासित होते हैं। इसमें उनका संवेगात्मक विकास समुचित रूप से होता है। इसी प्रकार अच्छे प्राप्तांक, रूचिकर खाद्य पदार्थों अथवा वांछित खेल सामग्री को देखकर भी बालक प्रफुल्लित होता है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

8. स्नेह की अभिव्यक्ति

बाल्यावस्था में आते-आते बालक अपनी स्नेह भावना की अभिव्यक्ति उन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं के प्रति करता है जिनके साथ वह रहना चाहता है या जिनकी वह सहायता करना चाहता है। जिन व्यक्तियों या वस्तुओं के सम्पर्क में उसे सुख मिलता है, उनके प्रति वह अपने स्नेह की अभिव्यक्ति करता है।

3.5.3 संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

हरलॉक के शब्दों में-

> प्रत्येक बालक में संवेगशीलता की दशा उसके स्वास्थ्य, दिन के समय और वातावरण-सम्बन्धी प्रभावों जैसे कारकों पर निर्भर रहने के कारण समय-समय पर परिवर्तित होती रहती है।

कारकों पर नियन्त्रण स्थापित करके ही बालक की संवेगशीलता को वश में रखा जा सकता है और इस प्रकार उसके संवेगात्मक विकास को निर्देशित किया जाता है। संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

1. वंशानुक्रम

व्यक्ति वंशानुक्रम के रूप में अपने माता-पिता तथा अन्य पूर्वजों से अनेक शारीरिक व मानसिक गुण व योग्यताएँ प्राप्त करता है, जिससे उनका संवेगात्मक विकास प्रभावित होता है।

2. परिवार

हरलॉक के विचार से बालक का परिवार उसके संवेगात्मक विकास को तीन प्रकार से प्रभावित करता है; पहला यदि परिवार के सदस्य अत्यधिक संवेगात्मक होते हैं, तो बालक भी उसी प्रकार का हो जाता है। दूसरा, यदि परिवार में शान्ति, सुरक्षा और आनन्द के कारण उत्तेजना उत्पन्न नहीं होती है, तो बालक के संवेगात्मक विकास का रूप सन्तुलित होता है। तीसरा, यदि परिवार में लड़ाई-झगड़े होना, मिलने-जुलने वालों का बहुत आना और मनोरंजन का कार्यक्रम बनते रहना साधारण घटनाएँ हैं, तो बालक के संवेगों में उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है।

3. स्वास्थ्य

व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य का उसके संवेगात्मक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। शारीरिक तथा मानसिक रूप से अस्वस्थ बालकों की तुलना में शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ बालकों में संवेगात्मक विकास अधिक सन्तोषजनक तथा स्वस्थ रूप में होता है। उनके संवेगों में अधिक स्थिरता, निश्चितता तथा स्पष्टता होती है। स्वस्थ बालकों में धनात्मक संवेग जैसे-खुशी, सन्तोष, प्रेम, स्नेह आदि संवेग अधिक होते हैं, जबकि अस्वस्थ बालकों में ऋणात्मक संवेग जैसे-ईर्ष्या, द्वेष, दुःख, असन्तोष, चिड़चिड़ापन, क्रोध आदि संवेग अधिक होते हैं।

4. बौद्धिक योग्यता

हरलॉक के अनुसार मानसिक रूप से पिछड़े तथा मन्दबुद्धि बालकों की तुलना में अकाल प्रौढ़ बालक में भय अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त समय से पूर्व परिपक्व बालक अपनी ही आयु के अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक डरते हैं क्योंकि वे सम्भावित खतरों से अधिक सावधान होते हैं। जिन बालकों की बुद्धि सामान्य स्तर से कम होती है, उनमें संवेगात्मक अस्थिरता कम पायी जाती है, जबकि जो बालक कुशाग्र बुद्धि के होते हैं, उनमें संवेगात्मक अस्थिरता अधिक पायी जाती है।

5. परिवार का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर

किसी परिवार का सामाजिक-आर्थिक स्तर भी किसी परिवार के बालक के संवेगात्मक विकास को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के बालक में श्रेष्ठता की भावना तथा इसके विपरीत निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के परिवार के बालक में हीनता की भावना भर जाती है एवं निम्न वर्ग के सभी आयु के बालकों में मध्यम तथा उच्च वर्ग के बालकों की अपेक्षा **भय** की भावना अधिक पायी जाती है एवं बालक हिंसा से अधिक भयभीत होते हैं, जबकि हिंसा की भावना मध्यम तथा उच्च वर्ग के बालक को कम प्रभावित करती है।

6. माता-पिता या अभिभावकों का व्यवहार

बालकों के संवेगात्मक व्यवहार को उनके माता-पिता अथवा अभिभावकों का उनके साथ होने वाला व्यवहार काफी हद तक प्रभावित करता है। उत्तम एवं आदर्श व्यवहार उनके संवेगों पर अनुकूल तथा खराब व्यवहार प्रतिकूल प्रभाव डालता है। प्रायः देखा गया है कि जो माता-पिता अपने बच्चों की उपेक्षा करते हैं उनके बालक सन्तुलन खो बैठते हैं तथा प्रेम के अभाव में ऐसे बालक छोटी-छोटी बातों से क्रोधित या भयभीत हो जाते हैं। इसी प्रकार आवश्यकता से अधिक लाड़-प्यार भी बालकों में संवेगात्मक अस्थिरता उत्पन्न करता है।

7. सामाजिक स्वीकृति

व्यक्ति के द्वारा किये गये कार्यों के फलस्वरूप प्राप्त सामाजिक स्वीकृति भी उसके संवेगात्मक विकास को प्रभावित करती है। व्यक्ति अपने कार्यों की दूसरों के द्वारा प्रशंसा चाहता है। जब उसकी अभिलाषा पूर्ण नहीं होती है तब उसमें संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाता है। वास्तव में यदि व्यक्ति को अपने कार्यों की सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलती है, तो उसका संवेगात्मक व्यवहार या तो शिथिल हो जाता है अथवा उग्र हो जाता है।

8. अभिलाषा

माता-पिता को अपने बालक से बड़ी-बड़ी आशाएँ होती है। स्वयं बालक में कोई न कोई अभिलाषा होती है। यदि उसकी अभिलाषा पूर्ण नहीं होती है, तो वह निराशा के सागर में डुबकियाँ लगाने लगता है। साथ ही, उसे अपने माता-पिता की कटु आलोचना सुननी पड़ती है। ऐसी स्थिति में उसमें कोई भी बात जो बालक के आत्म-विश्वास को कम करती है, या उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचाती है या उसके कार्य में बाधा उपस्थित करती है या उसके द्वारा महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाले लक्ष्यों की प्राप्ति में अवरोध उत्पन्न करती है, उसकी चिन्तित और भयभीत रहने की प्रवृत्ति में वृद्धि कर सकती है।

9. बालक का जन्मक्रम

बालक का जन्मक्रम भी उसके संवेगात्मक विकास को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। पहला बालक बाद के बालकों की तुलना में अधिक भय की भावना रखता है, क्योंकि पहला बालक माता-पिता के अतिसंरक्षण की अभिवृत्ति के अधीन होता है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

10. विद्यालय

विद्यालय का भी बच्चों के संवेगात्मक विकास पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। बालक विविध क्रियाओं के माध्यम से अपने संवगों की अभिव्यक्ति करता है। विद्यालय का वातावरण, पाठ्यक्रम, कार्यक्रम, शिक्षक समूह आदि बालकों के संवेगों के अनुकूल होते हैं, तो उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती है तथा उनका स्वस्थ संवेगात्मक विकास होता है। इसके विपरीत विद्यालयी वातावरण से तालमेल न होने पर, परीक्षा में असफल हो जाने पर, अध्यापकों के अत्यधिक शुष्क व्यवहार आदि के कारण बालकों में अवांछित संवेग जैसे भय, क्रोध, चिड़चिड़ाहट या घृणा आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

11. थकान

थकान से व्यक्ति का संवेगात्मक व्यवहार काफी हद तक प्रभावित होता है। थके हुये व्यक्ति में क्रोध, नाराजगी या चिड़चिड़ापन जैसे ऋणात्मक या अवांछनीय संवेग प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है।

12. शिक्षक

शिक्षक भी बालक के संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करता है। शिक्षक अपने शिक्षण के समय कई प्रकार की कथाओं, आत्मकथाओं और जीवनियों के प्रेरक प्रसंग, दृष्टान्त एवं उदाहरण प्रस्तुत करके उनमें उदात्त चरित्र एवं आदर्श व्यक्तित्व का अनुसरण करने की इच्छा पैदा करता है, जिससे छात्रों में साहसिकता, सहनशीलता, शान्तिप्रियता जैसे अच्छे गुण विकसित करने में मदद मिलती है तथा बालक का सन्तुलित संवेगात्मक विकास होता है।

13. अन्य कारक

बालक के संवेगात्मक विकास पर अवांछनीय प्रभाव डालने वाले कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कारक हैं– अत्यधिक कार्य, कार्य में अनावश्यक बाधा और अपमानजनक व्यवहार।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि संवेगात्मक विकास को विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं, जिससे बालक के संवेगात्मक विकास में शिथिलता अथवा उग्रता आती है तथा बालक का सन्तुलित विकास सम्भव होता है।

संवेगों का बालक के जीवन में अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रेष्ठ संवेगों पर आधारित व्यवहार, बालक के स्वास्थ्य को समुन्नत, मानसिक दृष्टिकोण को उदार, कार्य करने की इच्छा को बलवती और सामाजिक सम्बन्धों को मधुर बनाते हैं। इसके विपरीत, क्षुद्र संवेगों पर आश्रित व्यवहार, बालक के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास पर क्षतिप्रद प्रभाव डालकर उसको विकृत कर देते हैं। अतः शिक्षकों और अभिभावकों को बालकों और बालिकाओं के संवेगात्मक व्यवहारों के कारणों का अध्ययन करके उनका उचित पथप्रदर्शन करना चाहिए, ताकि उनका विकास शुभ दिशा की ओर अग्रसर होकर, उनमें संवेगात्मक परिपक्वता उत्पन्न करें और इस प्रकार उनके जीवन को सुखी, सफल और समृद्ध बनाए। थॉम्पसन का यह परामर्श वास्तव में अभिनन्दनीय है–

> जो वयस्क स्वयं कुछ सीमा तक विवेकपूर्ण रह सकते हैं, उन्हें बालकों और बालिकाओं के व्यवहार के प्रतिमानों और मनोवैज्ञानिक विकास को प्रभावित करने के लिए अधिक उत्तम अवसर सुलभ रहते हैं।

3.5.4 संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ

संवेगात्मक विकास की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है–

1. संवेगात्मक विकास उत्तरोत्तर होता है।
2. संवेगात्मक विकास का क्रम सरल से जटिल की ओर होता है।
3. जीवन में अनुभव की वृद्धि के साथ–साथ संवेगात्मक विकास में परिपक्वता आती है।
4. संवेगों पर नियन्त्रण, उचित प्रकटीकरण एवं उनके शोधन से संवेगात्मक विकास समुचित ढंग से होता है।
5. संवेगात्मक विकास मानव–व्यवहारों से सम्बन्धित होता है।

3.5.5 संवेगात्मक विकास का शैक्षिक महत्त्व

बालक के संवेगात्मक विकास के शैक्षिक महत्त्व को हम निम्न बिन्दुओं द्वारा समझ सकते हैं–

1. समुचित सांवेगिक विकास वाले बालक शिक्षण अधिगम में विशेष रूचि रखते हैं।
2. उचित सांवेगिक विकास वाले बालकों में शिक्षा के द्वारा उत्तम आचरण एवं श्रेष्ठ आदर्शों का निर्माण होता है।
3. संवेगात्मक रूप से विकसित बालकों का समुचित विकास होता है और वे अध्ययन हेतु प्रेरित होते हैं।
4. संवेगात्मक रूप से विकसित बालकों की शैक्षिक उपलब्धि अधिक पायी जाती है।
5. संवेगात्मक रूप से विकसित बालकों में निष्पादन क्षमता अधिक होती है।

मानव जीवन में संवेगों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति के व्यवहार का सम्बन्ध संवेगों से होता है तथा शिक्षा का सम्बन्ध व्यवहार के परिशोधन से होता है। इसलिए बालकों के संवेगात्मक व्यवहार का शैक्षिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है। माता–पिता तथा अध्यापकों को बालकों के संवेगों के प्रशिक्षण पर ध्यान देना चाहिए तथा शिक्षा के द्वारा अवांछित संवेगों को नियंत्रित तथा वांछित संवेगों को प्रोत्साहित करने का प्रयास करना चाहिए। बालकों के वातावरण को इस प्रकार से नियंत्रित करना चाहिए कि एक ओर जहाँ उनमें अवांछित संवेगों का उदय न हो सके, वहीं दूसरी ओर उनमें वांछित संवेगों का संचार भी हो सके। इसके लिए शोधन, अध्यवसाय तथा रेचन के द्वारा संवेगों को नियन्त्रित किया जा सकता है। शोधन में अवांछित संवेगों को परिमार्जित करके उन्हें अच्छी दिशा में मोड़ने का प्रयास किया जाता है, जैसे– क्रोध की वृत्ति को शत्रुओं की ओर या काम प्रवृत्ति को साहित्य की ओर मोड़ना। अध्यवसाय में लगे रहकर भी संवेगों को परिमार्जित करके उन्हें अच्छी दिशा में मोड़ने का प्रयास किया जाता है। रेचन का तात्पर्य है कि संवेगों को आने से रोका न जाये वरन् संवेगों को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त अवसर दिया जाये। अतः शिक्षक होने के नाते हम अध्यापकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि बालकों के संवेगात्मक विकास में यथासम्भव सहयोग दें तथा पाठ्यसहगामी क्रियाओं, जैसे–नाटक, खेल, स्काउटिंग, भ्रमण आदि के माध्यम से भी छात्रो का उचित ढंग से संवेगात्मक विकास कर सके।

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

3.5.6 बालक के संवेगात्मक विकास में अध्यापक की भूमिका

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। अगर इन कारकों का भली–भाँति ध्यान रखा जाए तो अध्यापक वर्ग बालकों के सन्तुलित संवेगात्मक विकास में अपनी भूमिका अच्छी तरह निभा सकता है। अध्यापकों द्वारा अपना उत्तरदायित्व कैसे निभाया जाए, इसकी चर्चा निम्नलिखित रूप में की जा रही है–

1. संवेगात्मक विकास के लिए जैसा कि पहले कहा जा चुका है, स्वास्थ्य और शारीरिक विकास पर पूरा–पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है। स्वस्थ और निरोग कैसे रहा जाए, इस बात का बच्चों को भली–भाँति ज्ञान कराया जाना चाहिए। माता–पिता और राज्याधिकारियों के सहयोग से बच्चों के सन्तुलित आहार और खान–पान की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। अध्यापकों को अभिभावकों के साथ सम्पर्क स्थापित कर उन्हें उनके बच्चों की शारीरिक कमजोरियों, न्यूनताओं, बीमारियों आदि से अवगत कराना चाहिए तथा उनके निराकरण के लिए घर, विद्यालय और चिकित्सालयों द्वारा उचित प्रबन्ध की व्यवस्था होनी चाहिए।
2. बच्चों के संवेगात्मक विकास पर पारिवारिक वातावरण भी बहुत प्रभाव डालता है। अतः अध्यापकों को उन्हें अनुकूल पारिवारिक वातावरण प्रदान कराने का पूरा–पूरा प्रयास करना चाहिए। बच्चों के अधिक निकट आकर अध्यापकों को उनके संवेगात्मक व्यवहार को ध्यान में रखते हुए उनके माता–पिता तथा अभिभावक वर्ग को उनके बच्चों के कल्याण के लिए उचित परामर्श देने का प्रयत्न करना चाहिए तथा अपने स्वयं के व्यवहार के द्वारा भी उन्हें संवेगात्मक सन्तुलन बनाने में पूरी सहायता देनी चाहिए।
3. विद्यालय के परिवेश और क्रियाकलापों को उचित प्रकार से संगठित कर अध्यापक बच्चों के संवेगात्मक विकास में भरपूर योगदान दे सकते हैं। इसके लिए उसे निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए:–
4. बच्चों की संवेगात्मक शक्तियों के उचित प्रकाशन और अभिव्यक्ति के लिए उन्हें पाठान्तर क्रियाओं तथा रोचक क्रियाओं के माध्यम से उचित अवसर प्रदान किये जाने चाहिए।
5. पाठ्यक्रम और अध्ययन विधियाँ यथेष्ट रूप में परिवर्तनशील, प्रगतिशील और बाल केन्द्रित होनी चाहिए।
6. बालकों को अपने अध्यापकों से पर्याप्त स्नेह और सहयोग मिलना चाहिए। प्रत्येक अवस्था में बालकों के स्वाभिमान का ध्यान रखा जाना चाहिए तथा भूल कर भी उनका अपमान एवं अवज्ञा नहीं की जानी चाहिए, जहाँ तक हो सके अध्यापकों को बच्चे की सभी प्रकार की संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूरा–पूरा प्रयत्न करना चाहिए।
7. बालकों के संवेगों को संयमित एवं प्रशिक्षित करने के लिए अध्यापक द्वारा उपयुक्त विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। जैसे भी हो बच्चे के संवेगात्मक तनाव को समाप्त करने की चेष्टा की जानी चाहिए तथा उसके अन्दर किसी भी प्रकार की अनावश्यक मानसिक ग्रन्थियों और विकारों को पनपने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए।
8. धार्मिक और नैतिक शिक्षा को विद्यालय कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। जहाँ तक हो सके **सादा जीवन उच्च विचार** को बच्चों के जीवन का एक मूल–मन्त्र बनाया जाना चाहिए।
9. अध्यापक बच्चों के लिए आदर्श होते हैं। वे उनके हर आचरण का अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। अतः अध्यापक को स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत कर बालकों को संवेगात्मक रूप से अधिक सन्तुलित और संयमित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।
10. बच्चों के सन्तुलित सामाजिक विकास की ओर भी पूरा–पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्हें अपनी मित्र–मण्डली, वय–समूह तथा सामाजिक परिवेश में उचित स्थान मिलना चाहिए।
11. अध्यापकों द्वारा बालकों का संवेगात्मक व्यवहार सामान्य है या असामान्य है, इस बात का अच्छी तरह से अध्ययन किया जाना चाहिए। अगर उन्हें उसमें कुछ असामान्यता का आभास हो तो समय से पहले योग्य व्यक्तियों की सहायता ले कर उसके निराकरण और रोकथाम के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए।
12. सीखने की प्रक्रिया में संवेगों की रचनात्मक भूमिका की ओर भी अध्यापक का ध्यान रहना आवश्यक है। सन्तुलित और संयमित संवेगात्मक व्यवहार और भावनाएँ न केवल शारीरिक विकास के लिए एक अमूल्य टोनिक का कार्य करती है, बल्कि ज्ञान और कौशल अर्जित करने के लिए भी उचित वातावरण का निर्माण करती है। अतः अध्यापकों को विद्यार्थियों को शिक्षा ग्रहण कराने में संवेगात्मक रूप से सक्रिय साझेदार बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

3.6 भाषायी विकास

भाषा एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने विचारों का आदान–प्रदान कर सकता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है इस नाते उसे निरन्तर अपने विचारों को दूसरों के सामने अभिव्यक्त करने के लिये भाषा की आवश्यकता होती है। अत: भाषा और विचारों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का एक सुन्दर और सुगम माध्यम है। एक मूक व्यक्ति दूसरों के सामने स्वयं को कितना असहाय महसूस करता है, जब वह अपने विचारों को भाषा के माध्यम से प्रकट नहीं कर पाता है। यद्यपि वह अपने हाव–भाव तथा अंग संचालन द्वारा अपनी बात को कहने का प्रयास करता है, किन्तु उसमें इतनी स्पष्टता नहीं होती है। अत: भाषा के माध्यम से विचारों को प्रकट करने पर उनमें स्पष्टता आ जाती है। अत: प्रत्येक बालक के विकास क्रम में भाषा विकास होना परम आवश्यक है। भाषा विकास बालकों के मानसिक और सामाजिक विकास में सहायता प्रदान करता है। भाषा के माध्यम से विचारों का आदान–प्रदान करने से व्यक्ति की सामाजिकता का विकास होता है। इसी प्रकार पढ़ने, लिखने, सीखने आदि सभी क्रियाओं में भी भाषा विकास माध्यम का कार्य करता है। भाषा विकास के कारण ही मानव दूसरे जीवों से श्रेष्ठ माना जाता है। मानव की सभ्यता व संस्कृति का विकास भी भाषा की ही देन है।

3.6.1 भाषायी विकास का अर्थ

बालक के भाषायी विकास से तात्पर्य है उसके भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए जो ध्वन्यात्मक साधन उसके पास है, जिसे भाषा कहते हैं उनका

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

विकास। बालक की वाक् शक्ति जन्मजात होती है, परन्तु भाषा का विकास उसके वातावरण से अन्तः क्रिया द्वारा होता है। भाषा विकास का सम्बन्ध सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने के भाषायी कौशलों के विकास से होता है।

3.6.2 बाल्यावस्था में भाषा विकास

बालक की आयु में वृद्धि होने के साथ-साथ उसके स्वरयन्त्र तथा स्नायुविक अंगों में परिपक्वता आती जाती है, जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे उसका भाषा विकास तीव्र गति से होने लगता है। बाल्यावस्था में बालक शब्द से लेकर वाक्य निर्माण की क्रिया में दक्षता प्राप्त कर लेता है।

बाल मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बाल्यावस्था में भी बालिकाओं का भाषा विकास बालकों की तुलना में तीव्र गति से होता है तथा लड़कों की अपेक्षा उनके वाक्यों में शब्दों की संख्या अधिक होती है। इसके अतिरिक्त भाषा प्रस्तुतीकरण में भी बालिकायें बालकों से तेज होती है। प्रथम 6 वर्षों तक यह गति तीव्र रहती है फिर मन्द हो जाती है।

सीशोर ने बाल्यावस्था के भाषा विकास को निम्न सारणी के माध्यम से स्पष्ट किया है-

सीशोर के अनुसार बाल्यावस्था में भाषा विकास

आयु	शब्द
4 वर्ष	5,600
5 वर्ष	9,600
6 वर्ष	14,700
7 वर्ष	21,200
8 वर्ष	26,300
10 वर्ष	34,300

बालकों के शब्द भण्डार पर वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है। बालक का वातावरण जितना विस्तृत होगा, शब्द भण्डार उतना ही विस्तृत बनता है।

जैसेल के मतानुसार चार वर्ष की आयु में लगभग पचास प्रतिशत बालक छोटे शब्दों, जैसे- कुर्सी, गुड़िया, पापा, पानी आदि शब्दों का प्रयोग अपने वाक्यों में सही अर्थ में कर सकते हैं। स्मिथ के अनुसार पाँच-छः वर्ष के बालक अपने वाक्यों में कभी-कभी एक दो शब्द भूल से छोड़ देते हैं, कभी-कभी क्रिया के प्रयोग में त्रुटि करते हैं, किन्तु वे स्वयं ही उसे सुधारने का प्रयास करते हैं।

3.6.3 भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारक

सभी बालकों में भाषा विकास की मात्रा और गति समान नहीं होती है। कोई बालक जल्दी बोलना सीखता है, तो कोई देर से। इसी प्रकार कुछ बालकों को सीमित शब्दों की जानकारी होती है, जबकि कुछ का शब्द भण्डार अत्यधिक विकसित होता है। शब्दोच्चारण में भी कोई बालक शुद्ध उच्चारण करता है, जबकि कुछ में भाषा सम्बन्धी दोष पाये जाते हैं। इस प्रकार देखा गया है कि बालकों के भाषा विकास में काफी अन्तर पाया जाता है। इस अन्तर के विभिन्न कारण होते हैं, जिन्हें भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्त्व कहा जाता है। ये तत्त्व निम्नलिखित हैं-

1. शारीरिक स्वास्थ्य

ऐसा देखा गया है कि जो बालक स्वस्थ व निरोगी होते हैं, उनका भाषा विकास उन बालकों की तुलना में शीघ्र होता है, जो अक्सर बीमार और अस्वस्थ रहते हैं। अस्वस्थ्य और बीमार बालकों का भाषा विकास इसलिए मन्द गति से होता है, क्योंकि वे सीमित मात्रा में ही अपने मित्रों व साथियों के सम्पर्क में आ पाते हैं, जिससे अनुकरण द्वारा सीखने का अवसर कम मिल पाता है। इसके अतिरिक्त शारीरिक अस्वस्थता के कारण बालक अधिकांशतः शान्त रहता है और कम बोलता है। फलस्वरूप बोलने का अभ्यास कम होता है, जिससे वह भाषा विकास में स्वस्थ बालकों की तुलना में पीछे रहता है।

2. शरीर रचना

बालक के स्वास्थ्य के साथ-साथ उसकी शरीर रचना भी इसके भाषा विकास को प्रभावित करती है। शरीर रचना से तात्पर्य स्वरयन्त्र, जीभ, तालू, दाँत आदि की बनावट से है, क्योंकि ये अंग ही बोलने की क्रिया में सहायक होते हैं। यदि बालक का स्वरयन्त्र परिपक्व होता है, जीभ की माँसपेशियाँ क्रियाशील होती है, दाँतों की रचना सामान्य होती है, तो ऐसे बालक जल्दी और स्पष्ट बोलते हैं, किन्तु जिन बालकों के स्वरयन्त्र में कोई खराबी होती है, तो वे देर से बोलते हैं और स्पष्ट भी नहीं बोल पाते हैं।

3. लिंग भेद

मनावैज्ञानिकों के इस क्षेत्र में किये गये प्रयोगों में यह देखा गया है कि भाषा विकास लिंग भेद से प्रभावित होता है। इस क्षेत्र में मैकार्थी ने अपने अध्ययनों के पश्चात् प्रमाणित किया है कि समान आयु के बालक-बालिकाओं में बालिकाओं की भाषा जल्दी समझ में आ जाने योग्य होती है। अन्य वैज्ञानिकों के अनुसार भी लड़कियाँ लड़कों की तुलना में शीघ्र बोलना प्रारम्भ करती है, उनका शब्द भण्डार भी लड़कों से अधिक होता है। बालिकाओं के उच्चारण में भी शुद्धता होती है, जबकि बालकों में भाषा दोष अधिक पाये जाते हैं।

4. बुद्धि

बुद्धि और भाषा विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। इस सम्बन्ध में किये गये बुद्धि परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि जो बालक उत्कृष्ट बुद्धि के होते हैं, वे जल्दी बोलना शुरू करते हैं। इसके विपरीत मन्द बुद्धि बालकों में बोलने की क्षमता देर से विकसित होती है। बुद्धिमान बालकों का शब्द भण्डार विस्तृत, शब्द चयन उत्तम, शुद्ध उच्चारण और वाक्य रचना की अधिक क्षमता पायी जाती है।

5. सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

जिन परिवारों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति अच्छी होती है, उन परिवारों में बालकों का भाषा विकास अच्छा होता है। जो माता-पिता शिक्षित तथा अच्छी सामाजिक व आर्थिक स्थिति वाले होते हैं, उनके बालकों का शब्द भण्डार सुन्दर होता है तथा उच्चारण शुद्ध होता है। वे अपनी भाषा में गन्दे शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं यदि उनकी भाषा में कोई दोष आ भी जाता है तो शिक्षित माता-पिता उसके निराकरण का प्रयास शीघ्रता से करते हैं। इसमे विपरीत अशिक्षित माता-पिता भाषा विकास को महत्त्व नहीं देते हैं। माँ बाप स्वय भी गन्दे शब्दों का उच्चारण करते हैं, तो अनुकरण से उनके बच्चे भी भ्रष्ट उच्चारण करने लगते हैं।

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

6. परिपक्वता

जिस प्रकार क्रियात्मक विकास के लिए शारीरिक अंगों का परिपक्व होना आवश्यक है। उसी प्रकार भाषा विकास के लिए फेफड़े, गला, जीभ, होंठ, दाँत, स्वरयन्त्र तथा मस्तिष्क के भाषा केन्द्र का पूर्ण परिपक्व होना आवश्यक है। जब तक ये सभी अंग परिपक्वता प्राप्त नहीं करते हैं, तब तक बच्चों को चाहे किसी भी प्रकार का बोलने का प्रशिक्षण क्यों न दिया जाये उसका भाषा विकास नहीं हो सकता है। जैसे–जैसे ये अंग परिपक्वता प्राप्त करते जाते हैं, उसी क्रम से भाषा विकास होता जाता है।

7. सीखना तथा अनुकरण

जब बालक के भाषा विकास सम्बन्धी अंग परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं, तो बालक का भाषा विकास फिर वातावरण सम्बन्धी तत्त्वों के अधीन हो जाता है। ये वातावरण सम्बन्धी तत्त्व है–

1. सीखने के अवसर
2. अनुकरण की प्रवृत्ति

स्नायुविक परिपक्वता तथा भाषा विकास सम्बन्धी अंगों में परिपक्वता आ जाने पर सीखने और अनुकरण के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान किये जाते हैं, तो बालक का भाषा विकास शीघ्रता से होता है। जिन घरों में कई बालक होते हैं, तो वहाँ छोटा बालक बड़ों का अनुकरण कर जल्दी बोलना सीखता है। इसी प्रकार यदि बालक संयुक्त परिवार का सदस्य है, तो वहाँ भी उसे वयस्कों से भाषा विकास के लिए पर्याप्त सीखने तथा अनुकरण करने का अवसर प्राप्त होता है। चूँकि बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति का विकास जन्म के 9 से 10 महीने पश्चात् से ही हो जाता है। अतः माता–पिता तथा अन्य वयस्क व्यक्तियों को वह ध्यान रखना चाहिए कि वे बालकों के समक्ष भ्रष्ट भाषा का प्रयोग न करें।

8. प्रेरणा

अधिकांशतः देखा गया है कि बालकों को यद्यपि सीखने के अनेक अवसर प्राप्त होते हैं, फिर भी बालकों के माता–पिता उन्हें भाषा सीखने के लिए प्रेरित नहीं कर पाते हैं। अभिभावक को चाहिए कि वे बालकों को रोने पर वे चीजें उपलब्ध न कराएँ जिनके लिए वे रो रहे हैं तथा बालक यदि संकेत और हाव–भाव के प्रयोग में कोई चीज माँगें तो भी उपलब्ध न कराएँ, क्योंकि इस प्रकार बालक शब्दों को सीखने के लिए प्रेरित होंगे। धीरे–धीरे वे समझने लगेंगे कि बिना शब्द बोले उन्हें चीजें प्राप्त नहीं होंगी। आवश्यकतानुसार बालकों को बहला–फुसलाकर प्यार से, दुलार से भी शब्द बोलने के लिये प्रेरित करना चाहिए।

9. निर्देशन

भाषा विकास के लिए प्रेरणा के साथ–साथ निर्देशन की भी आवश्यकता होती है। भाषा विकास के लिए जरूरी है कि जो शब्द बोले जायें उनके मॉडल भी बच्चों के सामने प्रस्तुत किये जायें, जिससे वह बोले गये शब्द की सही तस्वीर अपने मस्तिष्क में अंकित कर सके। जैसे यदि गुड़िया दिखाकर उसके सामने गुड़िया शब्द का उच्चारण किया जाता है तो धीरे–धीरे गुड़िया शब्द और उसकी आकृति बच्चे के दिमाग में बैठ जाती है, जिससे भविष्य में जब कभी वह गुड़िया देखता है तो स्वतः ही गुड़िया शब्द का उच्चारण करने लगता है। अतः उचित निर्देशन से बालक जल्दी बोलना सीखता है।

10. पारिवारिक सम्बन्ध

बच्चे के पारिवारिक सम्बन्ध उसके विकास को प्रभावित करते हैं। जिन बच्चों के पारिवारिक सम्बन्ध अच्छे होते हैं, वे बच्चे अच्छी प्रेरणा पाकर जल्दी बोलना सीख लेते हैं। बच्चे के भाषा विकास पर पारिवारिक सम्बन्धों का प्रभाव जानने के लिए कई बाल मनोवैज्ञानिकों जिनमें स्पिज, मैकार्थी, थामसन आदि का नाम प्रमुख है, ने अनाथालय के बालकों का अध्ययन किया, क्योंकि यहाँ पारिवारिक सम्बन्धों का अभाव था। अध्ययन के पश्चात् उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि पारिवारिक सम्पर्क से अलग रहने वाले बच्चे रोते अधिक हैं और बबलाते कम हैं। उनके मुँह से निकलने वाली ध्वनियों की संख्या भी कम होती है। अतः उनका भाषा विकास देर से होता है। इसके बीच जो बालक परिवार के साथ रहते हैं वे जल्दी तथा शुद्ध बोलना सीख जाते हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने परिवार के सदस्यों की संख्या तथा आकार का प्रभाव भी भाषा विकास पर जानने के लिए अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि जिन परिवारों में अधिक बच्चे होते हैं या जहाँ संयुक्त परिवार होते हैं वहाँ बालकों को अनुकरण के अवसर अधिक प्राप्त होते हैं, जिससे बालकों का भाषा विकास शीघ्रता से होता है।

11. व्यक्तिगत विभिन्नताएँ

अध्ययनों में यह देखा गया है कि जो बच्चे उत्साही होते हैं, उनमें शान्त प्रकृति के बच्चों की अपेक्षा भाषा शीघ्र विकसित होती है। उत्साही बच्चों की भाषा बोलने की गति भी तीव्र होती है, जबकि जो बच्चे आवेगी होते हैं, भले ही वे तीव्र बुद्धि वाले क्यों न हों, इनका शब्दों का उच्चारण उन बालकों की अपेक्षा त्रुटिपूर्ण होता है, जो कम तीव्र बुद्धि वाले परन्तु शान्त प्रकृति के होते हैं।

12. कई भाषाओं का प्रयोग

जिन परिवारों में माता–पिता कई भाषाओं का प्रयोग करते हैं वहाँ बालकों का भाषा विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है, क्योंकि माता–पिता द्वारा बच्चे के सामने एक ही वस्तु के लिए दो अलग–अलग शब्दों का प्रयोग किया जाता है। दो अलग–अलग शब्दों को याद रखना बालक के लिए कठिन होता है, जिससे उसके उच्चारण में भाषा सम्बन्धी दोष आ जाते हैं। अतः यदि परिवार में कई भाषाओं का प्रयोग किया जाता है तो बालक का भाषा विकास धीमी गति से होता है।

3.7 नैतिक विकास

भिन्न–भिन्न वर्गों तथा समाजों के नैतिक आदर्शों में अन्तर रहता है, उदाहरणस्वरूप, भारत और यूरोप के नैतिक आदर्शों में बहुत अन्तर है। इसका मतलब यह है कि जो बात एक समाज ठीक समझता है, उसे ही दूसरा समाज हानिकारक समझता है। खुले आम सार्वजनिक स्थानों पर प्रेम–प्रदर्शन करना पाश्चात्य नैतिक आदर्शों के अनुकूल हो सकता है, परन्तु भारत में इसे बहुत बुरा समझा जाता है। न केवल इतना ही अपितु भारत में रहने वाले हिन्दुओं, मुसलमानों तथा ईसाइयों के नैतिक आदर्शों में भी बहुत भिन्नता पाई जाती है। मुसलमानों में चचेरे भाई–बहिनों तथा ममेरे भाई–बहिनों में विवाह हो जाता है, परन्तु हिन्दू–मर्यादा के अनुसार इसे ठीक नहीं समझा जाता।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

क्रो तथा क्रो और कई अन्य मनोवैज्ञानिकों ने आचार-सम्बन्धी नियमों को भी नैतिकता के अन्तर्गत ही माना है। आचारशास्त्र हमें बताता है कि कौन-सी बात व्यक्ति के लिए ठीक है और कौन-सी बात ठीक नहीं है।

चरित्र के अन्तर्गत व्यक्ति की अनेक मानसिक शक्तियों का समावेश होता है। इन शक्तियों के स्वरूप के विषय में कई प्रकार के मत रहने के कारण चरित्र के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं।

चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता सुदृढ़ संकल्प-शक्ति गिनी जाती है। अपने निश्चित लक्ष्य की ओर बराबर अग्रसर होते रहना और अनेक विघ्न-बाधाओं के होने पर भी निश्चित मार्ग से पीछे न हटना संकल्प-शक्ति का प्रमुख लक्षण है। संसार के सभी महान् पुरुषों में यह संकल्प-शक्ति देखी जा सकती है। शिवाजी, महाराणा प्रताप, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, डॉ. हैडगेवार तथा गाँधी जी सुदृढ़ संकल्प-शक्ति वाले व्यक्ति थे। भारतीय विचारों के अनुरूप इस संकल्प-शक्ति का आधार आध्यात्मिकता है।

पाश्चात्य देशों में चरित्र का आधार आध्यात्मिकता नहीं समझा जाता। व्यवहारवादियों के प्रमुख प्रवक्ता वाटसन का कथन है कि चरित्र व्यवहार-संस्कारों का समुच्चय मात्र है। उनके अनुसार व्यवहार शारीरिक क्रियाओं पर निर्भर है।

3.7.1 नैतिक विकास का अर्थ

बालक के नैतिक विकास का तात्पर्य है- उसका चारित्रिक विकास। नैतिकता तथा चरित्र का वास्तविक स्वरूप क्या है, इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिक एकमत नहीं हैं। मनुष्य से अपेक्षा की जाती है कि वह जिस समाज या वर्ग में रहता है, उसके रीति-रिवाजों का पालन करे। बहुत-से मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि समाज या वर्ग के रीति-रिवाओं का पालन करना ही नैतिकता है। जो व्यक्ति इन नियमों का पालन करने में असमर्थ रहता है, उसमें नैतिकता का अभाव ही गिना जायेगा।

सामाजिक एवं धार्मिक निर्देशों के अनुसार आचरण करने के लिए बालक को अपने ऊपर नियन्त्रण करना होता है। यह नियन्त्रण जितना खूबसूरती से व्यक्ति कर सकता है, वह उतना ही चारित्रिक रूप से विकसित कहलाता है। सामाजिक विकास में समाज के रीति-रिवाजों, रहन-सहन, भाषा, परम्पराओं आदि को सीखना और प्रयोग करना होता है।

3.7.2 अच्छे चरित्र के लक्षण

बाउले एवं अन्य के अनुसार, अच्छे चरित्र में निम्नांकित लक्षण पाये जाते हैं-

1. आत्म-नियन्त्रण

अच्छे चरित्र के व्यक्ति में आत्म-नियन्त्रण का गुण होता है। उसे अपने विचारों, व्यवहारों, इच्छाओं, भावनाओं आदि पर अधिकार होता है। वह कठोर परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता है।

2. विश्वसनीयता

अच्छे चरित्र के व्यक्ति में विश्वसनीयता का गुण होता है और प्रत्येक परिस्थिति में उसका विश्वास किया जा सकता है। इसका कारण है कि वह सदैव किसी आदर्श या सिद्धान्त के अनुसार कार्य करता है। वह किसी सनक या क्षणिक विचार के कारण उससे विचलित नहीं होता है। इसके अतिरिक्त वह एक-सी परिस्थितियों में एक-सा व्यवहार करता है। उसके व्यवहार को देखकर उसके परिणाम की भविष्यवाणी की जा सकती है।

3. कार्य में दृढ़ता

अच्छे चरित्र के व्यक्ति का एक विशेष गुण है-कार्य में दृढता। वह जिस कार्य को आरम्भ करता है, उसे समाप्त अवश्य करता है। वह न तो उसे कभी अधूरा छोड़ता है और न स्थगित करता है।

4. कर्मनिष्ठा

अच्छे चरित्र के व्यक्ति में कर्मनिष्ठा का गुण होता है। वह प्रत्येक कार्य को पूर्ण परिश्रम से करता है। कार्य भले ही नीरस हो, पर वह उसे करने में किसी प्रकार की शिथिलता व्यक्त नहीं करता है।

5. अन्तःकरण की शुद्धता

अच्छे चरित्र के व्यक्ति का एक मुख्य गुण है-अन्तःकरण की शुद्धता। उसके कर्म, वचन और व्यवहार में छल की छाया भी नहीं होती है।

6. उत्तदायित्व की भावना

अच्छे चरित्र के व्यक्ति में उत्तरदायित्व की भावना होती है। वह महान् कष्ट झेलकर भी अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है।

अन्त में, हम बाउले व अन्य के शब्दों में कह सकते हैं-

> चरित्र के ये गुण और लक्षण, विद्यालय कार्य और सामाजिक जीवन, दोनों में प्रत्यक्ष रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जिन छात्रों में ये गुण होते हैं, वे अपनी मानसिक शक्तियों का, जो भी उनमें होती हैं, अधिकतम प्रयोग करते हैं।

3.7.3 चरित्र का निर्माण करने वाले कारक

स्किनर व हैरीसन के शब्दों में-

> चरित्र का निर्माण करने वाले कारक एकाकी रूप से नहीं, वरन् सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।

चरित्र का निर्माण करने वाले कारकों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है-

1. मूलप्रवृत्तियाँ

मूलप्रवृत्तियाँ, चरित्र-निर्माण की मुख्य आधार है। जिस व्यक्ति में जो मूलप्रवृत्तियाँ शक्तिशाली होती है, उन्हीं के अनुरूप उसमें गुण पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ- **आत्म-प्रदर्शन** की मूलप्रवृत्ति के कारण व्यक्ति में पद, शक्ति और सम्मान के लिए संघर्ष करने का गुण पाया जाता है।

2. संवेग

मूलप्रवृत्तियों का संवेगों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इन्हीं के कारण व्यक्ति में कुछ संवेग स्थायी बनकर, गुणों या अवगुणों का रूप धारण करते हैं, जैसे- क्रोध, घृणा आदि।

3. अर्जित प्रवृत्तियाँ

व्यक्ति जिस प्रकार की संगति या वातावरण में रहता है, वैसी ही मानसिक प्रवृत्तियाँ अर्जित करता है। यही कारण है कि कुछ व्यक्तियों में अच्छी और कुछ में बुरी प्रवृत्तियाँ पाई जाती है। इन प्रवृत्तियों के अनुरूप ही उनके चरित्र

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

का निर्माण होता है।

4. आदतें

व्यक्ति अपनी आदतों के अनुसार कार्य और व्यवहार करता है। उसकी आदतों को देखकर उसके चरित्र के गुण–दोषों का अनुमान लगाया जा सकता है, इसलिए चरित्र को आदतों का पुन्ज कहा जाता है।

5. स्थायीभाव

चरित्र का निर्माण करने के लिए स्थायीभावों को अच्छा माना जाता है। चरित्र, स्थायीभावों के योग के अलावा और कुछ नहीं है। स्थायीभाव जितने अधिक अच्छे होते हैं, उतना ही अधिक अच्छा चरित्र होता है। इसीलिए रैक्स एवं नाइट ने लिखा है–

> चरित्र का आधार–स्थायीभाव का निर्माण और संगठन है।

6. आत्म–सम्मान

चरित्र के वास्तविक निर्माण के लिए **आत्म–सम्मान** के स्थायीभाव का होना सबसे अधिक आवश्यक है। मैक्डूगल के अनुसार, इस स्थायीभाव में आत्म–प्रदर्शन और अधीनता की प्रवृत्तियों का उचित सामंजस्य होना चाहिए। डम्विल का मत है कि इस स्थायीभाव का सम्बन्ध स्वयं के विचार से है। यह व्यक्ति में तभी उत्पन्न होता है, जब उसके सब स्थायी भावों का सर्वोच्च स्तर पर एकीकरण होता है। व्यक्ति के चरित्र की श्रेष्ठता और निकृष्टता का आधार यही है। रॉस का कथन है–

> जब आत्म–सम्मान नष्ट हो जाता है, तब चरित्र छिन्न–भिन्न हो जाता है। इसका पुनर्निर्माण करके ही चरित्र का पुनर्संगठन किया जा सकता है।

7. आनन्द

अच्छे कार्यों और अच्छे व्यवहार की प्रवृत्तियों का कारण उनमें पाया जाने वाला आनन्द है। आनन्द उनको सन्तुष्ट करके स्थायी रूप प्रदान करता है। अतः आनन्द चरित्र निर्माण में विशेष योगदान देता है।

8. इच्छा–शक्ति

इच्छा–शक्ति की सरलता और निर्बलता के अनुसार ही व्यक्ति का चरित्र सबल या निर्बल होता है। दृढ–शक्ति वाले व्यक्ति को अपने कार्यों, आदतों, विचारों आदि पर पूर्ण अधिकार होता है। इसीलिए डम्विल का कहना है–

> इच्छा–शक्ति, चरित्र का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है।

9. वंशानुक्रम

व्यक्तियों को अनेक चारित्रिक विशेषताएँ वंशानुक्रम से प्राप्त होती है। इन विशेषताओं के कारण उनके चरित्र में विभिन्नता पाई जाती है। रॉस का कहना है–

> ये विशेषताएँ हमारे चरित्र को प्रभावित करती हैं, पर उसके स्वरूप को निश्चित नहीं करती है।

10. भौतिक व सामाजिक वातावरण

भौतिक वातावरण के अन्तर्गत जलवायु, भूमि की बनावट आदि और सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत घर, विद्यालय, संगी–साथी, सामाजिक संस्थायें, रीति–रिवाज, रहन–सहन का स्तर आदि आते हैं। इन सबका चरित्र का निर्माण करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

11. मानसिक शक्ति

मानसिक शक्ति चरित्र निर्माण का एक मुख्य आधार है। इसका कारण बताते हुए स्टर्ट एवं ओकडन ने लिखा है –

> श्रेष्ठ मानसिक शक्ति वाला व्यक्ति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में साधारणतः सफल और निम्न मानसिक शक्ति वाला व्यक्ति साधारणतः असफल होता है।

12. स्वभाव

चरित्र के निर्माण पर स्वभाव का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। प्रसन्नचित वाला व्यक्ति आशावादी और खिन्न मन वाला व्यक्ति निराशावादी होता है। रॉस का मत है–

> स्वभाव की जन्मजात विभिन्नताएँ वे ईंटें हैं, जिनके द्वारा चरित्र का निर्माण किया जा सकता है।

3.7.4 बाल्यावस्था में नैतिक विकास

बाल्यावस्था में बालक के चरित्र का विकास निम्नांकित क्रम में होता है–

1. किसी समूह का सदस्य बनने के कारण बालक का दूसरे बालकों से सम्पर्क स्थापित होता है। फलस्वरूप, उसके आचरण में परिवर्तन होना आरम्भ हो जाता है।
2. बालक विभिन्न परिस्थितियों में उचित और अनुचित में अन्तर करना जान जाता है।
3. बालक न्याय और ईमानदारी के प्रति प्रबल भावनाएँ व्यक्त करने लगता है।
4. बालक, परिवार के एक विशेष सदस्य और विद्यालय के एक विशेष शिक्षक की आज्ञा का अधिक तत्परता से पालन करता है।
5. बालक, घर में स्वार्थपूर्ण और अनुचित, पर विद्यालय में निःस्वार्थ और उचित व्यवहार करता है।
6. बालक कम से कम मौलिक रूप से चोरी करने, झूठ बोलने, धोखा देने, छोटे बच्चों या छोटे पशुओं को कष्ट पहुँचाने और शेखी मारने की निन्दा करने लगता है।
7. बालक झूठ बोलना कम कर देता है, माता–पिता से अधिक धन प्राप्त करने के लिए उनके कार्य करता है और अपने से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों में सत्य बोलने का प्रयास करता है।
8. कोलेसनिक के अनुसार–

   > बालक कुछ सिद्धान्तों को समझने, स्वीकार करने और प्रयोग करने लगता है। वह इन सिद्धान्तों पर आधारित अपने व्यवहार के प्रभाव पर विचार करने लगता है।

9. स्ट्रैंग के अनुसार–

   > 6, 7 और 8 वर्ष के बालकों में विवेक, न्याय, ईमानदारी और मूल्यों की भावना का विकास होने लगता है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि बाल्यावस्था में बालकों में नैतिकता की सामान्य धारणाओं या नैतिक सिद्धान्तों के कुछ ज्ञान का विकास हो जाता है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

3.7.5 नैतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

स्किनर व हैरीमन के शब्दों में–

> ऐसा कोई भी पाठ्यक्रम या विधि नहीं है, जो जादू से चरित्र का निर्माण कर दे। इसके विपरीत, परिवार, धार्मिक संस्था, खेल के मैदान या विद्यालय में प्राप्त किया जाने वाला प्रत्येक अनुभव चारित्रिक विकास का अवसर प्रदान करता है।

चरित्र के विकास में योग देने वाले उपरिवर्णित एवं अन्य कारकों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है –

1. वंशानुक्रम

बालक के चारित्रिक विकास का एक मुख्य आधार है–उसका वंशानुक्रम। इस तथ्य की पुष्टि, वंशानुक्रम से प्राप्त होने वाले मानसिक गुणों का उदाहरण देकर की जा सकती है। टर्मन ने अपने अध्ययनों से सिद्ध किया है कि प्रखर बुद्धि वाले बालकों में मन्द बुद्धि वाले बालकों की अपेक्षा सत्यता, ईमानदारी और इसी प्रकार के अन्य नैतिक गुण कहीं अधिक होते हैं। इससे कारमाइकेल ने यह निष्कर्ष निकाला है–

> श्रेष्ठ बुद्धि वाले बालक निम्न बुद्धि वाले बालकों की अपेक्षा उत्तम चरित्र का निर्माण करने के लिए अधिक अच्छी परिस्थिति में होते हैं।

2. माता–पिता का दृष्टिकोण

बालक के चरित्र का विकास बहुत सीमा तक उसके माता–पिता के दृष्टिकोण पर निर्भर रहता है। यदि वे उसका तिरस्कार करते हैं या उसके प्रति उदासीन रहते हैं, तो उसके चरित्र का विकास उचित या अनुचित किसी भी दिशा में हो सकता है। पर यदि वे उसके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार करते हैं, उसकी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और सतर्कतापूर्वक उसकी देखभाल करते हैं, तो उसके चरित्र में श्रेष्ठ गुणों का प्रादुर्भाव होता है।

3. परिवार की आर्थिक स्थिति

चारित्रिक विकास को परिवार की आर्थिक स्थिति निश्चित रूप से प्रभावित करती है पर यह आवश्यक नहीं है कि धनी परिवार के सभी बालक सच्चरित्र और निर्धन परिवार के सभी बालक दुश्चरित्र हों। इसका स्पष्टीकरण करते हुए कारमाइकेल ने लिखा है–

> यदि बालक पर उसके अभिभावकों का निरीक्षण ठीक है और यदि उसके साथी ठीक प्रकार के हैं, तो उस पर परिवार की आर्थिक स्थिति का प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

4. परिवार का वातावरण

परिवार के वातावरण का बालक के चारित्रिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि परिवार में कोई न कोई निरन्तर रोगग्रस्त रहता है, यदि उसमें स्वच्छता को अनावश्यक कार्य समझा जाता है, यदि उसमें रहने का स्थान कम हैं और यदि उसमें निवास की उत्तम दशाएँ नहीं है, तो बालक का चारित्रिक विकास शिथिल और विकृत हो जाता है। इसीलिए परिवार को बालक के चारित्रिक विकास के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए कारमाइकेल ने लिखा है–

> चरित्र को प्रभावित करने वाले वातावरण सम्बन्धी कारकों की सूची में परिवार को प्रथम और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

5. परिवार के सदस्य

बालक के चारित्रिक विकास में उसके परिवार के सदस्यों का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि उनमें पारस्परिक कटुता, ईर्ष्या और वैमनस्य के सम्बन्ध हैं, तो बालक में भी अनिवार्य रूप से इन दुर्गुणों की उत्पत्ति हो जाती है। इसके विपरीत, यदि वे शांति, सहयोग और ईमानदारी का जीवन व्यतीत करते हैं, तो बालक में भी साधारणतः ये गुण दृष्टिगत होते हैं।

6. विद्यालय

विद्यालय को बालक के चरित्र का निर्माण और विकास करने का एक असाधारण स्थान माना जाता है। इसका कारण यह है कि बालक वहाँ प्रतिदिन 5 या 6 घण्टे व्यतीत करता है, नाना प्रकार के बालकों के सम्पर्क में आता है और विभिन्न कार्यक्रमों एवं सामूहिक क्रियाओं में भाग लेता है। फलस्वरूप, उसमें वांछनीय या अवांछनीय दृष्टिकोणों का निर्माण होता है और उन्हीं के अनुसार वह अपने चरित्र का स्वरूप निर्धारित करता है। विद्यालय के इसी अपूर्व महत्त्व के कारण स्किनर एवं हैरिमन ने लिखा है–

> चारित्रिक विकास से सम्बन्धित एक सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था है–विद्यालय। परिवार के अलावा और किसी भी संस्था का बालक के जीवन में इतना महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है।

7. शिक्षक

बालक के चारित्रिक विकास को उचित दिशा प्रदान करने में शिक्षक के महत्त्व को सामान्य रूप से सभी व्यक्तियों द्वारा स्वीकार किया जाता है। इसका कारण यह है कि बालक बहुधा किसी–न–किसी शिक्षक को अपना आदर्श मानकर उसका अनुकरण करने लगता है। अतः यदि शिक्षक उत्तम गुणों, आदर्शों और योग्यताओं वाला व्यक्ति है, तो बालक बहुत कुछ उसी का प्रतिरूप हो जाता है।

8. साथी व समूह

घर पर प्रारम्भिक जीवन व्यतीत करने वाले बालक पर अपने साथियों का प्रभाव बहुत ही कम पड़ता है। जैसे ही वह शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी विद्यालय में प्रवेश करता है, वैसे ही यह प्रभाव प्रारम्भ हो जाता है और निरन्तर बना रहता है। कभी–कभी उस पर अपने समूह और खेल के साथियों का इतना दूषित प्रभाव पड़ता है कि वह अपने माता–पिता की इच्छाओं के विरूद्ध आचरण करने लगता है। ऐसी दशा में उसका चारित्रिक विकास वांछनीय दिशा में नहीं हो सकता है।

9. धार्मिक शिक्षा

धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने वाले और धार्मिक संस्थाओं में अध्ययन करने वाले बालकों का चरित्र, सामान्य विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों से श्रेष्ठतर होता है। इस सम्बन्ध में क्रो एवं क्रो का मत है–

> धार्मिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाला बालक सामान्य विद्यालयों में अध्ययन करने वाले बालक की अपेक्षा ईमानदारी और इसी प्रकार के अन्य गुणों के अधिक उत्तम प्रमाण देता है।

10. अन्य कारक

बालक के चारित्रिक विकास को प्रभावित करने वाले अन्य कारक है–रेडियो, टेलीविजन, चलचित्र, मनोरंजन के साधन, कहानियाँ, समाचार पत्र, स्काउटिंग और संस्कृति। इनके सम्बन्ध में क्रो एवं क्रो ने लिखा है–

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यदि चरित्र को प्रभावित करने वाले अन्य कारक दोषरहित हैं, तो ये कारक, बालक के दृष्टिकोण के स्वरूप और विकास के लिए भारी खतरे के कारण नहीं है।

बालक के चारित्रिक विकास को प्रभावित करने वाले जिन कारकों का हमने अवलोकन किया है, उनका सम्बन्ध वंशानुक्रम और वातावरण दोनों से है। दोनों को समान महत्त्व देते हुए कारमाइकेल ने लिखा है–

किसी भी अवस्था में व्यक्ति का चारित्रिक विकास कुछ जन्मजात कारकों और वातावरण सम्बन्धी दशाओं पर आधारित कारकों के एकीकरण का परिणाम है।

चरित्र का विकास केवल व्यक्ति के लिए ही आवश्यक नहीं है, राष्ट्र के लिए भी आवश्यक है। डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में–

भारत सहित समस्त विश्व के कष्टों का कारण यह है कि शिक्षा का सम्बन्ध नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति से न रहकर केवल मस्तिष्क के विकास से रह गया है। अतः शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य चरित्र विकास होना चाहिए। चरित्र का विकास उपयुक्त वातावरण, अच्छी आदतों के निर्माण, नैतिकता का विकास, संकल्प शक्ति के विकास से हो सकता है।

3.7.6 चरित्र निर्माण में शिक्षा का कार्य

स्किनर व हैरीमन के शब्दों में–

इस बात से कोई प्रयोजन नहीं है कि शिक्षा कहाँ दी जाती है या किस प्रकार दी जाती है। बालक को दी जाने वाली सब शिक्षा को उसके चरित्र–निर्माण में अनिवार्य रूप से योगदान देना चाहिए।

शिक्षा को बालक के चरित्र–निर्माण में योग देने के लिए अनेक विधियों को अपनाया जा सकता है, जो निम्नलिखित है–

1. बालक को नियमित रूप से नैतिक शिक्षा देनी चाहिए।
2. बालक के अच्छे विचारों, इच्छाओं और प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना चाहिए।
3. बालक को उत्तम वातावरण में रखकर, उसमें नैतिक गुणों का विकास करना चाहिए।
4. बालक को ऐसे वातावरण में रखना चाहिए, जिसमें उसमें भय, घृणा, क्रोध आदि के समान अवांछनीय स्थायीभाव उत्पन्न न हों।
5. बालक के प्रति प्रेम, दया और सहानुभूति का व्यवहार करके, उसमें इन स्थायीभावों को उत्पन्न करना चाहिए।
6. बालक की मूलप्रवृत्तियों का दमन नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से उसके मस्तिष्क में ग्रन्थियाँ बन जाती है। फलस्वरूप, उसमें दुर्गुण और बुरी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती है।
7. बालक की मूलप्रवृत्तियों का शोधन, रूप–परिवर्तन और प्रशिक्षण करके उत्तम संवेगों का निर्माण करना चाहिए।
8. बालक को क्षुद्र स्थायी भावों के ऊपर उठाने के लिए उसमें उत्तम आदर्शों, सद्गुणों और अमूर्त स्थायीभावों का निर्माण करना चाहिए।
9. बालक में अच्छी आदतों का निर्माण करना चाहिए और उसकी इच्छा–शक्ति को दृढ़ बनाने का प्रयास करना चाहिए।
10. बालक के चरित्र का विकास करने के लिए उसके, व्यक्तित्व के सब अंगों का विकास करना चाहिए।
11. स्किनर एवं हैरिमन के अनुसार–

    बालक के चरित्र का निर्माण एकाकी जीवन व्यतीत करने से नहीं, वरन् दूसरों के संपर्क में आने से होता है। अतः विद्यालय में सामाजिक क्रियाओं का आयोजन करके बालक को उनमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

12. मैक्डूगल के अनुसार–

    आत्म–सम्मान का स्थायीभाव, चरित्र है और नैतिक स्थायीभावों में सर्वश्रेष्ठ है। अतः बालक में इस स्थायीभाव को पूर्ण रूप से विकसित करना चाहिए।

13. वैलण्टाइन का कथन है–

    मनुष्य कुछ स्थायीभावों का जितना अधिक संगठन करता है, उतना ही अधिक वह अपने चरित्र की अभिव्यक्ति करता है।

अतः बालक में अधिक से अधिक स्थायीभावों का संगठन करने के लिए अग्रलिखित कार्य किये जाने चाहिए– (1) उच्च आदर्शों और लक्ष्यों के लिए प्रेरणा देना, (2) महान् व्यक्तियों के विचारों और आदर्शों से परिचित कराना, (3) प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, श्रेष्ठ साहित्यकारों आदि की जीवनियाँ सुनाना, (4) कार्य और सिद्धान्त के उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करना आदि।

यदि विद्यालय उपर्युक्त कार्यों को सम्पन्न नहीं करता है, तो वह बालक के चरित्र का निर्माण करने में कदापि सफल नहीं हो सकता है। अतः इस बात की परम आवश्यकता है कि विद्यालय की शिक्षा इस प्रकार नियोजित की जाये कि वह बालक के चरित्र का निर्माण करके, उसकी भावी सफलता का मार्ग प्रशस्त करे। **नेशनल सोसाइटी की ईयरबुक** में अंकित इस वाक्य में अमर सत्य है कि–

विद्यालय को यह चुनौती है कि वह बालक के उपयुक्त प्रशिक्षण के लिए सबसे अधिक उपयोगी परिस्थितियों का निर्माण करे।

****

अगर आप B.Ed, D.Ed, BSTC या शिक्षण अध्यापन के क्षेत्र में पढ़ाई कर रहे हैं तो आपसे निवेदन है कि निम्नलिखित Whatsapp No. अपनी कक्षा के व्हाट्सएप ग्रुप में जोड़ें। अगर आपका व्हाट्सएप ग्रुप नहीं बना हुआ है तो कृपया कम से कम 20 विद्यार्थी मिलकर व्हाट्सएप ग्रुप बना लें।

UPTET	-	95301 43210
MP Samvida	-	95302 43210
BTET	-	95302 43210
UTET	-	72209 29294
JTET	-	72209 29239
HTET	-	72209 29266
CGTET	-	72209 28969
HPTET	-	72209 28535

आपके क्लास के व्हाट्सएप ग्रुप में शिक्षा संबंधी सभी प्रतियोगी परीक्षा के पेपर्स, मॉडल पेपर्स एवं अन्य अध्ययन सामग्री भेजी जाएगी। आपका शुरू से मार्गदर्शन किया जाएगा, ताकि आप प्रतियोगी परीक्षा में अतिशीघ्र सफलता प्राप्त कर सकें।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मानव विकास को क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है, जो हैं–
(1) शारीरिक, आध्यात्मिक, संज्ञानात्मक और सामाजिक
(2) शारीरिक, संज्ञानात्मक, संवेगात्मक और सामाजिक
(3) संवेगात्मक, संज्ञानात्मक, आध्यात्मिक और सामाजिक–मनोवैज्ञानिक
(4) मनोवैज्ञानिक, संज्ञानात्मक, संवेगात्मक और शारीरिक

2. रॉस ने मानव विकास को बाँटा है–
(1) 2 भागों में (2) 4 भागों में
(3) 6 भागों में (4) 10 भागों में

3. शिक्षा की दृष्टि से मानव विकास का निम्न पक्ष सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है–
(1) शारीरिक (2) मानसिक
(3) सामाजिक (4) संवेगात्मक

4. अवधारणाओं का विकास मुख्य रूप से ..... का हिस्सा है।
(1) बौद्धिक विकास (2) शारीरिक विकास
(3) सामाजिक विकास (4) संवेगात्मक विकास

5. बच्चों के संज्ञानात्मक विकास को सबसे अच्छे तरीके से कहाँ परिभाषित किया जा सकता है?
(1) खेल के मैदान में (2) विद्यालय एवं कक्षा में
(3) ऑडिटोरियम में (4) गृह में

6. लॉरेन्स कोह्लबर्ग ..... विकास के क्षेत्र में शोध के लिए जाने जाते हैं।
(1) संज्ञानात्मक (2) शारीरिक
(3) नैतिक (4) गामक

7. इन्डोक्राइन ग्लैण्ड के विकास से होता है–
(1) शारीरिक विकास (2) माँसपेशीय विकास
(3) संवेगात्मक विकास (4) उपर्युक्त सभी

8. शारीरिक विकास का आधार है?
(1) नैतिक विकास (2) सामाजिक विकास
(3) भाषा विकास (4) मानसिक विकास

9. मानसिक विकास का पहलू नहीं है–
(1) सम्प्रत्यय निर्माण
(2) संवेदना व प्रत्यक्षीकरण
(3) स्मरण शक्ति
(4) नागरिक गुणों का विकास

10. निम्नलिखित में से कौनसा विकास छोटे बच्चों में मानसिक व संज्ञानात्मक विकास में सर्वाधिक मद्दगार होता है?
(1) सामाजिक विकास (2) शारीरिक विकास
(3) सांवेगिक विकास (4) भाषायी विकास

11. किसी छात्र का बौद्धिक विकास, शारीरिक विकास तथा संवेगात्मक विकास उसकी विकास की प्रक्रिया का कौनसा कारक है?
(1) आन्तरिक कारक (2) बाह्य कारक
(3) 1 एवं 2 दोनों (4) इनमें से कोई नहीं

12. बालक के सामाजिक विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण कारक कौनसा है?
(1) जाति भेद
(2) आनुवंशिकता
(3) वातावरण
(4) आनुवंशिकता तथा वातावरण

13. संवेगात्मक विकास के तथ्यपरक् अध्ययन से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक हैं–
(1) ब्रिजेज (2) हरलॉक
(3) लेले (4) थॉम्पसन

14. निम्नलिखित में से कौनसा बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित नहीं करता है?
(1) बुद्धि
(2) तर्क शक्ति
(3) भाषा प्रयोग की क्षमता
(4) उपरोक्त में से कोई नहीं

15. निम्न में से कौनसा कारक शिशु के शारीरिक विकास को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करता है?
(1) खेल एवं व्यायाम
(2) सन्तुलित आहार एवं पोषण
(3) नियमित दिनचर्या में विचलन
(4) रोग ग्रस्तता

16. बच्चे के उचित विकास को सुनिश्चित करने के लिए उसका स्वस्थ शारीरिक विकास एक महत्त्वपूर्ण पूर्व आवश्यकता है। यह कथन–
(1) गलत हो सकता है, क्योंकि विकास नितान्त व्यक्तिगत मामला है।
(2) सही है, क्योंकि विकास–क्रम में शारीरिक विकास सबसे पहले स्थान पर आता है।
(3) सही है, क्योंकि शारीरिक विकास, विकास के अन्य पक्षों के साथ अन्तः सम्बन्धित है।
(4) गलत है, क्योंकि शारीरिक विकास, विकास के अन्य पक्षों को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करता।

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.	9.	10.	11.	12.	13.	14.	15.	16.						
(4)	(2)	(2)	(1)	(2)	(3)	(3)	(4)	(4)	(2)	(1)	(3)	(1)	(4)	(4)	(3)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

17. 12–14 वर्ष की आयु के बीच ..... की अपेक्षा ..... की लम्बाई एवं माँसपेशियों में तेजी से वृद्धि होती है, एवं 14–18 वर्ष की आयु के बीच ..... की अपेक्षा ..... की लम्बाई एवं माँसपेशियाँ तेज़ी से बढ़ती हैं।
(1) लड़कियों, लड़कों; लड़कों, लड़कियों
(2) लड़कों, लड़कियों; लड़कियों, लड़कों
(3) लड़कों, लड़कियों; लड़कों, लड़कों
(4) लड़कियों, लड़कों; लड़कियों, लड़कों

18. कौनसी पाठ्यचर्या सर्वाधिक उपयुक्त होगी?
(1) बालक के शारीरिक व मानसिक विकास के अन्तर्सम्बन्धों के अनुकूल
(2) देश की सभ्यता–संस्कृति के अनुकूल
(3) बालक के शारीरिक एवं सामाजिक विकास के अन्तर्सम्बन्धों के अनुकूल
(4) उपरोक्त में से कोई नहीं

19. सभी बच्चों की स्वतन्त्र खेलों, अनौपचारिक व औपचारिक खेलों, योग और खेल की गतिविधियों में सहभागिता क्यों आवश्यक है?
(1) शारीरिक विकास के लिए
(2) मानसिक विकास के लिए
(3) सामाजिक विकास के लिए
(4) उपरोक्त सभी

20. बाल–विकास के विभिन्न आयाम एवं इनके अधिगम से सम्बन्ध के सन्दर्भ में निम्नलिखित में से कौनसा कथन असत्य है?
(1) विकास के विभिन्न आयामों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है एवं ये अधिगम को प्रभावित करते हैं।
(2) बालकों का विकास, एवं अधिगम एक निरन्तर प्रक्रिया है।
(3) शारीरिक विकास, विशेषकर छोटे बच्चों में मानसिक व संज्ञानात्मक विकास में मददगार है।
(4) उपरोक्त में से कोई नहीं

21. आपकी कक्षा का एक छात्र, राजू शारीरिक विकास की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ है। आपको विकास के निम्नलिखित में से किस आयाम में राजू के पिछड़ने की चिन्ता हो सकती है?
1. संवेगात्मक विकास
2. बौद्धिक विकास
3. सामाजिक विकास
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) 1 एवं 3 (4) ये सभी

22. आप अपनी कक्षा में से कुछ छात्रों को चुनकर छः महीने में उनमें होने वाले विकास की एक रिपोर्ट तैयार करना चाहते हैं, तो इसके लिए आप निम्न में से क्या चुनेंगे?
(1) प्रत्येक माह उनकी लम्बाई मापेंगे।
(2) प्रत्येक माह उनका वजन तौलेंगे।
(3) प्रत्येक माह उनकी रूचियों, आदतों, दृष्टिकोणों, स्वभाव, व्यक्तित्व, व्यवहार आदि में होने वाले परिवर्तनों की जाँच करेंगे।
(4) प्रत्येक माह उनके शारीरिक आकार में होने वाले परिवर्तन की जाँच करेंगे।

23. बालक का संवेगात्मक विकास निम्नलिखित में से किसे प्रभावित करता है?
1. उसके शारीरिक विकास को
2. उसके सामाजिक विकास को
3. उसके नैतिक विकास को
(1) केवल 1 (2) 1 एवं 3
(3) 2 एवं 3 (4) ये सभी

24. सभी बच्चों का स्वस्थ शारीरिक विकास सभी प्रकार के विकास की पहली शर्त है। इसके लिए किन मूल आवश्यकताओं पर ध्यान देना आवश्यक है?
1. पौष्टिक आहार पर
2. शारीरिक व्यायाम पर
3. मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक जरूरतों पर
(1) केवल 1 (2) 1 एवं 3
(3) 1 एवं 2 (4) ये सभी

25. जब किशोर में किसी वस्तु, समस्या या परिस्थिति के लिए निजी स्तर पर निर्णय लेने की क्षमता का विकास परिपक्व होने लगता है, तो इस विकास को क्या कहते हैं?
(1) भाषायी विकास
(2) संज्ञानात्मक विकास
(3) सामाजिक विकास
(4) मनोगत्यात्मक विकास

26. निम्नलिखित में से कौन–सा कथन सत्य है?
(1) दृष्टिकोण, भावनाएँ और आदर्श, संज्ञानात्मक विकास के अभिन्न हिस्से हैं और भाषा विकास, मानसिक चित्रण, अवधारणाओं व तार्किकता से इनका गहरा सम्बन्ध है।
(2) सभी बच्चों का स्वस्थ शारीरिक विकास सभी प्रकार के विकास की पहली शर्त नहीं है।
(3) मानसिक और भाषायी विकास, सामाजिक विकास एवं अधिगम को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।
(4) बालक के सन्तुलित विकास में उसके संवेगात्मक विकास की नहीं बल्कि शारीरिक विकास की अहम् भूमिका होती है।

27. बच्चों के बौद्धिक विकास की चार विशिष्ट अवस्थाओं की पहचान की गई–
(1) स्किनर द्वारा (2) पियाजे द्वारा
(3) कोह्लबर्ग द्वारा (4) एरिकसन द्वारा

17.	18.	19.	20.	21.	22.	23.	24.	25.	26.	27.											
(2)	(1)	(4)	(4)	(4)	(3)	(4)	(4)	(2)	(1)	(2)											

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

28. पितृ विरोधी व मातृ विरोधी ग्रन्थियाँ विकसित होती है–
(1) शैशवावस्था में (2) बाल्यावस्था में
(3) किशोरावस्था में (4) कभी नहीं

29. किशोरों के समुचित विकास के लिए आवश्यक है–
(1) सदाचार का शिक्षण (2) आदर्श शिक्षण
(3) नैतिक शिक्षण (4) उपरोक्त सभी

30. किशोरावस्था में सांवेगिक विकास की विशेषता नहीं है–
(1) संवेगों का परिपक्व होना
(2) संवेगों का तीव्र होना
(3) संवेगों का खुलकर प्रदर्शन
(4) संवेगों का अस्पष्ट होना

31. पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक बाल विकास की कितनी अवस्थाएँ है?
(1) 3 (2) 4
(3) 5 (4) 6

32. बिग व हंट के अनुसार ..... की विशेषताओं को सर्वोत्तम रूप से व्यक्त करने वाला एक शब्द है **परिवर्तन**। परिवर्तन शारीरिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक होता है।
(1) शैशवावस्था (2) बाल्यावस्था
(3) किशोरावस्था (4) प्रौढ़ावस्था

33. बालक के शारीरिक व क्रियात्मक विकास की दिशा होती है–
(1) सिर से पैर तथा शरीर के बाहर से मध्य की ओर
(2) सिर से पैर तथा शरीर के मध्य से बाहर की ओर
(3) पैर से सिर तथा शरीर के बाहर से मध्य की ओर
(4) पैर से सिर तथा शरीर के मध्य से बाहर की ओर

34. एक बच्चा ईर्ष्या का प्रदर्शन करता है–
(1) 6 माह की आयु में
(2) 12 माह की आयु में
(3) 18 माह की आयु में
(4) 24 माह की आयु में

35. पितृ विरोधी ग्रन्थि के कारण बालक–
(1) माता से प्रेम करता है, पिता से घृणा
(2) पिता से प्रेम करता है, माता से घृणा
(3) माता–पिता दोनों से प्रेम करता है।
(4) माता–पिता दोनों से घृणा करता है।

36. पितृ विरोधी ग्रन्थि को किस नाम से जाना जाता है?
(1) लिबिडो (2) नारसिज्म
(3) इरोज (4) आडिपस कॉम्पलेक्स

37. अच्छे चरित्र में सम्मिलित है–
(1) सहयोग (2) धोखा
(3) झूठ (4) बेइमानी

38. जन्म के समय शिशु के मस्तिष्क का औसत भार कितना होता है?
(1) लगभग 400 ग्राम (2) लगभग 350 ग्राम
(3) लगभग 500 ग्राम (4) लगभग 600 ग्राम

39. यदि एक बालक शैशवावस्था में दुर्बल है तथा वह जल्दी–जल्दी बीमार हो जाता है, तो उसका शारीरिक विकास किस प्रकार प्रभावित होगा?
(1) सामान्य ढंग से
(2) अनिश्चित ढंग से
(3) प्रतिकूल ढंग से
(4) कह नहीं सकते हैं।

40. शिशु के जन्म के भार की तुलना के सन्दर्भ में छः माह बाद कितने गुना वृद्धि होगी?
(1) लगभग तीन गुनी
(2) लगभग दोगुनी
(3) लगभग पाँच गुनी
(4) लगभग चार गुनी

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

41. एक शिशु शब्दों का उच्चारण करना कब से प्रारम्भ करता है?
(1) लगभग 2 वर्ष की आयु से
(2) लगभग 18 माह का हो जाने पर
(3) लगभग 5 वर्ष की आयु से
(4) लगभग 3 वर्ष की आयु से

42. बालकों को सामान्य शिष्टाचार के नियमों की जानकारी का विकास सामान्यता किस आयु में हो जाता है?
(1) लगभग 5–6 वर्ष की आयु में
(2) लगभग 4 वर्ष की आयु में
(3) लगभग 9–10 वर्ष की आयु में
(4) लगभग 7–8 वर्ष की आयु में

43. प्रायः 15 से लेकर 20 वर्ष की आयु में बालकों के संज्ञानात्मक विकास की अवस्था ..... होती है।
(1) न्यूनतम (2) उच्चतम
(3) अनिश्चित (4) औसतन

44. प्रायः किशोरावस्था में निम्न में से कौनसा/से परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है/हैं?
(1) शरीर के अंगो में (2) शिष्टाचार के ढंग में
(3) स्वर में (4) उपर्युक्त सभी में

28.	29.	30.	31.	32.	33.	34.	35.	36.	37.	38.	39.	40.	41.	42.	43.	44.					
(1)	(4)	(4)	(2)	(3)	(2)	(1)	(1)	(4)	(1)	(2)	(3)	(2)	(4)	(4)	(2)	(4)					

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

45. किशोरावस्था में किशोर प्रायः चिड़चिड़ा हो जाता है। आपके विचार में इसका मुख्य कारण है–
(1) उसकी गिनती न छोटों में और न ही बड़ों में होती है।
(2) उसकी प्रवृत्ति पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने की होती है।
(3) उसकी शारीरिक संरचना असन्तुलित प्रतीत होने लगती है।
(4) उपर्युक्त सभी

46. किशोर बालकों की तुलना में किशोरियों में निम्नलिखित में से कौनसी योग्यताएँ अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में उपस्थित रहती हैं?
(1) कार्यात्मक योग्यताएँ
(2) भाषा सम्बन्धी योग्यताएँ
(3) वैज्ञानिक योग्यताएँ
(4) चिन्तन योग्यताएँ

47. दो वर्ष की आयु तक बालक के शब्द भण्डार में कितने शब्दों तक वृद्धि हो जाती है?
(1) 110 शब्दों तक (2) 100 शब्दों तक
(3) 160 शब्दों तक (4) 150 शब्दों तक

48. बालकों में तर्क, जिज्ञासा एवं निरीक्षण शक्ति का विकास होता है–
(1) 13 वर्ष की आयु में
(2) 16 वर्ष की आयु में
(3) 11 वर्ष की आयु में
(4) उपर्युक्त में से किसी में भी नहीं

49. शिशु क्रोध एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार में विभेद प्रारम्भ कर देता है–
(1) बाल्यावस्था में
(2) शैशवावस्था में
(3) युवावस्था में
(4) किशोरावस्था में

50. किस वर्ष की आयु तक बालक का सामाजिक व्यवहार आत्मकेन्द्रित बना रहता है?
(1) लगभग 5 वर्ष की आयु तक
(2) लगभग 7 वर्ष की आयु तक
(3) लगभग 3 वर्ष की आयु तक
(4) लगभग जीवनपर्यन्त

51. किशोरावस्था में निम्न में से किसके द्वारा, विपरीत लैंगिक आकर्षण की भावना का प्रदर्शन किया जाता है?
(1) आकर्षक, भड़कीले परिधानों के द्वारा
(2) समूह नेतृत्व द्वारा
(3) सौन्दर्यात्मक नुस्खों के द्वारा
(4) उपर्युक्त सभी के द्वारा

52. किस आयु वर्ग के लिए परीकथा साहित्य (कहानियाँ) अधिक उपयुक्त माना जाता हैं?
(1) बालक आयु वर्ग के लिए
(2) शिशु आयु वर्ग के लिए
(3) वृद्ध आयु वर्ग के लिए
(4) किशोर आयु वर्ग के लिए

53. निम्न में से किस अवस्था के दौरान शारीरिक विकास की तीव्रता के दर्शन होते हैं?
(1) बाल्यावस्था के दौरान
(2) किशोरावस्था के दौरान
(3) शैशवावस्था के दौरान
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

54. शारीरिक विकास का सम्बन्ध निम्न में से किससे नहीं है?
(1) सिर एवं मस्तिष्क से (2) शरीर के भार से
(3) रक्त प्रवाह से (4) हड्डियों से

55. आयु के किन वर्षों तक अधिकतर बच्चों के सभी 20 दूध के दाँत निकल जाते हैं?
(1) 2 से 2.5 वर्ष (2) 3 से 3.5 वर्ष
(3) 2.5 से 3 वर्ष (4) 3.5 से 4 वर्ष

56. किस अवस्था में दाँत बनना शुरू होते हैं?
(1) जन्म से पूर्व (2) शैशवावस्था
(3) बाल्यावस्था (4) कोई नहीं

57. मस्तिष्क के बाएँ अर्द्धगोल भाग से होता है–
(1) संवेगात्मक विकास
(2) संज्ञानात्मक विकास
(3) भाषात्मक विकास
(4) उपर्युक्त सभी

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

58. सात वर्ष की आयु तक पहुँचते–पहुँचते एक सामान्य बालक का शब्द भण्डार हो जाता है–
(1) 1000 शब्द (2) 6000 शब्द
(3) 11000 शब्द (4) 16000 शब्द

59. किस अवस्था में मानसिक विकास बहुत तीव्र गति से होता है?
(1) किशोरावस्था (2) प्रौढ़ावस्था
(3) बाल्यावस्था (4) शैशवावस्था

60. एक नवजात शिशु का कद (ऊँचाई) कितना होता है?
(1) 19 इंच (2) 20 इंच
(3) 12 इंच (4) 22 इंच

45.	46.	47.	48.	49.	50.	51.	52.	53.	54.	55.	56.	57.	58.	59.	60.						
(4)	(2)	(2)	(3)	(2)	(3)	(4)	(2)	(3)	(3)	(1)	(1)	(3)	(2)	(3)	(2)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

61. एक नवजात शिशु का भार कितना होता है?
(1) 6 पाउण्ड (2) 7 पाउण्ड
(3) 8 पाउण्ड (4) 9 पाउण्ड

62. एक शिशु में कितनी हड्डियाँ होती है?
(1) 270 (2) 350
(3) 206 (4) 250

63. अस्थायी दाँत निकलने शुरू होते हैं–
(1) 6 से 8 माह में (2) 7 से 9 माह में
(3) 8 से 10 माह में (4) इनमें से कोई नहीं

64. जन्म से प्राप्त कद लगभग दुगुना हो जाता है–
(1) 4 वर्ष में (2) 5 वर्ष में
(3) 6 वर्ष में (4) 7 वर्ष में

65. बालिकाओं का भाषा विकास बालकों से आगे रहता हैं–
(1) सभी अवस्थाओं में (2) शैशवावस्था में
(3) बाल्यावस्था में (4) किशोरावस्था में

66. निम्नलिखित में से कौनसी परिस्थिति में बच्चे का संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास, अच्छे से होगा?
(1) जब बच्चे को महत्त्वपूर्ण माना जाए, उसकी भावनाओं को सम्मान किया जाए।
(2) बच्चे को अधिक से अधिक पढ़ने को कहा जाए।
(3) बच्चे के कक्षा में अच्छे अंक आए।
(4) जब शिक्षक बच्चों को उनके बौद्धिक स्तर के अनुसार पढ़ाए।

67. बच्चों के भाषाई विकास के लिए जरूरी है कि–
(1) उनको अधिक से अधिक अपने विचार व्यक्त करने के अवसर देने चाहिए।
(2) भाषाई कौशलों के विकास हेतु गतिविधियाँ आयोजित की जानी चाहिए।
(3) लिखना, पढ़ना, बोलना तथा सुनने का अभ्यास कराना चाहिए।
(4) उपरोक्त सभी

****

प्रगण्य प्रकाशन द्वारा CTET एवं प्रत्येक राज्य के TET (UPTET, MP Samvida, BTET, UTET, JTET, HTET, CGTET, HPTET) के लिए मॉडल पेपर की फ्री PDF प्रकाशित की जाती है। मॉडल पेपर की फ्री PDF प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित Whatsapp No. अपने कॉलेज के क्लास ग्रुप या कोचिंग के क्लास ग्रुप या अन्य स्टडी ग्रुप में जोंडे। आपके ग्रुप में मॉडल पेपर भेज दिए जाएँगें।
REET - 94604 43210
UPTET - 95301 43210
MP Samvida - 95302 43210
BTET - 95302 43210
UTET - 72209 29294
JTET - 72209 29239
HTET - 72209 29266
CGTET - 72209 28969
HPTET - 72209 28535
www.praganya.org

61.	62.	63.	64.	65.	66.	67.														
(4)	(1)	(1)	(2)	(3)	(4)	(4)														

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन से www.praganya.org वेबसाइट द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन में सभी आवश्यक प्रक्रियाओं का पालन किया गया है।

अध्याय 4

वंशानुक्रम एवं वातावरण

4.1 प्रस्तावना

मनुष्य का विकास जिन कारकों द्वारा होता है, उनमें जैविक एवं सामाजिक कारक सबसे मुख्य हैं। जैविक विकास का दायित्व माता-पिता पर होता है तथा सामाजिक विकास का वातावरण पर होता है। माता-पिता जिस शिशु को जन्म देते हैं, उसका शारीरिक विकास गर्भकाल में ही आरम्भ हो जाता है तथा जन्म के बाद मिले वातावरण द्वारा होता है।

जन्म से सम्बन्धित विकास के वंशानुक्रम और समाज से सम्बन्धित विकास को वातावरण कहते हैं। इसे प्रकृति तथा पोषण भी कहा गया है। जैसा कि वुडवर्थ का कहना है कि एक पौधे का वंशानुक्रम उसके बीज में निहित है और उसके पोषण का दायित्व उसके वातावरण पर निर्भर है। वंशानुक्रम तथा वातावरण का अध्ययन प्राणी के विकास तथा वातावरण की अन्तःक्रिया का फल है।

मनोविज्ञान में यह प्रश्न हमेशा चर्चा का विषय रहा है कि बालक के विकास में वंशानुक्रम का सहयोग अधिक है या वातावरण का। इस प्रश्न पर प्रायः मतभेद रहे हैं

4.2 वंशानुक्रम का अर्थ एवं परिभाषा

साधारण अर्थ में **वंशानुक्रम** से तात्पर्य **जैसे के तैसे** से या **समान के समान** से है। साधारणतया इससे तात्पर्य है कि जैसे माता-पिता होते हैं, उनकी सन्तान भी वैसी ही होती है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि जैसे जीव होते हैं, वे अपने ही जैसे जीवों को जन्म देते हैं। इसी कथन के आधार पर हम देखते हैं कि सामान्यतः बालक शारीरिक रूप-गुण में अपने माता-पिता के अनुरूप ही होता है। मनोवैज्ञानिकों का मत तो यहाँ तक है कि बालक अपने माता-पिता से शारीरिक गुण ही नहीं बल्कि मानसिक एंव सामाजिक गुण भी प्राप्त करता है। इस मत के अनुसार स्वस्थ एवं विद्वान माता-पिता के स्वस्थ एवं विद्वान सन्तान होनी चाहिए। किन्तु इस तथ्य के अपवाद भी पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ, विद्वान माता-पिता के मन्द बुद्धि सन्तान और मन्द बुद्धि माता-पिता के विद्वान सन्तान देखी जाती है। इसका कारण यह है कि बालक शारीरिक एवं मानसिक गुण अपने माता-पिता से ही नहीं अपितु उनसे पहले के पूर्वजों से भी प्राप्त करता है। पूर्वजों के गुणों का हस्तान्तरण माता-पिता के माध्यम से ही होता है। इस प्रकार के गुणों के हस्तान्तरण को ही वंशानुक्रम या आनुवंशिकता कहते हैं।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार से वंशानुक्रम की परिभाषाएँ अपने-अपने ढंग से दी हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. वुडवर्थ के अनुसार–

वंशानुक्रम में वे सभी बातें आ जाती हैं जो जीवन का आरम्भ करते समय व्यक्ति में उपस्थित थीं। ये जन्म के समय नहीं वरन् गर्भाधान के समय जन्म से लगभग नौ माह पूर्व व्यक्ति में पैदा होती हैं।

2. जे. ए. थाम्पसन के अनुसार–

वंशानुक्रम, क्रमबद्ध पीढ़ियों के बीच उत्पत्ति सम्बन्धी, सम्बन्ध के लिये सुविधाजनक शब्द है।

3. एच. ए. पेटरसन के अनुसार–

वंशानुक्रम को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि व्यक्ति अपने माता-पिता के माध्यम से पूर्वजों के जो कुछ गुण प्राप्त करता है, वही वंशानुक्रम कहलाता है।

4. पी. जिस्बर्ट के अनुसार–

प्रकृति में प्रत्येक पीढ़ी का कार्य माता-पिता सन्तानों में कुछ जैवकीय या मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का हस्तान्तरण करना है। इस प्रकार हस्तान्रित विशेषताओं की मिली-जुली गठरी को वंशानुक्रम के नाम से पुकारा जाता है।

5. डगलस व हॉलैण्ड के अनुसार–

माता-पिता या अन्य पूर्वज या प्रजाति से प्राप्त समस्त शारीरिक रचनाएँ, विशेषताएँ, क्रियाएँ अथवा क्षमताएँ व्यक्ति के वंशानुक्रम में सम्मिलित रहती हैं।

6. रूथ बेंडिक्ट के अनुसार–

वंशानुक्रम माता-पिता से सन्तान को प्राप्त होने वाले गुणों का नाम है।

7. एन एनास्टमी के अनुसार–

वंशानुक्रम के तत्त्व जन्म के बहुत बाद तक व्यक्ति के विकास को प्रभावित कर सकते हैं और वास्तव में यह प्रभाव जीवनपर्यन्त चलता है।

8. जेम्स ड्रेवर के अनुसार–

माता-पिता की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं का सन्तानों में संक्रमित होना ही वंशानुक्रम है।

9. बी. एन. झा के अनुसार–

वंशानुक्रम, व्यक्ति की जन्मजात विशेषताओं का पूर्ण योग है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि व्यक्ति को अपने माता-पिता से प्राप्त गुण ही वंशानुक्रम नहीं होते अपितु उनके माध्यम से पूर्वजों के गुणों की प्राप्ति भी वंशानुक्रम के अन्तर्गत आती है। यहाँ पर यह चर्चा का विषय है कि वंशानुक्रम के द्वारा कौन-से गुणों का हस्तान्तरण आगे आने वाली पीढ़ी को होता है।

4.3 वंशानुक्रम की यन्त्र रचना/प्रक्रिया

मानव-शरीर की बनावट सम्बन्धी यन्त्र-रचना बड़ी जटिल है। यहाँ इस रचना को सरल रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, जीवशास्त्रियों का मत है कि

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

मानव-शरीर की रचना कोषों से होती है। प्रारम्भ में गर्भावस्था में भ्रूण का निर्माण केवल एक कोष से होता है जिसे **संयुक्त कोष** कहते हैं। इस संयुक्त–कोष की रचना दो **उत्पादक कोषों** के मिलने से होती है। इन उत्पादक कोषों में से एक कोष पिता का होता है जिसे शुक्र और दूसरा माता का होता है जिसे अण्ड कहते हैं। **संयुक्त कोष** और **उत्पादक कोष** 2, 4, 8, 16, 32..... के क्रम में संख्या में बढ़ते जाते हैं। **शुक्र** और **अण्ड** दोनों ही उत्पादक-कोषों के रूप में कुछ गुण या दोषों का हस्तान्तरण करते हैं। ये गुण या दोष भ्रूण में प्रवेश कर जाते हैं और जन्म के बाद वंशानुक्रम कहलाते हैं।

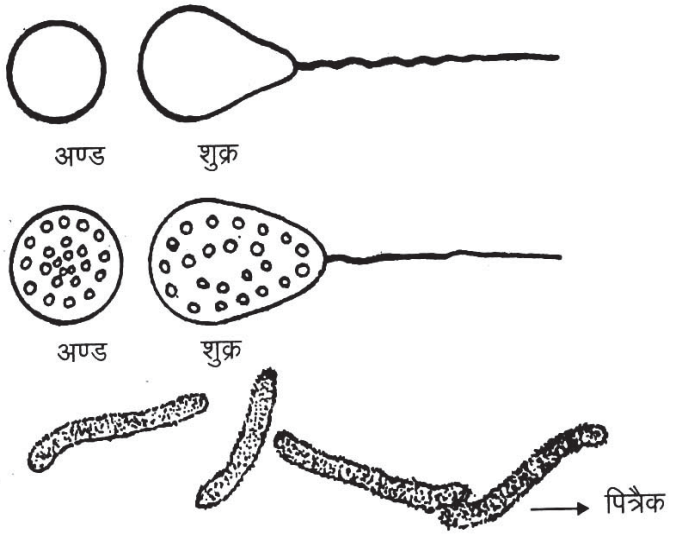

अनेक परीक्षणों के बाद यह निश्चित हो गया है कि शुक्र और अण्ड में 23-23 गुणसूत्र होते हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि 23-23 गुणसूत्र के स्थान पर 24-23 गुणसूत्र होते हैं। इस प्रकार संयुक्त कोष में गुणसूत्रों के 23 जोड़े होते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र में कुछ और भी सूक्ष्म पदार्थ होते हैं, जो **पित्रैक** कहलाते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र में पित्रैक की संख्या 40 से 100 तक होती है। इन पित्रैकों की रचना एकरेखीय आकृतिनुमा होती है। प्रत्येक पित्रैक एक गुण या विशेषता को निर्धारित करता है। पित्रैक ही वंशानुक्रम के निर्धारक होते हैं, क्योंकि एक पित्रैक अथवा पित्रैक समूह द्वारा वंशानुक्रम के कुछ विशेष गुण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांरित होते हैं। पित्रैक के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए सोरेन्सन ने लिखा है कि पित्रैक द्वारा बालकों के प्रमुख गुण निर्धारित होते हैं। पित्रैकों के सम्मेलन के परिणाम को वंशानुक्रम कहा जाता है।

4.4 वंशानुक्रम के सिद्धान्त

वंशानुक्रम मनोवैज्ञानिकों तथा जीववैज्ञानिकों के लिए अत्यन्त रोचक तथा रहस्यमय विषय है। वंशानुक्रम जिन नियमों तथा सिद्धान्तों पर आधारित है, यह विषय भी अध्ययन के नये आयाम प्रस्तुत करता है। वंशानुक्रम के ये नियम सर्वाधिक प्रचलित हैं–

1. बीजकोष की निरन्तरता का नियम।
2. समानता का नियम।
3. विभिन्नता का नियम।
4. प्रत्यागमन का नियम।
5. अर्जित गुणों के संक्रमण का नियम।
6. मैण्डल का नियम।

1. बीजकोष की निरन्तरता का नियम

इस नियम के अनुसार बालक को जन्म देने वाला बीजकोष कभी नष्ट नहीं होता। इस नियम के प्रतिपादक वीजमैन का कथन है–

> बीजकोष का कार्य केवल उत्पादक कोषों का निर्माण करना है, जो बीजकोष बालक को अपने माता-पिता से मिलता है, उसे वह अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित कर देता है। इस प्रकार, बीजकोष पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है।

वीजमैन के **बीजकोष की निरन्तरता** के नियम को स्वीकार नहीं किया जाता है। इसकी आलोचना करते हुए बी. एन. झा ने लिखा है–

> इस सिद्धान्त के अनुसार माता-पिता, बालक के जन्मदाता न होकर केवल बीजकोष के संरक्षक हैं, जिसे वे अपनी सन्तान को देते हैं। बीजकोष एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को इस प्रकार हस्तान्तरित किया जाता है, मानो एक बैंक से निकलकर दूसरे बैंक में रख दिया गया हो। वीजमैन का सिद्धान्त न तो वंशानुक्रम की सम्पूर्ण प्रक्रिया की व्याख्या करता है और न सन्तोषजनक ही है।

यह मत वंशानुक्रम की संपूर्ण प्रक्रिया की व्याख्या न कर पाने के कारण अमान्य है।

2. समानता का नियम

इस नियम के अनुसार, जैसे माता-पिता होते हैं, वैसी ही उनकी सन्तान होती है। इस नियम के अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए सोरेनसन ने लिखा है–

> बुद्धिमान माता-पिता के बच्चे बुद्धिमान, साधारण माता-पिता के बच्चे साधारण और मन्द बुद्धि माता-पिता के बच्चे मन्द बुद्धि होते हैं। इसी प्रकार, शारीरिक रचना की दृष्टि से भी बच्चे माता-पिता के समान होते हैं।

यह नियम भी अपूर्ण हैं, क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि काले माता-पिता की सन्तान गोरी, मन्द बुद्धि माता-पिता की सन्तान बुद्धिमान होती है। इस नियम के अनुसार माता-पिता की विशेषताएँ बालक के मूल रूप में आनी चाहिए।

3. विभिन्नता का नियम

इस नियम के अनुसार, बालक अपने माता-पिता के बिल्कुल समान न होकर उनसे कुछ भिन्न होता हैं। इसी प्रकार, एक ही माता-पिता के बालक एक-दूसरे के समान होते हुए भी बुद्धि, रंग और स्वभाव में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। कभी-कभी उनमें पर्याप्त शारीरिक और मानसिक विभिन्नता पाई जाती है। इसका, कारण बताते हुए सोरेन्सन ने लिखा है–

> इस विभिन्नता के कारण माता-पिता के उत्पादक कोषों की विशेषताएँ हैं। उत्पादक कोषों में अनेक पित्रैक होते हैं, जो विभिन्न प्रकार से संयुक्त होकर एक-दूसरे से भिन्न बच्चों का निर्माण करते हैं।

भिन्नता का नियम प्रतिपादित करने वालों में डार्विन तथा लेमार्क ने अनेक प्रयोगों तथा विचारों द्वारा यह मत प्रकट किया है कि उपयोग न करने वाले अवयव तथा विशेषताओं का लोप आगामी पीढ़ियों में हो जाता है। नवोत्पत्ति तथा प्राकृतिक चयन द्वारा वंशानुक्रमीय विशेषताओं का उन्नयन होता है।

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

4. प्रत्यागमन का नियम

इस नियम के अनुसार, बालक में अपने माता-पिता के विपरीत गुण पाये जाते हैं। इस नियम का अर्थ स्पष्ट करते हुए सोरेन्सन ने लिखा है–

> बहुत प्रतिभाशाली माता-पिता के बच्चों में कम प्रतिभा होने की प्रवृत्ति ओर बहुत निम्नकोटि के माता-पिता के बच्चों में कम निम्नकोटि होने की प्रवृत्ति ही प्रत्यागमन है।

प्रकृति का नियम यह है कि वह विशिष्ट गुणों के बजाय सामान्य गुणों का अधिक वितरण करके एक जाति के प्राणियों को एक ही स्तर पर रखने का प्रयास करती है। इस नियम के अनुसार, बालक अपने माता-पिता के विशिष्ट गुणों का त्याग करके सामान्य गुणों को ग्रहण करते ह। यही कारण है कि महान् व्यक्तियों के पुत्र साधारणतः उनके समान महान् नहीं होते हैं, उदाहरणार्थ– बाबर, अकबर और महात्मा गाँधी के पुत्र उनसे बहुत अधिक निम्न कोटि के थे। इसके दो मुख्य कारण हैं–

1. माता-पिता के पित्रैकों में से एक कम और एक अधिक शक्तिशाली होता है।
2. माता-पिता में उनके पूर्वजों में से किसी का पित्रैक अधिक शक्तिशाली होता है।

5. अर्जित गुणों के संक्रमण का नियम

इस नियम के अनुसार, माता-पिता द्वारा अपने जीवन-काल में अर्जित किये जाने वाले गुण उनकी सन्तान को प्राप्त नहीं होते हैं। इस नियम को अस्वीकार करते हुए विकासवादी लेमार्क ने लिखा है–

> व्यक्तियों द्वारा अपने जीवन में जो कुछ भी अर्जित किया जाता है, वह उनके द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले व्यक्तियों को संक्रमित किया जाता है।

इसका उदाहरण देते हुए लेमार्क ने कहा है कि जिराफ पशु की गर्दन पहले बहुत कुछ घोड़े के समान थी, पर कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण वह लम्बी हो गई और कालान्तर में उसकी लम्बी गर्दन का गुण अगली पीढ़ी में संक्रमित होने लगा। लेमार्क के इस कथन की पुष्टि मैक्डूगल और पवलव ने चूहों पर एवं हैरीसन ने पतंगों पर परीक्षण करके की है।

आज के युग में विकासवाद या अर्जित गुणों के संक्रमण का सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया जाता है। इस सम्बन्ध में वुडवर्थ ने लिखा है–

> वंशानुक्रम की प्रक्रिया के अपने आधुनिक ज्ञान से सम्पन्न होने पर यह बात प्रायः असम्भव जान पड़ती है कि अर्जित गुणों को संक्रमित किया जा सके। यदि आप कोई भाषा बोलना सीख लें, तो क्या आप पित्रैकों द्वारा इस ज्ञान को अपने बच्चे को संक्रमित कर सकते हैं? इस प्रकार के किसी प्रमाण की पुष्टि नहीं हुई है। क्षय या सूजाक ऐसा रोग, जो बहुधा परिवारों में पाया जाता है, संक्रमिक नहीं होता है। बालक को यह रोग परिवार के पर्यावरण में छूत से होता है।

6. मैण्डल का नियम

इस नियम के अनुसार, वर्णसंकर प्राणी या वस्तुएँ अपने मौलिक या सामान्य रूप की ओर अग्रसर होती है। इस नियम को जेकोस्लोवेकिया के मैण्डल नामक पादरी ने प्रतिपादित किया था। उसने अपने गिरजे के बगीचे में बड़ी और छोटी मटरें बराबर संख्या में मिलाकर बोयीं। उगने वाली मटरों में सब वर्णसंकर जाति की थीं। मैण्डल ने इस वर्णसंकर मटरों को फिर बोया और इस प्रकार उसने उगने वाली मटरों को कई बार बोया। अन्त में, उसे ऐसी मटरें मिली, जो वर्णसंकर होने के बजाय शुद्ध थी।

मटरों के समान मैण्डल ने चूहों पर भी प्रयोग किया। उसने सफेद और काले चूहों को साथ-साथ रखा। इनसे जो चूहे उत्पन्न हुए, वे काले थे। फिर उसने इन वर्णसंकर काले चूहों को एक साथ रखा। इनसे उत्पन्न होने वाले चूहे काले और सफेद दोनों रंगों के थे। अपने प्रयासों के आधार पर मैण्डल ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि वर्णसंकर प्राणी या वस्तुएँ अपने मौलिक या सामान्य रूप की ओर अग्रसर होती है। यही सिद्धान्त **मैण्डलवाद** के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी व्याख्या करते हुए बी. एन. झा ने लिखा है–

> जब वर्णसंकर अपने स्वयं के पितृ या मातृ-उत्पादक कोषों का निर्माण करते हैं, तब वे प्रमुख गुणों से युक्त माता-पिता के समान शुद्ध प्रकारों को जन्म देते हैं।

मैण्डल का मटरों पर प्रयोग

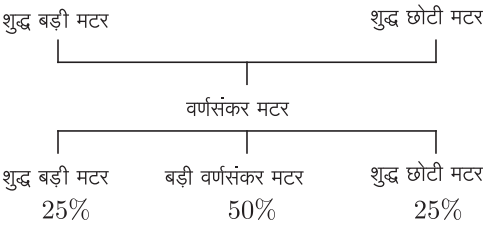

मैण्डल का चूहों पर प्रयोग

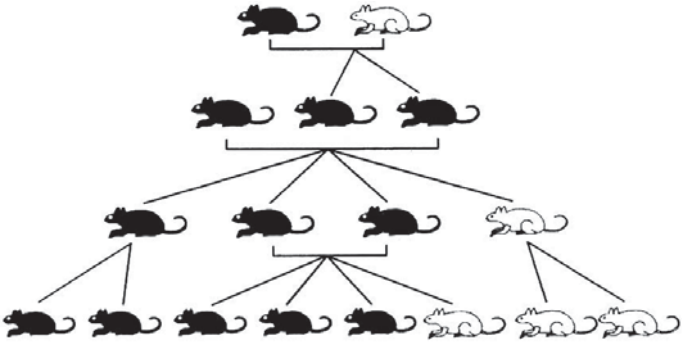

ग्रेगर जॉन मैण्डल ने जो प्रयोग किये, उनसे प्राप्त निष्कर्षों से वंशानुक्रम तथा वातावरण के प्रभावों के अध्ययन में अत्यधिक सहयोग मिला। चाहे छोटी-बड़ी मटर मिलाकर बोने का प्रयोग हो अथवा काले-सफेद चूहों को एक साथ रखकर उनसे सन्तति व्यापार का प्रयोग हो, कुछ निष्कर्ष ऐसे निकाले जिससे वंशानुक्रम की शुद्धता का पता चलता है। उसने यह प्रत्यागमन के सिद्धान्त का निरूपण किया। उसका यह सिद्धान्त इस प्रकार है–अधिक जाग्रत या प्रबल गुण, सुप्त गुण को निष्क्रिय कर देता है। सुप्तावस्था में रहने वाले व्यक्त गुण जब प्रकट होकर मुख्य गुण का रूप धारण कर लेते हैं तो यह स्थिति प्रत्यागमन का रूप धारण कर लेती है। उदाहरणार्थ– काले माता-पिता के यहाँ गोरे बालक का जन्म लेना।

4.5 बालक के विकास में वंशानुक्रम का प्रभाव

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने वंशानुक्रम के महत्त्व के सम्बन्ध में अनेक अध्ययन और परीक्षण किए हैं। इनके आधार पर उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि बालक के

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है। हम यहाँ कुछ मुख्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रभाव का वर्णन कर रहे हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. मूल शक्तियों पर प्रभाव

थॉर्नडाइक का मत है कि बालक की मूल शक्तियों का प्रधान कारण उसका वंशानुक्रम है।

2. शारीरिक लक्षणों पर प्रभाव

कार्ल पीयरसन का विचार है कि अगर माता-पिता की लम्बाई कम या अधिक होती है, तो उनके बच्चे की भी लम्बाई कम या अधिक होती है।

3. प्रजाति की श्रेष्ठता पर प्रभाव

क्लिनबर्ग का मत है कि बुद्धि की श्रेष्ठता का कारण प्रजाति है। यही कारण है कि अमरीका की श्वेत प्रजाति, नीग्रो प्रजाति से श्रेष्ठ है।

4. व्यावसायिक योग्यता पर प्रभाव

कैटल का विचार है कि व्यावसायिक योग्यता का मुख्य कारण वंशानुक्रम है। वह इस निष्कर्ष पर अमेरिका के 885 वैज्ञानिकों के परिवारों का अध्ययन करने के फलस्वरूप पहुँचा। उसने बताया कि इन परिवारों में से 2/5 व्यवसायी वर्ग के, 1/2 उत्पादक वर्ग के और केवल 1/4 कृषि वर्ग के थे।

5. सामाजिक स्थिति पर प्रभाव

विनशिप का मत है कि गुणवान और प्रतिष्ठित माता-पिता की सन्तान प्रतिष्ठा प्राप्त करती है। वह इस निष्कर्ष पर रिचर्ड एडवर्ड के परिवार का अध्ययन करने के बाद पहुँचा। रिचर्ड स्वयं गुणवान और प्रतिष्ठित मनुष्य था एवं उसने एलिजाबेथ नामक जिस स्त्री से विवाह किया था, वह भी उसी के समान थी। इन दोनों के वंशजों को विधानसभा के सदस्यों, महाविद्यालयों के अध्यक्षों आदि के प्रतिष्ठित पद प्राप्त हुए थे। उनका एक वंशज अमेरिका का उपराष्ट्रपति भी बना।

6. चरित्र पर प्रभाव

डगडेल का मत है कि चरित्रहीन माता-पिता की सन्तान चरित्रहीन होती है। उसने यह बात सन् 1877 ई. में ज्यूकस के वंशजों का अध्ययन करके सिद्ध किया। 1720 में न्यूयार्क में जन्म लेने वाला ज्यूकस एक चरित्रहीन मनुष्य था और उसकी पत्नी भी उसके समान चरित्रहीन थी। इन दोनों के वंशजों के सम्बन्ध में नन ने लिखा है–

> पाँच पीढ़ियों से लगभग 1000 व्यक्तियों में से 300 बाल्यावस्था में मर गए, 310 ने 2300 वर्ष दरिद्रगृहों में व्यतीत किए, 440 रोग के कारण मर गए, 130 (जिनमें 7 हत्या करने वाले थे) दण्ड प्राप्त अपराधी थे और केवल 20 ने कोई व्यवसाय करना सीखा।

7. महानता पर प्रभाव

गाल्टन का विचार है कि व्यक्ति की महानता का कारण उसका वंशानुक्रम है। यह वंशानुक्रम का ही परिणाम है कि व्यक्तियों के शारीरिक और मानसिक लक्षणों में विभिन्नता पाई जाती है। व्यक्ति का कद, वर्ण, स्वास्थ्य, बुद्धि, मानसिक शक्ति आदि उसके वंशानुक्रम पर आधारित होते हैं। गाल्टन ने लिखा है–

> महान् न्यायाधीशों, राजनीतिज्ञों, सैनिक पदाधिकारियों, साहित्यकारों, वैज्ञानिकों और खिलाड़ियों के जीवन-चरित्रों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इनके परिवारों में इन्हीं क्षेत्रों में प्रशंसा प्राप्त अन्य व्यक्ति भी हुए हैं।

8. वृद्धि पर प्रभाव

गोडार्ड का विचार है कि मन्द बुद्धि माता-पिता की सन्तान मन्द बुद्धि और तीव्र बुद्धि माता-पिता की सन्तान तीव्र बुद्धि वाली होती है। उसने यह बात कालीकॉक नामक एक सैनिक के वंशजों का अध्ययन करके सिद्ध की। कालीकॉक ने पहले एक मन्द बुद्धि स्त्री से और कुछ समय के बाद एक तीव्र बुद्धि की स्त्री से विवाह किया। पहली स्त्री के 480 वंशजों में से 143 मन्द बुद्धि, 46 सामान्य, 36 अवैध सन्तान, 32 वेश्याएँ, 24 शराबी, 8 वेश्यालय स्वामी, 3 मृगी रोग वाले और 3 अपराधी थे। दूसरी स्त्री के 496 वंशजों में से केवल 3 मन्द बुद्धि और चरित्रहीन थे। शेष ने व्यवसायियों, डाक्टरों, शिक्षकों, वकीलों इत्यादि के रूप में समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त किए।

वंशानुक्रम के समन्वित प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए, कोलेसनिक ने लिखा है–

> जिस सीमा तक व्यक्ति की शारीरिक रचना को उसके पित्रैक निश्चित करते हैं, उस सीमा तक उसके मस्तिष्क एवं स्नायु संस्थान की रचना, उसके अन्य लक्षण, उसकी खेल-कूद सम्बन्धी कुशलता और उसकी गणित सम्बन्धी योग्यता– ये सभी बातें उसके वंशानुक्रम पर निर्भर होती हैं, पर वे बातें उसके वातावरण पर कहीं अधिक निर्भर होती है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर वंशानुक्रम का काफी प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव पित्रैक के कारण व्यक्ति के शारीरिक लक्षणों पर प्रकट होता है। आन्तरिक प्रेरक तत्त्व उसके स्वभाव को निर्धारित करते हैं। डगडेल के अध्ययन ने सिद्ध कर दिया है कि चरित्रहीन माता–पिता की सन्तान चरित्रहीन होती है। स्वस्थ बौद्धिक तथा मानसिक स्थिति भी वंशानुक्रम की देन है।

4.6 वातावरण का अर्थ एवं परिभाषा

बालक के व्यक्तित्व के विकास में वातावरण के महत्त्वपूर्ण योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। वंशानुक्रम के अध्ययन से एक तथ्य स्पष्ट होता है कि बालक वंशानुक्रम से अनेक शक्तियाँ एवं क्षमताएँ ग्रहण कर जन्म लेता है, किन्तु इन शक्तियों का विकास वातावरण पर निर्भर करता है। यदि बालक को अच्छा वातावरण मिल जाये जो वह अपनी शक्तियों का विकास करके प्रतिष्ठित जीवन व्यतीत कर सकता है। वातावरण को ही पोषक अथवा पर्यावरण कहते हैं।

वातावरण के लिए पर्यावरण शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। **पर्यावरण** दो शब्दों से मिलकर बना है– **परि+आवरण**। **परि** का अर्थ है– **चारों ओर** एवं **आवरण** का अर्थ है– **ढकने वाला**। इस प्रकार पर्यावरण या वातावरण वह है, जो चारों ओर से ढके या घेरे हुए है। अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के चारों ओर जो कुछ है, वह उसका वातावरण है। इसमें वे सब तत्त्व सम्मिलित किए जा सकते हैं, जो व्यक्ति के जीवन और व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

वातावरण को स्पष्ट करने के लिए कुछ विद्वानों ने इसको परिभाषित किया है जिनका उल्लेख यहाँ करना उचित होगा–

1. जिस्बर्ट के अनुसार–

> वातावरण वह हर वस्तु है जो किसी अन्य वस्तु को घेरे हुए है और उस पर सीधे अपना प्रभाव डालती है।

www.praganya.org www.praganya.org www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

2. एनी एनास्टासी के अनुसार–

वातावरण में वे सभी वस्तुएँ सम्मिलित हैं, जो व्यक्ति के पित्रैक के अतिरिक्त उसके सभी पक्षों को प्रभावित करती हैं।

3. मैकाइवर एवं पेज के अनुसार–

स्वयं प्राणी, उसके जीवन का ढाँचा, बीते हुए जीवन एवं अतीत पर्यावरण का फल है। पर्यावरण, जीवन के प्रारम्भ से यहाँ तक कि उत्पादक कोषों में भी निहित है।

4. बोरिंग, लैंगफील्ड एवं वेल्ड के अनुसार–

एक व्यक्ति के वातावरण के अन्तर्गत उन सभी उत्तेजनाओं का योग आ जाता है, जिनको वह जन्म से मृत्यु तक ग्रहण करता है।

5. जे. एस. रॉस के अनुसार–

वातावरण एक बाह्य शक्ति है, जो हमें प्रभावित करती है।

6. वुडवर्थ के अनुसार–

वातावरण में वे समस्त तत्त्व सम्मिलित हैं, जिन्होंने व्यक्ति को जीवन प्रारम्भ करने के समय प्रभावित किया है।

7. डगलस व हॉलैण्ड के अनुसार–

वातावरण शब्द का प्रयोग उन समस्त बाह्य शक्तियों, प्रभावों और दशाओं के योग के वर्णन के लिए किया जाता है, जो जीवित प्राणियों के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, विकास और परिपक्वता को प्रभावित करते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वातावरण किसी एक तत्त्व या शक्ति का प्रतिफल नहीं होता है। इसकी रचना में अनेक तत्त्व या शक्तियों का सामूहिक रूप में हाथ होता है जो बालक के विकास को गर्भकाल से ही प्रभावित करते हैं।

4.7 वातावरण के प्रकार

वातावरण की रचना करने वाले तत्त्वों के आधार पर वातावरण के दो मुख्य प्रकार हैं–

1. भौगोलिक वातावरण

भौगोलिक वातावरण में प्रकृति के सभी तत्त्व जैसे स्थिति, स्थलाकृति, जलवायु, मिट्टी, खनिज, वनस्पति एवं जीव-जन्तु आदि सम्मिलित किए जाते हैं। भौगोलिक वातावरण मानव के क्रियाकलापों को प्रभावित करता है।

2. सामाजिक वातावरण

सामाजिक वातावरण मानव समुदायों की उपलब्धि का प्रतिफल होता है। इसके अन्तर्गत रीति-रिवाज, परम्परा, भाषा, शिष्टाचार आदि आते हैं। सामाजिक वातावरण के दो रूप दिए जा सकते हैं–

1. सांस्कृतिक वातावरण
2. मानसिक वातावरण

सांस्कृतिक वातावरण शिष्टाचार का प्रशिक्षण देता है, जबकि मानसिक वातावरण बालक की मानसिक योग्यताओं के विकास में योगदान करता है। इस प्रकार ये सभी प्रकार के वातावरण व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पक्षों, जैसे– शारीरिक, सामाजिक, मानसिक एवं आर्थिक को प्रभावित करते हैं।

4.8 बालक पर वातावरण का प्रभाव

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने वातावरण के महत्त्व के सम्बन्ध में अनके अध्ययन और परीक्षण किए हैं। इनके आधार पर उन्होंने सिद्ध किया है कि बालक के व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू पर भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का व्यापक प्रभाव पड़ता है। भारतीय मनावैज्ञानिकों के एक अध्ययन के अनुसार 1971 की आई.ए.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण होने वाले छात्रों में से आधे से अधिक के अभिभावकों की मासिक आय ₹10 हजार या इससे अधिक थी और 44 प्रतिशत ने पब्लिक स्कूलों में शिक्षा प्राप्त की थी। हम यहाँ कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रभाव का वर्णन नीचे कर रहे हैं–

1. शारीरिक अन्तर पर प्रभाव

फ्रेंज बोन्स का मत है कि विभिन्न प्रजातियों के शारीरिक अन्तर का कारण वंशानुक्रम न होकर वातावरण है। उसने अनेक उदाहरण देकर सिद्ध किया कि जो जापानी और यहूदी, अमेरिका में अनेक पीढ़ियों से निवास कर रहे हैं, उनकी लम्बाई भौगोलिक वातावरण के कारण बढ़ गयी है।

2. मानसिक विकास पर प्रभाव

गोर्डन का मत है कि उचित सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण न मिलने पर मानसिक विकास की गति धीमी हो जाती है। उसने यह बात नदियों के किनारे रहने वाले बच्चों का अध्ययन करके सिद्ध की। इन बच्चों का वातावरण गन्दा और समाज के अच्छे प्रभावों से दूर था।

3. बुद्धि पर प्रभाव

केंडोल द्वारा किया गया अध्ययन स्पष्ट करता है कि बुद्धि का विकास वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण पर निर्भर होता है। उसने फ्रांस के 552 विद्वानों का अध्ययन करके पता लगाया कि उनमें से अधिकांश धनी वर्ग से सम्बन्धित थे। अतएव उनको शिक्षा ग्रहण करने की उपयुक्त सुविधाएँ उपलब्ध हुईं। स्टीफैंस ने भी बुद्धि-लब्धि के सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट किया कि यदि बालकों को अच्छे वातावरण में पाला जाये, तो उसकी बुद्धि-लब्धि में वृद्धि होती है।

4. व्यक्तित्व पर प्रभाव

उत्तम वातावरण में पलने पर बालक व्यक्तित्व का विकास बहुमुखी होता है। यदि निर्धन माता-पिता के बालक को उत्तम वातावरण में पाला जाये, तो वह अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है। इस सम्बन्ध में कूले का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। उसने 71 साहित्यकारों का अध्ययन करके पता लगाया कि उनमें से दो साहित्यकार निर्धन परिवारों के थे, किन्तु उत्तम वातावरण के कारण वे दोनों महान् साहित्यकार बन सके।

5. प्रजाति की श्रेष्ठता पर प्रभाव

क्लार्क का मत है कि कुछ प्रजातियों की बौद्धिक श्रेष्ठता का कारण वंशानुक्रम न होकर वातावरण है। उसने यह बात अमरीका के कुछ गोरे और नीग्रो लोगों की बुद्धि परीक्षा लेकर सिद्ध की। उसके समान अनेक अन्य विद्वानों का विचार है कि नीग्रो प्रजाति की बुद्धि का स्तर इसलिए निम्न है, क्योंकि उनको अमेरिका की श्वेत प्रजाति

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

के समान शैक्षिक, सांस्कृतिक और सामाजिक वातावरण उपलब्ध नहीं होता है।

6. अनाथ बच्चों पर प्रभाव

समाज कल्याण केन्द्रों में अनाथ और परावलम्बी बच्चे आते है। वे साधारणतः निम्न परिवारों के होते हैं, पर केन्द्रों में उनका अच्छी विधि से पालन-पोषण किया जाता है, उनको अच्छे वातावरण में रखा जाता है और उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है। इस प्रकार के वातावरण में पाले जाने वाले बच्चों के सम्बन्ध में वुडवर्थ ने कहा है कि–

> वे समग्र रूप में अपने माता-पिता से अच्छे ही सिद्ध होते हैं।

7. जुड़वाँ बच्चों पर प्रभाव

जुड़वाँ बच्चों के शारीरिक लक्षणों, मानसिक शक्तियों और शैक्षिक योग्यताओं में अत्यधिक समानता होती है। न्यूमैन, फ्रीमैन और होलजिंगर ने 20 जोड़े जुड़वाँ बच्चों को अलग-अलग वातावरण में रखकर उनका अध्ययन किया। उन्होंने एक जोड़े के एक बच्चे को गाँव के फार्म पर और दूसरे को नगर में रखा। बड़े होने पर दोनों बच्चों में पर्याप्त अन्तर पाया गया। फार्म का बच्चा अशिष्ट चिन्ताग्रस्त और कम बुद्धिमान था। उसके विपरीत, नगर का बच्चा शिष्ट, चिन्तामुक्त और अधिक बुद्धिमान था। स्टीफेन्स का विचार है कि–

> इस प्रकार के अध्ययनों से हम यह निर्णय कर सकते हैं कि पर्यावरण का बुद्धि पर साधारण प्रभाव होता है और उपलब्धि पर अधिक विशेष प्रभाव होता है।

8. बालक पर बहुमुखी प्रभाव

वातावरण, बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक इत्यादि सभी अंगों पर प्रभाव डालता है। इसकी पुष्टि **एवेरॉन के जंगली बालक** के उदाहरण से की जा सकती है। इस बालक को जन्म के बाद ही भेड़िया उठा ले गया था और उसका पालन-पोषण जंगली पशुओं के बीच में हुआ था। कुछ शिकारियों ने उसे सन् 1799 ई. में पकड़ लिया। उस समय उसकी आयु 11 या 12 वर्ष की थी। उसकी आकृति पशुओं की सी थी और वह उनके समान हाथों-पैरों से चलता था। वह कच्चा मांस खाता था। उसमें मनुष्य के समान बोलने और विचार करने की शक्ति नहीं थी। उसको मनुष्य के समान सभ्य और शिक्षित बनाने के सब प्रयास विफल हुए।

वातावरण के संचयी प्रभाव का उल्लेख करते हुए स्टीफेन्स ने लिखा है–

> एक बच्चा जितने अधिक समय उत्तम वातावरण में रहता है, वह उतना ही अधिक इस पर्यावरण की ओर प्रवृत्त होता है। अगर एक बच्चा चतुर माता-पिता के साथ अधिक समय तक रहता है, तो वह उतना ही अधिक चतुर होता है। इसी प्रकार, जितने अधिक समय वह हानिकारक पर्यावरण में रहता है, प्रायः उतना ही वह राष्ट्रीय मान से गिर जाता है। पहली दृष्टि में इसमें पर्यावरण के प्रभाव का निस्सन्देह प्रमाण प्राप्त होता है, परन्तु हमें इस बात को भी स्मरण रखना चाहिए कि पिता के साथ बच्चे की समानता, लम्बाई में और दाढ़ी के रंग में भी आयु के साथ बढ़ती जायेगी, अर्थात् उक्त समानता की वृद्धि का कुछ अंश आनुवंशिकता की परिपक्वता के कारण हो सकता है।

4.9 वंशानुक्रम एवं वातावरण का सम्बन्ध

वंशानुक्रम तथा वातावरण, एक-दूसरे से पृथक् नहीं हैं। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। बीज तथा खेत जैसा इनका सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरे की सार्थकता नहीं है। स्वस्थ बीज तभी स्वस्थ पौधे का रूप धारण कर सकता है जबकि वातावरण स्वस्थ एवं संतुलित हो। अच्छी खाद, समय पर पानी, धरती की तैयारी, निराई-गुड़ाई आदि वातावरण की सृष्टि करती है। लैण्डिस ने इसलिये कहा है–

> वंशानुक्रम हमें विकसित होने की क्षमताएँ प्रदान करता है। इन क्षमताओं के विकसित होने के अवसर हमें वातावरण से मिलते हैं, वंशानुक्रम हमें कार्यशील पूँजी देता है और परिस्थिति हमें इसको निवेश करने के अवसर प्रदान करती है।

मैकआइवर एवं पेज ने वंशानुक्रम एवं वातावरण, दोनों के महत्त्व को स्वीकार किया है। इन्होंने लिखा है–

> जीवन की प्रत्येक घटना दोनों का परिणाम होती है। किसी भी निश्चित परिणाम के लिये एक उतनी ही आवश्यक है जितनी कि दूसरी। कोई भी न तो हटाई जा सकती है और न ही कभी पृथक् की जा सकती है।

वुडवर्थ तथा मारेक्विस ने कहा है–

> व्यक्ति, वंशानुक्रम तथा वातावरण का योग नहीं, गुणनफल है।

विकास की किसी अवस्था में बालक या व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विशेषताओं की व्याख्या करने के लिए साधारणतः वंशानुक्रम और वातावरण शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बालक के निर्माण में वंशानुक्रम और वातावरण का किस सीमा तक प्रभाव पड़ता है–यह विषय सदैव विवादास्पद था और अब भी है। प्राचीन समय में यह विश्वास किया जाता था कि वंशानुक्रम और वातावरण एक-दूसरे से पृथक् थे और बालक या व्यक्ति के व्यक्तित्व और कार्यक्षमता को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते थे। आधुनिक समय में इस धारणा में पर्याप्त परिवर्तन हो गया हैं। अब हमारे इस विश्वास में निरन्तर वृद्धि होती चली जा रही है कि व्यक्ति–बालक, किशोर या प्रौढ़ के रूप में जो कुछ सोचता, करता या अनुभव करता है, वह वंशानुक्रम के कारकों और वातावरण के प्रभावों के पारस्परिक सम्बन्धों का परिणाम होता है।

हमारे विश्वास में निरन्तर वृद्धि के कारण हैं–वंशानुक्रम और वातावरण सम्बन्धी परीक्षण। इन परीक्षणों ने सिद्ध कर दिया है कि समान वंशानुक्रम और समान वातावरण होने पर भी बच्चों में विभिन्नता होती है। अतः बालक के विकास पर न केवल वंशानुक्रम का वरन् वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। इसकी पुष्टि करते हुए क्रो व क्रो ने लिखा है–

> व्यक्ति का निर्माण न केवल वंशानुक्रम और न केवल वातावरण से होता है। वास्तव में वह जैविकदाय और सामाजिक विरासत के एकीकरण की उपज है।

4.10 वातावरण एवं वंशानुक्रम का सापेक्ष महत्त्व

वंशानुक्रम और वातावरण के सापेक्ष महत्त्व के बारे में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि कुछ गुण वंशानुगत होते हैं, जिन पर वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ऐसे विद्वान वंशानुक्रम को वातावरण से सर्वोपरि मानते हैं। इसके विपरीत व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक जैसे गाल्टन, वाटसन आदि के अनुसार वातावरण अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। उनका विश्वास है कि वंशानुक्रम का मानव की योग्यताएँ, क्षमताएँ तथा शारीरिक विशेषताएँ निर्धारित करने में कोई योगदान नहीं होता है। इस प्रकार दोनों प्रकार के विचार प्रकट करने वाले

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

विद्वानों को आज के युग में कट्टरपन्थी माना जाता है।

अब अधिकांश शिक्षाशास्त्री यह अनुभव करते हैं कि **वंशानुक्रम** और **वातावरण** दोनों ही महान् शक्तियाँ है। ये दोनों ही शिक्षक के विकास को प्रभावित करती हैं। दोनों ही गाड़ी के दो पहियों के समान हैं। मैकाइवर एवं पेज ने वंशानुक्रम तथा वातावरण के सापेक्ष महत्त्व को स्वीकृत करते हुए अपने विचार इस प्रकार स्पष्ट किए,

> जीवन की प्रत्येक घटना दोनों का परिणाम होती है। परिणाम के लिए दोनों ही समान रूप से आवश्यक हैं। इनमें से किसी को न तो घटाया जा सकता है और न ही अलग किया जा सकता है।

4.10.1 बालकों के लिए महत्त्व

बालक की शिक्षा और विकास में वंशानुक्रम और वातावरण के सापेक्षिक महत्त्व को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

1. वंशानुक्रम व वातावरण की अपृथकता

शिक्षा की किसी भी योजना में वंशानुक्रम और वातावरण को एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार आत्मा और शरीर का सम्बन्ध है, उसी प्रकार वंशानुक्रम और वातावरण का भी सम्बन्ध है। अतः बालक के सम्यक् विकास के लिए वंशानुक्रम और वातावरण का संयोग अनिवार्य है। मैकाइवर एवं पेज ने लिखा है–

> जीवन की प्रत्येक घटना दोनों का परिणाम होती है। इनमें से एक, परिणाम के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना की दूसरा। कोई न तो कभी हटाया जा सकता है और न कभी पृथक् किया जा सकता है।

2. वंशानुक्रम व वातावरण का समान महत्त्व

हमें साधारणतया यह प्रश्न सुनने को मिलता है कि बालक की शिक्षा और विकास में वंशानुक्रम अधिक महत्त्वपूर्ण है या वातावरण? इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता है। यह प्रश्न पूछना यह पूछने के समान है कि मोटरकार के लिए इंजन अधिक महत्त्वपूर्ण है या पेट्रोल। जिस प्रकार मोटरकार के लिए इंजन और पेट्रोल का समान महत्त्व है उसी प्रकार बालक के विकास में वंशानुक्रम और वातावरण का समान महत्त्व है। वुडवर्थ ने ठीक लिखा है–

> यह पूछने का कोई मतलब नहीं निकलता है कि व्यक्ति के विकास के लिए वंशानुक्रम और वातावरण में से कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है। दोनों में से प्रत्येक पूर्ण रूप से अनिवार्य है।

3. वंशानुक्रम व वातावरण की पारस्परिक निर्भरता

वंशानुक्रम और वातावरण में पारस्परिक निर्भरता है। ये एक-दूसरे के पूरक, सहायक और सहयोगी हैं। बालक को जो मूलप्रवृत्तियाँ वंशानुक्रम से प्राप्त होती हैं, उनका विकास वातावरण में होता है, उदाहरणार्थ, यदि बालक में बौद्धिक शक्ति नहीं है, तो उत्तम से उत्तम वातावरण भी उसका मानसिक विकास नहीं कर सकता है। इसी प्रकार बौद्धिक शक्ति वाला बालक प्रतिकूल वातावरण में अपना मानसिक विकास नहीं कर सकता है। वस्तुतः बालक के सम्पूर्ण व्यवहार की सृष्टि–वंशानुक्रम और वातावरण की अन्तःक्रिया द्वारा होती है। मोर्स एवं विंगो का मत है–

> मानव व्यवहार की प्रत्येक विशेषता वंशानुक्रम और वातावरण की अन्तःक्रिया का फल है।

4. वंशानुक्रम व वातावरण के प्रभावों में अन्तर करना असम्भव

यह बताना असम्भव है कि बालक की शिक्षा और विकास में वंशानुक्रम और वातावरण का कितना प्रभाव पड़ता है। वंशानुक्रम में वे सभी बातें आ जाती हैं जो व्यक्ति के जन्म के समय नहीं वरन् गर्भाधान के समय उपस्थित थी। इसी प्रकार वातावरण में वे सब बाह्य तत्त्व आ जाते हैं जो व्यक्ति को जन्म के समय से प्रभावित करते हैं। अतः जैसा कि वुडवर्थ ने लिखा है–

> व्यक्ति के जीवन और विकास पर प्रभाव डालने वाली प्रत्येक बात वंशानुक्रम और वातावरण के क्षेत्र में आ जाती है। पर ये बातें इतनी पेचीदा ढंग से संयुक्त रहती है कि बहुधा वंशानुक्रम और वातावरण के प्रभावों में अन्तर करना असम्भव हो जाता है।

5. बालक, वंशानुक्रम व वातावरण की उपज

बालक का विकास इसलिए नहीं होता है कि उसे कुछ बातें वंशानुक्रम से और कुछ वातावरण से प्राप्त होती है। इसी प्रकार, यह भी नहीं कहा जा सकता है कि वह अपने वंशानुक्रम और वातावरण में से किसकी अधिक उपज है। सत्य यह है कि वह वंशानुक्रम और वातावरण का योगफल न होकर गुणनफल है। वुडवर्थ का कथन है–

> वंशानुक्रम और वातावरण का सम्बन्ध जोड़ के समान न होकर गुणा के समान अधिक है। अतः व्यक्ति इन दोनों तत्त्वों का गुणनफल है, योगफल नहीं।

सारांश में, हम कह सकते हैं कि बालक के विकास के लिए वंशानुक्रम और वातावरण का समान महत्त्व है। उसके निर्माण में दोनों का समान योग है। इनमें से एक की भी अनुपस्थिति में उसका सम्यक् विकास असम्भव है। गैरेट का कथन है–

> इससे अधिक निश्चित बात और कोई नहीं है कि वंशानुक्रम और वातावरण एक–दूसरे को सहयोग देने वाले प्रभाव हैं और दोनों ही बालक की सफलता के लिए अनिवार्य है।

4.10.2 शिक्षकों के लिए महत्त्व

शिक्षक के लिए वंशानुक्रम और वातावरण का क्या महत्त्व है और वह उनके ज्ञान में अपना और अपने छात्रों का किस प्रकार कल्याण कर सकता है, इस पर हम अलग-अलग शीर्षकों के अन्तर्गत विचार कर रहे हैं ये विचार निम्नलिखित हैं–

1. वंशानुक्रम का महत्त्व

1. वंशानुक्रम के फलस्वरूप बालकों में शारीरिक विभिन्नता पाई जाती है। शिक्षक इस ज्ञान से सम्पन्न होकर उनके शारीरिक विकास में योगदान दे सकता है।
2. बालकों और बालिकाओं में लिंगीय भेद वंशानुक्रम के कारण होता है, जिससे विभिन्न विषयों में उनकी योग्यता कम या अधिक होती है। शिक्षक इस ज्ञान से उनके लिए उपयुक्त विषयों के अध्ययन की व्यवस्था कर सकता है।
3. वंशानुक्रम के कारण बालकों की जन्मजात क्षमताओं में अन्तर होता है। शिक्षक इस बात को ध्यान में रखकर कम प्रगति करने वाले बालकों को अधिक प्रगति करने में सहयोग दे सकता है।
4. वंशानुक्रम के फलस्वरूप बालकों में अनेक प्रकार की विभिन्नताएँ पाई जाती हैं, जो उनके विकास के साथ-साथ अधिक से अधिक स्पष्ट होती जाती हैं। शिक्षक, बालकों की इन विभिन्नताओं का

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

अध्ययन करके इनके अनुरूप शिक्षा की आयोजना तैयार कर सकता है।

5. वंशानुक्रम एक नियम बताता है कि योग्य माता-पिता के बच्चे अयोग्य और अयोग्य माता-पिता के बच्चे योग्य हो सकते हैं। इस नियम को अच्छी तरह समझने वाला शिक्षक ही बालकों के प्रति उचित प्रकार का व्यवहार कर सकता है।
6. बालकों को वंशानुक्रम की कुछ प्रवृत्तियाँ भी प्राप्त होती हैं, जो वांछनीय और अवांछनीय दोनों प्रकार की होती हैं। शिक्षक इन प्रवृत्तियों का अध्ययन करके वांछनीय प्रवृत्तियों का विकास और अवांछनीय प्रवृत्तियों का दमन या मार्गान्तीकरण कर सकता है।
7. वंशानुक्रम के कारण बालकों की सीखने की योग्यता में अन्तर होता है। शिक्षक इस ज्ञान से अवगत होकर देर से सीखने वाले बालकों के प्रति सहनशील और जल्दी सीखने वाले बालकों को अधिक कार्य दे सकता है।
8. वुडवर्थ का कहना है कि देहाती बालकों की अपेक्षा शहरी बालकों के मानसिक स्तर की श्रेष्ठता आंशिक रूप से वंशानुक्रम के कारण होती है। शिक्षक इस ज्ञान से अवगत होकर अपने शिक्षण को उनके मानसिक स्तरों के अनुसार बना सकता है।

2. वातावरण का महत्त्व

1. सोरेन्सन का कहना है कि शिक्षा का ज्ञान उत्तम वातावरण बालकों की बुद्धि और ज्ञान की वृद्धि में प्रशंसनीय योगदान देता है। इस बात की जानकारी रखने वाला शिक्षक अपने छात्रों के लिए उत्तम से उत्तम शैक्षिक वातावरण प्रदान करने की चेष्ठा कर सकता है।
2. बालक अपने परिवार, पड़ोस, मुहल्ले और खेल के मैदान में अपना पर्याप्त समय व्यतीत करता है और इससे प्रभावित होता है। शिक्षक इन स्थानों के वातावरण को ध्यान में रखकर ही बालक का उचित पथ-प्रदर्शन करता है।
3. रूथ बैंडिक्ट का कहना है कि व्यक्ति जन्म से ही एक निश्चित सांस्कृतिक वातावरण में रहता है और उसके आदर्शों के अनुरूप ही आचरण करता है। इस तथ्य को जानने वाला शिक्षक, बालक को अपना सांस्कृतिक विकास करने में योगदान दे सकता है।
4. यूनेस्को के कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि वातावरण का बालकों की भावनाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ता है और उससे उनके चरित्र का निर्माण भी होता है। इस कथन में विश्वास करके शिक्षक, बालकों के लिए ऐसे वातावरण का निर्माण कर सकता है, जिससे न केवल उनकी भावनाओं का सन्तुलित विकास हो, वरन् उनके चरित्र का भी निर्माण हो सके।
5. अनुकूल वातावरण में ही जीवन का विकास होता है और व्यक्ति आगे की ओर बढ़ता है। इस बात को समझने वाला शिक्षक अपने छात्रों की रूचियों, प्रवृत्तियों और क्षमताओं के अनुसार वातावरण प्रदान करके उनको आगे की ओर बढ़ने में सहायता प्रदान कर सकता है।
6. वातावरण, बालक के विकास की दिशा निर्धारित करता है। वातावरण ही यह निश्चित करता है कि बालक बड़ा होकर अच्छा या बुरा, चरित्रवान् या चरित्रहीन, संयमी या व्यभिचारी, व्यापारी या साहित्यकार, देशप्रेमी या देशद्रोही बनेगा। इस तथ्य पर चिंतन करने वाला शिक्षक अपने छात्रों के लिए ऐसे वातावरण का निर्माण कर सकता है, जिससे उनका विकास उचित दिशा में हो।
7. वातावरण के महत्त्व को समझने वाला शिक्षक, विद्यालय में बालकों के लिए ऐसा वातावरण उपस्थित कर सकता है, जिससे उनमें विचारों की उचित अभिव्यक्ति, शिष्ट सामाजिक व्यवहार, कर्त्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान, स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण इत्यादि गुणों का अधिकतम विकास हो सके।
8. प्रत्येक समाज का अपना एक विशिष्ट वातावरण होता है। बालक को इसी समाज के वातावरण में अपना अनुकूलन करना पड़ता है। इस बात से अच्छी तरह से परिचित होने वाला शिक्षक, विद्यालय को लघु समाज का रूप प्रदान करके बालकों को अपने विस्तृत समाज के वातावरण से अनुकूलन करने की शिक्षा दे सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक के लिए वंशानुक्रम और वातावरण दोनों का ज्ञान बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस तरह के ज्ञान से सम्पन्न होकर ही शिक्षक अपने छात्रों का वांछित और सन्तुलित विकास कर सकता है। इसलिए सारेन्सन का विचार है कि

> शिक्षक के लिए मानव-विकास पर वंशानुक्रम और वातावरण के सापेक्षिक प्रभाव और पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान विशेष महत्त्व रखता है।

वंशानुक्रम तथा वातावरण के इस विश्लेषण-संश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वातावरण तथा वंशानुक्रम एक सिक्के के दो पहलू हैं। ये एक दूसरे के लिए अति अनिवार्य हैं। मानव विकास के लिए इनको एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता।

****

प्रगण्य प्रकाशन द्वारा CTET एवं प्रत्येक राज्य के TET (UPTET, MP Samvida, BTET, UTET, JTET, HTET, CGTET, HPTET) के लिए मॉडल पेपर की फ्री PDF प्रकाशित की जाती है। मॉडल पेपर की फ्री PDF प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित Whatsapp No. अपने कॉलेज के क्लास ग्रुप या कोचिंग के क्लास ग्रुप या अन्य स्टडी ग्रुप में जोंडे। आपके ग्रुप में मॉडल पेपर भेज दिए जाएँगें।

UPTET	- 95301 43210
MP Samvida	- 95302 43210
BTET	- 95302 43210
UTET	- 72209 29294
JTET	- 72209 29239
HTET	- 72209 29266
CGTET	- 72209 28969
HPTET	- 72209 28535

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

www.praganya.org

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वंशानुक्रम से अभिप्राय है–
(1) शक्तियाँ, दोष व गुण, जो गर्भाधान के समय नींव कोष को मिलते हैं।
(2) वे क्षमताएँ जो बालक अपने पूर्वजों से प्राप्त करता है।
(3) इसमें शारीरिक व मानसिक शक्तियाँ आती हैं।
(4) उपरोक्त सभी

2. वंशानुगतता का निर्धारण होता है–
(1) जीन्स के द्वारा (2) क्रोमोसोम्स के द्वारा
(3) न्यूरॉन्स के द्वारा (4) सभी

3. वंशक्रम सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं–
(1) गाल्टन (2) वीजमैन
(3) मैण्डल (4) सोरेनन

4. माता–पिता से सन्तानों को प्राप्त होने वाले गुणों को क्या कहते हैं?
(1) वंश (2) वंशानुक्रम
(3) वातावरण (4) इनमें से कोई नहीं

5. आनुवंशिकता को ..... सामाजिक संरचना माना जाता है।
(1) गौण (2) गत्यात्मक
(3) स्थिर (4) प्राथमिक

6. बुद्धि को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण कारक कौनसा है?
(1) वातावरण (2) आनुवंशिकता
(3) उपर्युक्त दोनों ही (4) इनमें से कोई नहीं

7. वंशक्रम सम्बन्धी नियम है–
(1) समानता का नियम (2) विभिन्नता नियम
(3) प्रत्यागमन का नियम (4) उपरोक्त सभी

8. माता–पिता से वंशजों में स्थानान्तरित होने वाले लक्षणों को कहा जाता है–
(1) पर्यावरण (2) जीन
(3) आनुवंशिकता (4) होम्योस्टैसिस

9. व्यक्तित्व एवं बुद्धि में वंशानुक्रम की–
(1) नाममात्र की भूमिका है। (2) महत्त्वपूर्ण भूमिका है।
(3) अपूर्वानुमेय भूमिका है। (4) आकर्षक भूमिका है।

10. आनुवंशिकता तथा वातावरण परस्पर हैं–
1. निर्भर 2. पूरक
3. सहयोगी
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) केवल 3 (4) ये सभी

11. वंशानुक्रम व वातावरण का सम्बन्ध है–
(1) वंशानुक्रम व वातावरण एक दूसरे के विरोधी है।
(2) वंशानुक्रम महत्त्वपूर्ण है वातावरण नहीं।
(3) जीवन वंशानुक्रम व वातावरण का योग है।
(4) समस्त दोषों का कारण वातावरण है।

12. बालकों में वंशानुक्रम के कारण पायी जाती है–
(1) शारीरिक विभिन्नता (2) शैक्षिक विभिन्नता
(3) आचरण की विभिन्नता (4) सम्पन्नता की विभिन्नता

13. आनुवंशिकता के मूल संवाहक माने जाते हैं–
(1) प्रोटीन (2) विटामिन्स
(3) जीन्स (4) कार्बोहाइड्रेट्स

14. किसी बच्चे के ऊपर वंशानुक्रम से पड़ने वाला प्रभाव नहीं है–
(1) शारीरिक लक्षणों पर प्रभाव
(2) बुद्धि पर प्रभाव
(3) चरित्र पर प्रभाव
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

15. मानव व्यक्तित्व परिणाम है–
(1) केवल आनुवंशिकता का
(2) पालन–पोषण और शिक्षा का
(3) आनुवंशिकता और वातावरण की अन्तःक्रिया का
(4) केवल वातावरण का

16. व्यक्तित्व विकास में ..... एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।
(1) आनुवंशिकता
(2) वातावरण
(3) आनुवंशिकता और वातावरण का मिश्रण
(4) परीक्षाओं की संख्या

17. बालकों में पायी जाने वाली जन्मजात विभिन्नताओं के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारक कौनसा है?
(1) पर्यावरण (2) वंशानुक्रम
(3) समाज (4) जाति–धर्म

18. निम्नलिखित में से कौनसा मुख्य रूप से आनुवंशिकता सम्बन्धी कारक है?
(1) आँखो का रंग
(2) सामाजिक गतिविधियों में भागीदारिता
(3) समकक्ष व्यक्तियों के समूह के प्रति अभिवृत्ति
(4) चिन्तन पैटर्न

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.	9.	10.	11.	12.	13.	14.	15.	16.	17.	18.				
(4)	(1)	(3)	(2)	(3)	(3)	(4)	(3)	(1)	(4)	(3)	(1)	(3)	(4)	(3)	(3)	(2)	(1)				

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

19. निम्नलिखित में से ..... के अतिरिक्त सभी वातावरणीय कारक विकास को आकार देते हैं।
(1) पौष्टिकता की गुणवत्ता (2) संस्कृति
(3) शिक्षा की गुणात्मकता (4) शारीरिक गठन

20. बाह्य वातावरण के अन्तर्गत निम्न में कौनसी परिस्थिति आती है?
(1) भौतिक (2) सामाजिक
(3) सांस्कृतिक (4) उपर्युक्त सभी

21. पिछड़ेपन का कारक नहीं है–
(1) शारीरिक (2) स्वभाव सम्बन्धी
(3) वंशानुक्रम (4) राजनीतिक

22. पिछड़ेपन का/के मूल कारक है/हैं–
(1) वंशानुक्रम
(2) वातावरण
(3) 1 व 2 दोनों
(4) इनमें से कोई नहीं

23. निम्नलिखित में से कौनसा/से किसी बच्चे पर आनुवंशिकता का/के प्रभाव है/हैं?
1. विशिष्ट शारीरिक लक्षण
2. विशिष्ट बुद्धि
3. विशिष्ट चरित्र
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) 1 एवं 2 (4) ये सभी

24. आपकी कक्षा का एक छात्र बुद्धि से बहुत श्रेष्ठ है, लेकिन शरीर से काफी कमजोर है। आप उसके पिता से मिलते हैं तथा देखते हैं कि उसके पिता भी बुद्धि से तो श्रेष्ठ हैं, किन्तु शरीर से काफी कमजोर है। आपके अनुसार इसका क्या कारण हो सकता है?
(1) पौष्टिक भोजन का अभाव
(2) पिछले कई वर्षों की बीमारी
(3) आनुवंशिकता का प्रभाव
(4) उपरोक्त में से कोई नहीं

25. आपकी कक्षा का एक छात्र, कक्षा में रोज अनुशासनहीनता करता है। आप इस समस्या के समाधान हेतु निम्न में से क्या उपाय अपनाएँगे?
(1) उसके वंशानुक्रम तथा वातावरण का पता लगाकर उसका सही दिशा में मार्गदर्शन करेंगे।
(2) छात्र को रोज पीटेंगे, जब तक कि वह कक्षा में अनुशासनहीनता करना नहीं छोड़ देता है।
(3) स्कूल से उसका नाम काटने के लिए प्रधानाचार्य से कहेंगे।
(4) उसको इलाज के लिए किसी अच्छे मनोचिकित्सक के पास लेकर जाएँगे।

26. बालक क्या है? उसकी क्षमता क्या है? उसका पर्याप्त विकास क्यों नहीं हो पा रहा है? आदि प्रश्नों का/के उत्तरदायी तत्त्व है/हैं–
1. वंशानुक्रम 2. वातावरण
(1) केवल 1 (2) 1 एवं 2 दोनों
(3) केवल 2 (4) इनमें से कोई नहीं

27. बच्चे के विकास में आनुवंशिकता और वातावरण की भूमिका के बारे में निम्नलिखित में से कौनसा सत्य है?
(1) आनुवंशिकता और वातावरण दोनों एक बच्चे के विकास में 50–50% योगदान रखते हैं।
(2) समवयस्कों और पित्रैक (genes) का सापेक्ष योगदान योगात्मक नहीं होता।
(3) आनुवंशिकता और वातावरण एकसाथ परिचालित नहीं होते।
(4) सहज रूझान वातावरण से सम्बन्धित है, जबकि वास्तविक विकास के लिए आनुवंशिकता जरूरी है।

28. आप दिल्ली के किसी केन्द्रीय विद्यालय में शिक्षक हैं। आपकी कक्षा का एक छात्र अफज़ल हिमाचल प्रदेश का रहने वाला है तथा एक अन्य छात्र सुदीप केरल का मूल निवासी है। आप दोनों के रंग, रूप, स्वभाव आदि में काफी विभिन्नताएँ देखते है। इसका प्रमुख कारण हो सकता है–
(1) वातावरणीय प्रभाव
(2) विद्यालय में दोनों का शैक्षिक स्तर
(3) आपकी शिक्षण विधि
(4) उपरोक्त सभी

29. **प्रत्येक छात्र स्वयं में विभिन्न है।** इस तथ्य का प्रमुख कारण क्या है?
1. भौतिक वातावरण 2. सामाजिक वातावरण
3. वंशानुक्रम
(1) केवल 1 (2) 1 एवं 2
(3) 1 एवं 3 (4) ये सभी

30. आज बालापराध की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं, जिसके कारणवश शिक्षण प्रणाली में जटिलताएँ आ रही हैं। आपके अनुसार इसका प्रमुख कारण क्या है?
1. दूषित वंशानुक्रम 2. दूषित सामाजिक वातावरण
3. दूषित परिवेश
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) केवल 3 (4) ये सभी

31. बच्चे की आनुवंशिकता द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर सर्वोत्तम सम्भावित विकास के लिए एक शिक्षक को क्या करना चाहिए?
(1) उसे बालक के परिवेश में सुधार करना चाहिए।
(2) उसे बालक को अधिक–से–अधिक पुस्तक पढ़ने की सलाह देनी चाहिए।
(3) उसे खेल–कूद में अधिक–से–अधिक भाग लेने की सलाह देनी चाहिए।
(4) उसे विकास के लिए प्रेरित करना चाहिए।

19.	20.	21.	22.	23.	24.	25.	26.	27.	28.	29.	30.	31.									
(4)	(4)	(4)	(3)	(4)	(3)	(1)	(2)	(2)	(1)	(4)	(4)	(1)									

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

32. निम्नलिखित में से किस प्रकार के विकास पर आनुवंशिकता एवं वातावरण का प्रभाव पड़ता है?
1. सामाजिक विकास
2. संवेगात्मक विकास
3. मानसिक विकास
4. शारीरिक विकास
(1) केवल 4 (2) 1 एवं 2
(3) 1,2 एवं 3 (4) ये सभी

33. किसी बालक का शारीरिक लक्षण प्रभावित होता है–
(1) केवल पिता के डी.एन.ए. से
(2) केवल माता के डी.एन.ए. से
(3) माता एवं पिता दोनों के डी.एन.ए. से
(4) न तो माता के और न ही पिता के डी.एन.ए. से

34. बालक के सम्पूर्ण व्यवहार की सृष्टि ..... और ..... की अन्तः क्रिया द्वारा होती है।
(1) माता–पिता के व्यवहार
(2) उसके मित्रों, भाई–बहनों के व्यवहार
(3) उसके शिक्षकों, अभिभावकों के व्यवहार
(4) आनुवंशिकता, वातावरण

35. बच्चे के विकास में उसके परिवेश का जो प्रभाव उस पर पड़ता है, उसे हम ..... कहते हैं।
(1) पालन–पोषण (2) सामाजिक विकास
(3) संवेगात्मक विकास (4) परिवेश के लाभ

36. परिवेश के प्रभाव, मानव के ..... और ..... दोनों चरणों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।
(1) सामाजिक, आर्थिक
(2) समाज, विद्यालय में शिक्षा
(3) प्रसव–पूर्व, प्रसव के उपरान्त
(4) परिवार, विद्यालय में विकास

37. बालक को जो मूल प्रवृत्तियाँ ..... से प्राप्त होती है, उनका विकास ..... में होता है।
(1) वातावरण, वंशानुक्रम (2) वंशानुक्रम, वातावरण
(3) परिवार, विद्यालय (4) समाज, परिवार

38. बालक के सम्यक् विकास के लिए निम्नलिखित में किनका सहयोग सर्वाधिक अनिवार्य है?
(1) उसके विद्यालय और परिवार का
(2) उसके वंशानुक्रम और वातावरण का
(3) उसके परिवार और समाज का
(4) उसके समाज और राष्ट्र का

39. रूचियों, मूलप्रवृत्तियों एवं स्वाभाविक आवेगों का स्वस्थ विकास हो सकता है यदि–
(1) वंशानुक्रम स्वस्थ हो
(2) बालक का स्वास्थ्य अच्छा हो
(3) माता–पिता शिक्षित हो
(4) वातावरण जिसमें रहता है, स्वस्थ होना चाहिए।

40. बालक पर वातावरण किस प्रकार का प्रभाव डालता है?
(1) शारीरिक संरचना पर प्रभाव
(2) बुद्धि पर प्रभाव
(3) व्यक्तित्व पर प्रभाव
(4) मानसिक विकास पर प्रभाव
सही विकल्प चुनें–
(1) केवल 1 सही (2) केवल 2 सही
(3) केवल 3 सही (4) सभी 1 से 4 सही

41. वंशानुक्रम बालक को किस ढंग से प्रभावित करता है?
1 शारीरिक गुणों पर प्रभाव
2 मूल प्रवृत्तियों पर प्रभाव
3 बौद्धिक योग्यताओं पर प्रभाव
4 व्यावसायिक कौशलों पर प्रभाव
(1) केवल 1 सही (2) केवल 2 सही
(3) केवल 3 सही (4) सभी 1 से 4 सही

42. निम्न में से मनोविज्ञान की विषयवस्तु की प्रमुख विशेषता क्या है?
(1) परिवर्तनशीलता (2) आनुवंशिकता का प्रभाव
(3) जटिलता (4) उपर्युक्त सभी

43. विद्यालय वातावरण सम्बन्धी निम्नलिखित कारकों में से बुद्धि को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला कारक कौनसा है?
(1) अनुशासन (2) पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाकलाप
(3) पाठ्यक्रम (4) उपर्युक्त सभी

44. मन्दबुद्धि माता–पिता की सन्तान मन्दबुद्धि तथा प्रतिभाशाली माता–पिता की सन्तान तीव्र बुद्धि वाली होती है। यह प्रसिद्ध शोध निष्कर्ष सर्वप्रथम निम्न में से किसने दिया था?
(1) गिब्सन ने (2) गोडार्ड ने
(3) गैरीसन ने (4) गिलफोर्ड ने

45. व्यक्तित्व के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों का मत क्या है?
(1) व्यक्तित्व वह है, जो पैतृक विरासत से मुक्त रहता है।
(2) व्यक्तित्व वह है, जो जन्म से विद्यमान रहता है।
(3) संस्कृति, व्यक्तित्व को परिमार्जित करती है।
(4) व्यक्तित्व समूह संस्कृति से प्रभावित एवं परिवर्तित होता है।

32.	33.	34.	35.	36.	37.	38.	39.	40.	41.	42.	43.	44.	45.								
(4)	(3)	(4)	(1)	(3)	(2)	(2)	(1)	(4)	(4)	(4)	(4)	(2)	(4)								

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

46. यदि माता-पिता अपने बालकों में परस्पर भेदभाव करते हैं, तो ऐसे परिवेश में बालकों का विकास निम्न में से किस प्रकार होगा?
(1) ईर्ष्यायुक्त (2) निष्पक्षतापूर्ण
(3) सामान्य (4) पक्षपातपूर्ण

47. **उच्च बौद्धिक योग्यताएँ वंशानुक्रम का परिणाम है।** सर्वप्रथम उपरोक्त तथ्य की पुष्टि किस मनोवैज्ञानिक ने की थी?
(1) डार्विन (2) गाल्टन
(3) शैल्डन (4) वाटसन

48. **माता-पिता की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं का सन्तानों में हस्तान्तरण होना वंशानुक्रम है।** यह कथन है-
(1) जेम्स ड्रेवर का (2) वुडवर्थ का
(3) बी. एन. झा का (4) रूथ बेंडिक्ट का

49. **वातावरण वह बाहरी शक्ति है, जो हमें प्रभावित करती है।** यह कथन है-
(1) वुडवर्थ का
(2) रॉस का
(3) जिस्बर्ट का
(4) एनास्टरी का

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

50. **असमायोजन, व्यक्ति और उसके वातावरण में असन्तुलन का उल्लेख करता है।** यह कथन है-
(1) बोरिंग का
(2) लैंगफेल्ड का
(3) गेट्स व अन्य का
(4) ड्रेवर का

51. **मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ वास्तविकता के धरातल पर वातावरण से पर्याप्त सामंजस्य करने की योग्यता है।** यह कथन है-
(1) लैंडेल का (2) ड्रेवर का
(3) स्किनर का (4) क्रो एवं क्रो का

52. निम्नलिखित में से किसे बाल-अपराध की श्रेणी में रखा जा सकता है?
(1) चोरी करना
(2) पढ़ने में अरूचि होना
(3) खेल-कूद में मन लगाना
(4) इनमें से कोई नहीं

53. निम्नलिखित में से किसे बाल-अपराध की श्रेणी में रखा जा सकता है?
(1) माता-पिता की बात न मानना
(2) गन्दी भाषा का प्रयोग करना
(3) आवारागर्दी करना
(4) उपरोक्त सभी

54. वह प्रक्रिया जिसके द्वारा माता-पिता यह अनुमान लगाते हैं कि उनके बच्चे में सभी सकारात्मक गुण हैं, क्योंकि एक गुण सकारात्मक है, कहलाती है-
(1) परिवेश का प्रभाव (2) हावर्थोन का प्रभाव
(3) प्रभाव का नियम (4) प्रतिलोप परिवेश का प्रभाव

55. दो जुड़वाँ बच्चों को दो अलग-अलग स्थान पर रखा जाता है। एक स्थान पर जहाँ धर्म, संस्कृति, संस्कार आदि का वातावरण है, वहीं दूसरे स्थान पर अन्धविश्वास और रूढ़िवाद का वातावरण है। बच्चों के बड़े होने पर उनके विचारों पर प्रभाव डालने वाला वातावरणीय कारक होगा?
(1) भौतिक कारक (2) सामाजिक कारक
(3) आर्थिक कारक (4) सांस्कृतिक कारक

****

अगर आप B.Ed, D.Ed, BSTC या शिक्षण अध्यापन के क्षेत्र में पढ़ाई कर रहे हैं तो आपसे निवेदन है कि निम्नलिखित Whatsapp No. अपनी कक्षा के व्हाट्सएप ग्रुप में जोड़ें। अगर आपका व्हाट्सएप ग्रुप नहीं बना हुआ है तो कृपया कम से कम 20 विद्यार्थी मिलकर व्हाट्सएप ग्रुप बना लें।

UPTET	-	95301 43210
MP Samvida	-	95302 43210
BTET	-	95302 43210
UTET	-	72209 29294
JTET	-	72209 29239
HTET	-	72209 29266
CGTET	-	72209 28969
HPTET	-	72209 28535

आपके क्लास के व्हाट्सएप ग्रुप में शिक्षा संबंधी सभी प्रतियोगी परीक्षा के पेपर्स, मॉडल पेपर्स एवं अन्य अध्ययन सामग्री भेजी जाएगी। आपका शुरू से मार्गदर्शन किया जाएगा, ताकि आप प्रतियोगी परीक्षा में अतिशीघ्र सफलता प्राप्त कर सकें।

46.	47.	48.	49.	50.	51.	52.	53.	54.	55.											
(1)	(2)	(3)	(2)	(3)	(1)	(1)	(4)	(1)	(4)											

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

अध्याय 5

अधिगम

5.1 प्रस्तावना

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में अधिगम का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि शिक्षा मनोविज्ञान अधिगम का विज्ञान है। अधिगम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है तथा किसी भी शिक्षा प्रणाली में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य एक जन्मजात अधिगमशील प्राणी है। इसका उदाहरण हमें महाभारत काल से प्राप्त होता है। महाभारत काल में वीर अभिमन्यु ने माँ के गर्भ में ही चक्रव्यूह तोड़ने का ज्ञान प्राप्त किया था। यह अधिगम का ही परिणाम है, जिससे आज विश्व ने इतनी अधिक प्रगति और विकास को प्राप्त कर लिया है। हम छात्र को शिक्षित करना चाहते है, जो वास्तविक रूप से सीखना या अधिगम ही है, जिससे वह शिक्षा प्राप्त करता है।

www.pragatya.org

5.2 अधिगम का अर्थ

अधिगम का अर्थ है **सीखना**। अधिगम एक व्यापक शब्द है, जो जन्मजात प्रतिक्रियाओं पर आधारित है। व्यक्ति अपनी जन्मजात प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर जो क्रिया करता है उसके फलस्वरूप वह किसी नवीन परिस्थिति के सम्पर्क में आता है। जब वह अपने पुराने अनुभवों के आधार पर इस नवीन परिस्थिति द्वारा अपनी प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट नहीं कर पाता है, तो वह इस परिस्थिति के साथ समायोजन करने का प्रयत्न करता है। परिणामतः वह अपने उन व्यवहारों को छोड़ देता है, जो उक्त परिस्थिति के अनुकूल नहीं होते हैं और नवीन परिस्थिति के अनुकूल व्यवहारों को अपनाने लगता है। इस प्रकार उसके व्यवहार अनुभवों के आधार पर परिवर्तित और परिमार्जित होते रहते हैं। उदाहरणार्थ, शिशु के सामने दीपक ले जाने पर वह स्वाभाविक रूप से उसकी लौ को पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाता है, किन्तु लौ हाथ में लगते ही उसे जलन का अनुभव होता है और वह हाथ खींच लेता है। पुनः जब कभी उसके सामने दीपक लाया जाता है तब वह अपने अनुभव के आधार पर अब की बार लौ को पकड़ने के लिए हाथ नहीं बढ़ाता हैं वरन् वह उससे दूर भागने का प्रयास करता है। इस प्रकार अनुभव के आधार पर उसके स्वाभाविक व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत इस प्रकार के स्वाभाविक व्यवहार में होने वाले प्रगतिशील परिवर्तन या परिमार्जन को ही अधिगम कहते हैं।

www.pragatya.org

5.3 अधिगम की परिभाषाएँ

मनोवैज्ञानिकों ने अभिगम के अर्थ एवं क्रिया को स्पष्ट करने के लिये अपने अनुसार सीखने की अनेक परिभाषाएँ दी हैं। इनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

www.pragatya.org

1. स्किनर के अनुसार–

व्यवहार के अर्जन में उन्नति की प्रक्रिया को अभिगम कहते हैं।

2. क्रो व क्रो के अनुसार–

ज्ञान और अभिवृत्ति की प्राप्ति ही अधिगम है।

3. गेट्स के अनुसार–

अधिगम अनुभव द्वारा व्यवहार का शोध है।

4. गुथरी के अनुसार–

अधिगम किसी परिस्थिति में भिन्न ढंग से कार्य करने की क्षमता है, जो परिस्थिति के अनुसार पूर्व अनुभवों के कारण आती है।

5. आर. एस. वुडवर्थ के अनुसार–

अधिगम अनुभव के परिणामस्वरूप प्राणी के व्यवहार में कुछ परिमार्जन है, जो कम से कम कुछ समय के लिए प्राणी द्वारा धारण किया जाता है।

6. पील के अनुसार–

अधिगम व्यक्ति में व्यवहार परिवर्तन है, जो उसके वातावरण के परिवर्तनों के अनुसरण से होता है।

7. किंग्जले तथा गैरी के अनुसार–

अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यवहार का अभ्यास या ट्रेनिंग द्वारा जन्म होता है या उसमें परिवर्तन होता है।

8. गिलफोर्ड के अनुसार–

व्यवहार के कारण व्यवहार में परिवर्तन ही अधिगम है।

9. कॉलविन के अनुसार–

पहले से निर्मित व्यवहार में अनुभवों द्वारा हुए परिवर्तन को अधिगम कहते हैं।

10. मॉर्गन और गिलीलैण्ड के अनुसार–

अधिगम अनुभव के परिणामस्वरूप प्राणी के व्यवहार में कुछ परिमार्जन है, जो कम से कम कुछ समय के लिए प्राणी द्वारा धारण किया जाता है।

11. मर्फी के अनुसार–

सीखना व्यवहार और दृष्टिकोण दोनों का परिमार्जन है।

12. लीज के अनुसार–

अनुभव के परिणामस्वरूप, व्यवहार में प्रदर्शित परिवर्तन ही अधिगम है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

13. हेनरी स्मिथ के अनुसार–

अनुभव के परिणामस्वरूप नये व्यवहार का वर्णन अथवा पुराने व्यवहार का सुदृढ़ीकरण ही अधिगम है।

14. हिलगार्ड के अनुसार

सीखना वह प्रक्रिया है, जिसमें नयी क्रिया का जन्म होता है अथवा सामने आई परिस्थिति के अनुकूल उसमें उचित परिवर्तन किया जाता है।

15. जी.डी. बॉज के अनुसार

अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं दृष्टिकोण सामान्य जीवन की माँगों की पूर्ति के लिए अर्जित करता है।

16. प्रेसी के अुनसार

अधिगम एक अनुभव है जिसके द्वारा कार्य में परिवर्तन एवं समायोजन होता है तथा व्यवहार की विधि प्राप्त होती है।

17. एलेक्जेण्डर के अनुसार

अधिगम को मनोवैज्ञानिक कार्यों तथा प्राणी की विशेषतोओं में क्रमिक संशोधन की प्रक्रिया कहते हैं। यह आन्तरिक तथा बाह्य कारणों द्वारा निर्धारित होता है एवं यह समायोजन तथा अनुकूलीकरण की ओर संकेत करता है।

18. कुप्पूस्वामी के अनुसार

अधिगम वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक जीव, एक परिस्थिति में उसके अन्तः क्रिया के परिणाम के रूप में व्यवहार का एक नवीन प्रतिरूप अर्जित करता है, जो कुछ अंश तक स्थिरोन्मुख रहता है तथा जीव के सामान्य व्यवहार प्रतिमान को प्रभावित करता है।

19. उदय पारीक के अनुसार

अधिगम ज्ञानात्मक, गामक अथवा व्यवहारगत निवेशों की आवश्यकता पड़ने पर उनके प्रभावात्मक एवं विभिन्न प्रयोग हेतु अधिग्रहण, आत्मीकरण व आन्तरीकरण करने तथा आगामी स्वचालित अधिगम की बढ़ी हुई क्षमता की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया है।

20. डॉ. दिग्विजय पचौरी के अनुसार

अधिगम व्यवहार में सापेक्षिक स्थायी परिवर्तन है जो अभ्यास के परिणामस्वरूप होता है। यह परिवर्तन दिशा विशेष में होता है जिससे व्यक्ति की विद्यमान प्रेरक अवस्थाओं की सन्तुष्टि होती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार अधिगम एक अर्जित क्रिया है जो प्रशिक्षण से प्राप्त होती है। अधिगम की प्रक्रिया में मनुष्य का प्रयत्न सन्निहित है। मनुष्य इसे आदत, ज्ञान और मनोवृत्तियों से प्राप्त करता है, जिससे जीवन की माँग पूरी होती है । इसे मनुष्य नई परिस्थितियों से अनुकूलन करके प्राप्त करता है। अतः जीवन की सफलता के लिए अधिगम अत्यन्त आवश्यक है।

अधिगम सम्बन्धी परिभाषाओं का गहन अध्ययन करने पर निम्न तथ्य सामने आते हैं–

1. अधिगम की प्रक्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन होता है।
2. व्यवहार में परिवर्तन पूर्व अनुभवों पर आधारित होता है।
3. व्यवहार में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव कुछ समय तक बना रहता है।
4. अधिगम व्यवहार का परिमार्जन है।
5. अधिगम के द्वारा व्यवहार में होने वाला परिवर्तन बाह्य रूप से दिखाई दे भी सकता है या नहीं भी।
6. अधिगम के द्वारा शिक्षार्थी के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का विकास होता है।

5.4 अधिगम का स्वरूप

सीखने को परिवर्तन, सुधार, विकास, उन्नति तथा समायोजन के तुल्य माना जाता है। यह केवल स्कूल की शिक्षा, साईकिल चलाने, पढ़ने या टाइप करने तक सीमित नहीं बल्कि यह एक विशाल शब्द है, जिसका व्यक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सीखने के बारे में सभी मनुष्यों का अपना–अपना अलग दृष्टिकोण है, कुछ लोगों के दृष्टिकोण निम्नलिखित हैं–

1. गैस्टाल्ट दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के अनुसार सीखने का आधार गैस्टाल्ट ढाँचे पर निर्भर है। सीखना सम्पूर्ण स्थिति की सम्पूर्ण प्रतिक्रिया है।

2. व्यवहारवादी दृष्टिकोण

व्यवहारवादियों का विचार है कि सिखाना अनुभव के परिणाम के तौर पर व्यवहार में परिवर्तन का नाम है। मनुष्य तथा दूसरे प्राणी वातावरण में प्रतिक्रिया करते हैं। बच्चा जन्म से ही अपने वातावरण से कुछ सीखने का प्रयत्न करता है।

3. होरमिक दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण मैक्डूगल की देन है। यह सीखने के लक्ष्य केन्द्रित स्वरूप पर जोर देता है। सीखना लक्ष्य को सामने रखकर किया जाता है।

4. प्रयत्न तथा भूल दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण थॉर्नडाइक की देन है। उसने बिल्लियों, कुत्तों तथा मछलियों पर बहुत से प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला कि वे प्रयत्न तथा भूल से बहुत कुछ सीखते हैं।

5. सीखने का फील्ड दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन कर्ट लेविन ने किया हैं। उन्होंने कहा है कि सीखना परिस्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक संगठन है और सीखने में प्रेरणा का महत्त्वपूर्ण हाथ है।

5.5 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

व्यवहार परिवर्तन को ही अधिगम या सीखना कहते हैं। इस आधार पर जो तत्त्व व्यवहार को प्रभावित करते हैं, वे तत्त्व ही सीखने को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। लेकिन व्यक्ति या बालक का व्यवहार तो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है लेकिन अधिगम दिखायी नहीं देता। यह तब ही दिखता है, जब बालक को किसी परिस्थिति में रखा जाता है। मुख्यतः सीखने की प्रक्रिया में कई तत्त्व या कारक ऐसे होते हैं, जो सीखने को या अधिगम को प्रभावित करते हैं। ये कारक स्वयं शिक्षक, विद्यार्थी, वातावरण, पाठ्य–वस्तु, व्यवस्था, मानव संसाधन आदि से सम्बन्धित होते हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

इस आधार पर ये कारक मुख्य रूप से छः प्रकार के होते हैं–

1. विद्यार्थी से सम्बन्धित कारक
2. शिक्षक से सम्बन्धित कारक
3. वातावरण से सम्बन्धित कारक
4. पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित कारक
5. अधिगम व्यवस्था से सम्बन्धित कारक
6. मानव व भौतिक संसाधनों से सम्बन्धित कारक

5.5.1 विद्यार्थी से सम्बन्धित कारक

किसी भी कार्य को सिखाने में या करने में विद्यार्थी की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह विद्यार्थी या सीखने वाला या लर्नर कहलाता है। यहाँ बालक या विद्यार्थी कितना सीखेगा व किस प्रकार सीखेगा यह उसकी मूल–प्रवृत्तियों, व्यक्तिगत विभिन्नताओं, आयु, रूचि व अन्य बातों पर निर्भर करता है। विद्यार्थी के मन में अनेकों जिज्ञासा उत्पन्न होती है, जिसकी तुष्टि वह हमेशा चाहता है। ऐसी परिस्थिति में सीखने की प्रक्रिया अनेक कारकों से प्रभावित होती है, जो निम्नलिखित है–

1. शारीरिक स्वास्थ्य

किसी भी कार्य को सीखने में विद्यार्थी का शारीरिक स्वास्थ्य बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। यदि बालक शारीरिक रूप से स्वस्थ है, तो वह अपने अधिगम में रूचि लेगा, इसके विपरीत यदि बालक को कोई शारीरिक कष्ट होता है, तो उसका पूरा ध्यान उसी में लग जाता है और वह अपने कार्य में समग्र रूप से ध्यान नहीं लगा पाता। अतः अधिगम के लिये बालक का शारीरिक रूप से स्वस्थ होना अति आवश्यक है।

2. मानसिक स्वास्थ्य

किसी भी कार्य को सीखने के लिये शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य भी अत्यन्त आवश्यक होता है। यदि बालक मानसिक रूप से स्वस्थ है, तो वह किसी भी कार्य या बात को जल्दी से सीख लेता है, नहीं तो वह कार्य को सीखने में ज्यादा समय लगाता है व उसे ज्यादा समय तक याद नहीं रख पाता।

3. सीखने की इच्छा

शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक स्वाथ्य के सही हाने पर बालक में किसी कार्य को सीखने की इच्छा होनी चाहिए। यदि उसमें कार्य सीखने के इच्छा होती है, तब वह कार्यों को शीघ्रता से सीखने में सफल हो जाता है। इसके लिये बालकों में कुछ पाने की चाह होनी चाहिए।

4. सीखने का समय

यदि बालक को कोई क्रिया ज्यादा समय तक सिखायी जाती है तो वह थकान महसूस करने लगता है, इस स्थिति में बालक में क्रिया को सीखने के प्रति उदासीनता आ जाती है। अतः बालक को कोई भी क्रिया सिखाते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि बालक को लगातार ज्यादा समय तक कोई कार्य न कराया जाये। इसके बीच में थोड़ा समयान्तराल होना चाहिए।

5. अभिप्रेरणा का स्तर

प्रत्येक बालक को सीखने की प्रक्रिया के लिये अधिक से अधिक अभिप्रेरणा का प्रयोग करना चाहिए, जिससे बालक को कार्य के प्रति प्रेरित किया जा सकता है। इसकी अनुपस्थिति में बालक कार्य तो करता है, लेकिन लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता।

6. सीखने में तत्परता

जब बालक स्वयं सीखने के लिये तत्पर या तैयार होता है, तो उस स्थिति में बालक किसी भी कार्य को जल्दी सीख लेता है व उसे ज्यादा समय तक अपने मस्तिष्क में धारण रखता है, लेकिन यदि बालक किसी कार्य को सिखाने के लिये तत्पर नहीं होता तो वह या तो उस कार्य को सीख नहीं पायेगा और यदि सीख भी लेता है, तो वह उसे शीघ्रता से भूल जायेगा। अतः किसी कार्य को बालक को सिखाने से पहले उसमें कार्य के प्रति तत्परता या रूझान उत्पन्न करना चाहिए।

7. अधिगम की प्रक्रिया

किसी कार्य को सिखाने के लिये उसकी रूपरेखा की आवश्यकता होती है, जिससे अधिगम की प्रक्रिया प्रभावित होती है। अधिगम की प्रक्रिया सरल, स्पष्ट व व्यवस्थित रूप में होती है तो कार्य को शीघ्र सीखा जाता है

8. विद्यार्थी या बालक की मूलभूत क्षमता

प्रत्येक बालक की अपनी कुछ न कुछ मूलभूत क्षमतायें होती है जिनको आधार बनाकर ही क्रियाओं को सिखाना चाहिए। इसके अन्तर्गत बालक की अन्तर्निहित शक्ति, सामर्थ्य, संवेगात्मक दृष्टि आदि आते हैं। यदि बालकों को कोई कार्य उसकी मूलभूत क्षमता के अनुसार सिखाया जाता है तो वह कार्य में शीघ्र निपुणता प्राप्त कर लेता है। अतः कार्यों का प्रशिक्षण देने से पूर्व बालक की मूलभूत क्षमताओं की जानकारी ले लेनी चाहिए, नहीं तो उपयुक्त परिणाम प्राप्त नहीं होते।

9. बुद्धि स्तर

सभी विद्यार्थी या बालक भिन्न–भिन्न बुद्धि स्तर वाले होते हैं जैसे– सामान्य, प्रतिभाशाली, मूर्ख, मन्द–बुद्धि आदि। किसी भी कार्य को सिखाने से पहले अध्यापक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह जिस विद्यार्थी को वह कार्य सिखा रहा है, पहले उसका बुद्धि स्तर ज्ञात कर ले, उसके उपरान्त ही उसे कोई कार्य सिखाये। जब विद्यार्थी को उसके बुद्धि–स्तर तथा क्षमता के अनुसार कोई कार्य सिखाया जाता है, तो उसे समझने में सरलता होती है या सहायता मिलती है। ऐसी स्थिति में वह कार्यों को जल्दी सीख लेता है।

10. रूचि

जिस प्रकार विद्यार्थी या बालक को कोई कार्य सिखाने में अभिप्रेरणा आवश्यक होती है, उसी प्रकार कार्य के प्रति विद्यार्थी की रूचि का होना भी आवश्यक हैं। रूचियुक्त कार्यों को बालक जल्दी सीख लेता है व इससे उसमें आनन्द की अनुभूति होती है।

5.5.2 शिक्षक से सम्बन्धित कारक

जिस प्रकार सीखने की प्रक्रिया में सीखने वाला महत्त्वपूर्ण होता है, उसी प्रकार उन कार्यों को सिखाने वाला भी महत्त्वपूर्ण होता है और यह कार्य अध्यापक या शिक्षक द्वारा सिखाये जाते हैं। शिक्षक से सम्बन्धित कुछ कारक ऐसे होते हैं, जो अधिगम को प्रभावित करते हैं जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं–

www.praganya.org www.praganya.org www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

1. शिक्षक का व्यवहार

सीखने की क्रिया में शिक्षक का व्यवहार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। यह किसी भी कार्य के सीखने को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। जब शिक्षक, किसी विद्यार्थी को सहयोग, समानता, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, आदि गुणों द्वारा अच्छा व्यवहार प्रदर्शित करके उसे कार्य सिखाता है, तो वह विद्यार्थी उस कार्य में रूचि लेकर उसे आसानी से व जल्दी से सीख लेता है।

2. मनोविज्ञान का ज्ञान

जब तक शिक्षक को मनोविज्ञान का ज्ञान नहीं होता, तब तक वह विद्यार्थी को कुछ भी नहीं सिखा सकता, क्योंकि मनोविज्ञान के द्वारा ही विद्यार्थी की रूचियों, क्षमताओं, अभिरूचियों आदि को पहचानकर उसे उसी के अनुसार कार्यों को सिखाया जाता है।

3. शिक्षक का विद्यार्थी से सम्बन्ध

शिक्षक व विद्यार्थी के बीच यदि मधुर सम्बन्ध होते हैं, तो विद्यार्थी अपनी समस्याओं को बिना किसी हिचक के शिक्षक के समक्ष रख देता है, नहीं तो वह अपनी समस्याओं को सुलझा नहीं पाता। यह स्थिति कार्यों को सीखने व सिखाने को प्रभावित करती है। अतः शिक्षक को विद्यार्थियों के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने चाहिए।

4. विषय-वस्तु की उपयोगिता

विषय-वस्तु की उपयोगिता भी अधिगम को परोक्ष रूप से प्रभावित करती है। विषय-वस्तु की उपयोगिता विद्यार्थी के मन पर अनुकूल प्रभाव डालती है और किसी कार्य को सीखने के लिये बाध्य करती है तथा उसमें रूचि उत्पन्न करती है।

5. शिक्षण-विधियाँ

किसी भी कार्य को सीखने या सिखाने में शिक्षण विधियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। बालकों के बुद्धि-स्तर अलग-अलग होने के कारण प्रत्येक बालक एक ही विधि से नहीं सीख पाता या सकता। इसके लिये विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है और इन शिक्षण-विधियों का प्रयोग व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर किया जाता है।

6. शिक्षक का व्यक्तित्व

शिक्षक का व्यक्तित्व भी किसी कार्य को सीखने में या तो सहायक सिद्ध होता है या बाधा उत्पन्न करता है। सामान्यतः यह देखा जाता है कि जिस शिक्षक का व्यक्तित्व आकर्षक अर्थात् वह अपने व्यवहार में सन्तुलन रखता है, तो बालक उसकी तरफ आकर्षित होते हैं व उसकी आज्ञा का पालन भी करते हैं, जो कि किसी कार्य को सिखाने के लिये आवश्यक होता है।

7. समय-सारणी का निर्माण

विद्यालयों में समय-सारणी का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि एक साथ लगातार दो कठिन विषयों को न लगाया जाये व कठिन विषयों को समय-सारणी में प्रथम चरण में रखना चाहिए, क्योंकि प्रारम्भ में बालक में तरोताजगी व स्फूर्ति होती है व वह मानसिक व शारीरिक रूप से सीखने के लिये तैयार होता है।

8. बालक केन्द्रित शिक्षा

शिक्षक को बालक की प्रवृत्ति व प्रकृति के अनुसार ही शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। इस प्रकार दी गयी शिक्षा का वह पूरी तरह से लाभ उठाते हैं, क्योंकि यह शिक्षा उनकी रूचियों, क्षमताओं, अभिरूचियों आदि को आधार बनाकर दी जाती है, जिससे अपेक्षित फल की प्राप्ति होती है। वर्तमान काल में ऐसी ही शिक्षा प्रदान की जाती है।

9. व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर ज्ञान

शिक्षक को प्रत्येक बालक के बारे में जानकारी होनी चाहिए, क्योंकि प्रत्येक बालक, दूसरे बालक से प्रत्येक आधार पर अलग होता है। जिसका ज्ञान होना शिक्षक के लिये अति आवश्यक है।

10. अभ्यास कार्य को दोहराने की व्यवस्था

शिक्षक को चाहिए कि वह जिन कार्यों को विद्यार्थियों को सिखा रहा है, उसको बार-बार उनसे दोहरवाएँ। इससे विद्यार्थियों में कार्यों के प्रति रूचि उत्पन्न होती है व बार-बार उसी कार्य को करने से वह उसे पूरी तरह व अच्छी तरह से सीख लेते हैं व उसको ज्यादा लम्बे समय तक अपने मस्तिष्क में धारण रखते हैं।

5.5.3 वातावरण से सम्बन्धित कारक

जिस प्रकार सीखने की प्रक्रिया को विद्यार्थी व शिक्षक प्रभावित करते हैं, उसी प्रकार से वातावरण भी प्रभावित करता है जिससे सम्बन्धित कारक निम्न प्रकार हैं-

1. कक्षा का अनुशासन

किसी विद्यालय में कक्षा का अनुशासन इतना अधिक होता है कि वहाँ कार्यों या अध्ययन के अतिरिक्त अन्य कोई बातें नहीं की जाती, तो कहीं इतनी अधिक अनुशासनहीनता पायी जाती है कि वहाँ कार्यों के अलावा सभी बातों को स्थान दिया जाता है, तो यह दोनों ही स्थिति सही नहीं होती। इन दोनों स्थितियों में तालमेल बैठाये जाने पर ही अपेक्षित परिणाम की प्राप्ति होती है।

2. विद्यालय की स्थिति

बहुत से विद्यालय ऐसी जगह पर हैं, जहाँ वाहनों का शोर ज्यादा मात्रा में होता है या कुछ विद्यालय ऐसी जगह पर होते हैं, जहाँ पर निरन्तर दुर्गन्ध आती रहती है। इन दोनों ही स्थिति में बालक या विद्यार्थियों का ध्यान कार्यों को सीखने में भंग होता है। अतः विद्यालय का निर्माण उपयुक्त जगह पर होना चाहिए।

3. वातावरण

किसी भी कार्य को सिखाने में वातावरण बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। यह वातावरण पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि कारकों से निर्मित होता है, लेकिन इन सब में महत्त्वपूर्ण कक्षा का वातावरण होता है, जो बालक को कुछ भी कार्य सीखने के लिये प्रेरित करता है।

4. पारिवारिक वातावरण

कक्षा का वातावरण ही बालक के लिये आवश्यक नहीं होता, अपितु परिवार का वातावरण भी अहम होता है। अगर किसी परिवार के सदस्यों के बीच लड़ाई -झगड़े रहते हैं, तो वहाँ पर पल रहे बच्चों पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है। अतः बालकों को इस वातावरण से बचाने के लिये परिवार में स्नेहपूर्ण वातावरण

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

होना चाहिए।

5. विषय सामग्री की प्रकृति

बालकों को कोई भी कार्य सिखाने के लिये ऐसी विषय–सामग्री प्रयुक्त करनी चाहिए जो वातावरण में सुगमता से प्राप्त हो जाये। ऐसी विषय–सामग्री के साथ विद्यार्थियों को ताल–मेल या समझने में सहायता मिलती है।

6. मनोवैज्ञानिक वातावरण

मनोवैज्ञानिक कारकों में विद्यार्थियों के आपसी सहयोग करने की प्रवृत्ति आदि आती है, जिससे कक्षा का वातावरण सही बना रहता है। ऐसे वातावरण में विद्यार्थी किसी भी कार्य को आसानी से सीख लेता है।

7. सामाजिक वातावरण

विद्यार्थियों को सभी समाज के रीति–रिवाज, मान्यताओं, आदर्शों व मूल्यों आदि को समान रूप से समझने के लिये प्रेरित करना चाहिए। जिससे वह आपसी मतभेद को भूलकर, आपसी सहयोग से ज्ञान प्राप्त कर, कुछ सीख सकें।

5.5.4 पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित कारक

अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों में पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित कारक निम्न प्रकार से हैं–

1. पाठ्यवस्तु की प्रकृति

पाठ्यवस्तु की प्रकृति सरल, स्पष्ट व समझने योग्य होनी चाहिए, जिससे सभी विद्यार्थी आसानी से उसे समझकर उसका उपयोग कर सकें। यह प्रकृति सभी विषयों के लिये अलग–अलग होनी चाहिए। ताकि प्रत्येक विषय को सरलता से समझा जा सके।

2. पाठ्यवस्तु का विश्लेषण एवं संश्लेषण

पाठ्यवस्तु का विश्लेषण व संश्लेषण करने से तात्पर्य पाठ्यवस्तु को प्रत्ययों, सिद्धान्तों, तथ्यों, भाषा, सामान्यीकरण आदि में बाँटने से है। इसमें बाँटकर विद्यार्थी अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता है व उसमें उन्नति कर सकता है।

3. पाठ्यवस्तु का प्रारूप

पाठ्यवस्तु का प्रारूप सरलता से जटिलता की ओर होना चाहिए। इस प्रकार के प्रारूप से विद्यार्थियों को पाठ्यवस्तु को समझने में सरलता महसूस होती है, क्योंकि पहले विद्यार्थियों को पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित सरल बातों का ज्ञान कराया जाता है, बाद में जटिल। इस तरह से पढ़ाने में विद्यार्थियों में पाठ्यवस्तु के प्रति रूचि उत्पन्न होने लगती है।

4. उद्देश्यों का ज्ञान

शिक्षा के किसी भी क्षेत्र में, किसी भी कार्य को सीखने से पहले अध्यापक को उद्देश्यों को निर्धारित कर लेना चाहिए। इससे विद्यार्थियों का उत्साह वर्धन होता है और यह भी पता चलता है कि किस विद्यार्थी ने कितनी व कहाँ तक प्रगति की है और कहाँ पर उसने गलती की है। यदि विद्यार्थी उद्देश्य प्राप्ति में कहीं गलती करता है, तो अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यार्थी को दोबारा से समझाकर, उसे कार्य करने या सीखने के लिये प्रेरित करे। इस आधार पर वह अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है और उसे सन्तोष की प्राप्ति होती है।

5. सीखने की विधियाँ

विद्यार्थियों को कुशलतापूर्वक ज्ञान–प्रदान करने के लिये अध्यापक को विषय–सामग्री से सम्बन्धित सीखने की विधियों का ज्ञान होना चाहिए। ये विधियाँ जैसे– खेल विधि, क्रिया–विधि, करके सीखने की विधि, व्याख्यान विधि आदि होती है, जिनका प्रयोग बालक की योग्यता व व्यवहार के अनुसार किया जाता है।

6. उदाहरण प्रस्तुतीकरण

अध्यापक को विद्यार्थियों के समक्ष विषय वस्तु को पढ़ाते समय उससे सम्बन्धित ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए, जिससे विद्यार्थी आसानी से पाठ को समझ सके। इसका क्रम **विशिष्ट से सामान्य की ओर** होना चाहिए।

7. दृश्य एवं श्रव्य सामग्री का प्रयोग

अध्यापक को किसी प्रक्रिया में सरल व स्पष्ट भाषा शैली का प्रयोग करना चाहिए। कहीं कहीं पर अधिक लम्बे व कठिन शब्द होते हैं। इन वाक्यों व शब्दों को अध्यापक को सरल व अपने शब्दों में विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे वह कठिन से कठिन तथ्यों को आसानी से समझ सकें।

5.5.5 अधिगम व्यवस्था से सम्बन्धित कारक

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की कुछ आधुनिकतम विधियों को ज्ञात किया है जिनके द्वारा किसी विषय को सरलता, सुगमता व शीघ्रता से सीखा जा सकता है। ये विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. सम्पूर्ण बनाम खण्ड विधि

इस विधि के आधार पर विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति बढ़ती है। सम्पूर्ण विधि में विद्यार्थी सीखने के पूरे नियमों, बातों व शर्तों को एक साथ ही याद कर लेता है। जबकि खण्ड विधि में पूरे सीखने के नियमों व बातों को छोटे–छोटे खण्डों में विभक्त करके एक–एक खण्ड करके सिखाया जाता है। जैसे– हिन्दी कविता को सीखने में सम्पूर्ण विधि लाभदायक होती है, जबकि किसी लेख तथा साहित्य को याद करने के लिये खण्ड विधि उपयोगी सिद्ध होती है।

2. उपविषय बनाम संकेन्द्रिय विधि

उपविषय विधि में विद्यार्थी की आयु व मानसिक स्तर का ध्यान रखकर किसी कार्य को केवल एक बार में सिखाया जाता है, जबकि संकेन्द्रिय विधि में किसी कार्य को केवल एक भाग में सिखाया नहीं जा सकता।

3. आयोजित बनाम प्रासंगिक विधि

प्रासंगिक विधि में किसी एक विषय को केन्द्र मानकर उसे विद्यार्थी को सिखाया जाता हैं इस विषय या क्रिया को सिखाते समय वह अन्य नियम या बातें भी अकस्मात् या अचानक ही सिखा दिये जाते हैं, जबकि अध्यापक ने इसे सिखाने के लिये कोई विशेष योजना नहीं बनायी होती है, फिर भी वह विद्यार्थी को विषय ज्ञान भली–भाँति दे पाता है। इस विधि में ज्ञान को एक इकाई माना जाता है। जबकि आयोजित विधि में अध्यापक द्वारा सीखने का प्रत्येक चरण पहले से ही निश्चित या नियमित कर लिया जाता है व निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कार्य किया जाता है।

4. संकलित बनाम वितरित विधि

जब किसी कार्य को एक ही सत्र में बिना किसी विराम के पूर्ण कर देते हैं, तो उसे

www.praganya.org www.praganya.org www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

संकलित विधि कहते हैं। वितरित विधि में कार्यों या विषय-वस्तु में अन्तराल रखकर पूर्ण की जाती है। संकलित विधि में बालक की सीखने के प्रति रूचि बनी रहती है। वितरित विधि में सीखने में थकावट नहीं होती व सीखा गया ज्ञान लम्बी अवधि तक मस्तिष्क में स्थायी रूप से बना रहता है।

5. सक्रिय बनाम निष्क्रिय विधि

सक्रिय विधि में विद्यार्थी किसी विषय या कार्यों के नियमों को जोर-जोर से या धीरे-धीरे बोलकर याद करने का प्रयास करता है, जबकि निष्क्रिय विधि में विद्यार्थी विषय से सम्बन्धित नियमों व शर्तों को मन ही मन पढ़कर कंठस्थ करता है। इसमें सक्रिय विधि द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान ज्यादा समय तक मस्तिष्क में स्थिर रहता है।

5.5.6 मानव एवं भौतिक संसाधनों से सम्बन्धित कारक

विद्यार्थी को अपने व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिये सभी उपलब्ध संसाधनों व स्रोतों से मिलने की आवश्यकता रहती है। ये संसाधन दो प्रकार के होते हैं-

1. मानव संसाधन
2. भौतिक संसाधन

इन दोनों से जुड़े हुए कारक जो अधिगम को प्रभावित करते हैं, निम्नलिखित हैं-

1. उपयुक्त अध्यापक

किसी भी कार्य को सीखने या विषय के ज्ञान में अध्यापक की मुख्य भूमिका होती है। अतः अध्यापक में जितना अधिक विषय वस्तु सम्बन्धी कुशलता, प्रवीणता, अनुभव, ज्ञान होता है वह उतनी ही अच्छी तरह से विद्यार्थियों को सिखा पाता है, जिसके फलस्वरूप अध्यापक व विद्यार्थी दोनों को सफलता प्राप्त होती है।

2. सामाजिक स्रोत या संसाधन

सीखने के समय किस प्रकार का सामाजिक संसाधन शिक्षण कार्य को ठीक प्रकार से पूरा करने के लिये कक्षा, विद्यालय व अन्य सीखने की परिस्थितियों में प्राप्त होते हैं उतनी ही अच्छी तरह से सीखने की प्रक्रिया का संचालन किया जा सकेगा। अतः जहाँ अध्यापक व विद्यार्थियों में ज्यादा अन्तर्किया होती है, वहाँ सीखने की प्रक्रिया ज्यादा सफल व ज्यादा मात्रा में होती है।

3. उचित अधिगम सामग्री व सुविधाओं को प्राप्त करना

जब विद्यार्थी को कोई भी कार्य सिखाया जाता है और उससे सम्बन्धित सारी विषय सामग्री या उपयुक्त सामग्री अध्यापक के पास मौजूद होती है, तो यह मौजूदगी सीखने की प्रक्रिया में सहायता उत्पन्न करती है। जैसे- विज्ञान विषय पढ़ने के लिये उससे सम्बन्धित पाठ्य-पुस्तक, लिखने-पढ़ने की सामग्री, पुस्तकालय व प्रयोगशाला सम्बन्धी सुविधायें आदि प्राप्त होती हैं, तो इससे विद्यार्थी को विज्ञान विषय पढ़ने में सहायता मिलती है।

4. समुचित परिस्थितियाँ

सीखने की प्रक्रिया में बहुत-सी परिस्थितियाँ होती हैं, जो कार्यों को सिखाने के लिये अति आवश्यक होती है। जैसे- सीखने के समय बैठने की समुचित व्यवस्था करना, शान्तिपूर्ण वातावरण उत्पन्न करना, स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान, अध्यापक का निष्पक्ष व्यवहार आदि। अगर सीखने की प्रक्रिया में समुचित परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं की जाती हैं, तो इसका विपरीत असर पड़ता है।

5.6 अधिगम की प्रभावशाली विधियाँ

किसी भी नई क्रिया या नये पाठ को सीखने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न विधियों का प्रयोग किया है। हम उनमें से केवल उन्हीं विधियों का वर्णन कर रहे हैं, जिनको मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने अधिक उपयोगी और प्रभावशाली पाया है। ये विधियाँ निम्नलिखित हैं-

1. करके सीखना

डा. मेस का कथन है कि स्मृति का स्थान मस्तिष्क में नहीं, वरन् शरीर के अवयवों में है। यही कारण है कि हम करके सीखते हैं। बालक जिस कार्य को स्वयं करते हैं, उसे वे जल्दी सीखते हैं। कारण यह है कि उसे करने में वे उसके उद्देश्य का निर्माण करते हैं, उसको करने की योजना बनाते हैं और योजना को पूर्ण करते हैं। फिर, वे यह देखते हैं कि उनके प्रयास सफल हुए हैं या नहीं। यदि नहीं, तो वे अपनी गलतियों को मालूम करके, उनमें सुधार करने का प्रयत्न करते हैं।

2. निरीक्षण करके सीखना

योकम एवं सिम्पसन ने लिखा है कि निरीक्षण-सूचना प्राप्त करने, आधार सामग्री एकत्र करने और वस्तुओं तथा घटनाओं के बार में सही विचार प्राप्त करने का साधन है। बालक जिस वस्तु का निरीक्षण करते हैं, उसके बारे में वे जल्दी और स्थायी रूप से सीखते हैं। इसका कारण यह है कि निरीक्षण करते समय वे उस वस्तु को छूते है या प्रयोग करते हैं या उसके बारे में बातचीत करते हैं। इस प्रकार, वे अपनी एक से अधिक इन्द्रियों का प्रयोग करते हैं। फलस्वरूप, उनके स्मृति-पटल पर उस वस्तु का स्पष्ट चित्र अंकित हो जाता है।

3. परीक्षण करके सीखना

नई बातों की खोज करना, एक प्रकार का सीखना है। बालक इस खोज को परीक्षण द्वारा कर सकता है। परीक्षण के बाद वह किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। इस प्रकार, वह जिन बातों को सीखता है, वे उसके ज्ञान का अभिन्न अंग हो जाती हैं, उदाहरणार्थ, वह इस बात का परीक्षण कर सकता है कि गर्मी का ठोस और तरल पदार्थों पर क्या प्रभाव पड़ता है। वह इस बात को पुस्तक में पढ़कर भी सीख सकता है। पर यह सीखना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता है, जितना कि स्वयं परीक्षण करके सीखना।

4. सामूहिक विधियों द्वारा सीखना

सीखने का कार्य-व्यक्तिगत और सामूहिक विधियों द्वारा होता है। इन दोनों में सामूहिक विधियों को अधिक उपयोगी और प्रभावशाली माना जाता है। इनके सम्बन्ध में कोलेसनिक की धारणा इस प्रकार है-

> बालक को प्रेरणा प्रदान करने, उसे शैक्षिक लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता देने, उसके मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाने, उसके सामाजिक समायोजन को अनुप्राणित करने, उसके व्यवहार में सुधार करने और उसमें आत्मनिर्भरता तथा सहयोग की भावनाओं का विकास करने के लिए व्यक्तिगत विधियों की तुलना में सामूहिक विधियाँ कहीं अधिक प्रभावशाली हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

मुख्य सामूहिक विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **वाद–विवाद विधि**– इस विधि में प्रत्येक छात्र को अपने विचार व्यक्त करने और प्रश्न पूछने का अवसर दिया जाता है।
2. **वर्कशॉप विधि**– इस विधि में विभिन्न विषयों पर सभाओं का आयोजन किया जाता है और इन विषयों के हर पहलू का छात्रों द्वारा अध्ययन किया जाता है।
3. **सम्मेलन व विचार–गोष्ठी विधियाँ**– इन विधियों में से किसी विशेष विषय पर छात्रों द्वारा विचार–विनिमय किया जाता है।
4. **प्रोजेक्ट, डाल्टन व बेसिक विधियाँ**– इन आधुनिक विधियों में व्यक्तिगत और सामूहिक– दोनों प्रकार के प्रेरकों का स्थान होता है। प्रत्येक छात्र अपनी व्यक्तिगत रूचि, ज्ञान और क्षमता के अनुसार स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है, जिससे उसका सीखने का कार्य सरल हो जाता है। इसके अतिरिक्त, सामूहिक रूप से कार्य करने के कारण उसमें स्पर्धा, सहयोग और सहानुभूति का विकास होता है।

5. मिश्रित विधि द्वारा सीखना

सीखने की दो महत्त्वपूर्ण विधियाँ हैं– पूर्ण विधि और आंशिक विधि। पहली विधि में छात्रों को पहले पाठ्य–विषय का पूर्ण ज्ञान दिया जाता है और फिर उसके विभिन्न अंगों में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। दूसरी विधि में पाठ्य–विषय को खण्डों में बाँट दिया जाता है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार इन दोनों विधियों को मिलाकर सीखने के लिए मिश्रित विधि का प्रयोग किया जाता है।

6. सीखने की स्थिति का संगठन

सीखने के कार्य को सरल और सफल बनाने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता है– सीखने की स्थिति का संगठन। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब विद्यालय का निर्माण इस प्रकार किया जाए कि उसमें सीखने की सभी क्रियाएँ उपलब्ध हों और सीखने की सभी विधियों का प्रयोग किया जाए।

सीखने की ये सभी विधियाँ व्यक्ति के मनोविज्ञान पर आधारित है। इन विधियों के प्रयोग से अधिगम तथा शिक्षण, दोनों ही प्रभावशाली हो जाते हैं।

5.7 अधिगम के प्रकार

अधिगम के प्रकार के अन्तर्गत किन–किन रूपों में अधिगम की प्रक्रिया होती है, उसका अध्ययन किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है–

1. प्रयत्न और भूल द्वारा सीखना

जब व्यक्ति किसी कार्य को सीखने के लिए निरन्तर प्रयास करता है, तो वह अपने इस प्रयास में अनेक भूले भी करता है, लेकिन धीरे–धीरे भूलों में कमी आती जाती है और अन्ततः वह बिना भूल किए उस क्रिया को सही ढंग से करना सीख लेता हैं इस प्रकार के सीखने को प्रयत्न और भूल द्वारा सीखना कहते हैं।

2. सम्बद्ध प्रत्यावर्तन अधिगम

जब व्यक्ति की किसी अनुक्रिया का सम्बन्ध किसी उद्दीपक से हो जाता है, जिसको मनोवैज्ञानिक भाषा में उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच सम्बद्ध प्रत्यावर्तन कहते हैं। इस प्रकार सीखने को सम्बद्ध प्रत्यावर्तन अधिगम कहा जाता है।

3. सूझ–बूझ द्वारा अधिगम

जब व्यक्ति किसी समस्या का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसका समाधान करता है, तो उसे सूझपूर्ण अधिगम कहा जाता है।

4. अनुकरणात्मक अधिगम

जब मनुष्य अनुकरूण द्वारा सीखता है तो उसे अनुकरणात्मक अधिगम कहा जाता है। यह पशुओं में अधिक पाया जाता है। बालकों में भी अनुकरण से सीखने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है।

5. ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अधिगम

बालक ज्ञानेन्द्रियों से देख, सुन तथा अनुभव करके बहुत सी बातों को सीखता है। किसी को कुछ करते देखकर हम भी वैसा करने लगते हैं या सुनकर वैसा करने लगते हैं। जैसे–चलना–फिरना, बोलना, चित्र बनाना, यान्त्रिक कार्य आदि। इस प्रकार के सीखने को ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अधिगम अथवा संवेदन गति सम्बन्धी अधिगम कहा जाता है।

6. बुद्धि से अधिगम

बौद्धिक क्रियाओं के द्वारा सीखने को बुद्धि से सीखना कहा जाता है। जैसे गणितीय ज्ञान, तर्क, निबन्ध लेखन आदि अधिगम। बुद्धि से सीखने के दो प्रमुख रूप है–

1. प्रत्यक्षीकरण द्वारा सीखना
2. सम्प्रत्यय द्वारा सीखना

किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण पूर्णरूपेण करके बुद्धि के प्रयोग से सीखने को प्रत्यक्षीकरण द्वारा सीखना कहा जाता है। किसी वस्तु को देखकर उसके सम्बन्ध में एक धारणा बनाकर जब अधिगम करता है, तो उसे सम्प्रत्यय द्वारा सीखना कहा जाता है।

7. साहचर्य द्वारा अधिगम

यह मानसिक शक्ति के द्वारा सीखने का प्रकार है इसमें प्रतिमाओं और प्रत्ययों को मानसिक पटल पर लाया जाता है तथा उसके परिप्रेक्ष्य में पूर्व ग्रहण की गई प्रतिमाओं तथा प्रत्ययों को दोहराया जाता है। जैसे–किसी घटना का वर्णन करने पर उसे किसी पूर्व सम्बन्धित घटना से जोड़ने तथा अनुभवों को ग्रहण करने का प्रयत्न किया जाता है। यही साहचर्य द्वारा अधिगम कहा जाता है।

8. शारीरिक अंगों से अधिगम

मानसिक शक्तियों के सक्रिय न होने पर व्यक्ति शारीरिक अंगों के द्वारा सीखने का प्रयास करता है। जैसे– एक शिशु रोकर तथा पैर हिलाकर यह बताने का प्रयास करता है कि वह भूखा है। इस प्रकार का अधिगम शारीरिक अंगों द्वारा अधिगम कहा जाता है।

9. अभिवृत्ति द्वारा अधिगम

अभिवृत्ति द्वारा अधिगम में अभिवृत्ति किसी व्यक्ति, वस्तु, क्रिया के प्रति एक निश्चित धारणा होती है। वातावरण द्वारा व्यक्ति, वस्तु तथा क्रिया उद्दीपक के रूप में प्रस्तुत होते हैं। उस उद्दीपक के प्रति हम एक निश्चित धारणा बना लेते है। यह धारणा बनाना ही अधिगम है। इस प्रकार अभिवृत्ति द्वारा अधिगम होता है।

10. प्रेरणा द्वारा अधिगम

प्रेरणा द्वारा अधिगम को संवेगात्मक अधिगम कहा जाता है। प्रेरणायें बालक के

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

अन्तःकरण को प्रेरित करती हैं जिससे मनुष्य को सीखने में सहायता मिलती है। जैसे– स्वतंत्रता दिवस पर स्वंतत्रता–संग्राम के दृश्यों को प्रस्तुत करने से हमारे अन्तःकरण इनसे प्रेरित होते हैं तथा हमारे अन्दर देश–भक्ति की भावना विकसित होती है। यह देश–भक्ति की भावना का विकास संवेग द्वारा अधिगम कहा जाता है। अतः प्रेरणा द्वारा अधिगम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

11. गुणांकन द्वारा अधिगम

जब हम किसी वस्तु के मूल्यों तथा गुणों को स्पष्ट करते हैं तथा इनसे प्रभावित होकर उसको ग्रहण कर लेते हैं, तो उसे गुणांकन द्वारा सीखना कहा जाता है।

5.8 अधिगम के अधिनियम

अधिगम के अधिनियमों का विकास अधिगम के प्रमुख तीन अधिगम सिद्धान्तों के समूहों से किया गया है। अधिगम के प्रमुख नियम निम्नलिखित हैं–

5.8.1 अधिगम के अधिनियम जो उद्दीपन-अनुक्रिया अधिगम सिद्धान्तों से विकसित किये गये हैं

1. छात्र को क्रियाशील रहना चाहिए तथा करके सीखना अधिक प्रभावशाली होता है।
2. अधिगम में अभ्यास की पुनरावृत्ति अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। इसे अभ्यास का नियम कहते हैं।
3. अधिगम में पुनर्बलन महत्त्वपूर्ण होता है। वांछित व्यवहारों के लिये धनात्मक पुनर्बलन तथा अवांछित व्यवहारों के लिये ऋणात्मक पुनर्बलन महत्त्वपूर्ण होता है।
4. प्रत्यय के विकास के लिये समाजीकरण तथा विभेदीकरण अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।
5. नवीन व्यवहार को सीखने में छात्रों की अधिक रूचि होती है। छात्र अनुकरण से जल्दी सीखते हैं।
6. आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने से छात्र जल्दी सीखते हैं, क्योंकि आवश्यकताएँ तनाव उत्पन्न करती हैं और छात्र तनाव को कम करना चाहता है।
7. निराशा और तनाव की स्थिति भी अधिगम में महत्त्वपूर्ण होती है।

5.8.2 सूझ के अधिगम अधिनियम जो ज्ञानात्मक सिद्धान्त से विकसित किये गये हैं

1. प्रत्यक्षीकरण की विशेषतायें, किसके बाद किसका अनुसरण होता है।
2. शिक्षक के लिये ज्ञान का संगठन करना नितान्त आवश्यक होता है।
3. अधिगम **बोधगम्यता** के साथ अधिक स्थायी होता है तथा उसका प्रसारण भी अधिक प्रभावशाली होता है।
4. सही ज्ञान की पुष्टि, ज्ञानात्मक पुष्टिपोषण प्रदान करती है।
5. छात्र के लिये लक्ष्य निर्धारण, उसके अधिगम के लिये प्रेरणा प्रदान करते हैं।
6. विकेन्द्रीकरण चिन्तन समस्याओं के समाधान के लिये दिशा प्रदान करना है।

5.8.3 अधिगम के अधिनियम जो अभिप्रेरण तथा व्यक्तित्व के सिद्धान्तों से विकसित किये गये हैं

1. अधिगम में छात्र की योग्यतायें महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं।
2. वंशानुक्रम भी छात्र के विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य करता है।
3. अधिगम सांस्कृतिक दृष्टि से सापेक्षिक प्रत्यक्ष होता है।
4. अधिगम प्रक्रिया के लिये छात्र का उत्सुकता स्तर निर्धारित करना होता है।
5. प्रत्येक छात्र के प्रेरक घटक भी दूसरों से भिन्न होते हैं।
6. छात्र के प्रेरक तथा मूल्यों का संगठन करना भी महत्त्वपूर्ण होता है।
7. सामूहिक वातावरण भी अधिगम प्रक्रिया के लिये महत्त्वपूर्ण होता है।

यह अधिगम नियम, शिक्षण के नियमों के विकास के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण तथा सहायक होते हैं।

5.9 अधिगम को सरल बनाने वाले कारक

अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों के अतिरिक्त कुछ कारक ऐसे हैं, जो अधिगम को सरल बनाते हैं। इन कारकों की चर्चा प्रो. बर्नार्ड ने अपनी पुस्तक में की है, जो कि अध्यापकों के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है–

1. अधिगम के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण

यदि अधिगम के उद्देश्य व्यक्ति को स्पष्ट हैं और वह उन उद्देश्यों को स्वीकार करता है, तो अधिगम उसके लिए सरल हो जाता है। उद्देश्य सीखने वाले के लिए लक्ष्य बन जाते है और वह उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न आरम्भ कर देता है।

2. अधिगम का संकल्प

छात्र द्वारा सीखने का संकल्प कर लेने पर अधिगम सरल, तीव्र और स्थायी हो जाता है। छात्रों को जब यह ज्ञात हो जाता है कि उनसे क्या अपेक्षा की जा रही है, तब उद्देश्य निश्चित हो जाते हैं या परिणामों के परिलक्षित हो जाने पर अधिगम सरल हो जाता है। ऐसी स्थिति में छात्र सीखने के लिए गहन प्रयत्न आरम्भ कर देता है और तात्कालिक कार्य पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने लगता है।

3. वितरित प्रयत्न

अधिगम की क्रिया लगातार नहीं चलनी चाहिए। एक कार्य को सीखने के लिए जो प्रयत्न किये जायें, उनके मध्य कुछ अन्तर अवश्य रखना चाहिए, उदाहरण के लिए, एक संगीत के यन्त्र को बजाना सीखने के लिए एक ही दिन लगातार 7 घण्टों तक अभ्यास करने की अपेक्षा दो सप्ताह तक प्रतिदिन आधा घण्टा अभ्यास करवाने से सीखना अधिक सरल और स्थायी होगा। इसका कारण यह है कि लम्बी अवधि की अपेक्षा लघु अवधि में ध्यान को अधिक केन्द्रित किया जा सकता है। साथ ही लम्बी अवधि वाले अभ्यास में त्रुटियों की पुनरावृत्ति की भी सम्भावना रहती है। अतएव विद्यालय में कालांश अधिक लम्बे नहीं होने चाहिए और न एक विषय के लगातार दो या तीन होने चाहिए।

4. समग्र अधिगम और खण्ड अधिगम

किसी कविता को आद्योपान्त एक साथ ही याद करना समग्र अधिगम की विधि

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

कहलाती है और यदि एक कविता को एक-एक पद करके याद किया जाता है तो यह खण्ड अधिगम विधि कहलाती है। किसी विषय को कण्ठस्थ करने में समग्र विधि अपनानी चाहिए। इससे समय की बचत होती है। कुशाग्र-बुद्धि वाले छात्रों को समग्र विधि से ही सीखना सरल होता है, किन्तु इस विधि का प्रयोग अध्ययन इकाई के आकार पर निर्भर करेगा। यह सम्भव नहीं है कि सम्पूर्ण पुस्तक को छात्र सम्पूर्ण विधि से याद कर ले।

5. प्रगति का ज्ञान करना

यदि छात्रों को उनकी प्रगति से अवगत कराया जाये तो अधिगम सरल हो जाता है। प्रगति के ज्ञान से छात्र अपने प्रयत्नों के परिणाम का परीक्षण करने के योग्य बनता है और इसके आधार पर उसको अपनी त्रुटियों का ज्ञान होता है। नाइट ने एक प्रयोग किया, छात्रों के दो समुदाय बनाये और दोनों को 20 घण्टे गणित पढ़ाया। एक समूह के छात्रों की प्रगति का आलेख रखा गया तथा उनको प्रगति से अवगत भी कराया गया। दूसरे समूह को प्रगति का ज्ञान नहीं करवाया गया। इसका परिणाम यह रहा कि प्रगति से अवगत समूह ने दूसरे समूह से 12 प्रतिशत प्रगति अधिक की। प्रगति का ज्ञान छात्रों के लिए प्रेरक के रूप में होता है। अध्यापकों को कक्षा के प्रत्येक छात्र की प्रगति का चार्ट बनाना चाहिए।

6. प्रपाठ

किसी याद की गई विषय-सामग्री का प्रपाठ भी सीखने को सरल बना देता है। प्रपाठ उच्च स्वर या बिना ध्वनि दोनों रूपों में हो सकता है। प्रपाठ याद की गई सामग्री को लम्बी अवधि तक स्मरण रखने में सहायक होता है। प्रपाठ भी सीखने की एक क्रिया है। प्रपाठ से तात्पर्य केवल पुनर्गठन से नहीं है बल्कि प्रपाठ से तात्पर्य विषय-सामग्री को नवीन रूप देना, नवीन परिस्थिति में प्रयोग में लाना, विभिन्न दृष्टिकोण से देखना है। अध्यापक को प्रपाठ से तात्पर्य पुनर्कथन से न लेकर नवीन परिस्थितियों में सूचनाओं के पुनः उपयोग से लेना चाहिए।

7. पुनर्स्मरण

अधिगम की क्रिया को पुनर्स्मरण अधिक सरल बना देता है। सीखते समय पुनर्स्मरण से छात्र को त्रुटियों एवं कठिनाइयों का तुरन्त ज्ञान हो जाता है। इससे सामग्री को प्रयोग में लाने का अभ्यास होता है। अध्यापक को पुनर्स्मरण का उपयोग सीखने की क्रिया में करना चाहिए। छात्रों को तात्कालिक समस्या के समाधान में पूर्व ज्ञान के उपयोग के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

www.praganya.org

****

अगर आप B.Ed, D.Ed, BSTC या शिक्षण अध्यापन के क्षेत्र में पढ़ाई कर रहे हैं तो आपसे निवेदन है कि निम्नलिखित Whatsapp No. अपनी कक्षा के व्हाट्सएप ग्रुप में जोड़ें। अगर आपका व्हाट्सएप ग्रुप नहीं बना हुआ है तो कृपया कम से कम 20 विद्यार्थी मिलकर व्हाट्सएप ग्रुप बना लें।

UPTET	-	95301 43210
MP Samvida-		95302 43210
BTET	-	95302 43210
UTET	-	72209 29294
JTET	-	72209 29239
HTET	-	72209 29266
CGTET	-	72209 28969
HPTET	-	72209 28535

आपके क्लास के व्हाट्सएप ग्रुप में शिक्षा संबंधी सभी प्रतियोगी परीक्षा के पेपर्स, मॉडल पेपर्स एवं अन्य अध्ययन सामग्री भेजी जाएगी। आपका शुरू से मार्गदर्शन किया जाएगा, ताकि आप प्रतियोगी परीक्षा में अतिशीघ्र सफलता प्राप्त कर सकें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मनोविज्ञान की दृष्टि से सीखने का अर्थ है-
   (1) विषय-वस्तु का ज्ञान
   (2) विषय-वस्तु को रट लेना
   (3) व्यवहार में वांछित परिवर्तन आना
   (4) व्यवहार में सुधार

2. अधिगम का अर्थ है-
   (1) बौद्धिक ज्ञान
   (2) भाषा का शुद्ध ज्ञान
   (3) व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास
   (4) बच्चों को पढ़ाना

3. सीखना से क्या तात्पर्य होता है?
   (1) मनोवृति में परिवर्तन
   (2) व्यवहार में परिवर्तन
   (3) व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन
   (4) अनुभूति में परिवर्तन

4. अधिगम की प्रकृति है-
   (1) तत्यात्मकता (2) गुण-दोष विवेचन
   (3) बौद्धिकता (4) ये सभी

5. **थ्योरीज ऑफ लर्निंग** नामक पुस्तक के लेखक हैं-
   (1) स्किनर (2) थॉर्नडाइक
   (3) हिलगार्ड (4) फ्रैंडसन

6. **सीखना विकास की प्रक्रिया है।** यह कथन किसका है?
   (1) गेट्स (2) वुडवर्थ
   (3) स्किनर (4) कोहलर

7. बच्चों के लिए सीखना-
   (1) सन्तोषमय होता है।
   (2) कठिन होता है।
   (3) खेल खेल में होता है।
   (4) हर तरह का होता है।

8. बालकों में अधिगम-
   (1) ज्ञान को रटने से होता है।
   (2) पाठ्यपुस्तक को पढ़ने से होता है।
   (3) शिक्षक द्वारा ज्ञान के स्थानान्तरण द्वारा होता है।
   (4) क्रिया करके होता है।

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.		
(3)	(3)	(3)	(4)	(3)	(2)	(3)	(3)		

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

9. अधिगम के लिए क्या आवश्यक है?
(1) स्वानुभव (2) स्वचिन्तन
(3) स्वक्रिया (4) उपर्युक्त सभी

10. सीखने के वक्र कितने प्रकार के होते हैं?
(1) 2 (2) 3
(3) 4 (4) 5

11. सीखना एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, जो–
(1) समस्त प्राणियों में पायी जाती है।
(2) एक उम्र विशेष के लोगों में पायी जाती है।
(3) समय के साथ धीरे–धीरे कम हो रही है।
(4) अध्यापक से बालक तक आती है।

12. अधिगमकर्ता हेतु अधिगम का मुख्य आधार होता है–
(1) परिपक्वता
(2) शारीरिक विकास
(3) विद्यालय की बनावट
(4) इनमें से कोई नहीं

13. अधिगम को प्रभावित करने वाला कारक है–
(1) शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य (2) अधिगम की इच्छा
(3) अभिप्रेरणा (4) उपर्युक्त सभी

14. सीखने के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है–
(1) प्रेरणा का होना
(2) निरर्थक पद
(3) स्मृति मापन उपकरण
(4) तेज गति से पढ़ने की क्षमता

15. अधिगम को प्रभावित करने वाला व्यक्तिगत कारक है–
(1) संचार के साधन (2) समवयस्क समूह
(3) अध्यापक (4) परिपक्वता एवं आयु

16. सीखने की परिघटना में आवश्यक घटक नहीं है–
(1) अधिगमकर्ता (2) आन्तरिक अवस्था
(3) प्रेरक (4) शिक्षक

17. बालकों के सीखने पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है–
(1) प्रेरणा का (2) रूचि का
(3) बौद्धिक योग्यता का (4) शारीरिक संगठन का

18. निम्नलिखित में से कौनसा भौतिक कारक सीखने में बाधक है?
(1) शुद्ध वायु (2) उपयुक्त तापक्रम
(3) उपयुक्त धूप (4) प्रदूषण

19. मानवीय अधिगम में निम्न में से कौनसा कारक अधिक महत्त्वपूर्ण है?
(1) पुनर्स्थापना (2) जिज्ञासा
(3) पुनर्बलन (4) रूचि

20. अधिगम की प्रक्रिया के एक चरण के रूप में छात्रों की त्रुटियों का पता लगाने के लिए शिक्षक को निम्नलिखित में से किसकी जानकारी सर्वाधिक आवश्यक है?
(1) अधिगम की वैकल्पिक अवधारणाएँ
(2) अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक
(3) अधिगमकर्ता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति
(4) उपरोक्त सभी

21. अधिगम के सन्दर्भ में शिक्षाशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने विविध प्रकार की परिभाषाएँ दी हैं। इन परिभाषाओं के अनुसार अधिगम ..... चलने वाली एक निरन्तर प्रक्रिया है।
(1) जीवन पर्यन्त
(2) किशोरावस्था तक
(3) वृद्धावस्था तक
(4) युवावस्था तक

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

22. व्यवहार में होने वाले स्थायी परिवर्तन, जो अभ्यास के कारण होते हैं, को कहा जाता है–
(1) सीखना (2) सोचना
(3) क्रिया करना (4) कल्पना करना

23. थॉर्नडाइक के अधिगम का/के मुख्य नियम है/हैं–
(1) प्रभाव का नियम (2) तत्परता का नियम
(3) अभ्यास का नियम (4) उक्त सभी

24. बालक सर्वप्रथम कौनसी क्रिया सीखता है?
(1) भाव प्रदर्शन (2) पढ़ना
(3) लिखना (4) चलना

25. **अनुभव द्वारा व्यवहार में परिवर्तन लाना ही अधिगम है**। यह कथन है–
(1) क्रो एवं क्रो का (2) गेट्स महोदय का
(3) स्किनर का (4) गिलफोर्ड महोदय का

26. डीवी सीखने का आधार किसे मानते थे?
(1) क्रियाओं को (2) आत्मा को
(3) बुद्धि को (4) ज्ञानेन्द्रियों को

27. सीखना की परिभाषा सबसे अच्छी ..... के अर्थ में दी जाती है।
(1) व्यवहार परिवर्तन (2) व्यवहार परिवर्जन
(3) उपर्युक्त दोनों (4) इनमें से कोई नहीं

9.	10.	11.	12.	13.	14.	15.	16.	17.	18.	19.	20.	21.	22.	23.	24.	25.	26.	27.			
(4)	(3)	(1)	(1)	(4)	(1)	(4)	(4)	(1)	(4)	(1)	(2)	(1)	(1)	(4)	(1)	(2)	(1)	(3)			

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

28. अधिगम के विकास में निम्न में से सबसे महत्त्वपूर्ण क्या है?
(1) व्यस्त विद्यालय कार्यक्रम
(2) अधिक पाठ्य-पुस्तकें
(3) अधिगम उत्प्रेरित वातावरण
(4) उत्सुक माता-पिता

29. जब बच्चे उन गतिविधियों में शामिल होते हैं, जो ..... होती हैं, तब वे जल्दी ..... करते हैं।
(1) कक्षा कक्ष में उपयोगी; विस्मरण
(2) केवल उनके कक्षा-कार्य से सम्बन्धित; प्रत्यास्मरण
(3) सांस्कृतिक रूप से निष्पक्षीय; स्मरण
(4) वास्तविक जीवन में उपयोगी; सीखा

30. शिक्षार्थी फैशन शो को देखकर मॉडल्स का अनुकरण करने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार के अनुकरण को ..... कहा जा सकता है।
(1) प्राथमिक अनुकरण
(2) गौण अनुकरण
(3) सामाजिक अधिगम
(4) सामान्यीकरण

31. सीखने की तत्परता ..... की ओर संकेत करती है।
(1) थॉर्नडाइक के तत्परता का नियम
(2) शिक्षार्थियों के सामान्य योग्यता स्तर
(3) सीखने के सातत्यक में शिक्षार्थियों का वर्तमान संज्ञानात्मक स्तर
(4) सीखने के कार्य की प्रकृति को सन्तुष्ट करने

32. **एक बच्चा अतीत की समान परिस्थिति में की गई अनुक्रियाओं के आधार पर नई स्थिति के प्रति अनुक्रिया करता है।** यह किससे सम्बन्धित है?
(1) सीखने का सादृश्यता नियम
(2) सीखने का प्रभाव नियम
(3) सीखने की प्रक्रिया का अभिवृत्ति नियम
(4) सीखने का तत्परता नियम

33. बच्चों में सीखने के लिए आवश्यक तत्त्व हैं-
1. अभ्यास 2. तत्परता
3. अन्तःदृष्टि
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) केवल 3 (4) ये सभी

34. सीखना कोई ..... और सीधी ..... होती है, बल्कि यह जटिल, बहुआयामी और गतिशील प्रक्रिया है।
(1) आसान; प्रक्रिया (2) आसान; प्रक्रिया नहीं
(3) कठोर; प्रक्रिया नहीं (4) कठोर; प्रक्रिया

35. स्कूल के भीतर और बाहर, दोनों जगहों पर ..... की ..... चलती रहती है।
(1) विकास; प्रक्रिया (2) बालक; शरारतें
(3) सीखने; प्रक्रिया (4) शिक्षकों; प्रगति

36. जब पूर्व का अधिगम नई स्थितियों के सीखने को बिल्कुल प्रभावित नहीं करता, तो यह ..... कहलाता है।
(1) अधिगम का शून्य स्थानान्तरण
(2) अधिगम का निरपेक्ष स्थानान्तरण
(3) अधिगम का सकारात्मक स्थानान्तरण
(4) अधिगम का नकारात्मक स्थानान्तरण

37. बच्चों के सीखने के सन्दर्भ में निम्नलिखित में से कौनसा कथन सत्य है?
(1) सीखना किसी की मध्यस्थता के बिना नहीं हो सकता है।
(2) बच्चे व्यक्तिगत स्तर पर दूसरों से भी विभिन्न तरीकों से सीखते हैं।
(3) सीखने के बाद व्यक्ति स्वयं और दुनिया को समझने के योग्य हो पाता है।
(4) सीखना, अनुभव या व्यवहार में परिवर्तन है।

38. जब वर्तमान कार्य को करते समय पूर्व में सीखे गये कार्य के द्वारा बाधा उपस्थित की जाती है, तो इस स्थिति को कहते हैं-
(1) शून्य स्थानान्तरण
(2) ऋणात्मक स्थानान्तरण
(3) धनात्मक स्थानान्तरण
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

39. जब एक शिक्षण वक्र रेखा यह प्रकट करती है कि प्रारम्भिक प्रयासों में सीखने की गति तीव्र है किन्तु बाद के प्रयासों में यह गति क्रमशः मंद होती चली जाती है, तो इस प्रकार के शिक्षण को क्या कहा जाता है?
(1) ऋणात्मक शिक्षण वक्र (2) ओजाइव
(3) धनात्मक शिक्षण वक्र (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

40. सीखने के वक्र-
(1) सीखने की प्रगति के सूचक हैं।
(2) सीखने की मौलिकता के सूचक हैं।
(3) सीखने के गत्यात्मक स्वरूप के सूचक हैं।
(4) सीखने की रचनात्मकता के सूचक हैं।

41. सीखना समृद्ध हो सकता है यदि-
(1) वास्तविक दुनिया से उदाहरणों को कक्षा में लाया जाए, जिसमें विद्यार्थी एक-दूसरे से अन्तःक्रिया करे और शिक्षक उस प्रक्रिया को सुगम बनाए।
(2) कक्षा में अधिक से अधिक शिक्षण सामग्री का प्रयोग किया जाए।
(3) शिक्षक विभिन्न प्रकार के व्याख्यान और स्पष्टीकरण का प्रयोग करें।
(4) कक्षा में आवधिक परीक्षाओं पर अपेक्षित ध्यान दिया जाए।

28.	29.	30.	31.	32.	33.	34.	35.	36.	37.	38.	39.	40.	41.								
(3)	(4)	(3)	(3)	(1)	(4)	(2)	(3)	(1)	(1)	(2)	(1)	(1)	(1)								

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

42. निम्न में से कौनसे कथन को सीखने की प्रक्रिया की विशेषता नहीं मानना चाहिए?
(1) शैक्षिक संस्थान ही एकमात्र स्थान है, जहाँ अधिगम प्राप्त होता है।
(2) सीखना एक व्यापक प्रक्रिया है।
(3) सीखना लक्ष्योन्मुखी होता है।
(4) अन-अधिगम भी सीखने की प्रक्रिया है।

43. निम्नलिखित में से किस कथन को सीखने के लक्षण के रूप में नहीं माना जा सकता है?
(1) सीखना एक ऐसी चीज है, जो कुछ अनुभवों के परिणामस्वरूप घटित होता है।
(2) व्यवहार का अध्ययन सीखना है।
(3) अन-अधिगम भी सीखने का एक हिस्सा है।
(4) सीखना एक प्रक्रिया है, जो व्यवहार में मध्यस्थता करती है।

44. शिक्षार्थी जो पहले सीख चुके हैं, उसकी पुनरावृत्ति और प्रत्यास्मरण में शिक्षार्थियों की मदद करना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि-
(1) नई जानकारी को पूर्व जानकारी से जोड़ना सीखने को समृद्ध बनाता है।
(2) पूर्व पाठों को दोहराने का यह प्रभावी तरीका है।
(3) यह शिक्षार्थियों की स्मृति को बढ़ाता है, जिससे सीखना सुदृढ़ होता है।
(4) यह किसी भी कक्षा-अनुदेशन के लिए एक सुविधाजनक शुरुआत है।

45. एक शिक्षिका अपने शिक्षार्थियों को अनेक तरह की सामूहिक गतिविधियों में व्यस्त रखती है, जैसे- समूह चर्चा, समूह परियोजनाएँ, भूमिका निर्वाह आदि। यह सीखने के किस आयाम को उजागर करता है?
(1) सामाजिक गतिविधियों के रूप में अधिगम
(2) मनोरंजन द्वारा अधिगम
(3) भाषा-निर्देशित अधिगम
(4) प्रतियोगिता-आधारित अधिगम

46. विशेष रूप से प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों की सीखने सम्बन्धी समस्याओं को सम्बोधित करने का सबसे बेहतर तरीका है-
(1) अक्षमता के अनुरूप विभिन्न शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग करना
(2) महँगी और चमकदार सहायक सामग्री का प्रयोग करना
(3) सरल और रोचक पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग करना
(4) कहानी-कथन पद्धति का प्रयोग करना

47. बच्चों को सीखने हेतु अभिप्रेरित करने के लिये शिक्षक को बढ़ावा देना चाहिए-
(1) प्रतिस्पर्धा
(2) कक्षा में प्रथम आने वाले बच्चे को पुरस्कृत करके
(3) सीखने हेतु उचित स्थिति और वातावरण का सृजन करके
(4) कक्षा में प्रतिभाशाली बच्चों की प्रशंसा करके

48. **सीखने की अफलताओं का कारण, समझने की असफलताएँ हैं।** यह कथन किसका है?
(1) पावलॉव (2) स्किनर
(3) मर्सेल (4) वुडवर्थ

49. निम्नलिखित में से सीखना किस प्रकार की गतिविधि है?
(1) व्यक्तिगत (2) सामाजिक
(3) व्यावहारिक (4) ये सभी

50. **सीखने के सफल अनुभव अधिक सीखने की प्रेरणा देते हैं।** यह कथन किसका है?
(1) प्रेसी का (2) रॉबिन्सन का
(3) फ्रैंडसन का (4) हॉरक्स का

51. थॉर्नडाइक ने अधिगम के कितन गौण नियम बताए हैं?
(1) 5 (2) 6
(3) 7 (4) 8

52. एक कार्य के सीखने का दूसरे कार्य के सीखने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, तो इस प्रशिक्षण-स्थानान्तरण को क्या कहते हैं?
(1) निषेधात्मक प्रशिक्षण-स्थानान्तरण
(2) शून्य प्रशिक्षण-स्थानान्तरण
(3) नगण्य प्रशिक्षण-स्थानान्तरण
(4) तटस्थ प्रशिक्षण-स्थानान्तरण

53. प्रथम अवस्था में सीखे गये कार्य के परिणामस्वरूप दूसरे कार्य को सीखना कठिन हो जाए, तो यह प्रतिषण-स्थानान्तरण हो जाता है-
(1) विधेयात्मक (2) निषेधात्मक
(3) शून्य (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

54. **किसी क्रिया को बार-बार दोहराने से उसका सम्बन्ध दृढ़ हो जाता है।** यह थॉर्नडाइक के किस नियम पर आधारित है?
(1) तत्परता के नियम पर (2) प्रभाव के नियम पर
(3) अभ्यास के नियम पर (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

55. सीखी गई क्रिया का अन्य समान परिस्थितियों में उपयोग किया जाना कहलाता है-
(1) अधिगम (2) अधिगम स्थानान्तरण
(3) परिपक्वता (4) इनमें से कोई नहीं

56. **क्रिया की सफलता से सन्तोष एवं असफलता से असन्तोष होता है।** ये कथन थॉर्नडाइक के किस नियम को इंगित करता है?
(1) अभ्यास का नियम (2) प्रभाव का नियम
(3) तत्परता का नियम (4) उपर्युक्त सभी

42.	43.	44.	45.	46.	47.	48.	49.	50.	51.	52.	53.	54.	55.	56.							
(1)	(2)	(1)	(1)	(1)	(3)	(3)	(2)	(3)	(1)	(2)	(2)	(3)	(2)	(2)							

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

57. आधुनिक शैक्षिक दृष्टिकोण से अधिगम अनुभवों की सफलता निर्भर करती है–
(1) सीखने वाले छात्र की तत्परता पर
(2) शिक्षक के व्यक्तित्व पर
(3) सीखने वाले की प्रेरणाओं पर
(4) सीखने की परिस्थिति तथा वातावरण पर

58. **सुखदायक प्रभाव से सम्बन्ध पक्के होते हैं और दुःखदायक प्रभाव से कमजोर होते हैं**। यह नियम कौनसा है?
(1) अभ्यास का नियम (2) उपयोग का नियम
(3) प्रभाव का नियम (4) अनुप्रयोग का नियम

59. व्यवहार में सिर्फ उसी परिवर्तन को सीखना कहा जाता है, जो–
(1) अच्छा होता है।
(2) बुरा होता है।
(3) अच्छा या बुरा दोनों होता है।
(4) न अच्छा होता है और न ही बुरा होता है।

60. मानव सीखना में आप निम्नांकित में से किसे अधिक महत्त्व देंगे?
1. उत्सुकता 2. पुनर्बलन
3. परिणाम ज्ञान 4. आकांक्षा स्तर
सही विकल्प चुनें–
(1) 1,2 तथा 3
(2) 2,3 तथा 4
(3) 3,4 तथा 1
(4) 1,2 तथा 4

61. सीखी गई अनुक्रिया की अभिव्यक्ति जब व्यवहार के रूप में होती है, तो उसे कहा जाता है–
(1) अभ्यसन (2) अनुकूलन
(3) निष्पादन (4) मूलप्रवृत्ति

62. निम्नलिखित में से कौनसा शिक्षक से सम्बन्धित अधिगम को प्रभावित करने वाला कारक है?
(1) विषय-वस्तु में प्रवीणता
(2) बैठने की उचित व्यवस्था
(3) शिक्षण अधिगम संसाधनों की उपलब्धता
(4) विषय-वस्तु या अधिगम अनुभवों की प्रकृति

63. जल शुद्धि प्रकरण को स्पष्ट करने का सबसे उचित तरीका है–
(1) चार्ट की सहायता से प्रक्रिया को प्रदर्शित करना
(2) विद्यार्थियों को शुद्धिकरण प्लान्ट का मॉडल बनाने के लिए कहना
(3) विद्यार्थियों को उस प्लान्ट पर ले जाना, जहाँ जल शुद्धि की जाती है।
(4) पाठ्य पुस्तक से पढ़ाना

64. निम्न में से कौनसा कारक बालकों में अधिकतम अधिगम प्रसार हेतु आवश्यक है?
(1) अध्ययन के प्रति उनकी वैयक्तिक रूचि
(2) कक्षा कक्ष में अधिकाधिक कार्य
(3) गृहकार्य की अधिकता
(4) लेखन कार्य की अधिकता

65. एक शिक्षिका अपनी कक्षा को शैक्षिक भ्रमण पर ले जाती है–
(1) विद्यालय में रोजाना शिक्षण से अवकाश उपलब्ध कराने के लिए
(2) प्रत्यक्ष अवलोकन के लिए बच्चों को अवसर उपलब्ध कराने के लिए
(3) विद्यालय कैलेण्डर में सुनिश्चित क्रियाकलाप करने के लिए
(4) बच्चों को मनोरंजन उपलब्ध कराने के लिए

66. निम्नलिखित में से कौनसा कथन सीखने के बारे में सही है?
(1) सीखना उस वातावरण में प्रभावी होता है, जो संवेगात्मक रूप से सकारात्मक हो और शिक्षार्थियों को सन्तुष्ट करने वाला हो।
(2) सीखने के किसी भी चरण पर सीखना संवेगात्मक कारकों से प्रभावित नहीं होता।
(3) सीखना मूल रूप से मानसिक क्रिया है।
(4) बच्चों द्वारा की गई त्रुटियाँ यह संकेत करती हैं कि किसी तरह का सीखना नहीं हुआ।

67. एक शिक्षिका अपने शिक्षण में दृश्य-श्रव्य सामग्रियों और शारीरिक गतिविधियों का प्रयोग करती है, क्योंकि–
(1) वे शिक्षक को आराम देते हैं।
(2) वे प्रभावी आकलन को सुगम बनाते हैं।
(3) वे शिक्षार्थियों को वैविध्य उपलब्ध कराते हैं।
(4) इसमें अधिकतम इन्द्रियों का उपयोग सीखने को संवर्द्धित करता है।

68. एक शिक्षक/शिक्षिका सामान्यतः विद्यार्थियों को अलग-अलग कार्य देता/देती है। वह यह विश्वास करता/करती है कि–
(1) विद्यार्थी एक जैसे कार्य सभी विद्यार्थियों को दिए जाने को पसन्द नहीं करते।
(2) यह विद्यार्थियों में प्रतिस्पर्धा को बढ़ाता है।
(3) विद्यार्थियों में वैयक्तिक अन्तर होते हैं।
(4) विद्यार्थी एक-दूसरे के कार्य की नकल नहीं कर सकते।

69. श्रव्य शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग निम्नलिखित में से किसमें किया जा सकता है?
(1) बच्चों का लेखन सुधारने में
(2) बच्चों का उच्चारण सुधारने में
(3) बालकों के मूल्यांकन में
(4) उपरोक्त सभी में

57.	58.	59.	60.	61.	62.	63.	64.	65.	66.	67.	68.	69.									
(1)	(3)	(3)	(2)	(3)	(1)	(3)	(2)	(2)	(1)	(4)	(2)	(1)									

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

70. एपिडायास्कोप उपकरण का उपयोग निम्नलिखित में से किसके लिए किया जाता है?
(1) वस्तुओं को स्पष्ट रूप से देखने के लिए
(2) किसी अपारदर्शी वस्तु को स्क्रीन पर प्रक्षेपित करने के लिए
(3) किसी वस्तु की नकल उतारने के लिए
(4) किसी वस्तु को बड़ा दिखाने के लिए

71. शिक्षण मशीनों की विशेषता होती है–
(1) ये शिक्षण समस्या का समाधान करने में सहायक होती है।
(2) इनमें बाह्य अनुक्रिया के लिए अवसर दिया जाता है।
(3) इनमें छात्रों के मूल्यांकन करने में भी आसानी होती है।
(4) उपरोक्त सभी

72. किस शिक्षण सहायक सामग्री से छात्रों को उच्च कोटि का पुनर्बलन प्राप्त हो सकता है?
(1) कम्प्यूटर (2) चार्ट
(3) रेडियो (4) टेलीविजन

73. कक्षा अध्यापन में दृश्य साधन के रूप में किसका सर्वाधिक प्रयोग होता है?
(1) ग्राफ (2) चार्ट
(3) ब्लैकबोर्ड (4) रेखाचित्र

74. कौनसी शिक्षण सहायक सामग्री बच्चों के लिए सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र होनी चाहिए?
(1) बुलेटिन बोर्ड (2) चार्ट
(3) ब्लैकबोर्ड (4) रेखाचित्र

75. किस शिक्षण सहायक सामग्री को तैयार करने का अवसर बालकों को भी दिया जाना चाहिए?
(1) ग्राफ (2) चार्ट
(3) बुलेटिन बोर्ड (4) रेखाचित्र

76. दृश्य–श्रव्य सामग्री कैसी नहीं होनी चाहिए?
(1) शिक्षण के उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक
(2) सुन्दर तथा आकर्षक
(3) बालक को विचलित करने वाली
(4) बालकों की रूचि को बढ़ाने वाली

77. बालकों में निरीक्षण करने की योग्यता के विकास में सर्वाधिक मदद करता है–
(1) भ्रमण
(2) चार्ट
(3) नमूना
(4) कम्प्यूटर

78. वाइगोत्स्की बच्चों के सीखने में निम्नलिखित में से किस कारक की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर बल देते हैं?
(1) आनुवंशिक (2) नैतिक
(3) शारीरिक (4) सामाजिक

79. श्यामपट्ट को शिक्षण साधन सामग्री के किस समूह में सम्मिलित किया जा सकता है?
(1) श्रव्य साधन (2) दृश्य साधन
(3) दृश्य–श्रव्य साधन (4) इनमें से कोई नहीं

80. श्यामपट्ट पर लिखते समय सबसे महत्त्वपूर्ण क्या है?
(1) अच्छी लिखावट (2) लेखन में स्पष्टता
(3) बड़े अक्षरों में लिखना (4) छोटे अक्षरों में लिखना

81. विद्यार्थियों के पोर्टफोलियों के लिए सामग्री का चयन करते समय ..... का ..... जरूर होना चाहिए।
(1) विद्यार्थियों; बहिष्करण
(2) अन्य शिक्षकों; समावेशन
(3) विद्यार्थियों; समावेशन
(4) अभिभावकों; समावेशन

82. मीड़िया का एक उदाहरण, जो अधिगमकर्ता को प्रत्यक्ष प्रस्तुतीकरण के द्वारा अधिगम में सहायक होता है–
(1) शैक्षिक टेलीविजन (2) शैक्षिक प्रसारण
(3) ओवर हेड प्रोजेक्टर (4) टेलीफोन

83. विद्यार्थियों के साथ सम्प्रेषण का अर्थ होता है–
(1) उनसे प्रश्न करने को कहना
(2) विचारों का आदान–प्रदान
(3) उन्हें निर्देश देना
(4) उन्हें अपने विचारों से अवगत कराना

84. पढ़ने की वह तकनीक, जिसका उपयोग तालिका में स्थित शब्दावली तथा प्रसंग में किया जा सकता है, कहलाती है–
(1) की–रीड़िंग (2) री–रीड़िंग
(3) स्कैनिंग (4) स्किमिंग

85. निम्न में से श्रव्य–दृश्य सामग्री का उद्देश्य हैं–
1 शिक्षण को प्रभावशाली बनाना
2 छात्रों में सृजनात्मकता उत्पन्न करना
3 छात्रों को क्रियाशील बनाना
4 विषयवस्तु में अरूचि उत्पन्न करना
कूट–
(1) 1, 2 और 3 (2) 1 और 4
(3) 1, 3 और 4 (4) 2, 3 और 4

70.	71.	72.	73.	74.	75.	76.	77.	78.	79.	80.	81.	82.	83.	84.	85.						
(2)	(4)	(1)	(1)	(1)	(3)	(3)	(1)	(4)	(2)	(1)	(3)	(1)	(2)	(3)	(1)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

86. वर्तनी, वाचन एवं गणना में कठिनाई, सामान्य बुद्धि एवं अच्छी अनुकूलनात्मक योग्यता विशेषता है–
(1) धीमी गति से सीखने वालों की
(2) सामान्य/औसत अधिगमकर्ता की
(3) मानसिक रूप से पिछड़े बालकों की
(4) अधिगम निर्योग्य बालकों की

87. अधिगम प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण चरण के रूप में बालकों की त्रुटियों का पता लगाने के लिए शिक्षक को अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी आवश्यक है। निम्नलिखित में से कौनसा/से अधिगम को प्रभावित करने वाला एक कारक है/हैं?
(1) पुरस्कार एवं दण्ड (2) अभिप्रेरणा
(3) उचित वातावरण (4) ये सभी

88. अधिगम प्रक्रिया विभिन्न कारकों से प्रभावित होती है। निम्नलिखित में से अधिगम को प्रभावित करने वाला बाह्य कारक है–
(1) शारीरिक वृद्धि एवं विकास (2) अभिप्रेरणा
(3) वातावरण (4) रूचि

89. किसी कक्षा कक्ष में सीखने को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण घटक है–
(1) कक्षा कक्ष का आर्थिक वातावरण
(2) कक्षा कक्ष का प्रशासनिक वातावरण
(3) कक्षा कक्ष का मनोवैज्ञानिक वातावरण
(4) कक्षा कक्ष का सामाजिक वातावरण

90. निम्न में से कौनसी सहायक सामग्री सूचनाओं के विश्लेषण एवं तुलना में सहायक है?
(1) चित्र (2) रेखाचित्र
(3) ग्राफ (4) मानचित्र

91. सहायक सामग्री का उपयोग करते समय आप किसे सबसे अधिक महत्त्व देंगे?
(1) विद्यार्थी की रूचि को (2) अधिगम की सुविधा को
(3) आकर्षण को (4) मूल्य को

92. शिक्षण में सहायक सामग्री का उपयोग किया जाता है–
(1) शिक्षण को प्रमुख शैली बनाने के लिए
(2) शिक्षण को मनोरंजन पूर्ण बनाने के लिए
(3) शिक्षण को अधिक स्वाभाविक व उपयोगी बनाने के लिए
(4) उपर्युक्त सभी

93. वे कौनसे बाह्य कारक है, जो एक बच्चे को कक्षा में रूचि लेने से रोकते हैं?
(1) भावना और मनोभाव (2) संस्कृति और प्रशिक्षण
(3) बच्चे का दृष्टिकोण (4) लक्ष्य और प्रयोजन

94. किस मनोवैज्ञानिक ने सीखने की सामग्री में **Nonsense Syllabus** की रचना की?
(1) जेम्स (2) वुंट
(3) स्किनर (4) एबिंगहास

95. श्यामपट्ट प्रतीक है–
(1) अध्यापक का (2) शिक्षण का
(3) कक्षा का (4) स्कूल का

96. स्थानान्तरण को प्रभावित करने वाला/वाले कारक है/हैं–
(1) सामान्यीकरण
(2) समझदारी
(3) अर्जित ज्ञान का विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग
(4) उपर्युक्त सभी

97. अधिगम की प्रयत्न और भूल विधि में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारक कौनसा है?
(1) लक्ष्य (2) क्रिया
(3) प्रेरणा (4) अभ्यास

98. कक्षा में छात्र के व्यवहार को अनुशासित करने वाला प्राथमिक कारक होना चाहिए–
(1) छात्र प्रेरणाएँ (2) छात्र मित्रमण्डली
(3) शिक्षक प्रभुत्व (4) पुरस्कार–दण्ड प्रविधि

99. कक्षा शिक्षण में दृश्य सामग्री का प्रयोग करने में आप किस बात का ध्यान रखेंगे?
(1) उसे नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करेंगे।
(2) वह पाठ्य विषय के अनुरूप हो।
(3) वह बच्चों को अज्ञात से ज्ञात की ओर ले जाने वाली हो।
(4) उसके बारे में बच्चों को पहले से बता देंगे।

100. कक्षा शिक्षण में विविधता और रोचकता बढ़ती है–
(1) अध्यापक के व्यक्तित्व से
(2) छात्रों के सहयोग से
(3) शिक्षण सामग्री के प्रयोग से
(4) अनुशासन के पालन से

101. शिक्षा में टेलीविजन का उपयोगी स्थान है, क्योंकि–
(1) अच्छे शिक्षकों की कमी है।
(2) टेलीविजन पर पाठ्यवस्तु को पूरे विस्तार के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है।
(3) इससे कक्षा में अनुशासनहीनता पैदा नहीं होगी।
(4) टेलीविजन पर जो कुछ देखा जाता है, वह हमेशा के लिए याद हो जाता है।

86.	87.	88.	89.	90.	91.	92.	93.	94.	95.	96.	97.	98.	99.	100.	101.						
(2)	(4)	(3)	(3)	(3)	(1)	(4)	(2)	(4)	(3)	(3)	(4)	(1)	(2)	(3)	(2)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

102. कक्षा में दृश्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोग–
(1) धीमी गति से सीखने वाले छात्रों के लिए अधिक उपयोगी होता है।
(2) मेधावी छात्रों के लिए अधिक उपयोगी होता है।
(3) बालकों की जिज्ञासा बढ़ाता है।
(4) छात्रों का ध्यान मूल विषय से दूर हटाता है।

103. जिस निर्देशन सामग्री का कक्षा शिक्षण के दौरान इस्तेमाल किया जाना हो, उसे/उसका–
(1) कक्षा में ही तैयार करना चाहिए।
(2) उल्लेख पाठ योजना में कर लेना चाहिए।
(3) तभी दिखाना चाहिए, जब बच्चों में उत्सुकता बढ़ जाए।
(4) कक्षा शिक्षण शुरू करते ही छात्रों को दिखा देना चाहिए।

104. पाठ्य सहायक सामग्री का प्रयोग–
(1) तभी करना चाहिए, जब जरूरी हो।
(2) पाठ का विकास करने के लिए किया जाए।
(3) ऐसे करना चाहिए कि छात्रों पर उसका अपेक्षित प्रभाव पड़े।
(4) उपर्युक्त सभी

105. किस शिक्षण सामग्री को आप उत्तम सामग्री मानते हैं?
(1) जो देखने में सुन्दर व रंग–बिरंगी हो।
(2) जो पाठ्य विषय से सम्बन्धित हो।
(3) जो आसानी से मिल जाए।
(4) जिसे पहली बार प्रयोग में लाया जाए।

106. शिक्षण में सहायक सामग्री का प्रयोग किया जाता है–
(1) पाठ को आसान और रूचिकर बनाने के लिए
(2) कक्षा में छात्रों की भागीदारी को बढ़ाने के लिए
(3) अमूर्त को मूर्त ज्ञान में परिवर्तित करने के लिए
(4) उपरोक्त सभी

107. श्रृव्य दृश्य के प्रयोग में निम्न में से किस शिक्षण सूत्र का अनुपालन किया जा सकता है?
(1) मूर्त से अमूर्त
(2) आसान से कठिन
(3) ज्ञात से अज्ञात
(4) उपरोक्त सभी

108. सहायक सामग्री के रूप में **OHP** का प्रयोग करने का लाभ यह है कि–
(1) यह सस्ता व हल्का होता है।
(2) इसके द्वारा बनाया गया प्रतिबिम्ब बहुत स्पष्ट होता है।
(3) श्यामपट्ट का ही स्क्रीन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।
(4) उपरोक्त सभी

109. कक्षा में टी.वी. का प्रयोग कठिन है, क्योंकि–
(1) इसकी गति हमारे नियन्त्रण में नहीं होती।
(2) टी.वी कार्यक्रम को शिक्षण के अनुसार समायोजित नहीं किया जा सकता, बल्कि इसका उल्टा ही करना पड़ता है।
(3) उपरोक्त दोनों
(4) उपरोक्त कोई नहीं

110. अ, ब, स तीन शिक्षार्थी हैं, जो अंग्रेजी पढ़ते हैं। अ को यह विषय रोचक लगता है और वह सोचता है कि यह उसके भविष्य में सहायक होगा। ब अंग्रेजी इसलिए पढ़ती है, क्योंकि वह कक्षा में पहला स्थान प्राप्त करना चाहती है। स अंग्रेजी विषय इसलिए पढ़ता है, क्योंकि उसका प्राथमिक सरोकार उत्तीर्ण होने वाले ग्रेड्स प्राप्त करना है। अ, ब और स के उद्देश्य क्रमशः ..... हैं।
(1) निपुणता, निष्पादन, निष्पादन–उपेक्षा
(2) निष्पादन, निष्पादन–उपेक्षा, निपुणता
(3) निष्पादन–उपेक्षा, निपुणता, निष्पादन
(4) निपुणता, निष्पादन–उपेक्षा, निष्पादन

111. कुछ विषयों का शिक्षण टेलीविजन के माध्यम से बहुत बढ़िया हो सकता है, क्योंकि–
(1) इन विषयों में अध्यापकों की कमी है।
(2) टेलीविजन शिक्षण के माध्यम से अनुशासन बढ़िया रहता है।
(3) टेलीविजन द्वारा जो दृश्य, अनुभव के प्रयोग दिखाए जा सकते हैं, उनका प्रबन्ध स्कूल में कर पाना सम्भव नहीं होता।
(4) शिक्षक भी इससे नई–नई बातें जान सकते हैं।

****

प्रगण्य प्रकाशन द्वारा CTET एवं प्रत्येक राज्य के TET (UPTET, MP Samvida, BTET, UTET, JTET, HTET, CGTET, HPTET) के लिए मॉडल पेपर की फ्री PDF प्रकाशित की जाती है। मॉडल पेपर की फ्री PDF प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित Whatsapp No. अपने कॉलेज के क्लास ग्रुप या कोचिंग के क्लास ग्रुप या अन्य स्टडी ग्रुप में जोंडे। आपके ग्रुप में मॉडल पेपर भेज दिए जाएँगें।

UPTET - 95301 43210
MP Samvida - 95302 43210
BTET - 95302 43210
UTET - 72209 29294
JTET - 72209 29239
HTET - 72209 29266
CGTET - 72209 28969
HPTET - 72209 28535

102.	103.	104.	105.	106.	107.	108.	109.	110.	111.	112.										
(1)	(2)	(4)	(2)	(4)	(4)	(4)	(3)	(1)	(3)	(4)										

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

अध्याय 6

अधिगम के सिद्धान्त

6.1 प्रस्तावना

अधिगम का सम्बन्ध स्मृति से रहा है। स्मृति के अभाव में अधिगम व्यर्थ है। अधिगम के क्षेत्र में अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। सभी अधिगम सिद्धान्त इन तथ्यों पर आधारित हैं–

1. अधिगम की सीमाएँ क्या हैं?
2. अभ्यास की अधिगम की प्रक्रिया में क्या भूमिका है?
3. दण्ड, पुरस्कार, प्रोत्साहन आदि का सीखने की प्रक्रिया में क्या महत्त्व है?
4. सीखने की क्रिया में अवबोध तथा अन्तर्दृष्टि का क्या महत्त्व है?
5. क्या एक सीखी गई क्रिया किसी अन्य क्रिया को सीखने में सहयोग देती है?
6. जब हम याद करते हैं या भूलते हैं, तब क्या होता है?

ये सभी प्रश्न अधिगम की सम्पूर्ण क्रिया से जुड़े हैं। सीखने की सीमा व्यक्ति की अधिगम की क्षमता है। वैयक्तिक भिन्नता के कारण ही व्यक्ति भिन्न–भिन्न रूप से सीखता है। अधिगम की क्रिया की पुष्टि अभ्यास से होती है। अभ्यास को बनाये रखने में अभिप्रेरणा के विभिन्न पक्षों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। अबोध तथा अन्तर्दृष्टि अधिगम के अस्तित्व को स्थापित करती है और एक सीखी गयी क्रिया दूसरी क्रिया की पुष्टि करती है तथा अन्य नवीन क्रिया को सीखने का मार्ग प्रशस्त करती है। इसी प्रकार जब हम किसी तथ्य को याद करते हैं, तो सन्तोष मिलता है और भूलते हैं, तो दुःख होता है।

अधिगम चाहे जाने–अनजाने दैनिक जीवन में हुआ हो, चाहे मनोवैज्ञानिक की प्रयोगशाला में, उसके मूल में समान सिद्धान्त तथा नियम कार्य करते हैं। मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक परीक्षणों ने सीखने के सिद्धान्तों की व्याख्या करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। एक सिद्धान्त को समझने के लिए दूसरे सिद्धान्त को समझना आवश्यक हो जाता है। प्रयोग एवं परीक्षण के मध्य उठाई गई समस्याएँ निष्कर्ष निकालते ही गौण हो जाती है।

6.2 अधिगम के सिद्धान्त : अर्थ

सीखने के सिद्धान्त से तात्पर्य उस सैद्धान्तिक गवेषणा से होता है, जो सीखने का स्वरूप क्या है, प्राणी क्या सीखता है, क्यों सीखता है आदि प्रश्नों के उत्तरों की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। हरगेनहान के अनुसार सीखने के सिद्धान्तों में मुख्यतः सीखने की प्रक्रिया की सैद्धान्तिक व्याख्या की जाती है और ये सिद्धान्त निम्नलिखित तीन प्रश्नों के उत्तर की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं–

1. प्राणी क्यों सीखता है?
2. प्राणी कैसे सीखता है?
3. प्राणी क्या सीखता है?

इन प्रश्नों के उत्तरों की खोज में कई मनोवैज्ञानिक एवं विद्वान जुटे और उन्होंने अपने–अपने प्रयोगों एवं अनुभूतियों के आधार पर अपने–अपने सीखने के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

6.3 अधिगम के सिद्धान्तों के प्रकार

सीखने के विभिन्न सिद्धान्तों को उनकी प्रकृति के अनुसार दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. उद्दीपन–अनुक्रिया सिद्धान्त अथवा व्यवहारवादी सिद्धान्त
2. उद्दीपन–उद्दीपन सिद्धान्त अथवा संज्ञानात्मक सिद्धान्त

6.4 उद्दीपन–अनुक्रिया सिद्धान्त अथवा व्यवहारवादी सिद्धान्त

इन सिद्धान्तों के अनुसार जब भी व्यक्ति अथवा प्राणी के सामने कोई समस्या आती है (इसे उद्दीपन कहते हैं), तो वह उसके समाधान के लिए भिन्न–भिन्न अनुक्रियाएँ करता है। इन अनुक्रियाओं में एक ऐसी अनुक्रिया भी होती है, जो उस समस्या का समाधान प्रस्तुत करती है। व्यक्ति अनेक प्रयासों अथवा अनुक्रियाओं को करते–करते उस अनुक्रिया को करता है। आगे जब भी उसके सामने वैसी ही समस्या आती है, तो पुनः वह भिन्न–भिन्न अनुक्रियाएँ करता है, लेकिन शीघ्र ही वह उस अनुक्रिया को करने में सक्षम होता है, जिससे उस समस्या का समाधान होता है। धीरे–धीरे आगे वाले प्रयासों में व्यक्ति उस समस्या के प्रति सही–सही अनुक्रिया करने लगता है और एक समय ऐसा आता है जब उसके सामने वही समस्या आती है, तो तुरन्त वह वही अनुक्रिया करता है जिससे उस समस्या का समाधान होता है। इस प्रकार समस्या अथवा उद्दीपन विशेष के साथ समाधान अनुक्रिया का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और इसे ही **सीखना** कहते हैं। जैसे–जैसे यह क्रिया बार–बार दोहराई जाती है, उद्दीपन और अनुक्रिया में सम्बन्ध दृढ़तर होता जाता है और सीखना भी स्थायी होता जाता है। इस वर्ग में आने वाले सिद्धान्तों के सभी प्रतिपादक मनोवैज्ञानिक उद्दीपन–अनुक्रिया के मध्य सम्बन्ध को सीखने की संज्ञा देते हैं, लेकिन यह सम्बन्ध कैसे बनता है इस पर उनमें मतभेद है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि उद्दीपन–अनुक्रिया में सम्बन्ध उसके बाद दिए जाने वाले पुनर्बलन पर निर्भर करता है, क्योंकि इस पुनर्बलन के कारण सीखने वाले व्यक्ति को सन्तुष्टि होती है और वह उस अनुक्रिया को उद्दीपन के साथ सम्बन्धित कर देता है। इन सिद्धान्तों को **उद्दीपन–अनुक्रिया पुनर्बलन सिद्धान्त** कहते हैं। इन सिद्धान्तों को **प्रभावक सिद्धान्त** भी कहते हैं। इस श्रेणी में **थॉर्नडाइक**, **स्कीनर**, **पावलॉव**, **हल** और **मिलर** द्वारा प्रतिपादित सीखने के सिद्धान्तों को रखा जाता है। मनोवैज्ञानिकों का

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

विचार है कि उद्दीपन तथा अनुक्रिया साथ-साथ होते हैं और बार-बार होते हैं, तो अपने आप ही इनके मध्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और इसे ही सीखना कहते हैं। इन सिद्धान्तों को **उद्दीपन-अनुक्रिया-अपुनर्बलन सिद्धान्त** भी कहा जाता है। इस श्रेणी में **गुथरी** एवं **ऐस्ट्स** के सिद्धान्त प्रमुख हैं। प्रमुख उद्दीपन-अनुकिया सिद्धान्त अथवा व्यवहारवादी सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. उद्दीपन-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त
2. क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त
3. पुनर्बलन का सिद्धान्त
4. सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त या अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त
5. एडविन आर. गुथरी का सान्निध्य

6.5 उद्दीपन-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त

उद्दीपन-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त के प्रतिपादक अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एडवर्ड एल. थॉर्नडाइक है, जिन्होंने सन् 1998 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Animal Intelligence** में अपने अधिगम सिद्धान्त का उल्लेख किया है, जबकि सन् 1913 में प्रकाशित पुस्तक **Education Psychology** में थॉर्नडाइक के अधिगम सिद्धान्त का उल्लेख अधिक स्पष्ट रूप से मिलता है। थॉर्नडाइक महोदय ने **सम्बन्धवाद** रूपी विचारधारा का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार सम्बन्धवाद का तात्पर्य है कि उद्दीपन के साथ अनुक्रिया का सम्बन्ध स्थापित होता है। अतः इसे उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धान्त के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस सिद्धान्त को **अधिगम का सम्बन्ध सिद्धान्त**, **संयोजनवाद सिद्धान्त**, **प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त** आदि नामों से भी पुकारा जाता है। उद्दीपन-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त के अनुयायियों में वुडवर्थ, पावलॉव, वाटसन गुथरी तथा हल के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। इन मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि प्रत्येक क्रिया के पीछे एक उद्दीपन होता है, जिसका प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है और उसी के अनुरूप अनुक्रिया (R) होती है। उद्दीपन प्राणी पर प्रभाव डालता है, जिसके परिणाम स्वरूप यह अनुक्रिया (R) करता है। इस प्रकार एक विशिष्ट उद्दीपन एक अनुक्रिया से सम्बन्धित हो जाता है अर्थात् उद्दीपन अनुक्रिया के मध्य में अनुबन्ध हो जाता है। अतः इस अधिगम सिद्धान्त को S-R Bond Theory भी कहकर सम्बोधित किया जाता है।

थॉर्नडाइक ने अधिगम को परिभाषित करते हुए कहा कि अधिगम स्नायु मण्डल में परिस्थितियों और अनुक्रिया के मध्य संयोग सम्बन्धों के बनने तथा सबलित होने की बात है।

उद्दीपन-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त को सम्बन्धवाद भी कहा जाता है। इस सम्बन्धवाद की परिभाषा मनोवैज्ञानिक रेन ने इस प्रकार दी है कि सम्बन्धवाद वह सिद्धान्त है, जो समस्त मानसिक प्रक्रियाओं की परिस्थितियों तथा अनुक्रियाओं के बीच एवं अर्जित सम्बन्ध का कार्य मानता है।

थॉर्नडाइक का S-R Bond Theory सिद्धान्त निम्न घटकों पर आधारित है-

1. उद्दीपन का उपस्थित होना।
2. अनुक्रिया का होना।
3. उद्दीपन (S)-अनुक्रिया (R)-अनुबन्ध, जो उद्दीपन एवं अनुक्रिया में सम्बन्ध स्थापित करता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि उद्दीपन और अनुक्रिया में अनुबन्धन का निर्माण ही थॉर्नडाइक के सिद्धान्त का सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य है। मनोवैज्ञानिक थॉर्नडाइक ने अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए मुर्गियों, बिल्लियों, मछलियों, कुत्तों, बन्दरों तथा मानव पर अनेक प्रयोग किए, परन्तु बिल्लियों पर किए गए प्रयोगों के आधार पर थॉर्नडाइक ने **प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त** प्रतिपादित किया।

चूँकि प्रयास एवं त्रुटि के द्वारा उद्दीपन (S) तथा अनुक्रिया (R) में अनुबन्ध स्थापित किया जाता है, इसलिए मौलिक रूप से थॉर्नडाइक के अधिगम सिद्धान्त को उद्दीपन-अनुक्रिया अनुबन्ध (S-R Bond) सिद्धान्त कहकर सम्बोधित किया जाता है।

6.5.1 थॉर्नडाइक के प्रयोग

थॉर्नडाइक महोदय ने इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए पशुओं पर अनेक प्रयोग किए, किन्तु उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **Animal Intelligence** में वर्णित बिल्ली पर किया प्रयोग अधिक महत्त्वपूर्ण है।

1. उलझन बॉक्स प्रयोग

थॉर्नडाइक महोदय ने एक भूखी बिल्ली को एक मन्जूषा में बन्द कर दिया। इस मन्जूषा से बाहर निकलने का एक ही रास्ता था। दरवाजे के साथ एक लीवर लगा हुआ था, जिसको दबाने से ही दरवाजा खुल जाता था। मन्जूषा के बाहर एक तश्तरी में एक मछली का टुकड़ा रख दिया गया था। बिल्ली ने उस मन्जूषा का दरवाजा खोलने का अनेक बार प्रयत्न किया। कभी उछलती, कभी मन्जूषा के सीकचों से बाहर देखती, कभी मन्जूषा के अन्य भागों को हिलाती। इस प्रकार वह अनेक बार प्रयत्न करती और अनेक भूल करती। अन्ततः अकस्मात् उसका पंजा लीवर पर पड़ गया और दरवाजा खुल गया। बिल्ली बाहर निकल आई और मछली खा गई, जिससे उसे सन्तोष की प्राप्ति हुई। जब भूखी बिल्ली को दोबारा मन्जूषा में बन्द किया गया, तो वह पहले से कम समय से मन्जूषा से बाहर आकर मछली खा लेती है। यह प्रयोग बिल्ली पर कई बार दोहराया गया। हर बार बिल्ली ने बाहर निकलने में शीघ्रता दिखाई और अन्ततः एक समय ऐसा आ गया कि बिल्ली बिना भूल किये ही सन्दूक से बाहर निकल आयी।

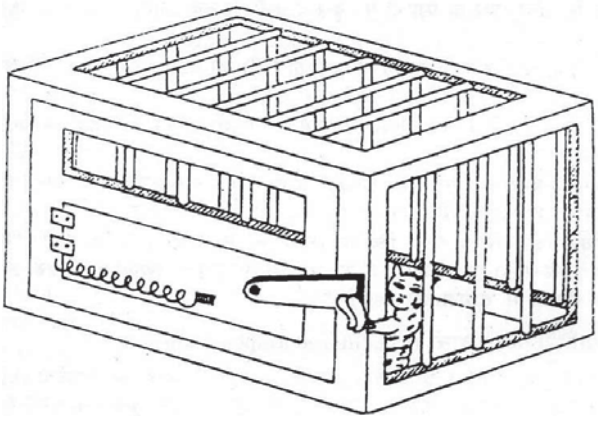

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

2. भूल-भुलैया प्रयोग

थॉर्नडाइक ने दूसरा प्रयोग चूहों पर किया। भूखे चूहे को भूल-भुलैया के प्रवेश द्वार से अन्दर कर दिया जाता था और कहीं पर भूल-भुलैया के बीच पनीर रख दिया जाता था। पहली बार चूहा काफी समय तक अन्धपथों में भटकता रहा और अन्त में संयोग वश एक सही रास्ता मिल गया, जो उसे निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचा सका। इस पर कई बार की गई क्रियाओं के फलस्वरूप बाद वाली क्रियाओं में क्रमशः समय में कमी आई। चूहा धीरे-धीरे अन्धपथों में भटक कर अन्त में सही रास्ता अपनाना सीख गया और उसे भूल-भुलैया के द्वार पर छोड़ने पर वह सही रास्ता अपनाकर तुरन्त निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर पनीर खा गया।

थॉर्नडाइक ने अपने इस प्रयोग से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले-

1. सीखने के लिए सबसे पहली आवश्यकता उद्देश्य होता है, जैसे ऊपर के प्रयोग में भोजन प्राप्त करना।
2. उद्देश्य के पीछे कोई प्रेरक अथवा अभिप्रेरक होता है, जैसे ऊपर के प्रयोग में भूख।
3. उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कोई उद्दीपन होना आवश्यक होता है, जैसे ऊपर के प्रयोग में मछली (भोजन)।
4. उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनुक्रिया आवश्यक होती है, जैसे ऊपर के प्रयोग में बिल्ली का पिन्जरे से बाहर आने के लिए प्रयत्न करना।
5. जो अनुक्रियाएँ उद्देश्य प्राप्ति में सहायक होती है, उन्हें सीखने वाला अपनाता चलता है और जो क्रियाएँ निरर्थक होती हैं, उन्हें छोड़ता चलता है, जैसे ऊपर के प्रयोग में बिल्ली ने किया।
6. उद्देश्य की प्राप्ति पर सीखने वाले के तन्त्रिका तन्त्र में उद्दीपन और उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक अनुक्रिया में शक्तिशाली सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, भविष्य में जब कभी भी सीखने वाले के सामने वही उद्दीपन उपस्थित होता है, तो वह उसके प्रति वही अनुक्रिया करता है। थॉर्नडाइक की दृष्टि से मनुष्य के मस्तिष्क से उद्दीपन-अनुक्रिया में यह शक्तिशाली अनुबन्ध स्थापित होना ही सीखना है।

थॉर्नडाइक ने इन्हीं तथ्यों को सीखने के उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने के लिए पहली आवश्यकता होती है- उद्दीपन, दूसरी आवश्कयता होती है- अनुक्रिया और तीसरी आवश्यकता होती है- उद्दीपन-अनुक्रिया में गहन सम्बन्ध। हम जानते हैं कि जब किसी उद्दीपन के प्रति सही अनुक्रिया होती है, तो उससे सीखने वाले को सन्तुष्टि होती है और वह उस अनुक्रिया का चयन कर लेता है। यह वह स्थिति होती है, जब उद्दीपन अनुक्रिया में शक्तिशाली अनुबन्ध हो जाता है।

6.5.2 थॉर्नडाइक के सिद्धान्त के गुण एवं विशेषताएँ

1. यह सिद्धान्त, उद्दीपन और अनुक्रिया के सम्बन्ध को सीखने का आधारभूत स्तम्भ मानता है।
2. यह सिद्धान्त, शिक्षण कार्य में प्रेरणा को अधिक महत्त्व देता है।
3. यह सिद्धान्त, इस बात पर बल देता है कि सीखना एक असम्बद्ध प्रक्रिया नहीं है, बल्कि प्रत्यक्ष, गत्यात्मक, ज्ञानात्मक तथा भावात्मक अंगों का एक पुंज है।
4. इस सिद्धान्त के अनुसार, जो व्यक्ति उद्दीपनों और अनुक्रियाओं में जितना अधिक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, उतना ही अधिक वह बुद्धिमान हो जाता है।
5. इस सिद्धान्त के आधार पर थॉर्नडाइक ने सीखने के तीन मुख्य नियमों को प्रतिपादित किया है। तत्परता का नियम, अभ्यास का नियम, प्रभाव या परिणाम का नियम।

6.5.3 थॉर्नडाइक के सिद्धान्त की कमियाँ

थॉर्नडाइक के सिद्धान्त की अनेक उपयोगिताएँ होते हुए भी इसकी कुछ कमियाँ हैं। ये निम्नानुसार हैं-

1. छात्र केवल प्रयत्न एवं भूल द्वारा ही नहीं सीखता है, बल्कि सूझ एवं अन्य मानसिक क्षमताओं के उपयोग द्वारा भी सीखता है।
2. इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने के लिए उद्दीपन की आवश्यकता होती है, लेकिन छात्र बिना बाह्य उद्दीपनों के भी अनुक्रिया कर सीखता है।
3. इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पशुओं पर प्रयोग करके किया गया है। अतः यह सिद्धान्त मनुष्यों के सीखने की प्रक्रिया पर पूर्ण रूप से लागू नहीं होता है।
4. यह सिद्धान्त सीखने को एक यान्त्रिक प्रक्रिया मानता है, जबकि मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया में बुद्धि, तर्क, चिन्तन और विवेक आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
5. प्रयत्न एवं भूल द्वारा सीखने में समय अधिक लगता है।
6. यह सिद्धान्त अधिगम के कारणों पर प्रकाश नहीं डालता है।
7. इस सिद्धान्त में निहित अभ्यास के नियम का प्रायः दुरुपयोग होता है।
8. कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि किसी कार्य को सीखने हेतु निरर्थक प्रयास की अपेक्षा किसी एक विशिष्ट विधि से सीखा जाना अधिक अच्छा है।

6.5.4 थॉर्नडाइक के सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता

थॉर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित प्रयत्न एवं भूल के सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता महत्त्वपूर्ण है। सामान्य जीवन में और अनेक अनुसन्धानों में इस सिद्धान्त का प्रयोग होता रहता है। गणित के शिक्षण में प्रयत्न एवं भूल द्वारा ही प्रारम्भिक अवस्था में बालकों को गणित सिखाई जाती है। पूर्व प्राथमिक कक्षाओं में भी इस विधि द्वारा बालकों को पढ़ाया व सिखाया जाता है और सिखाया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ शुद्ध एवं स्पष्ट लिखने के लिए बार-बार अभ्यास कराना आवश्यक है। थॉर्नडाइक ने अपनी पुस्तक **एजुकेशन ए फर्स्ट बुक** में अपने सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। इनमें से कुछ प्रमुख सुझावों का वर्णन प्रस्तुत है-

1. कक्षा के उद्देश्य स्पष्टतः परिभाषित होने चाहिए और वे सीखने वाले की क्षमताओं की पहुँच के अन्दर होने चाहिए।
2. कक्षा के उद्देश्यों को छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट देना चाहिए, ताकि शिक्षार्थियों को सही अनुक्रिया करने में कम प्रयास करने पड़े।
3. इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षार्थी का व्यवहार बाह्य पुनर्बलकों से अधिक प्रभावित होता है। अतः शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों को सही अनुक्रिया करने पर प्रशंसा एवं पुरस्कार दे और गलत अनुक्रिया को हतोत्साहित करे।

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

4. कक्षा का शैक्षिक वातावरण ऐसा होना चाहिए कि शिक्षार्थी अपने सीखे हुए ज्ञान का जीवन में उपयोग कर सके। इसके लिए यथासम्भव सीखे गए कौशलों के उपयोग का अभ्यास कराना चाहिए।
5. जटिल विषयों एवं प्रकरणों को सीखने पर अधिक बल नहीं देना चाहिए। जिन्हें बच्चे अच्छी तरह से सीख सके, उनका बार-बार अभ्यास कराना चाहिए।
6. शिक्षकों को प्रत्येक छात्र पर ध्यान देना चाहिए और उसकी अनुक्रियाओं का अवलोकन कर सही अनुक्रिया के चयन में सहयोग देना चाहिए।
7. शिक्षक स्वयं को यह पता होना चाहिए कि उसे क्या पढ़ाना है और कैसे पढ़ाना है। उसे पढ़ाए जाने वाले ज्ञान का बालकों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए और भविष्य में बालक इसका उपयोग कैसे करे, यह भी बताना चाहिए।
8. शिक्षकों को उन परिस्थितियों का पता लगाना चाहिए, जिनमें बच्चे सीख नहीं पाते।
9. शिक्षकों को यह भी निश्चित करना चाहिए कि उन्हें बालकों को कौन-सी अनुक्रियाएँ सिखानी है और कौन-सी अनुक्रियाएँ नहीं सिखानी है।
10. यदि शिक्षक समझते हैं कि किसी क्रिया को सीखने के लिए एक ही अनुक्रिया पर्याप्त है, तो बच्चों को अनावश्यक क्रियाएँ करने के लिए मना करना चाहिए।
11. शिक्षक बालकों को अनुक्रियाएँ करना उसी ढंग से सिखाएँ, जिस ढंग से उन्हें उन अनुक्रियाओं को भविष्य में दोहराना है।
12. शिक्षकों को चाहिए कि वे छात्रों को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का अवसर प्रदान करे। उन्हें यह ध्यान रखना है कि छात्र कहीं अनावश्यक समय तो बर्बाद नहीं कर रहे हैं।
13. इस सिद्धान्त से यह विदित होता है कि बालकों को सिखाने के लिए उनकी व्यक्तिगत भिन्नताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
14. बालकों के अधिगम में अभिवृत्ति का विशेष महत्त्व होता है। अतः बालकों के अधिगम से पूर्व अधिगम के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जाना चाहिए।

6.6 क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिका के बी. एफ. स्किनर ने किया। क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त का यह नाम इसलिए रखा गया, क्योंकि यह कुछ एक क्रियाओं पर आधारित है, जो कि किसी व्यक्ति को करनी होती हैं। इस सिद्धान्त में शास्त्रीय अनुबन्धन के सभी सिद्धान्त पाये जाते हैं, फिर भी दोनों में भिन्नता है।

पावलॉव के शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त में कुत्ते को मेज से भली-भाँति बाँधा गया था और वह सक्रिय नहीं था, किन्तु स्किनर के सीखने की क्रिया में प्रयोज्य क्रियाशील रहते हैं। यही कारण है कि इस सिद्धान्त को क्रिया-मूलक अनुबन्धन सिद्धान्त कहा गया है।

6.6.1 स्किनर के प्रयोग

स्किनर ने शुरू में प्रायोगिक कार्य चूहों को लेकर किये। उन्हें **स्किनर पेटिका** में रखा जाता था और उन्हें भोजन ग्रहण करने हेतु लीवर दबाना पड़ता था। इसके बाद में अन्य पशुओं पर प्रयोग किये और शिक्षण यन्त्रों को प्रयोग में लिया गया। रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन पूरी तरह स्किनर के इस अधिगम सिद्धान्त पर आधारित है। स्किनर ने सर्वप्रथम अपना प्रयोग चूहों पर किया और उसके पश्चात् कबूतरों पर।

स्किनर ने एक ऐसी पेटिका का निर्माण किया, जिसमें एक छड़ और भोजन के लिए एक तश्तरी जुड़ी हुई थी। उसने एक भूखे चूहे को इस पेटिका में रखा। वह पेटिका में इधर-उधर घूमता था, जैसे ही वह छड़ को दबाता भोजन तश्तरी में आ जाता। जब भोजन ने चूहे के इस व्यवहार का पुनर्बलन कर दिया, तो वह बार-बार छड़ को दबाने का कार्य करने लगा। चूहे को छड़ दबाने पर भोजन केवल उसी समय उपलब्ध होता, जब साथ में मीठी ध्वनि भी होती। धीरे-धीरे चूहे ने सामान्यीकरण कर लिया और वह केवल उसी समय छड़ दबाता, जबकि मीठी ध्वनि होती।

स्किनर ने इसी तरह के प्रयोग कबूतरों पर किये। इन प्रयोगों की मदद द्वारा स्किनर चिड़ियों को पुरस्कृत करके उन्हें परिमार्जित एवं परिवर्तित करने में सफल हुए। यहाँ तक कि चिड़ियाँ पिंग-पोंग खेल भी खेलने लगीं।

स्किनर ने अपने सिद्धान्त के अनुसार **S-R** सूत्र को **R-S** सूत्र में बदल दिया।

S-R सूत्र के अनुसार बिना उत्तेजक के अनुक्रिया नहीं हो सकती। इस मत का उन्होंने विरोध किया। उनकी मान्यता है कि ज्ञात उत्तेजक के बिना अनुक्रिया घटित हो सकती है। उनके अनुसार **अनुक्रिया** पहले होनी चाहिए और **उत्तेजक** बाद में दिया जाना चाहिए, किन्तु वांछित अनुक्रिया का कृत्रिम उत्तेजक द्वारा **पुनर्बलन** जरूरी है, अन्यथा अनुक्रिया में ह्रास होने लगता है। पुनर्बलन उचित अनुक्रिया के पश्चात् ही देना चाहिए, पहले नहीं। स्किनर के अनुसार यह अनुक्रिया (**R**) ही है, जो सबल होती है, न कि **उत्तेजक-अनुक्रिया** (**S-R**) बन्धन।

स्किनर का क्रिया प्रसूत सिद्धान्त थॉर्नडाइक के नियम के अन्तर्गत चयन एवं संयोजन पर आधारित है। थॉर्नडाइक की तरह स्किनर ने दो तरह के अधिगम को माना है, किन्तु गुथरी की भाँति उसने उस अधिगम पर अधिक बल दिया है, जो कि परिणामों द्वारा नियन्त्रित होता है।

स्किनर ने व्यवहार को दो भागों में विभक्त किया है- अनुक्रियात्मक और क्रिया प्रसूतात्मक। परम्परागत मनोविज्ञान के अनुसार उद्दीपन के अभाव में अनुक्रिया नहीं होती। स्किनर ने अनुक्रिया को दो भागों में विभक्त किया है-

1. प्रकाश में आने वाली अनुक्रिया
2. उत्सर्जन प्रतिक्रिया।

जो अनुक्रिया ज्ञात प्रेरक द्वारा प्रकाश में लाई जाती है, उसको प्रकाशित अनुक्रिया कहते हैं। इसके विपरीत दूसरे प्रकार की अनुक्रियाएँ होती हैं, जिनका सम्बन्ध किसी ज्ञात प्रेरक से नहीं होता। इस तरह की उत्सर्जन अनुक्रिया को क्रिया प्रसूत कहते हैं। परम्परागत मान्यता यह है कि इस प्रकार की अनुक्रिया को भी प्रकाशित अनुक्रिया स्वीकार करो, जिसका उत्तेजक भले ही ज्ञात न हो। स्किनर का मत है कि क्रिया-प्रसूत व्यवहार को समझने हेतु उत्तेजक दशाओं

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

का कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि क्रिया प्रसूत व्यवहार उत्तेजक द्वारा प्रकाश में नहीं आता। सक्रियता का किसी पूर्व उत्तेजक के साथ सम्बन्ध हो सकता है। ऐसी स्थिति में यह **विभेदीकृत क्रिया प्रसूत** हो जाता है।

अनुक्रिया की तरह अनुबन्धन भी दो प्रकार के होते हैं–

1. उद्दीपक अनुबन्धन
2. अनुक्रिया अनुबन्धन

संक्षेप में उद्दीपक अनुबन्धन को **S** तथा अनुक्रिया अनुबन्धन को **R** अनुबन्धन कहा जाता है।

S प्रकार के अनुबन्धन का सम्बन्ध अनुक्रियात्मक व्यवहार से इसलिए होता है कि पुनर्बलन का सम्बन्ध उत्तेजक से होता है। पावलॉव का अनुबन्धन सम्बन्धी सिद्धान्त **S** प्रकार का ही है। स्किनर **S** प्रकार के सीखने को महत्त्व देते हैं। यह अनुबन्धन क्रिया प्रसूत व्यवहार अनुबन्धन तथा पुनर्बलन से जुड़ा होता है। इससे एक प्रकार की प्रतिक्रिया होती है, जो कि पुनर्बलन से सम्बन्धित होती है, न की उद्दीपन से। इस विचार को पुष्ट करने के लिए स्किनर ने लीवर दबाने का उदाहरण प्रस्तुत किया। लीवर दबाने की प्रतिक्रिया को भोजन प्रस्तुत करने पुष्ट किया जाता है।

6.6.2 स्किनर के सिद्धान्त की कमियाँ

1. क्रिया–प्रसूत उत्तेजक अथवा उद्दीपन प्रसूत में भ्रम व्याप्त रहता है, जिसके कारण क्रिया–प्रसूत अनुबन्धन और उद्दीपन प्रसूत अनुबन्धन में स्पष्ट अन्तर करना कठिन होता है।
2. अधिगम एवं क्रियाकलाप में स्किनर कोई अन्तर नहीं समझते, जबकि दूसरे मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि पुनर्बलीकरण सीखने की अपेक्षा लक्ष्य की दृष्टि से क्रियाकलाप को प्रभावित करता है।
3. क्रिया प्रसूत के सभी प्रयोग नियन्त्रित परिस्थितियों में हुए। अतः इन नियन्त्रित परिस्थितियों में किये गये प्रयोगों से उपलब्ध नियम किस प्रकार सीखने की प्राकृतिक परिस्थितियों में लागू किये जा सकते हैं।
4. क्रिया प्रसूत में प्रयोगों के विषय पशु अथवा अन्य जीव थे। अतः उन पर आधारित नियम सीखने की सामाजिक परिस्थितियों में कैसे उपयोगी हो सकते हैं।

6.6.3 स्किनर के सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता

1. वांछित अनुक्रियाओं के पुनर्बलीकरण से बालकों, विशेषकर छोटे बच्चों को प्रोत्साहन मिलता है और वे उचित व्यवहार करने लगते हैं। देखा गया है कि जब बालक महसूस करता है कि उसके पढ़ने की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा, तो वह उदासीन हो जाता है। अतः आवश्यकता रहती है कि शिक्षक बालकों के उचित कार्य को प्रबलन देता रहे। शिक्षक क्रिया का प्रबलन मुस्कराहट तथा अधिक अंक प्रदान करके, सहानुभूति प्रकट करके अथवा प्रशंसा करके कर सकता है। बड़ी कक्षाओं में प्रबलन अनुक्रमित अनुदेशन के द्वारा दिया जा सकता है। इस अर्थ हेतु शिक्षण यन्त्रों का उपयोग किया जा सकता है। कई बार देखने में आया है कि चॉकलेट के लालच में छोटे बच्चे बारम्बार उचित लिखने और पढ़ने का प्रयास करते हैं और अन्ततः सही लिखना–पढ़ना सीख जाते हैं।
2. वांछित और उपयुक्त व्यवहार का पुनर्बलन पुरस्कार द्वारा तुरन्त करना चाहिए। इसमें देर होने से प्रभाव कम हो जाता है। अध्यापक द्वारा गृह–कार्य को निश्चित दिन न देखने पर छात्र उदासीन हो जाते हैं और उसे करना बन्द कर देते हैं।
3. यह सिद्धान्त अभ्यास और पुनरावृत्ति को महत्त्व देता है। अतः अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह शिक्षण में इन क्रियाओं का उपयोग करे।
4. अनुक्रमित अनुदेशन इस सिद्धान्त पर पूरी तरह आधारित है। इसके अन्तर्गत छात्र अपनी क्षमता के अनुसार सीखते हैं। छात्र तभी अग्रसर होता है, जबकि उसका उचित उत्तर द्वारा प्रबलन हो जाता है।
5. यह सिद्धान्त अभिप्रेरणा पर बल देता है। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह बालकों को विषय–वस्तु के उद्देश्य को स्पष्ट करके, उद्देश्य पूर्ति हेतु प्रेरित करता रहे। प्रेरणा प्रदान करने से बालक सीखने हेतु सदैव तत्पर रहते हैं।

6.7 पुनर्बलन का सिद्धान्त

क्लार्क एल. हल मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय की दृष्टि से व्यवहारवादी है। वर्तमान काल में यह सिद्धान्त सम्भवतः सबसे प्रमुख है। अमेरिका के येल विश्वविद्यालय में हल ने सीखने की प्रक्रिया से सम्बन्धित अनेक प्रयोग किये। उसने थॉर्नडाइक व वुडवर्थ द्वारा किये गये प्रयोगों और उन पर आधारित सीखने की व्याख्या का भी आलोचनात्मक अध्ययन किया। हल ने सर्वप्रथम अपने सिद्धान्त की रचना 1930 में की। तब यह लगभग सम्पूर्ण रूप से केवल एक सामान्य प्रतिस्थापन के सिद्धान्त के समान ही था। अतः हल का सिद्धान्त उत्तेजना–प्रतिक्रिया का ही दूसरा रूप था। जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि हल के विचार व्यवहारवादी हैं, परन्तु तर्क व सिद्धान्त के प्रस्तुतीकरण में हल प्रयोगवादी मनोविज्ञान से भी अधिक प्रभावित है। हल सीखने में चेतना का स्थान नहीं मानते हैं, उन्होंने सीखने की व्यवहारवादी और यान्त्रिक व्याख्या उपस्थित की है। यान्त्रिक सीखने में अभ्यास का विशेष महत्त्व होता है।

हल ने थॉर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित परिणाम प्रभाव के नियम तथा पावलॉव के सम्बन्ध–प्रतिक्रिया सिद्धान्त के आधार पर ही अपने सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। उसने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन **व्यवहार के सिद्धान्त** नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया गया। इस सिद्धान्त का नवीन रूप 1951 में प्रकाशित **व्यवहार के आवश्यक तत्त्व** नामक पुस्तक में किया। उसने पुनर्बलन पर विशेष बल दिया। उस समय से उसका सिद्धान्त पुनर्बलन का सिद्धान्त कहलाने लगा। हल ने सीखने की प्रक्रिया में केवल उत्तेजना तथा प्रक्रिया पर ही बल नहीं दिया, परन्तु सीखने वालों की मनोदशा, उनकी आवश्यकताओं तथा लक्ष्यों को भी उचित स्थान दिया।

6.7.1 सिद्धान्त की व्याख्या

हल ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या 17 स्वयं सिद्धियों, 17 उप–सिद्धान्तों तथा 133 प्रमेय के आधार पर की है। सीखने की क्रिया का आधार आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, तो वह उस आचरण अथवा व्यवहार को सीख लेता है। हल

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

पुनर्बलन या सबलीकरण की प्रक्रिया मानते हैं, जिससे प्राणी की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तथा चालक की सन्तुष्टि होती है। हल ने सीखने की प्रक्रिया में चालक का बहुत महत्त्व बताया है। प्रेरणा प्राणी की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से उत्पन्न होती है। अभिप्रेरणा प्राणी में चालक का कार्य करती है। अभिप्रेरणा की अनुपस्थिति में प्राणी कुछ नहीं सीख सकता। अभिप्रेरणा के कारण ही वह विशिष्ट क्रिया करता है। अभिप्रेरणा के उत्पन्न होने से प्राणी क्रिया करना प्रारम्भ कर देता है। अभिप्रेरणा उत्पन्न होने से प्राणी की क्रियाएँ उद्देश्यपूर्ण हो जाती है। इस प्रकार क्रिया करने से उसे पुरस्कार मिलता है, तो प्राणी उसी क्रिया को दोहराता है। इस प्रकार पुरस्कार प्राणी में उत्तेजना तथा अनुक्रिया के सम्बन्ध को पुष्ट या दृढ़ करता है। यह पुरस्कार ही पुनर्बलन है।

इस प्रकार लक्ष्य प्राप्ति से उत्तेजना और अनुक्रिया के बीच सम्बन्ध दृढ़ हो जाता है। इससे प्राणी के अन्दर तनाव कम हो जाता है, जिससे उसे विशिष्ट अनुक्रिया में सहायता मिलती है। अतः सीखने का कार्य आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में आवश्यकता की कमी, आवश्यकता पूर्ति करने के लिए होनी चाहिए।

हल के अनुसार जब आवश्यकता कम हो जाती है, तो S-R जो आवश्यकता कम होने के समय प्रस्तुत होते हैं, दृढ़ हो जाते हैं। इस प्रकार हल **परिणाम का नियम** और **सम्बद्ध प्रतिक्रिया** के नियम दोनों को मिला देते हैं। आवश्यकता कम होने का तात्पर्य ही यह है कि सफल प्रतिक्रिया हुई है। सफल प्रतिक्रिया S-R सम्बन्ध को मजबूत बनाती है।

6.7.2 पुनर्बलन की अवस्थाएँ

हल ने सबलीकरण या पुनर्बलन की दो अवस्थाएँ बताई हैं–

1. प्राथमिक पुनर्बलन

प्राथमिक पुनर्बलन से तात्पर्य उन उत्तेजनाओं से है, जिनसे किसी प्राणी की आवश्यकता में कमी आ जाती है। जैसे भोजन के खा लेने से भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती हैं इस प्रकार प्राणी उस क्रिया को दोहराता है, जिससे उसे भोजन मिलता है।

2. द्वितीयक पुनर्बलन

द्वतीयक पुनर्बलन के सम्बन्ध में हल ने लिखा है कि सावधानी से किये गये अवलोकनों और प्रयोगों ने मुख्य रूप से उच्च जीवों पर किये गये अवलोकनों और प्रयोगों ने ऐसी परिस्थितियाँ प्रकट की हैं, जिनमें अधिगम तो होता है, परन्तु उसके साथ किसी प्राथमिक आवश्यकता में कमी नहीं होती।

भोजन को भूख के रूप में लिया गया है, परन्तु भोजन मिल जाने पर भी जब तक वह खा नहीं लिया जाता और हजम नहीं हो जाता, तब तक उसकी आवश्यकता में कमी नहीं होती।

वस्तुतः यह प्रतीत होता है कि भूख के सन्तुष्ट होने से पूर्व पुनर्बलन होता है। पैसा एक पुनर्बलन का साधन है, परन्तु इससे प्रत्यक्ष रूप से किसी प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती, जब तक कि इससे किसी चीज की प्राप्ति नहीं कर ली जाती है। अतः हल ने बताया है कि पुनर्बलन अभिकरण एक ऐसी परिस्थिति के रूप में भी हो सकता है, जिसमें ऐसे उद्दीपनों का एक यौगिक समुच्चय हो जिसका आवश्यकता में कमी के साथ निकट और सुसंगत सम्बन्ध रहा हो। इसी को द्वितीयक पुनर्बलन कहा जाता है।

6.7.3 हल के प्रयोग

हल ने एक दो खानों वाला पिन्जरा लिया। दूसरे खाने में जाने के लिए बीच की दीवार में एक सुराख था। एक खाने में चूहा रखा गया तथा बीच की दीवार में विद्युत–धारा प्रवाहित की गई। इस उत्तेजक से चूहा अनेक प्रकार की क्रियाएँ करने लगा, उछल–कूद करने लगा, पिन्जरे की छड़ों को काटने लगा। अन्त में, वह उस छेद के द्वारा दूसरे खाने में कूद गया। इसके पश्चात् दूसरे खाने में विद्युत धारा प्रवाहित की गई। ऐसा तब तक दोहराया गया, जब तक चूहे ने दूसरे खाने में कूदना नहीं सीख लिया। स्पष्ट है कि इस प्रकार का सीखना **परिणाम के नियम** के कारण हुआ।

दूसरे प्रयोग में बिजली का झटका देने से दो सैकण्ड पहले एक घण्टी बजाई जाती है। चूहा घण्टी की आवाज सुनकर शीघ्र ही कूदना सीख गया। चूहा बिजली का झटका देने से पूर्व ही कूदने लगता है, यह सीखना सम्बद्ध प्रतिक्रिया के कारण हुआ।

6.7.4 हल के सिद्धान्त की कमियाँ

1. हल सीखने को प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखने की विधियों तक ही सीमित रखते हैं।
2. हल सीखने में सकारात्मक प्रेरणा पर बल न देकर निषेधात्मक प्रेरणा पर बल देते हैं। छात्र विद्यालयों में इस कारण नहीं जाते कि उन्हें जाना ही है। वे वहाँ कुछ सीखने के लिए जाते हैं, कुछ कौतुहल तथा खोज के कारणवश भी जाते हैं।
3. टॉलमैन सीखने की प्रक्रिया में पुनर्बलन को आवश्यक नहीं मानता। इस सिद्धान्त में यह आपत्ति उठाई गई कि यदि प्राणी की सीखने की अनुक्रिया पुनर्बलन से ही दृढ़ होती है, तो कष्ट की परिस्थिति में प्राणी कैसे सीखता है?
4. हल का सिद्धान्त चूहों को सीखने में चाहे कितना ही सही क्यों न हो, उसको मानव के सीखने में सही नहीं माना जा सकता है।
5. हल को गणित से अत्यधिक प्रेम था। इसलिए उसने अपने सिद्धान्त के अन्तर्गत स्वयं सिद्धियों की व्याख्या अनावश्यक रूप से अंकों में की है। यानी उसने अपने सिद्धान्त को मात्रात्मक बनाने का पूर्ण प्रयास किया है।

6.7.5 हल के सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता

1. हल का सिद्धान्त अधिक नपा–तुला तथा शुद्ध है। इसमें अभिप्रेरणों पर अधिक बल दिया है, क्योंकि वे प्राणी की मूल आवश्यकताओं से सम्बद्ध है।
2. हल ने सीखने की प्रक्रिया में केवल उत्तेजना और प्रक्रिया पर ही बल नहीं दिया, अपितु सीखने वालों की मनोदशा, आवश्यकताओं तथा लक्ष्यों को भी उचित स्थान दिया है। वास्वत में हल की यह संकल्पना समकालीन शिक्षा में सबसे बड़ा योग दे सकती है, क्योंकि वह कक्षा में किये जाने वाले क्रियाकलापों का बच्चों की आवश्यकताओं के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए एक तार्किक आधार प्रदान करती है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

3. इस सिद्धान्त का कक्षा शिक्षण में विशेष महत्त्व है, क्योंकि यह सिद्धान्त बताता है कि विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं में बच्चों की आवश्यकताओं तथा रुचियों पर बल दिया जाये।
4. बालकों की सफलता पर उन्हें पुरस्कृत किया जाए।
5. पाठ्यवस्तु बालक की आवश्यकता से सम्बन्धित होनी चाहिए।
6. छात्रों को किसी क्रिया को करने के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करनी चाहिए।
7. कक्षा में पढ़ाई जाने वाली पाठ्यवस्तु के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए।

6.8 सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त या अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त

www.praganya.org

सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन रूसी मनोवैज्ञानिक शरीरशास्त्री आई. पी. पावलॉव ने 1904 में किया था। सम्बद्ध प्रतिक्रिया का अर्थ है अस्वाभाविक (बनावटी) उद्दीपन के प्रति स्वाभाविक (वास्तविक) प्रतिक्रिया या अनुक्रिया का उत्पन्न होना। इस मत के अनुसार सीखना एक अनुकूलित अनुक्रिया है। बर्नार्ड के शब्दों में अनुकूलित अनुक्रिया उत्तेजना की पुनरावृत्ति द्वारा व्यवहार का स्वचालन है, जिसमें उत्तेजना पहले किसी विशेष अनुक्रिया के साथ लगी रहती है और अन्त में वह किसी व्यवहार का कारण बन जाती है, जो पहले मात्र साथ लगी हुई थी।

भोजन देखकर कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगती है। यहाँ भोजन एक स्वाभावित उत्तेजक या उद्दीपक है और कुत्ते के मुँह से लार टपकना एक स्वाभाविक क्रिया या सहज प्रक्रिया है, पर यदि किसी अस्वाभाविक उत्तेजक के कारण ही कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगे, तो इसे सम्बद्ध सहज-क्रिया या सम्बद्ध प्रतिक्रिया कहते हैं। दूसरे शब्दों में, अस्वाभाविक उत्तेजक के प्रति स्वाभाविक उत्तेजक के समान होने वाली प्रतिक्रिया को सम्बद्ध सहज-क्रिया कहते हैं। दूसरे शब्दों में अस्वाभाविक उत्तेजक के प्रति स्वाभाविक उत्तेजक के समान होने वाली प्रतिक्रिया को सम्बद्ध सहज-क्रिया कहते हैं। इसके अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम लैंडल के शब्दों में कह सकते हैं कि सम्बद्ध सहज-क्रिया में कार्य के प्रति स्वाभाविक उत्तेजक के बजाय एक प्रभावहीन उत्तेजक होता है, जो स्वाभाविक उत्तेजक से सम्बन्धित किये जाने के कारण प्रभावपूर्ण हो जाता है।

जब प्राकृतिक उद्दीपक और कृत्रिम उद्दीपक अनेक बार साथ-साथ आते हैं, तो दोनों में एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यह सम्बन्ध इतना प्रभावशाली हो जाता है कि कृत्रिम उद्दीपक प्राकृतिक उद्दीपक की सारी विशेषताएँ ग्रहण कर लेता है तथा प्राकृतिक उद्दीपक की अनुपस्थिति में केवल अस्वाभाविक उद्दीपक से ही अनुक्रिया सम्भव हो जाती है।

6.8.1 पावलॉव का प्रयोग

सम्बद्ध सहज-क्रिया के सिद्धान्त का सम्बन्ध शरीर विज्ञान से है। इसके मानने वाले विशेष रूप से व्यवहारवादी हैं। उनका कहना है कि सीखना एक प्रकार से उद्दीपक और प्रतिक्रिया का सम्बन्ध है। इस विचार को सत्य सिद्ध करने के लिए रूसी मनोवैज्ञानिक पावलॉव ने कुत्ते पर एक प्रयोग किया। उसने कुत्ते को भोजन देने से पहले कुछ दिनों तक घण्टी बजाई। उसके बाद उसने भोजन न देकर केवल घण्टी बजाई। तब भी कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगी। इसका कारण यह था कि कुत्ते ने घण्टी बजने से यह सीख लिया था कि उसे भोजन मिलेगा। घण्टी के प्रति कुत्ते की इस प्रतिक्रिया को पावलॉव ने सम्बद्ध सहज-क्रिया की संज्ञा दी।

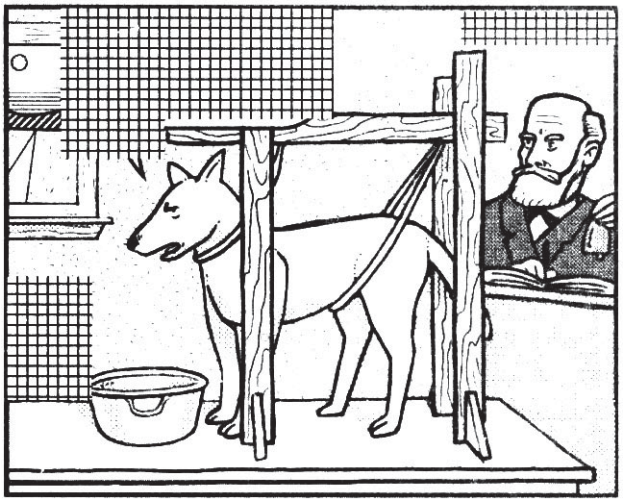

कुत्ते के समान बालक और व्यक्ति भी सम्बद्ध सहज-क्रिया द्वारा सीखते हैं। पके हुए आमों या मिठाई को देखकर बालकों के मुँह में पानी आ जाता हैं, उल्टी करना अनेक व्यक्तियों में सहज-क्रिया है, पर अनेक में यह सम्बद्ध सहज-क्रिया भी है। पहाड़ पर बस में यात्रा करते समय कुछ व्यक्ति उल्टी करने लगते हैं। उनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनको यात्रा प्रारम्भ होने से पहले ही उल्टी होने लगती है। कुछ लोग दूसरों को उल्टी करते हुए देखकर उल्टी करने लगते हैं।

जहाँ अस्वाभाविक उत्तेजक स्वाभाविक उत्तेजक का स्थान ग्रहण कर ले, वहाँ सहज-प्रतिक्रिया द्वारा सीखना होता है। सहज-प्रतिक्रिया का तन्त्र इस आधार पर विकसित होता है-

1. स्वाभाविक उत्तेजक - स्वाभाविक अनुक्रिया
   भोजन (UCS) - लार (UCR)
2. अस्वाभाविक+स्वाभाविक उत्तेजक (UCR) - स्वाभाविक अनुक्रिया
   घण्टी की आवाज+ भोजन (UCS)- लार का टपकना। (UCR)
3. अनुकूलित उत्तेजक (CS)- अनुकूलित अनुक्रिया (CR)

UCS - Unconditioned Stimulus
UCR - Unconditioned Response
CS - Conditioned Stimulus
CR - Conditioned Response

6.8.2 पावलॉव के सिद्धान्त के गुण एवं विशेषताएँ

1. यह सिद्धान्त सीखने की स्वाभाविक विधि बताता है। अतः यह बालकों को शिक्षा देने में सहायता देता है।
2. यह सिद्धान्त बालकों के समाजीकरण और वातावरण से उनका सामंजस्य स्थापित करने में सहायता देता है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

3. इस सिद्धान्त का प्रयोग करके बालकों के भय-सम्बन्धी रोगों का उपचार किया जा सकता है।
4. समाज-मनोविज्ञान के विद्वानों के अनुसार इस सिद्धान्त का समूह के निर्माण में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।
5. क्रो एवं क्रो के अनुसार इस सिद्धान्त की सहायता से बालकों में अच्छे व्यवहार और उत्तम अनुशासन की भावना का विकास किया जा सकता है।
6. क्रो एवं क्रो के अनुसार यह सिद्धान्त उन विषयों की शिक्षा के लिए बहुत उपयोगी है, जिनमें चिन्तन की आवश्यकता नहीं है, जैसे- सुलेख और अक्षर-विन्यास।
7. स्किनर के अनुसार सम्बद्ध सहज-क्रिया आधारभूत सिद्धान्त है, जिस पर सीखना निर्भर रहता है।

6.8.3 वाटसन का प्रयोग

उद्दीपक अनुक्रिया अनुबन्धन सिद्धान्त मानव व्यवहार में भी परिवर्तन लाते हैं और यह जॉन बी. वाटसन व उनके सहयोगी द्वारा किये गये प्रयोग से सिद्ध हुआ। उद्दीपक अनुक्रिया अनुबन्धन सिद्धान्त पर सन् 1920 में प्रसिद्ध व्यवहारवादी जॉन बी. वाटसन एवं उनके सहयोगी रोसोली रेनोर द्वारा अध्ययन किया गया।

उन्होंने एक छोटे बच्चे ने कैसे संवेगात्मक अनुक्रिया करना सीख लिया, इस पर प्रयोग किया। उन्होंने एक 11 माह के छोटे बच्चे एल्बर्ट पर प्रयोग किया। सबसे पहले उन्होंने बच्चे के सामने लोहे की रॉड पर हथौड़े से चोट लगाई, जिसे सुनकर बच्चा बार-बार डर जाता था या उछल पड़ता था। बच्चे का बार-बार डर जाना एक अनुबन्धनविहीन अनुक्रिया है। इसे हम स्वतः प्रेरित प्रतिक्रिया भी कहते हैं और इस प्रकार की अनुक्रिया का जन्म जिसके द्वारा होता है, उसे अनुबन्धनविहीन उत्तेजक कहते हैं। इन UCS दोनों और UCR का सम्बन्ध **रेफ्लेक्स आर्क** कहलाता है। अर्थात्

अनुबन्धनविहीन उत्तेजक → अनुबन्धनविहीन अनुक्रिया

UCS - तेज आवाज → UCR - बच्चे का डरकर रोना

इस प्रकार बच्चे को तेज आवाज के साथ डरकर रोना नए उत्तेजक के साथ निकटता के सिद्धान्त के कारण स्वयं उत्पन्न हुआ व्यवहार है। वाटसन द्वारा इसी प्रयोग में बच्चे को तेज आवाज के साथ ही एक सफेद खरगोश भी दिखाया गया और इसे बार-बार दोहराया, जिससे आवाज और खरगोश में निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया और फिर बाद में सिर्फ खरगोश दिखाए जाने पर भी बच्चा उसी तरह से डरकर रोने लगा, जैसे तेज आवाज सुनकर रोता था, जिससे यह पता चलता है कि खरगोश (उदासीन उत्तेजक) और तेज आवाज दोनों के बीच अनुबन्ध स्थापित हो गया।

अर्थात् उदासीन उत्तेजक ने स्वाभाविक उत्तेजक के जैसा ही कार्य किया। इसमें अनुबन्धित उत्तेजक ने स्वाभाविक उत्तेजक खरगोश और अनुबन्धित अनुक्रिया बच्चे का डरकर रोना है। जैसे-

1.	अनुबन्धनविहीन उत्तेजक	- अनुबन्धनविहीन अनुक्रिया
	UCS (तेज आवाज)	- UCR (बच्चे का डरकर रोना)
2.	अनुबन्धित उत्तेजक	- बच्चे का डरकर रोना
	CS+ UCS	(सफेद खरगोश + तेज आवाज)
3.	अनुबन्धित उत्तेजक	- अनुबन्धित अनुक्रिया
	CS (सफेद खरगोश)	- CR (डरकर रोना)

उपर्युक्त प्रयोग के आधार पर हम कह सकते हैं कि निकटता के सिद्धान्त का बार-बार उपयोग करके हम बच्चे में खरगोश (अनुबन्धित उत्तेजक) द्वारा डर उत्पन्न कर सकते हैं। इसी प्रकार हम अन्य अनुक्रियाओं में भी स्वाभाविक व अनुबन्धित उत्तेजक में सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

6.8.4 सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता

इस सिद्धान्त का काफी शैक्षिक महत्त्व है। एक कुशल शिक्षक कक्षा शिक्षण में इसका सकारात्मक उपयोग करके बालकों की रुचि अपने विषय में जाग्रत् कर सकता है। सहज क्रिया में भय, प्रेम, रुचि, घृणा आदि उत्पन्न किये जा सकते हैं। अध्यापक अपने विषय में रुचि निम्नलिखित तरीकों से उत्पन्न कर सकता है-

1. बालकों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करके।
2. दृश्य-श्रव्य सामग्री जैसे- चित्र, चार्ट, फिल्म आदि का प्रयोग करके पाठ को रुचिकर बनाकर।
3. गृह-कार्य की जाँच में नकारात्मक टिप्पणी न देकर सकारात्मक टिप्पणी देना। त्रुटियाँ होते हुए भी गृह-कार्य में अच्छे बिन्दु खोजकर पहले उनकी प्रशंसा करना फिर कमियों पर टिप्पणी करना। जैसे- यदि किसी बालक का लेख सुन्दर है, किन्तु वर्तनी की त्रुटियाँ काफी हैं, तो निम्नलिखित टिप्पणी देना- आपका लेख सुन्दर है। उत्तर को वर्तनी की त्रुटियाँ सुधाकर और भी अच्छा बना सकते हैं।

ऐसा करने पर बालक उस अध्यापक के विषय में रुचि लेने लगेगा तथा उस विषय को कम समय में अच्छी तरह से सीख सकेगा। इसके विपरीत यदि अध्यापक बालक से असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करेगा तथा गलतियों पर सदा प्रताड़ित करता रहेगा, तो बालक उस अध्यापक से तथा उसके द्वारा पढ़ाये जाने वाले विषय से कतराने लगेगा। वह कक्षा से भागने लगेगा। उसमें तनाव, भग्नाशा आदि उत्पन्न हो सकते हैं, जिनसे शारीरिक रोग भी उत्पन्न हो सकते हैं।

6.9 एडविन आर. गुथरी का सान्निध्य

वाटसन के मूल विचारों से सहमति प्रकट करते हुए गुथरी ने अपने विचारों का प्रतिपादन किया। इनका विचार है कि उत्तेजक तथा प्रतिक्रिया एक बार भी एक साथ यदि घटित हो जाती है, तो उनमें एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और भविष्य में जब भी वह सम्बन्धित उत्तेजक प्रस्तुत होता है, तो वही प्रतिक्रिया भी हो सकती है।

गुथरी ने उत्तेजक को दो भागों में बाँटा है- भौतिक उत्तेजक तथा गति उत्तेजक। गुथरी ने गति उत्तेजक को प्रारम्भिक एवं मूल उत्तेजना माना है तथा गति उत्तेजक की प्रधानता को स्वीकार किया है। जब प्राणी एक गति कर लेता है, तो वही गति आगे की गति के लिए उत्तेजक का कार्य करती है। इसका अर्थ यह भी है कि गति ही उत्तेजक को जन्म देती है। यही उत्तेजक प्रदायक गति कही जा सकती है। अतः सीखना गति से सम्बन्धित है, क्रिया से सम्बन्धित नहीं है। थॉर्नडाइक का प्रभाव का नियम गति की अपेक्षा क्रिया की व्याख्या करता है। इस प्रकार गुथरी ने थॉर्नडाइक द्वारा सीखने के मूल नियम की उपेक्षा करके

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

आलोचना की है। गुथरी का विश्वास है कि अधिगम सम्बन्धी सभी नियमों को एक ही नियम के अन्तर्गत देखा जा सकता है।

गुथरी ने प्रयोग परिणाम पर आधारित यह निष्कर्ष ज्ञात किया है कि उत्तेजक तथा प्रतिक्रिया में सम्बन्ध सर्वप्रथम प्रयास से ही स्थापित हो जाता है। इस प्रकार की व्याख्या गुथरी तथा हॉर्टन द्वारा बिल्ली पर किये गये प्रयोग के आधार पर की गई थी। गुथरी के प्रयोग से बिल्ली जिस प्रकार की गति से पिन्जरे के बाहर निकलकर खाना खाती है, अन्य प्रयासों से वही क्रिया बार-बार दुहराती है, जिस क्रिया को उसने प्रथम बार करके पिन्जरे से बाहर निकलकर खाना प्राप्त किया था। अधिगम की समाप्ति की व्याख्या गुथरी साहचर्य के ही आधार पर करते हैं। यदि उत्तेजक प्रतिक्रिया में साहचर्य हो जाने के बाद भी उत्तेजक के प्रति कोई दूसरी गति सिखायी जाती है, तो नवीन गति को अवरोधित कर देती है।

6.10 उद्दीपन-उद्दीपन सिद्धान्त अथवा संज्ञानात्मक सिद्धान्त

इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन व्यवहारवादी दृष्टिकोण (उद्दीपन-अनुक्रिया सम्बन्ध) के विरोध के फलस्वरूप किया गया है। इन सिद्धान्तों के प्रतिपादन करने वाले मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि सीखने की प्रक्रिया में यन्त्रवत् प्रक्रिया नहीं होती, वरन् सीखना, अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ, समझ, तर्क, स्मृति और अन्य मानसिक क्रियाओं के फलस्वरूप होता है। इन सिद्धान्तों के अनुसार सीखने की परिस्थिति में कई समस्याएँ या उद्दीपन होते हैं। सीखने वाले व्यक्ति को इन उद्दीपनों के अर्थ एवं इनमें होने वाले सम्बन्धों को समझना होता है। जब वह इनके अर्थ और इनमें होने वाले सम्बन्धों को समझ लेता है, तो उसके मस्तिष्क में सभी समस्याओं (उद्दीपनों) का एक संज्ञानात्मक नक्शा विकसित हो जाता है और इसे ही सीखना कहते हैं। इसमें व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं की भूमिका मुख्य होती है। इस श्रेणी में **वर्दीमर**, **कोहलर**, **कोफ्का**, **पियाजे**, **टॉलमैन**, **उसूबेल**, **ब्रूनर** आदि के सिद्धान्त आते हैं। कुछ प्रमुख उद्दीपन-उद्दीपन सिद्धान्त अथवा संज्ञानात्मक सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. सूझ का सिद्धान्त
2. संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त
3. वैण्डुरा का सामाजिक सीखने का सिद्धान्त
4. कर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त
5. अधिगम का साइन-गैस्टाल्ट सिद्धान्त
6. ब्रूनर का अधिगम सिद्धान्त

6.11 सूझ का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को **समग्राकृति का सिद्धान्त**, **अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त**, **गेस्टाल्ट सिद्धान्त** आदि नामों से भी जाना जाता है। जर्मन भाषा के शब्द **गेस्टाल्ट** का अर्थ है- आकार, संरचना अथवा प्रतिरूप। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन विशेषकर **वर्दीमर**, **कोफ्का** और **कोहलर** ने किया। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति अथवा प्राणी किसी भी प्रक्रिया को सूझ द्वारा सीखता है। सूझ को अन्तर्दृष्टि भी कहते हैं। जब भी प्राणी अथवा व्यक्ति कुछ सीखता है, तो वह सीखने से सम्बन्धित हर परिस्थिति एवं पहलू को समझने की कोशिश करता है। इसके लिए वह परिस्थिति के प्रत्येक पहलू को नए ढंग से समझ कर उनके मध्य आपसी सम्बन्धों को समझने की कोशिश करता है और इनके आधार पर उन्हें संगठित करने का प्रयास करता है। इसी दौरान उसके मस्तिष्क में अचानक कोई विचार कौंधता है, जिसके द्वारा वह अपनी सीखने की प्रक्रिया को पूरी करता है। इस अचानक कौंधने वाले विचार को **सूझ** या **अन्तर्दृष्टि** कहते हैं। यह सूझ अचानक होती है, उसके लिए किसी अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती। मनोवैज्ञानिक फर्नाल्ड और फर्नाल्ड के अनुसार -

> सूझ का तात्पर्य इस बात से है कि समस्या का समाधान उद्दीपन-अनुक्रिया सम्बन्धों के धीरे-धीरे बनने से नहीं होता है, बल्कि उद्दीपनों के बीच के सम्बन्धों को अचानक समझने से होता है।

सीखने वाले के अन्दर अचानक उत्पन्न सूझ द्वारा प्राणी सही अनुक्रिया करता है और इस तरह वह एक बार में सही अनुक्रिया को करना सीख लेता है।

यह सिद्धान्त कोहलर द्वारा किए गए कुछ प्रयोगों पर आधारित है। कोहलर ने कई तरह के पशुओं, वनमानुष, बन्दर, मुर्गी तथा कुत्ते पर प्रयोग किए। कोहलर ने अपने इन प्रयोगों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले-

1. सीखने वाला प्राणी अथवा व्यक्ति सबसे पहले सम्पूर्ण परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण करता है।
2. सीखने में प्राणी अथवा व्यक्ति सूझ का प्रयोग करता है।
3. सीखने वाला प्राणी अथवा व्यक्ति असफल प्रयोग के बाद विचार करता है, सोचता है और उसे अचानक सफल अनुक्रिया सूझती है और उसको करने के बाद उसका सीखना पूर्ण होता है।
4. समस्या का हल एक प्रयास में भी हो सकता है और कई प्रयासों द्वारा भी।
5. सूझ द्वारा सीखने में प्राणी अथवा व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवहार करता है और प्रत्येक व्यवहार अन्वेषणात्मक व्यवहार होता है।
6. जब प्राणी अथवा व्यक्ति समस्या समाधान के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्वेषणात्मक व्यवहार करने के पश्चात् भी सफल नहीं होता है, तो वह थोड़ी देर के लिए उदास हो जाता है और निष्क्रिय होकर चुपचाप बैठ जाता है।
7. कोहलर के अनुसार जब प्राणी अथवा मनुष्य लगातार असफलता के कारण निष्क्रिय होकर बैठ जाता है, तो कुछ समय के बाद उसे अचानक समस्या का हल सूझता है। यह सूझ अपने आप आ जाती है और वह समस्या का हल कर लेता है। सूझ उत्पन्न होने से व्यक्ति को लक्ष्य और उपाय के मध्य एक सम्बन्ध स्पष्ट दिखाई देने लगता है।
8. कोहलर ने सूझ द्वारा सीखे गए ज्ञान के स्थानान्तरण के गुण को परखने के लिए एक परीक्षण किया। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि सूझ द्वारा सीखने का स्थानान्तरण होता है। इस प्रकार सीखने की प्रक्रिया जब सूझ द्वारा होती है, तो वह अचानक होती है।

कोहलर ने इन सब निष्कर्षों को संगठित रूप में समग्राकृति सिद्धान्त की संज्ञा दी। इस प्रक्रिया में सूझ द्वारा सीखा जाता है। इसलिए कुछ मनोवैज्ञानिक इसे **सूझ का सिद्धान्त** कहते हैं और इस प्रकार के सीखने को **सूझ द्वारा सीखना** कहते हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

6.11.1 कोहलर के प्रयोग

कोहलर के प्रयोगों का विधिवत् अध्ययन करके उसके सूझ या अन्तर्दृष्टि के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। कोहलर ने टेनिरिफ द्वीप में छह भूखे वनमानुषों को एक लकड़ी के कटघरे में रखकर अपना प्रयोग प्रारम्भ किया। इन छह वनमानुषों में एक सर्वाधिक बुद्धिमान वनमानुष का चयन किया, जिसका नाम कोहलर ने **सुल्तान** रखा। कोहलर ने अपने अधिकांश प्रयोग सुल्तान पर ही किए। कोहलर ने अपने अधिगम सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए सुल्तान के सामने दो प्रकार की समस्यायें क्रमशः छड़ी समस्या तथा बक्सा समस्या प्रस्तुत की–

1. छड़ी समस्या सम्बन्धी प्रयोग

कोहलर ने **सुल्तान** नामक वनमानुष को एक पिन्जरे में बन्द करके उसे पास एक नुकीली छड़ी रख दी तथा पिन्जरे के बाहर केले इतनी दूर रखे कि वनमानुष हाथ फैलाकर उन्हें प्राप्त न कर सके। भूखे वनमानुष ने अपने हाथ फैलाकर केले प्राप्त करने का प्रयास किया, लेकिन वह सफल नहीं हो सका। भूख से व्याकुल वनमानुष की नजर कटघर में रखी हुई छड़ी पर पड़ी। छड़ी को उठाकर उसके सहारे वह केले अपने समीप खींचकर तथा उनसे अपनी क्षुधा शान्त करके सन्तुष्ट हो गया। इसके पश्चात् कोहलर ने पिन्जरे में दो छड़ियाँ रखी, जो एक दूसरे में फिट होकर लम्बी हो सकती थी। पिन्जरे के बाहर अब अपेक्षाकृत अधिक दूरी पर केले रखे गए। भूखे वनमानुष ने पुनः हाथ फैलाकर केले प्राप्त करने चाहे, लेकिन वह अपने प्रयास में सफल नहीं हुआ। पुनः उसने बड़ी छड़ी को पकड़कर केले प्राप्त करने चाहे फिर भी उसे केलों की प्राप्ति में सफलता नहीं मिली। केले पाने की व्याकुलता में वह दोनों छड़ियों से खेलने लगा। एकाएक

छोटी छड़ी, बड़ी छड़ी में फिट हो गई, जिसके फलस्वरूप छड़ी लम्बी हो गई और अब इस लम्बी छड़ी की सहायता से वह केले पाने में सफल हो गया तथा उन्हें खाकर वह सन्तुष्ट हुआ। दूसरे दिन पुनः वनमानुष को उसी स्थिति में रखा गया, तो पाया गया कि वह बिना अधिक समय लगाये छड़ियों को जोड़कर शीघ्र केलों को खींच लेता है। वनमानुष ने अपनी समस्या का समाधान एकाएक मिली सूझ की सहायता से किया। समस्या समाधान हेतु सूझ मिलने से पहले वनमानुष ने पिन्जरे की स्थिति, केले की दूरी, छड़ी की लम्बाई आदि में सम्बन्ध स्थापित करके सूझ द्वारा समस्या समाधान करके लक्ष्य को प्राप्त किया। हमारे अधिगम में इस प्रकार सूझ का तत्त्व मुख्य होता है।

2. बक्सा समस्या सम्बन्धी प्रयोग

कोहलर महोदय ने भूखे **सुल्तान** नामक चिम्पैन्जी या वनमानुष को एक पिन्जरे में बन्द कर दिया। पिन्जरे की छत में कुछ केले इस प्रकार टाँग दिए कि हाथ फैलाने पर भी वे उसकी पहुँच के बाहर थे। पिन्जरे में तीन–तीन खाली बक्से डाल दिए जाते है। वनमानुष केलों को देखकर उछल–कूद कर उनको प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह केलों को प्राप्त करने में अपने को असफल पाता है। व्याकुलता में कुछ समय पश्चात् वह फर्श पर पड़े हुए खाली बक्सों को देखता है। पहले वह एक बक्से को केले के नीचे रखता है और उस पर चढ़कर केले प्राप्त करने का प्रयास करता है, लेकिन उसे सफलता नहीं मिलती है। कुछ समय बाद वह दूसरा बक्सा पहले बक्से पर रखकर केले प्राप्त करने का प्रयास करता है, पर फिर भी उसे सफलता नहीं मिलती है। इसके पश्चात वह पुनः सम्पूर्ण परिस्थिति का अध्ययन करता है और अचानक तीसरा बक्सा भी उसे दिखाई देता है। वह तीसरे बक्से को दूसरे पर रखकर उस पर चढ़ जाता है और केले प्राप्त करने में सफल हो जाता है। दूसरे दिन भी भूखे वनमानुष को इसी स्थिति में रखा जाता है, तो वह केलों को पहले की अपेक्षा कम समय में ही प्राप्त कर लेता है।

कोहलर के उपर्युक्त दोनों प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि सूझ सिद्धान्त के अन्तर्गत अधिगम की क्रिया मस्तिष्क के दो स्तरों पर सम्पादित होती है–

1. **प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्तर पर अधिगम**– प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्तर पर प्राणी ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से समग्र परिस्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञान होने पर प्रतिक्रिया करता है, तब वह सीखता है। कोहलर के बक्से सम्बन्धी प्रयोग में अधिगम की क्रिया प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्तर पर सम्पादित होती है।
2. **प्रत्ययात्मक स्तर पर अधिगम**– प्रत्ययात्मक स्तर पर अधिगम की क्रिया में मस्तिष्क तब सहायता करता है, जब किसी के सामने जटिल समस्या उत्पन्न हो जाती है और शारीरिक क्षमताओं के साथ बुद्धि का सहारा लेना पड़ता है। कोहलर के छड़ी सम्बन्धी प्रयोग में अधिगम की क्रिया प्रत्ययात्मक स्तर पर सम्पादित होती है।

6.11.2 वर्दीमर का प्रयोग

वर्दीमर ने 1880 में विज्ञापनों के संकेतों में लाइट के घूमने के दृश्य का अध्ययन किया। इन विज्ञापनों में लाइट एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर चलती नजर आती है, जबकि वास्तव में एक के अन्तर वाले बल्ब साथ जलते हैं और अन्य

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

बल्ब बन्द होते हैं। इस प्रकार यदि बल्ब 1,3,5,7, जलते हैं, तो 2,4,6,8 संख्या वाले बल्ब बन्द होते हैं। प्रतिपल बल्बों का एक के अन्तर से जलना एवं बन्द होना ऐसा प्रकट करता है कि बल्ब की लाइट चल रही है। इस दृश्य से स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण किस प्रकार उसके भागों से भिन्नता रखता है। इस सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया गया है कि सम्पूर्ण के गुण उसके अंगों का प्रत्यक्षीकरण करने को प्रभावित करते हैं और समय की विशेषताओं का पता उसके विभिन्न तत्त्वों की विशेषताओं द्वारा नहीं, अपितु उसकी आन्तरिक प्रकृति द्वारा लगाया जाता है।

6.11.3 प्रयास एवं त्रुटि तथा सूझ द्वारा अधिगम में अन्तर

1. प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखने में प्राणी परिस्थिति को नहीं समझ पाता है, जबकि सूझ द्वारा सीखने में वह उसे अच्छी तरह समझता है।
2. प्रयास एवं त्रुटि अधिगम विधि शारीरिक कुशलता पर अधिक बल देती है जबकि सूझ द्वारा अधिगम में बौद्धिक कुशलता पर जोर दिया जाता है।
3. प्रयास एवं त्रुटि विधि का सभी प्रयोग कर सकते हैं, जबकि सूझ विधि के प्रयोग के लिए सामान्य बौद्धिक स्तर की आवश्यकता होती है।
4. प्रयास और त्रुटि विधि द्वारा समस्या का समाधान करने में सभी शारीरिक अंगों का नियोजन आवश्यक होता है, जबकि सूझ विधि में सीखना प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर होता है।
5. प्रयास एवं त्रुटि विधि में व्यक्ति की दृष्टि लक्ष्य पर रहती है तथा क्रिया लक्ष्य प्राप्ति की तरफ होती है, जबकि सूझ विधि में चेतन क्रियाओं की अपेक्षा अचेतन मन अधिक क्रियाशील होता है।
6. प्रयास एवं त्रुटि विधि में दक्षता धीरे-धीरे आती है, जबकि सूझ विधि में दक्षता एकाएक मिल जाती है।
7. प्रयास एवं त्रुटि विधि अभ्यास और परिश्रम पर निर्भर है, जबकि सूझ विधि में समस्या का हल अचानक प्राप्त होता है।
8. प्रयास एवं त्रुटि विधि अभ्यास प्रेरणा तथा संवेदन पर विशेष रूप से निर्भर है, जबकि सूझ विधि प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर है।
9. प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखने में प्रत्येक समस्या के उपस्थित होने पर नये सिरे से प्रयत्न करना पड़ता है। सूझ द्वारा ज्ञान का स्थानान्तरण अधिक सम्भव है तथा प्राणी सामान्यीकरण तथा विवेदीकरण करने में समर्थ होता है।

6.11.4 सूझ के सिद्धान्त की विशेषताएँ

1. यह सिद्धान्त वनमानुष पर प्रयोग करके प्रतिपादित किया गया है, जिसमें कुछ बुद्धि होती है और सूझ होती है। इसलिए यह सिद्धान्त मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया की सही व्याख्या करता है। किसी भी आयु के मनुष्यों में बुद्धि होती है, सूझ होती है और वे प्रायः सूझ द्वारा ही सीखते हैं।
2. यह सिद्धान्त किसी भी वस्तु, स्थिति अथवा क्रिया के उसके पूर्ण रूप में प्रत्यक्षीकरण पर बल देता है। किसी भी आयु के मनुष्य किसी भी वस्तु, स्थिति अथवा क्रिया का प्रत्यक्षीकरण प्रायः उसके पूर्ण रूप में ही करते हैं।
3. यह सिद्धान्त पूर्ण से अंश की ओर चलकर सीखने पर बल देता है, प्रत्यक्षीकरण पूर्ण का, ज्ञान उसके एक-एक अंश का। इस प्रकार सीखा हुआ ज्ञान स्पष्ट एवं स्थायी होता है।
4. यह सिद्धान्त समस्या समाधान पर बल देता है। इससे तीन लाभ होते हैं- पहला यह कि इस विधि से सूझ अथवा समस्या समाधान से सीखा हुआ ज्ञान स्थायी होता है, दूसरा यह कि इस विधि से सीखे हुए ज्ञान का दूसरी परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सकता है और तीसरा यह कि इस विधि से सीखने वाले अपने जीवन में आने वाली समस्याओं का हल करने में सफल होते हैं।
5. सूझ का बुद्धि से सम्बन्ध होता है। अधिक बुद्धि वाले प्राणियों में सूझ अधिक होती है। साथ ही सूझ द्वारा सीखने में मनुष्यों के पूर्व के अनुभवों का भी प्रभाव पड़ता है, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि अधिक अनुभवी की सूझ भी अधिक होती है।

6.11.5 सूझ के सिद्धान्त की कमियाँ

1. प्रत्येक ज्ञान को सूझ द्वारा नहीं सीखा जा सकता। इसके साथ ही प्रत्येक समय भी व्यक्ति सूझ द्वारा नहीं सीख सकता।
2. सीखने में केवल सूझ ही काम नहीं देती, इसके साथ ही अनुकूल परिस्थितियाँ भी आवश्यक हैं। छड़ी, बॉक्स, सीढ़ी आदि परिस्थिति का हिस्सा है।
3. यह सिद्धान्त सीखने में परिस्थिति की व्याख्या नहीं करता।
4. इस सिद्धान्त के अनुसार समस्या समाधन के लिए उपयोगी साधन होने आवश्यक हैं, लेकिन सीखना कभी-कभी बिना साधनों के भी होता है।
5. यह सिद्धान्त प्रयास एवं त्रुटि को मान्यता नहीं देता, लेकिन सीखने की इस प्रकिया में प्रारम्भ तो प्रयास एवं त्रुटि से ही होता है।
6. सीखने के लिए केवल सूझ ही नहीं, अभ्यास एवं अनुभूति भी आवश्यक होती है।
7. इस सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित नियमों के अनुसार प्रत्येक प्रकार का अधिगम नहीं किया जा सकता है। जैसे- लिखना, पढ़ना, बोलना आदि।
8. सूझ सिद्धान्त पर बहुत से बाह्य कारक प्रभाव डालते हैं। इन कारकों में कुछ क्रमशः शारीरिक क्षमता, आयु, वैयक्तिक विभिन्नताएँ, वंशानुक्रम तथा अधिगम की दशाएँ आदि हैं।
9. यह सिद्धान्त पशुओं तथा छोटे बच्चों पर लागू नहीं होता है।
10. कुछ विद्वानों का मानना है कि अचानक समस्या का समाधान संयोग की बात है, अन्तर्दृष्टि की नहीं।

6.11.6 सूझ के सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता

1. इस सिद्धान्त के अनुसार, सीखना पूर्ण से अंश की ओर होता है। अतः शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों को सिखाते समय सम्पूर्ण परिस्थिति को सामने रखे और उन्हें अपनी सूझ द्वारा सीखने के लिए प्रोत्साहित करे।
2. शिक्षकों को बच्चों की आयु, परिपक्वता एवं बुद्धि के अनुरूप ही उनके सामने समस्या प्रस्तुत करनी चाहिए।

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

3. शिक्षकों को पढ़ाते समय शिक्षार्थियों को सीखने के लिए तत्पर और सीखने की प्रक्रिया के दौरान उन्हें समय-समय पर प्रोत्साहित करते रहना चाहिए।
4. सूझ और बुद्धि में सम्बन्ध होता है। इसलिए बच्चों की पाठ्यसामग्री का निर्माण करते समय उनके बौद्धिक विकास का ध्यान रखना चाहिए।
5. सूझ का सम्बन्ध परिपक्वता से भी होता है। इसलिए पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय उनकी आयु एवं परिपक्वता का ध्यान रखना चाहिए।
6. इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने में बच्चों की मानसिक शक्तियों जैसे- कल्पना, तर्क, चिन्तन तथा सम्बन्ध देखने की शक्ति आदि का विकास होता है।
7. यह सिद्धान्त यान्त्रिक तरीकों से सीखने का खण्डन करता है, जैसे- रटना।
8. इस सिद्धान्त का उपयोग अंकगणित, रेखागणित, विज्ञान, व्याकरण आदि विषयों की शिक्षा में भली-भाँति किया जा सकता है।
9. यह सिद्धान्त छात्रों के सीखने में व्यक्तिगत विभिन्नताओं को महत्त्व देता है।
10. यह सिद्धान्त छात्रों में अन्तर्दृष्टि या सूझ पैदा करने में सहायक होता है।
11. यह सिद्धान्त छात्रों में सीखने की आवश्यकता पर बल देता है।
12. यह सिद्धान्त किसी समस्या का पूर्ण हल प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होता है।
13. यह सिद्धान्त विषय वस्तु का सामान्यीकरण करने में सहायक होता है।
14. यह सिद्धान्त एक परिस्थिति में सीखे हुए ज्ञान का दूसरी परिस्थिति में स्थानान्तरण करने में सहायक होता है।
15. यह सिद्धान्त कला, संगीत और साहित्य की शिक्षा में अधिक उपयोगी है।
16. यह सिद्धान्त अनुभवों के संगठन एवं पूर्णता पर बल देता है।
17. यह सिद्धान्त किसी समस्या का प्रस्तुतीकरण आंशिक रूप से न करके, बल्कि समग्र रूप से करने पर बल देता है।
18. यह सिद्धान्त रचनात्मक कार्यों में अधिक सहायता दे सकता है।
19. यह सिद्धान्त छात्रों द्वारा सीखी जाने वाले सामग्री को छात्रों के लिए उद्देश्यपूर्ण तथा छात्रों के स्तर के अनुकूल बनाये जाने पर बल देता है।
20. इस सिद्धान्त से व्यावहारिक समस्याओं का हल प्राप्त किया जा सकता है।

6.12 संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त

स्विस मनोवैज्ञानिक पियाजे मूल रूप से प्राणी विज्ञान के विशेषज्ञ थे, परन्तु आगे चलकर उन्होंने धर्म एवं दर्शन का गहन अध्ययन किया और दर्शन की ज्ञान मीमांसा तथा प्राणी विज्ञान के बीच सम्बन्धों की खोज की, जिसने उन्हें मनोवैज्ञानिक बना दिया। उन्होंने यूरोप की अनेक मनोविज्ञान प्रयोगशालाओं में कार्य किया। उन्होंने संक्रिया फ्रान्स में बिने के साथ भी कई वर्ष तक कार्य किया था। उन्होंने बुद्धि के विषय में चली आ रही पूर्वधारणा कि बुद्धि जन्मजात होती है, का खण्डन किया और बालक्रियाओं का बड़ी बारीकी से अध्ययन कर इस परिणाम पर पहुँचे कि जैसे-जैसे बच्चे की आयु बढ़ती जाती है और उसका कार्य क्षेत्र बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी बुद्धि का भी विकास होता जाता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि बच्चा प्रारम्भ में सरल प्रत्ययों को ही ग्रहण करता है, परन्तु जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, कठिन से कठिनतर प्रत्ययों को ग्रहण करने लगता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि इन सबसे सीखने के लिए उपयुक्त वातावरण एवं क्रियाएँ आवश्यक होती हैं।

पियाजे ने स्पष्ट किया कि सीखना कोई यान्त्रिक क्रिया नहीं है जैसा कि थॉर्नडाइक और पावलॉव आदि सम्बन्धवादी मनोवैज्ञानिकों ने माना है, परन्तु यह एक बौद्धिक प्रक्रिया है, सम्प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया है और यह सम्प्रत्यय निर्माण बच्चों की आयु के अनुसार सरल सम्प्रत्ययों से कठिन सम्प्रत्ययों के क्रम में होता है, बच्चों का मस्तिष्क जैसे-जैसे विकसित होता जाता है, उनमें सरल से अपेक्षाकृत जटिल प्रत्ययों का निर्माण एवं उनकी उपयोगिता की क्षमता विकसित होती जाती है। इसे मनोवैज्ञानिक **प्रत्यय निर्माण का सिद्धान्त** कहते हैं। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि बालकों में वास्तविकता के विषय में चिन्तन करने की शक्ति न केवल उनके परिपक्वता स्तर पर निर्भर करती है और न केवल उनके अनुभवों पर निर्भर करती है, अपितु इन दोनों की अन्तःक्रिया द्वारा निर्धारित होती है। इसे मनोवैज्ञानिक भाषा में **अन्तःक्रियावादी विचारधारा** कहते हैं।

6.12.1 सिद्धान्त के सम्प्रत्यय

1. अनुकूलन

पियाजे ने सर्वप्रथम यह बात स्पष्ट की कि बच्चों में अपने पर्यावरण के साथ समायोजन करने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है, जिसे अनुकूलन कहते हैं। उनके अनुसार बालक प्रारम्भ से ही पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने लगता है। पियाजे के अनुसार अनुकूलन की प्रक्रिया दो उपप्रक्रियाओं में होती है- एक आत्मसात्मीकरण और दूसरी समायोजन। आत्मसात्मीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें बालक समस्या समाधान के लिए पूर्व सीखी योजनाओं या मानसिक प्रक्रियाओं का सहारा लेता है। इसके विपरीत समायोजन ऐसी प्रक्रिया है, जो पूर्व में सीखी योजना या मानसिक प्रक्रियाओं से काम न चलने पर समायोजन के लिए की जाती है।

2. साम्यधारण

साम्यधारण से पियाजे का तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके द्वारा बालक आत्मसात्मीकरण और समायोजन की प्रक्रियाओं के बीच सन्तुलन कायम करता है। पियाजे के अनुसार जब बच्चे के सामने कोई नई समस्या उपस्थित होती है, तो उसमें संज्ञानात्मक असन्तुलन उत्पन्न होता है, जिसे दूर करने के लिए वह आत्मसात्मीकरण या समायोजन या ये दोनों प्रक्रियाएँ करना प्रारम्भ कर देता है। पियाजे ने यह स्पष्ट किया है कि साम्यधारण की प्रकिया बच्चों के पूर्व अनुभवों पर ही निर्भर नहीं करती, अपितु उनकी शारीरिक परिपक्वता पर भी

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

निर्भर करती है।

3. संरक्षण

संरक्षण से पियाजे का तात्पर्य पर्यावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता इन दोनों को पहचानने एवं समझने की क्षमता तथा किसी वस्तु के स्वरूप में परिवर्तन को उस वस्तु के तत्त्व में परिवर्तन से अलग करने की क्षमता से है।

4. संज्ञानात्मक संरचना

पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक संरचना से तात्पर्य बालक के मानसिक संगठन से है।

5. मानसिक प्रक्रिया

पियाजे के अनुसार मानसिक संक्रिया से तात्पर्य बालक द्वारा समस्या समाधान के लिए किए जाने वाले चिन्तन से है।

6. स्कीम्स

पियाजे ने व्यवहारों के उन संगठित पैटर्नों को स्कीम्स की संज्ञा दी है, जिन्हें सरलता से दोहराया जा सके। स्पष्ट है कि स्कीम्स मानसिक संक्रिया का अभिव्यक्ति रूप है।

7. स्कीमा

स्कीमा से पियाजे का तात्पर्य एक ऐसी मानसिक संरचना से है, जिसका सामान्यीकरण किया जा सकता है।

8. विकेन्द्रण

विकेन्द्रण से पियाजे का तात्पर्य किसी वस्तु के विषय में वस्तुनिष्ठ ढंग से सोचने की क्षमता से है। पियाजे के अनुसार बालक में इस क्षमता का विकास 2 वर्ष की आयु में शुरू हो जाता है।

www.praganya.org

6.12.2 संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास को मुख्य रूप से चार कालों में विभाजित किया है–

1. संवेदी पेशीय अवस्था
2. प्राक् संक्रियात्मक अवस्था
3. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था
4. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था

1. संवेदी पेशीय अवस्था

पियाजे के अनुसार जन्म से दो वर्ष तक की आयु में बालक अपनी इन्द्रियों द्वारा प्राथमिक अनुभव प्राप्त करते हैं। पियाजे ने इस काल को संवेदी पेशीय प्राथमिक अवस्था कहा है। पियाजे के अनुसार जन्म से 2 वर्ष तक बालक का संज्ञानात्मक विकास निम्नलिखित छह उपअवस्थाओं में होता है–

1. **सहज क्रियाओं की अवस्था** – यह अवस्था जन्म से 30 दिन तक की अवस्था होती है। इस अवस्था में बालक केवल सहज क्रियाएँ करता है। इन क्रियाओं में किसी भी वस्तु को मुँह में लेकर चूसने की क्रिया सबसे अधिक प्रबल होती है।
2. **प्रमुख वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था** – यह अवस्था 1 से 4 माह तक की होती है। 1 माह से 4 माह तक के बच्चों की सहज क्रियाएँ कुछ सीमा तक उनकी अनुभूतियों द्वारा परिवर्तित होती है, दोहराई जाती है और एक–दूसरे के साथ समन्वित होती है। इन अनुक्रियाओं को प्रमुख इसलिए कहा जाता है, क्योंकि ये बच्चों के शरीर की प्रमुख अनुक्रियाएँ होती हैं और इन्हें वृत्तीय इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इन्हें बार–बार दोहराते हैं। इस अवस्था तक के बच्चे अपने अनुभवों को बिना भय के अभिव्यक्त करते हैं।
3. **गौण वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था** – यह अवस्था 4 माह से 6 माह तक की अवस्था होती है। इस अवस्था में बच्चे वस्तुओं को स्पर्श करने और इन्हें इधर–उधर करने की अनुक्रियाएँ करते हैं और साथ ही कुछ ऐसी अनुक्रियाएँ करते हैं, जिनसे उन्हें सुख मिलता है। 6 माह के होते–होते बच्चे देखी गई वस्तु के अभाव में भी उसके होने को जानने लगते हैं।
4. **गौण स्कीमेटो के समन्वय की अवस्था** – यह अवस्था 8 माह से 12 माह तक की अवस्था है। इस अवस्था में बच्चा उद्देश्य और उसको प्राप्त करने के साधन में अन्तर करने लगता है और साथ ही अपने से बड़ों की क्रियाओं का अनुकरण करने लगता है। इस अवस्था में बच्चे जो स्कीमा सीखते हैं, उनका सामान्यीकरण भी करने लगते हैं।
5. **तृतीय वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था** – यह अवस्था 12 माह से 18 माह तक की अवस्था है। इस अवस्था में बच्चे वस्तुओं के गुणों को प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखकर जानते हैं।
6. **मानसिक संयोग द्वारा नए साधनों की खोज की अवस्था** – यह अवस्था 18 माह से 24 माह तक की अवस्था है। इस अवस्था में बच्चे देखी गई वस्तु की अनुपस्थिति में भी उसके अस्तित्व को समझने लगते हैं।

2. प्राक् संक्रियात्मक अवस्था

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की दृष्टि से 2 साल से 7 साल की अवस्था को प्राक् संक्रियात्मक अवस्था कहा है। इस अवस्था को पियाजे ने निम्नलिखित दो उप अवस्थाओं में विभाजित किया है–

1. **प्राक् सम्प्रत्यात्मक अवधि** – यह अवधि 2 वर्ष से 4 वर्ष की होती है। इस अवस्था में बच्चे अपने इर्द–गिर्द की वस्तुओं और प्राणियों, वस्तुओं और शब्दों में सम्बन्ध स्थापित करने लगते हैं। वे यह सब प्रायः अनुकरण एवं खेल द्वारा सीखते हैं। पियाजे के अनुसार 4 वर्ष तक की अवस्था के बच्चे सभी निर्जीव वस्तुओं को सजीव प्राणियों के रूप में लेते–समझते हैं। इसे उन्होंने **जीववाद** की संज्ञा दी है। इस अवस्था में होने वाले संज्ञानात्मक विकास की दूसरी विशेषता यह होती है कि बच्चे अपने विचार को सही मानते हैं और वे कुछ ऐसा समझते हैं कि सारी दुनियाँ उनके इर्द–गिर्द ही है। इसे पियाजे ने आत्मकेन्द्रिता की संज्ञा दी है।
2. **अन्तर्दर्शी अवस्था** – यह अवस्था 4 वर्ष से 7 वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में बालक भाषा सीखने लगते हैं और चिन्तन एवं तर्क करने लगते हैं, परन्तु उनके चिन्तन एवं तर्क में कोई क्रमबद्धता नहीं होती। जैसे वे $2 \times 2 = 4$ तो समझते हैं, परन्तु $\frac{4}{2} = 2$ कैसे हुआ, यह नहीं समझते हैं। 6 वर्ष की आयु पूरी करते–करते बालकों में मूर्त प्रत्ययों के साथ–साथ अमूर्त प्रत्ययों का निर्माण भी होने लगता है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

3. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था

पियाजे ने 7 वर्ष से लेकर 11 वर्ष तक की आयु/अवस्था को मूर्त संक्रियात्मक अवस्था कहा है। इस अवस्था में बच्चे अधिक व्यावहारिक एवं यथार्थवादी होते हैं। इस अवस्था में बच्चों में तर्क एवं समस्या समाधान की क्षमता का विकास होने लगता हैं। वे मूर्त समस्याओं के समाधान को ढूँढ़ने लगते हैं, परन्तु अमूर्त समस्याओं के विषय में नहीं सोच पाते। इस अवस्था के बच्चे वस्तुओं को उनके गुणों के आधार पर क्रमबद्ध करने लगते हैं और वर्गीकृत करने लगते हैं, परन्तु इस अवस्था के बच्चों के चिन्तन में क्रमबद्धता नहीं होती है।

4. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था

यह अवस्था 12 वर्ष की आयु से वयस्क होने तक की अवस्था है। 12 वर्ष के होते होते बच्चों का मस्तिष्क परिपक्व होने लगता है, उनके चिन्तन में क्रमबद्धता आनी शुरू हो जाती है और जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ती जाती है और उनके अनुभव बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे उनकी समस्या समाधान की क्षमता भी बढ़ती जाती है। इसे पियाजे ने **औपचारिक सम्प्रत्यय चिन्तन** की संज्ञा दी है। पियाजे के अनुसार इस आयु के बच्चे प्रतीकात्मक शब्दों, रूपकों एवं उपमानों का आशय भी समझने लगते हैं और अमूर्त प्रत्ययों के निर्माण में ऊँची-ऊँची उड़ान भरने लगते हैं। पियाजे के अनुसार प्रत्यय निर्माण की यह क्रिया अनवरत रूप से मनुष्य के जीवन भर चलती है, परन्तु इसका प्रकार एवं स्तर उसकी शिक्षा एवं अनुभवों पर निर्भर करता है।

6.12.3 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त की विशेषताएँ

1. पियाजे के इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना एक क्रमिक एवं आरोही प्रक्रिया है। अब यह बात सभी स्वीकार करते हैं।
2. पियाजे के अनुसार सीखने के लिए पर्यावरण और क्रिया मूल आवश्यकताएँ होती हैं। आज ये बात भी सभी स्वीकार करते हैं।
3. पियाजे के अनुसार बालकों में चिन्तन एवं खोज करने की शक्ति उनकी जैविक परिपक्वता, अनुभव एवं इन दोनों की अन्तःक्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है।
4. पियाजे के इस सिद्धान्त के अनुसार बालकों के अमूर्त चिन्तन पर उनकी शिक्षा का प्रभाव होता है। निम्न शिक्षा स्तर के बालकों का अमूर्त चिन्तन कम होता है और उच्च शिक्षा स्तर के बालकों का अमूर्त चिन्तन काफी ऊँचा होता है।
5. पियाजे के सिद्धान्त के अनुसार औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था के बाद बालक की सम्पूर्ण बौद्धिक शक्ति का विकास हो जाता है और वह अपनी बौद्धिक क्षमताओं के प्रयोग से समस्याओं का समाधान क्रमबद्ध एवं तार्किक ढंग (वैज्ञानिक ढंग) से कर सकता है।

6.12.4 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त की कमियाँ

1. पियाजे ने अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन बच्चों की क्रियाओं का अवलोकन करने के आधार पर किया है। अतः यह सिद्धान्त व्यक्तिनिष्ठ अधिक और वस्तुनिष्ठ अपेक्षाकृत कम है।
2. पियाजे का यह सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि मनुष्य के शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की तरह उसकी बुद्धि का विकास भी धीरे-धीरे होता है, जबकि यह बात अपने में पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। जिसे पियाजे बुद्धि का विकास कहते हैं, वह वस्तुतः बौद्धिक क्षमता का विकास है।
3. यह सिद्धान्त बच्चों के केवल संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या करता है, उसके कौशलात्मक एवं भावनात्मक विकास की व्याख्या नहीं करता।
4. यह सिद्धान्त संज्ञानात्मक विकास में भी केवल प्रत्यय ज्ञान के विकास की व्याख्या करता है, अतः यह अधूरा है।
5. पियाजे का यह मानना है कि संज्ञानात्मक विकास एक विशेष क्रम में होता है। यह भी अपने में पूर्ण रूप से सत्य नहीं है।
6. पियाजे के सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति के संज्ञानात्मक विकास का उसकी जैविक परिपक्वता से सीधा सम्बन्ध है, लेकिन कई प्रयोगों एवं शोधों ने इसके विपरीत परिणाम दिए हैं।
7. पियाजे के सिद्धान्त के अनुसार मूर्त संक्रियात्मक अवस्था से पहले बालक तार्किक एवं क्रमबद्ध चिन्तन नहीं कर सकता है, लेकिन कई शोध कार्यों के परिणाम यह दर्शाते हैं कि बालक इस अवस्था से पहले तार्किक चिन्तन कर सकते हैं।

6.12.5 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता

1. पियाजे ने बच्चों के संज्ञानात्मक विकास को विविध श्रेणियों में विभाजित किया है। उनके अनुसार किसी भी आयु के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण उनके संज्ञानात्मक विकास एवं प्रत्यय निर्माण के आधार पर करना चाहिए।
2. यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि बच्चों को स्वक्रिया द्वारा सीखने के अवसर देने चाहिए।
3. पियाजे ने शिक्षा के क्षेत्र में अनुकरण एवं खेल की क्रिया के महत्त्व को स्पष्ट किया। अतः शिक्षकों को अनुकरण एवं खेल विधि से पढ़ाना-सिखाना चाहिए।
4. यह सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि 11 वर्ष की अवस्था पूरी करते-करते बच्चों में समस्या समाधान की क्षमता का विकास होने लगता है। अतः 11 वर्ष से बड़े बच्चों को पढ़ाने-सिखाने के लिए समस्या समाधान विधि का प्रयोग करना चाहिए।
5. सीखने में प्रगति न करने वाले छात्रों को दण्ड नहीं देना चाहिए।
6. पियाजे के सिद्धान्त के अनुसार चालक और अभिप्रेरणा अधिगम एवं विकास के लिए आवश्यक है। अतः शिक्षकों को शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में इनका उचित प्रयोग करना चाहिए।
7. पियाजे ने बुद्धि का मापन उसके व्यावहारिक उपयोग (वातावरण के साथ अन्तःक्रिया) की क्षमता के रूप में किया है। अतः बुद्धि परीक्षणों के निर्माण में व्यावहारिक रूप में प्रयोग से सम्बन्धित क्रियाओं का उपयोग करना चाहिए।
8. पियाजे के सिद्धान्त के ज्ञान से शिक्षक एवं अभिभावक बालकों की तर्क एवं विचारणा शक्ति की प्रकृति को उनकी अलग-अलग अवस्थाओं में समझ एवं पहचान सकते हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

9. पियाजे के सिद्धान्त के अनुसार बालकों को पढ़ाने–लिखाने के लिए ऐसे अनुभव एवं अधिगम सामग्री प्रस्तुत करनी चाहिए, जिन्हें वे आत्मसात कर सके और आगे के अध्ययन के लिए चुनौती के रूप में सामने आए।
10. पियाजे के इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना बालक के स्वयं और उसके पर्यावरण से अन्तःक्रिया के फलस्वरूप होता है। अतः शिक्षकों एवं अभिभावकों को बालकों के लिए उचित एवं प्रेरणादायक वातावरण का निर्माण करना चाहिए।

6.13 वैण्डुरा का सामाजिक सीखने का सिद्धान्त

प्रसिद्ध अमेरिकन मनोवैज्ञानिक अलबर्ट वैण्डुरा ने किसी व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्तियों के व्यवहार का निरीक्षण कर उनके जैसा व्यवहार अपने स्वभाव में लाने की प्रक्रिया को सीखने के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने दूसरों के व्यवहार के निरीक्षण द्वारा सीखने को **मॉडलिंग** की संज्ञा दी है। सीखने में प्रेक्षण अथवा निरीक्षण के महत्त्व को स्वीकार कर वैण्डुरा ने सीखने के एक नए सिद्धान्त को प्रतिपादित किया, जिसे **वैण्डुरा का सामाजिक सीखने का सिद्धान्त** कहा जाता है। सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए वैण्डुरा ने कहा –

> हम पर्यावरण में उपलब्ध किसी उद्दीपन के प्रति बिना सोचे समझे अनुक्रिया नहीं करते। हम हमारे चारों ओर विद्यमान पर्यावरणीय तत्त्वों में से सूझ एवं पूर्व की अनुभूतियों के आधार पर कुछ का चयन करते हैं और यह कार्य हम हमारे चारों ओर रहने वाले व्यक्तियों के व्यवहारों का निरीक्षण कर उनका अनुकरण कर करते हैं। इस प्रकार हम प्रेक्षण द्वारा सीखने की प्रक्रिया को पूरा करते हैं।

वैण्डुरा ने अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए कहा कि मानव का व्यवहार संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक तथा पर्यावरणीय निर्धारकों के बीच सतत् अन्तःक्रिया का प्रतिफल होता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि मानव क्रिया में तीन कारकों का परस्पर प्रभाव हमेशा पड़ता है। ये कारक निम्नलिखित हैं –

1. बाह्य वातावरण
2. संज्ञानात्मक एवं आन्तरिक घटनाएँ
3. व्यवहार

ये तीनों एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं तथा एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। बाह्य वातावरण में उपस्थित उद्दीपन (अन्य व्यक्तियों का व्यवहार) और व्यक्ति के वास्तविक व्यवहार के मध्य आन्तरिक संज्ञानात्मक चरों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

6.13.1 वैण्डुरा के प्रयोग

वैण्डुरा ने एक प्रयोग किया, जिसमें एक वयस्क व्यक्ति द्वारा कुछ बच्चों के सामने एक तीन–चार फीट लम्बी गुड़िया, जिसे **बोब गुड़िया** का नाम दिया, को उछालते हुए, मारते हुए एवं उसके प्रति आक्रामकता करते हुए दिखलाया गया। जब इन बच्चों को उस गुड़िया के साथ अकेला छोड़ दिया गया, तो देखा गया कि उनके द्वारा भी वैसा ही आक्रामक व्यवहार उस गुड़िया के साथ किया गया। कुछ बच्चों को टी.वी. पर ऐसे ही आक्रामक दृश्य दिखाए गए, तो ये बच्चे, जिन बच्चों ने आक्रामक दृश्य नहीं देखे, से अधिक आक्रामक व्यवहार करते देखे गए।

वैण्डुरा ने अपने शोध एवं प्रयोगों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि मॉडल के तीन कारक अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं–

1. मॉडल की विशेषताएँ
2. प्रेक्षक की विशेषताएँ
3. व्यवहार के पुरस्कार परिणाम।

मॉडल एवं प्रेक्षक की विशेषताओं के साथ मॉडल के व्यवहारों का अनुकरण करने के बाद मिलने वाले पुरस्कार पर मॉडलिंग की प्रतिक्रिया होती है।

इस प्रकार प्रेक्षण द्वारा सीखना सामाजिक सीखने के सिद्धान्त का आधार है। इस सिद्धान्त द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि जो भी हम सीखते हैं, वह दूसरों को देखने और सुनने के पश्चात् अनुकरण द्वारा अर्जित कर सीखते हैं। बालक अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही दूसरों के व्यवहार का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते हैं। जिनके व्यवहार का बालक अधिकतर निरीक्षण करते हैं, वे होते हैं–उनके माता–पिता, पड़ोसी, अध्यापक और समाज के बुजुर्ग लोग आदि। इन निरीक्षणों के फलस्वरूप बालक उन्हीं का अनुकरण करते हैं। इस सिद्धान्त का अच्छा उदाहरण आजकल हम किशोरों एवं युवाओं में देख सकते हैं। अधिकतर किशोर एवं युवा फिल्मों में और विज्ञापनों में जो कुछ भी देखते हैं उन्हीं का अनुकरण अपने जीवन में करते हैं। फिल्मों एवं विज्ञापनों के मॉडल्स, उनके लिए प्रेरणादायी व्यक्ति होते हैं। वे उन्हीं की तरह भाषा का प्रयोग करते हैं, कपड़े पहनते हैं, और उन्हीं की तरह शिष्टाचार एवं व्यवहार करते हैं। इन सभी उदाहरणों से इस सिद्धान्त के महत्त्व को समझा जा सकता है। तैरना सीखना, मोटरबाइक चलाना, मेडिकल के छात्रों द्वारा सर्जरी करना, रिपेयरिंग का काम सीखना और दुकान पर काम करना आदि सब अनुकरण द्वारा ही प्रभावपूर्ण ढंग से सीखा जाता है। प्रेक्षण द्वारा सीखने में व्यक्ति को स्वानुभवों एवं प्रत्यक्ष सीखने की तुलना में अधिक अवसर मिलते हैं। इस कारण इससे प्रभावी ढंग से सीखना सम्पन्न हो पाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक सीखने की प्रक्रिया में किसी मॉडल को देखकर उसके व्यवहार का अनुकरण करना एवं भविष्य में उसे दोहराने के लिए अपने व्यवहार में आत्मसात कर लेना होता है और इस प्रकार व्यक्ति सीखता है। इस सीखने की प्रक्रिया में सामान्यतः निम्नांकित पदों का अनुसरण किया जाता है–

1. व्यवहार पर ध्यान देना और समझना

इस पद में व्यक्ति अपने मॉडल के व्यवहार का निरीक्षण करता है अथवा सीखने वाले को किसी मॉडल के व्यवहार का निरीक्षण कराया जाता है। यहाँ या तो सम्पूर्ण व्यवहार अथवा किसी विशेष पहलू से सम्बन्धित व्यवहार सीखने वाले का ध्यान आकर्षित करता है और धीरे–धीरे सीखने वाला इसी व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित करने लगता है।

2. व्यवहार को याद करना

इस पर सीखने वाले ने जो कुछ भी निरीक्षण द्वारा देखा, समझा, उसे अपनी स्मृति में मानसिक प्रतिच्छायाओं के रूप में अंकित कर लेता है।

3. स्मृति को क्रिया में लाना

इस पद पर सीखने वाला पर्यावरण में वैसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर अथवा स्वयं की आवश्यकता के लिए मांग होने पर स्मृति में अंकित उस व्यवहार का अनुकरण करता है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

4. व्यवहार के बाद पुनर्बलन

इस अन्तिम पद पर अनुकरण किए गए व्यवहार को सकारात्मक पुनर्बलन दिया जाता है, ताकि सीखने वाला निरीक्षित मॉडल के व्यवहार को भविष्य में भी अपने व्यवहार द्वारा प्रदर्शित कर सके।

सीखने के इन पदों को एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। बी.एड. कक्षा में विषयाध्यापक अपने विषय में उसके द्वारा निर्मित मॉडल पाठ को छात्राध्यापकों के सामने सम्बन्धित कक्षा के छात्रों को आदर्श रूप में पढ़ाता है। छात्राध्यापक अपने अध्यापक की प्रत्येक क्रिया एवं व्यवहार का निरीक्षण करते हैं। निरीक्षण के पश्चात् वे अध्यापक की प्रत्येक क्रिया जैसे– प्रश्न पूछने का तरीका, सहायक शिक्षण सामग्री को प्रदर्शित करने की विधि, छात्रों को सक्रिय रखने की क्रिया और विषय वस्तु की व्याख्या करने की तकनीक आदि को अपने स्मृति पटल पर अंकित कर लेते हैं। तत्पश्चात् जब वे स्वयं कक्षा में अपना पाठ पढ़ाते हैं, तो वे उन सभी क्रियाओं को वैसे ही दोहराने का प्रयास करते हैं और जब अध्यापक उनकी पाठ योजना डायरी में उस पाठ पर अनुकूल निर्देश लिखता है, तो वे उन्हीं क्रियाओं को आगे के पाठ में भी दोहराने का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार मॉडलिंग प्रक्रिया द्वारा सीखने की विधि सीखने के लिए एवं व्यवहार में अच्छी आदतों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण रूप से सहायक सिद्ध होती है और व्यक्ति अथवा छात्र के प्रत्येक व्यवहार और क्रिया को अनुकरण द्वारा वांछित दिशा प्रदान करती है।

6.13.2 सामाजिक सीखने के सिद्धान्त की विशेषताएँ

1. यह सिद्धान्त व्यक्ति के व्यवहार का अनुकरण कर सीखने पर बल देता है।
2. यह सिद्धान्त उद्दीपन–अनुक्रिया के मध्य संज्ञानात्मक आन्तरिक चरों की उपस्थिति को मान्यता देता है।
3. इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने वाला उन व्यवहारों को ही सीखता है, जिन पर उसका ध्यान जाता है और जिनसे वह प्रभावित होता है।
4. सामाजिक सीखने की सम्पूर्ण प्रक्रिया में निरीक्षण, स्मृति पटल पर अंकन, अनुकरण एवं पुनर्बलन की प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।
5. व्यक्ति अपने जीवन में अधिकांश व्यवहार इस सिद्धान्त द्वारा निर्दे शित विधि से ही सीखता है।

6.13.3 वैण्डुरा के सामाजिक सीखने के सिद्धान्त की कमियाँ

1. इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमी यह है कि सिखाने के लिए आदर्श मॉडल को उपस्थित करना मुश्किल काम है।
2. व्यक्ति के अनुकरण द्वारा सभी व्यवहार नहीं सीखे जा सकते।

6.13.4 वैण्डुरा के सामाजिक सीखने के सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता

1. यह सिद्धान्त पर्यावरण में उपलब्ध व्यक्ति, क्रिया अथवा घटना आदि का अनुकरण कर सीखने पर बल देता है। अतः विद्यालयों में पर्यावरण ऐसा उत्पन्न करना चाहिए कि बालक उन्हें देख कर सीखे सके।
2. प्रधानाध्यापक एवं अध्यापक को स्वयं को एक मॉडल के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए, ताकि छात्र उनका अनुकरण कर अच्छे व्यवहार को सीख सके।
3. अध्यापक छात्रों को स्वतन्त्रतापूर्वक निरीक्षण के लिए प्रेरित करे।
4. छात्रों के हित के लिए अध्यापकों को कभी–कभी ऐसी बनावटी परिस्थितियाँ पैदा करनी चाहिए, जो अनुकरण द्वारा सीखने में सहायक सिद्ध हो सके।
5. विद्यालयों में अनुकरणीय पाठ्यसहगामी क्रियाओं का आयोजन करना चाहिए।
6. छात्र टी.वी. एवं विज्ञापनों में कौन से कार्यक्रमों को देखता है, इस पर अध्यापकों को ध्यान देना चाहिए एवं अच्छे अनुकरणीय कार्यक्रमों को देखने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

6.14 कर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक कर्ट लेविन हैं। कोहलर और कोफ्का के साथ कार्य करने के पश्चात् लेविन जर्मनी छोड़कर अमेरिका चले गये। उनका सिद्धान्त सीखने के संज्ञानात्मक सिद्धान्तों के अन्तर्गत आता है। कर्ट लेविन के क्षेत्रीय सिद्धान्त का विकास सीखने के सिद्धान्त के रूप में नहीं हुआ है, बल्कि उसने अपने सिद्धान्त के माध्यम से मनोविज्ञान की एक प्रणाली प्रस्तुत की है, जिसे क्षेत्रीय मनोविज्ञान, तलरूप या सदिश मनोविज्ञान कहते हैं। वस्तुतः क्षेत्र सिद्धान्तों का प्रतिपादन साहचर्य सिद्धान्तों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ है।

लेविन का क्षेत्रीय सिद्धान्त पूर्णाकार सिद्धान्त के ही समान है, परन्तु यह थोड़ा–सा भिन्न है, क्योंकि यह अनुभव के स्थान पर व्यवहार को अधिक महत्त्व देता है तथा मानवीय अभिप्रेरण पर भी बल देता है। कर्ट लेविन ने अपने मत का आधार वातावरण में व्यक्ति की स्थिति को बताया। लेविन ने जीवन–स्थल के आधार पर व्यक्ति के अनुभवों की व्याख्या की है। उसके अनुसार जीवन–स्थल वह वातावरण है, जिसमें व्यक्ति रहता है और जिससे प्रभावित होता है। किसी व्यक्ति का यह जीवन–स्थल मनोवैज्ञानिक शक्तियों पर निर्भर करता है। लेविन के अनुसार सीखना कोई अनोखी क्रिया नहीं है। उसने बताया कि सीखने की क्रिया को समझने के लिए हमें केवल यह समझना होता है कि जीवन–स्थल का नव संगठन किस प्रकार होता है तथा मनोवैज्ञानिक संसार की संरचना किस प्रकार होती है। अतः सीखना हमारे अनुभवों या जीवन–स्थल की संरचना में परिवर्तन लाने से होता है। लेविन ने आगे बताया कि वास्तव में, सीखना वातावरण का संगठन है।

कर्ट लेविन ने अपने मत का आधार वातावरण में व्यक्ति की स्थिति को बताया। उसके अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिए व्यक्ति की स्थिति को उद्देश्यों से सम्बन्धित मानचित्र में निर्धारित करने एवं प्रयत्नों की जानकारी आवश्यक है।

6.14.1 सिद्धान्त की व्याख्या

यह सिद्धान्त मनुष्य तथा उसके सीखने की प्रक्रिया को निरपेक्ष या यान्त्रिक नहीं मानता है, वरन् सापेक्षिक अर्थात एक–दूसरे से सम्बन्धित मानता है। यह सिद्धान्त अनुभव के स्थान पर व्यवहार को अधिक महत्त्व देता है तथा प्रेरणाओं आदि का अधिक प्रयोग करता है। लेविन ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या करने में गणित के पारिभाषिक शब्दों, जैसे– क्षेत्रफल, जीवन विस्तार, तलरूप, शक्ति, वेक्टर आदि का प्रयोग किया है। सीखने की व्याख्या भी लेविन ने व्यक्ति, वातावरण, बाधाएँ, बाधाओं

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

पर विजय तथा उद्देश्य की प्राप्ति की व्याख्या करके की है। लेविन के मतानुसार सीखने की प्रक्रिया में कोई विचित्र बात नहीं है। अधिगम या सीखने को स्पष्ट रूप से समझने के लिए इतना ही समझना पर्याप्त होगा कि जीवन विस्तार किस प्रकार पुनः व्यवस्थित होता है और किस प्रकार मनोवैज्ञानिक संसार की संरचना होती है।

लेविन के सिद्धान्त में भर्त्सना, लक्ष्य तथा अवरोधक प्रमुख तत्त्व हैं। किसी व्यक्ति को लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अवरोधक को पार करना आवश्यक है। यह अवरोधक मनोवैज्ञानिक अथवा भौतिक हो सकता है। जैसा कि ऊपर संकेत दिया जा चुका है। लेविन के सिद्धान्त का विकास सीखने के सिद्धान्त के रूप में नहीं हुआ है। इसका विकास अभिप्रेरणा और प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्त के रूप में हुआ है, इसलिए लेविन सीखने की क्रिया में प्रेरणा तथा प्रत्यक्षीकरण पर बल देते हैं। प्रत्यक्षीकरण का अर्थ है कि कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति को किस प्रकार देखता है। व्यक्ति किसी लक्ष्य या उद्देश्य से प्रेरित होता है। लक्ष्य प्रायः धनात्मक और ऋणात्मक शक्तियों से परिपूर्ण होते हैं।

व्यक्ति धनात्मक शक्ति से प्रेरित होकर लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है और ऋणात्मक शक्ति उसे सीखने के लिए प्रेरित करती है। व्यक्ति को लक्ष्य तक पहुँचने के मार्ग में अनेक अवरोधक मिलते हैं, जिससे वह सरलता से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पाता। इसलिए लक्ष्य तक पहुँचने के लिए इन अवरोधकों को दूर करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार जीवन–स्थल की संरचना या व्यवस्था बदल जाती है। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार कहा जा सकता है कि सीखना जीवन–स्थल का पुनर्संगठन है। जीवन–स्थल में व्यक्ति और लक्ष्य के बीच के अवरोधकों को दूर करने के लिए व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि या सूझ का विकास होता है। इस प्रकार यह सीखने का लक्ष्य सूझ सिद्धान्त भी कहा जाता है।

निम्न चित्र से यह बात स्पष्ट हो जाएगी–

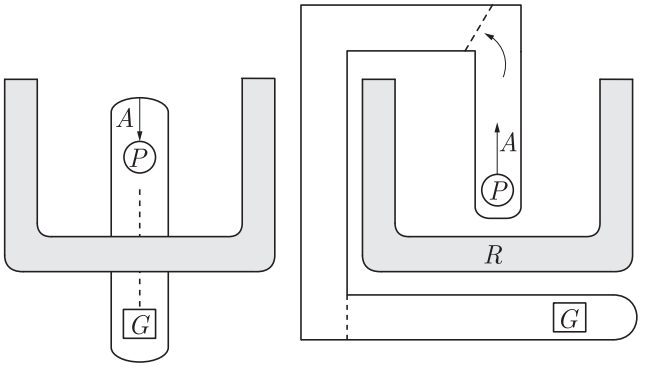

P-व्यक्ति
G-लक्ष्य
B-अवरोध
A-सदिश

P-व्यक्ति
G-लक्ष्य
B-अवरोध
A-सदिश

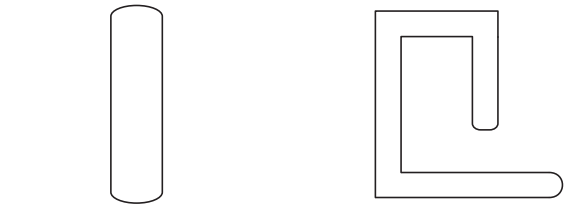

मूल जीवन विस्तार

नया जीवन विस्तार

चित्र में व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है, परन्तु उसके मार्ग में एक **यू** आकार की बाधा उपस्थित है। वह इस बाधा के कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ है। इसी बीच मानव की अन्तर्दृष्टि उसके जीवन विस्तार में परिवर्तन लाती है तथा उसके व्यवहार में परिवर्तन करके वातावरण में एक संगठन उत्पन्न करती है तथा अब वह इस समस्या का समाधान करने के लिए **यू** के खुले सिरे से **चक्कर का मार्ग** बनाता है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। इस प्रकार लेविन व उसके समर्थकों का कहना है कि सीखने में कोई नवीन अथवा विभिन्न समस्या नहीं है। यह तो जीवन विस्तार की पुनः संरचना मात्र का विषय है। यदि हम संरचना के मुख्य नियम अथवा जीवन–विस्तार के प्रबन्ध को हल कर सकते हैं, तो हम मनोविज्ञान की सभी महत्त्वपूर्ण समस्याओं को समझ सकेंगे तथा उनके आधार पर अधिगम को भी समझ सकेंगे।

6.14.2 क्षेत्र सिद्धान्त के प्रमुख आधार

कर्ट लेविन के क्षेत्र सिद्धान्त के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रत्यय इस प्रकार है–

1. क्षेत्र

लेविन के अनुसार क्षेत्र का तात्पर्य मानव के उस सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक जगत् से है, जिसमें वह रहता है तथा किसी समय विशेष में भ्रमण करता है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक संसार में व्यक्ति स्वयं, उसके विचार, तथ्य, धारणाएँ, कल्पनाएँ, विश्वास एवं आशाएँ सब कुछ आ जाती है। यह क्षेत्र प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग होता है। जैसे– एक नक्षत्र वेत्ता क्षेत्र का प्रयोग तारों के लिए करता है, भौतिकशास्त्री परमाणु संरचना के अध्ययन के लिए आदि।

2. जीवन विस्तार

जीवन विस्तार का आशय उस वातावरण से है, जिसमें मनुष्य है और उस वातावरण का प्रभाव व्यक्ति पर निरन्तर पड़ता रहता है। वातावरण से तात्पर्य प्राकृतिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण से है, जिसमें व्यक्ति लगातार संघर्ष करता रहता है और उससे प्रभावित होता रहता है। मानव की अपनी कुछ आवश्यकताएँ होती है, कुछ योग्यताएँ होती हैं, कुछ सीमाएँ होती हैं और उन सबके चारों ओर उसका वातावरण होता है तथा यह वातावरण जीवन–विस्तार की सीमा से घिरा होता है। लेविन जीवन–विस्तार की संरचना के लिए इन सभी को बराबर महत्त्व देते हैं।

3. व्यक्ति

लेविन के अनुसार व्यक्ति या मानव को उसकी योग्यताओं के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। व्यक्ति का आशय मस्तिष्क या शरीर या दोनों से ही नहीं है। यह संकेत करता है **मैं**, **मेरा**, **मुझे** आदि। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी कुछ आवश्यकताएँ होती हैं, जो उसके व्यवहार की दिशा निर्धारित करती हैं तथा यह दिशा व्यक्ति को लक्ष्य की ओर मोड़ देती है, जो व्यक्ति में तनाव भर देती है। व्यक्ति जब तक अवरोधों को पार करके लक्ष्य तक नहीं पहुँच जाता, तब तक वह बराबर प्रयत्नशील बना रहता है।

4. बाह्य आवरण

यह आवरण व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक वातावरण के बाहर चारों ओर रहता है। यह प्राणी से सम्बन्धित वातावरण के उन पक्षों से निर्मित होता है, जिनका

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति स्वयं नहीं कर पाता, किन्तु उस व्यक्ति का अध्ययन करने वाले लोग उनका प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं, दूसरे शब्दों में, समस्त अमनोवैज्ञानिक तथ्यों का वह मिश्रण, जो जीवन विस्तार के चारों ओर घिरा रहता है, बाह्य आवरण कहलाता है। इसके अन्तर्गत मनुष्य के शारीरिक तथा सामाजिक वातावरण के वे भाग आते हैं, जो समय विशेष में व्यक्ति के जीवन–विस्तार के अंग नहीं होते, लेकिन कभी अंग हो सकते हैं। यह व्यक्ति की व्यावहारिक सम्भावनाओं को सीमित करता है।

5. तलरूप

क्षेत्र सिद्धान्त को तलरूप सिद्धान्त भी कहते हैं। तलरूप का यह प्रत्यय रेखागणित से लिया गया है। कर्ट लेविन ने गणित के आधार पर मानव व्यवहार को समझाने का प्रयास किया है। तलरूप में दूरी व आकृति का कोई महत्त्व नहीं होता अर्थात् इसका लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई से कोई सम्बन्ध नहीं होता है, बल्कि इसमें अन्दर, बाहर तथा सीमा के प्रत्ययों की विवेचना की जाती है। तलरूप रेखागणित की दृष्टि से वृत्त, दीर्घवृत्त, सम या विषम बहुभुजों में कोई अन्तर नहीं होता। पानी की एक बून्द तथा पृथ्वी दोनों ही तलरूप की दृष्टि से एक समान समझे जाते हैं। तलरूप उद्देश्य तथा उनकी प्राप्ति के मध्य बाधाओं के सन्दर्भ में व्यक्ति की स्थिति को स्पष्ट करता है।

6. सदिश

सदिश का प्रत्यय भौतिक शास्त्र से लिया गया है। मनोविज्ञान में सदिश एक बल का प्रतिनिधित्व करता है, जो व्यक्ति के व्यवहार को लक्ष्य की ओर अथवा लक्ष्य से दूर जाने की ओर संकेत करता है। सदिश में एक विशेष दिशा में जाने की प्रवृत्ति होती है तथा यह शक्ति एवं दिशा दोनों को अभिव्यक्त करता है। शक्ति एवं दिशा मिलकर प्रेरक को शक्ति प्रदान करती है। इस प्रकार सदिश में तीन बातें निहित होती हैं– दिशा, शक्ति तथा प्रयोग बिन्दु। सदिश यह भी अभिव्यक्त करता है कि किस परिस्थिति में क्या होने वाला है अथवा क्या हो रहा है। साथ ही, यह जीवन–विस्तार के विभिन्न प्रदेशों की कर्षण शक्तियों को भी व्यक्त करता है।

7. कर्षण शक्ति

जीवन–विस्तार के किसी क्षेत्र या प्रदेश में दो प्रकार की शक्तियाँ होती हैं, जिन्हें आकर्षण तथा प्रतिकर्षण शक्तियाँ कहते हैं। ये शक्तियाँ सकारात्मक तथा नकारात्मक दो प्रकार की होती हैं। इस शक्तियों में दिशा तथा परिणाम दोनों होते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु के प्रति आकर्षित होता है, तब हम कहते हैं कि उस वस्तु में आकर्षण शक्ति है और इसके विपरीत, जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु से दूर हटता है, तब हम कहते हैं कि उस वस्तु में विकर्षण शक्ति है। कर्षण शक्ति के सम्बन्ध में यही विचार मौरिस. एल. बिग्गी ने भी व्यक्त किये हैं।

8. अवरोध

यह वातावरण का एक गत्यात्मक पहलू है, जो व्यक्ति के लक्ष्य या उद्देश्य तक पहुँचने के मार्ग में आ खड़ा होता है तथा उसके आगे बढ़ने की गति को अवरुद्ध कर देता है। संक्षेप में, व्यक्ति को अपने लक्ष्य तक पहुँचने में अनेक समस्याओं एवं अवरोधों का सामना करना पड़ता है। यदि व्यक्ति को इन अवरोधों को दूर करने हेतु अभिप्रेरणा मिलती रही, तो वह अपने लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत स्थिति में वह या तो अपना लक्ष्य ही बदल लेता है अथवा हताश, निराश एवं कुण्ठा का शिकार हो जाता है। बार–बार की सफलता से व्यक्ति की आकांक्षा का स्तर ऊपर उठता है तथा बार–बार असफल होने पर आकांक्षा का स्तर नीचे गिरता है।

9. द्वन्द्व

ऐसा समझा जाता है कि व्यक्ति के जीवन क्षेत्र में ऐसे उपक्षेत्र भी होते हैं, जिनमें कि एक ही समय में विभिन्न प्रकार के कर्षण सक्रिय होते हैं। विशेषकर उस परिस्थिति में जब आकर्षण और विकर्षण उत्पन्न करने वाली दोनों शक्तियाँ समान हो। ऐसी स्थिति में द्वन्द्व का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। लेविन ने द्वन्द्व तीन प्रकार के बताये हैं– पहला, वह द्वन्द्व जिसमें दोनों शक्तियाँ सकारात्मक हो। जैसे– किसी व्यक्ति को बैंक में क्लर्क नियुक्त कर लिया जाए और एल.आई.सी. में भी। दूसरा, वह द्वन्द्व जिसमें दोनों शक्तियाँ नकारात्मक हो। जैसे– आगे कुआँ, पीछे खाई। तीसरा, वह द्वन्द्व जिसमें एक शक्ति सकारात्मक व एक नकारात्मक हो। जैसे– एक छोटी लड़की आइसक्रीम भी खाना चाहती है और उसे इस बात का भी डर है कि कहीं उसे जुकाम न हो जाये।

6.14.3 कर्ट लेविन के सिद्धान्त की कमियाँ

1. लेविन ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या गणित के परिभाषित शब्दों, जैसे– क्षेत्रफल, जीवन विस्तार, तलरूप, शक्ति, सन्तुलन, वेक्टर आदि के द्वारा की है। वास्तव में इन सब शब्दों को समझना बड़ा कठिन है।
2. इसी प्रकार यह सिद्धान्त सीखने के सिद्धान्त की तरह विकसित नहीं हुआ, वरन् अभिप्रेरणा एवं प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्त के रूप में सामने आया, परन्तु इतना अवश्य है कि लेविन अपने इस सिद्धान्त का उपयोग सीखने की परिस्थितियों में भी करना चाहता है।
3. इस सिद्धान्त में व्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया है तथा वह सम्पूर्ण वातावरण के प्रभाव से अपना व्यवहार प्रदर्शित करता है, परन्तु क्या वातावरण ही सबसे अधिक प्रभावशाली है? व्यक्ति की कुछ आन्तरिक इच्छाएँ, आवश्यकताएँ भी उसे व्यवहार करने को प्रेरित करती हैं।
4. वास्तव में यह सिद्धान्त मानवीय अभिप्रेरणा के अध्ययन से सम्बन्धित है।
5. यह सिद्धान्त अनुभव के स्थान पर व्यवहार को अधिक महत्त्व देता है।

6.14.4 कर्ट लेविन के सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता

कर्ट लेविन के क्षेत्र सिद्धान्त को शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता को निम्नलिखित बिन्दुओं के सन्दर्भ में आसानी से समझा जा सकता है–

1. यह सिद्धान्त शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रभावी ढँग से उपयोग में लाया जाता है। व्यक्तित्व का अध्ययन करने तथा समाज मनोविज्ञान की दृष्टि से इस सिद्धान्त का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है।
2. इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना जीवन क्षेत्र को विभेदित बनाने की प्रक्रिया है। विभेदीकृत जीवन के क्षेत्र से हमारा आशय यह है कि जीवन क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक छोटे–छोटे क्षेत्र एवं प्रदेश समाहित रहते हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

3. इस सिद्धान्त का शिक्षण में विशेष महत्त्व है। इस दृष्टि से शिक्षक को चाहिए कि वह सीखने के लिए उचित वातावरण प्रस्तुत करे तथा छात्रों के सम्मुख अपेक्षित व्यावहारिक उद्देश्यों का स्पष्टीकरण भली प्रकार करे, ताकि उन्हें आसानी से प्राप्त किया जा सके।
4. इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षक को बहुत ही प्रभावकारी ढंग से विद्यार्थी, उसके वातावरण, उसकी आवश्यकताओं, रुचियों, दृष्टिकोणों, सीमाओं, क्षमताओं एवं अन्य सम्बन्धों को बखूबी समझना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शिक्षक को विद्यार्थी के जीवन क्षेत्र को पूरी तरह से समझना चाहिए।
5. शिक्षकों को ऐसे प्रयास करने चाहिए, जिससे कि छात्रों के प्रत्यक्षीकरण का क्षेत्र विस्तृत हो और जीवन क्षेत्र और अधिक लम्बा चौड़ा होता जाय। साथ ही विद्यार्थी की सीखने से सम्बन्धित आकांक्षाओं को भी ऊँचा उठाने का प्रयास किया जाये।
6. शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के बारे में भी शिक्षक को जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। उसका यह हर सम्भव प्रयास होना चाहिए कि छात्र हताशा, कुण्ठा, निराशा, तनाव आदि से दूर रहे अन्यथा ऐसी परिस्थिति में छात्र से वान्छित अधिगम की अपेक्षा करना निराधार ही साबित होगा।
7. अभिप्रेरणा, अधिगम की एक अनिवार्य शर्त है। कहा भी गया है कि जितना अच्छा अभिप्रेरण, उतना ही अच्छा सीखना। यह सिद्धान्त इसीलिए शिक्षण में अभिप्रेरणा के महत्त्व पर बल देता है। अभिप्रेरणा ही छात्रों के सीखने की दिशा में उत्साह, ध्यान एवं रुचि का समुचित विकास करती है।
8. यह सिद्धान्त इस बात पर बहुत अधिक बल देता है कि कक्षा का वातावरण छात्रों की सीखने की प्रक्रिया को बहुत अधिक प्रभावित करता है। अतः यह परम आवश्यक है कि कक्षा का भौतिक वातावरण, जैसे– प्रकाश, वायु आदि उच्च स्तर का बनाया जाये। साथ ही छात्रों में परस्पर सहयोग, स्नेह आदि की भावनाएँ विकसित कर मनोवैज्ञानिक वातावरण का भी निर्माण किया जाये।
9. यह सिद्धान्त छात्रों की रटने की प्रकृति का विरोध करता है तथा इसके स्थान पर उनमें अन्तर्दृष्टि के विकास पर बल देता है। साथ ही छात्रों के मस्तिष्क में ज्ञान को ठूँसने का प्रयास नहीं करना चाहिए, बल्कि आधुनिक शिक्षण प्रविधियों का प्रयोग कर उसे सुग्राह्य बनाने का प्रयास करना चाहिए।
10. यह सिद्धान्त व्यक्ति को अधिक महत्त्व देता है। अतः शिक्षा में छात्रों के **स्व** को महत्त्व दिया जाना चाहिए। जब तक छात्र स्वयं अपनी आवश्यकताओं, क्षमताओं, कमियों, वातावरण एवं उद्देश्यों से परिचित नहीं होगा, तब तक वह न तो प्रभावी व्यवहार ही कर पाएगा और न ही अपेक्षित अधिगम प्राप्त कर सकेगा।
11. यह सिद्धान्त अवरोधों के महत्त्व को स्वीकार करता है। लेविन के अनुसार व्यक्ति आकर्षण के कारण लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सबसे छोटा तरीका अपना सकता है, जैसे कि परीक्षा में नकल करना। इसलिए जीवन क्षेत्र में अवरोध की आवश्यकता है। दण्ड की स्थिति में व्यक्ति परिस्थिति से पलायन कर सकता है। अतः व्यक्ति को उसी क्षेत्र में रखने के लिए सशक्त अवरोधों की आवश्यकता होती है।
12. किसी क्रिया की पुनरावृत्ति संज्ञानात्मक संरचना और आवश्यकता से उत्पन्न तनाव दोनों में परिवर्तन लाती है। परिणामतः लक्ष्य की आकर्षण शक्ति में परिवर्तन आ जाता है। कर्षण कई प्रकार से परिवर्तित होते हैं, जैसे– आकर्षण युक्त लक्ष्य अपना आकर्षण खो सकते हैं। यदि बार–बार उसी क्रिया को दोहराया जाये, तो प्राणी तृप्ति की अवस्था तक पहुँच जाता है, दूसरे, मूलतः अनाकर्षण लक्ष्य आकर्षण युक्त बन जाते हैं, जैसे– पहले सांख्यिकी बुरी लगती थी, लेकिन अभ्यास से रस आने लगा तथा तीसरे, लक्ष्य का चुनाव व्यक्ति की सफलता या असफलता से सम्बन्धित पूर्व अनुभवों द्वारा प्रभावित होता है।
13. कौन–सी चीज स्मृति में रहेगी, इस सम्बन्ध में भी लेविन ने अपने विचार सुनिश्चित किये हैं, जैसे– ऐसी चीजें, जिन्हें पूरा करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, वे भूल जाते हैं, अधूरे कार्य पूरे कर दिये गये कार्यों की अपेक्षा अधिक याद रहते हैं तथा ऐसे कार्य जो कई आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, वे उन कार्यों की अपेक्षा जो केवल एक ही आवश्यकता की पूर्ति करते हैं, अधिक याद रहते हैं।

6.15 अधिगम का साइन–गैस्टाल्ट सिद्धान्त

इस मत का प्रतिपादन टॉलमैन ने किया था। टॉलमैन के इस सिद्धान्त का आधार पूर्णाकारवाद है। टॉलमैन की मान्यता है कि मानव का व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होता है। अधिगम के चिह्न तथा आशाओं को वह अधिक महत्त्व देता है। उसके अनुसार उद्दीपन में अर्थ उसी समय उत्पन्न होता है, जबकि वह व्यक्ति की आवश्यकता और उद्देश्य पूर्ति में सहायक होते हैं। टॉलमैन का यह मत प्रयोजनवादी मनोविज्ञान पर आधारित है। यह प्रयोजन को किसी क्रिया को सीखने का केन्द्र बिन्दु मानते हैं। जी. लेस्टर एण्डरसन के अनुसार– टॉलमैन के सिद्धान्त में केवल गतियों का ही अधिगम नहीं प्राप्त किया जाता है, बल्कि चिह्नों या आशाओं का अधिगम भी प्राप्त किया जाता है। क्रमिक परिस्थितियों में गतियाँ एक जैसी नहीं मानी जा सकती। अधिगमकर्ता परिस्थिति को प्रत्यक्ष से मापता है और इन प्रत्यक्ष ज्ञानों के अनुसार ही अनुक्रिया करता है। यह माना जाता है कि इन प्रत्यक्ष ज्ञानों से तन्त्रिका सम्बन्धी सह–सम्बन्ध होते हैं, परन्तु उनका स्वरूप अभी ज्ञात नहीं है, किन्तु टॉलमैन और अन्य लोगों ने इस संकल्पना को अभिव्यक्त करने के लिए कि तन्त्रिका की रचना में कही चिह्नों, आशाओं और लक्ष्यों के प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ सह सम्बन्ध विद्यामान है, एक शब्द का प्रयोग किया गया है, यह शब्द है संज्ञानात्मक रचना, जो अब भी पूरी तरह से स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं किया गया, किन्तु यह व्यवहार पर आधारित एक अनुमान है।

टॉलमैन के सिद्धान्त में ज्ञानात्मक व्यवहार को महत्त्व दिया गया है। टॉलमैन का मत उद्देश्यात्मक व्यवहार पर निर्भर करता है। इस मत को इन नामों से भी पुकारा जाता है–

1. चिह्न गैस्टाल्ट सिद्धान्त
2. सम्भावना सिद्धान्त
3. ज्ञानात्मक सिद्धान्त

एडवर्ड सी. टॉलमैन ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन पशुओं तथा मनुष्यों में उद्देश्यात्मक, प्रेरक, युद्ध की ओर तथा कुछ निबन्धों में किया है। टॉलमैन ने

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

व्यवहार को ग्रामाणु विलयन तथा आणविक की भाँति समझा है। इसका आधार स्नायु, माँसपेशियाँ तथा ग्रन्थियाँ हैं। अनेक चिह्न अधिगम के समय उभरते हैं, इसलिए टॉलमैन का सिद्धान्त के चिह्न पूर्णाकार मत भी कहा गया है।

टॉलमैन का यह मत अधिगम के चिह्नों के अवबोध पर बल देता है। ये चिह्न की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए रास्तों, विधियों आदि का ज्ञान देता है। व्यक्ति जब किसी भी क्रिया का अधिगम करता है, तो सबसे पहले वह समस्या के समाधान हेतु अनेक तत्त्व एकत्र करता है। इन तत्त्वों के अनुरूप हम प्रतिक्रिया करते हैं। अधिगम का अर्थ विभिन्न उद्दीपन के सम्बन्धों को पहचानना है। व्यक्ति की प्रतिक्रिया का आधार आशाओं एवं उद्देश्यों का प्रत्यक्षीकरण है।

6.15.1 साइन-गैस्टाल्ट सिद्धान्त की विशेषताएँ

1. यह सिद्धान्त संज्ञानात्मक रचना पर बल देता है। इसमें चिह्न आशा तथा लक्ष्यों का निवेश होता है।
2. भौतिक विज्ञान में ग्रामाणु का विशेष महत्त्व है। यही अनुकरण मनोविज्ञान में भी किया गया है।
3. सीखने वाला अनुक्रियाओं का अधिगम उद्दीपनों के प्रत्यक्ष ज्ञान के रूप में करता है।
4. व्यवहार का परिणाम लक्ष्य की पूर्ति होता है।

6.15.2 साइन-गैस्टाल्ट सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता

टॉलमैन का मत शिक्षा में कतिपय धारणाओं की व्याख्या करता है। यद्यपि अध्यापक संज्ञानात्मक रचना, चिह्न आदि शब्दों का प्रयोग तो नहीं करते, परन्तु अध्यापन के समक्ष इसका क्या अर्थ है, क्या समझे आदि वाक्यों का प्रयोग टॉलमैन के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। टॉलमैन के अनुसार, उन लोगों का व्यवहार जो अधिगम प्राप्त करते हैं, गतियों की अन्य तन्त्रिका शृंखला प्रदर्शित नहीं करता, बल्कि यह प्रदर्शित करता है कि व्यवहार में बुद्धि कार्य करती है।

1. अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों को अधिगम की जाने वाली क्रिया के उद्देश्य प्राप्ति के साधन आदि का स्पष्टीकरण कर दे।
2. यदि छात्रों के समक्ष उद्देश्य स्पष्ट है, तो वे किसी क्रिया के अधिगम में अधिक रुचि लेंगे। अध्यापक को चाहिए कि वह कक्षा के मानसिक और शारीरिक स्तर तथा आकांक्षाओं का ध्यान रखे।

6.16 ब्रूनर का अधिगम सिद्धान्त

पियाजे के विचारों के अनुगामी तथा विकासात्मक मनोविज्ञान के प्रवर्तक के रूप में जे. एस. ब्रूनर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ब्रूनर ने बौद्धिक विकास से सम्बद्ध नवीन सम्प्रत्ययों की उद्भावना की।

सीखने हेतु इस पाठ-योजना में ब्रूनर द्वारा विकसित प्रतिमान (मॉडल) 1956 में प्रस्तुत किया गया था। इसका प्रयोग पाठ-योजना सम्प्रेषण प्रत्यय-निष्पत्ति प्रतिमान सूचना प्रकरण में प्रमुख स्रोत के रूप में किया जाता है। आगमन तर्क के विकास हेतु यह प्रतिमान विशेष उपयोगी है। ब्रूनर तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोधों के द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया कि मानव अपने प्रत्ययों की रचना कैसे करता है और उसके अनुसार पर्यावरण में वस्तुओं के परस्पर सम्बन्धों तथा सादृश्य को किस प्रकार देखता है।

6.16.1 सम्प्रत्यय

ब्रूनर ने अपने ग्रन्थ **Towards Theory of Instruction** में निम्नलिखित सम्प्रत्यय प्रकट किए हैं-

1. बौद्धिक विकास

ब्रूनर ने बौद्धिक विकास के निम्नांकित तीन चरण या अवस्थाएँ बतलाई हैं-

1. **व्यवस्थापकीय अवस्था** - इस अवस्था में बालक बिना बोले क्रियाएँ करता है, जैसे- घुटनों के बल चलना, किसी वस्तु को पकड़ने हेतु हाथ-पैर हिलाना आदि।
2. **मूर्तावस्था** - इस अवस्था में बालक मूर्त रूप में ज्ञान प्राप्त करता है। वह व्यवस्थापकीय अवस्था में प्रत्यक्षीकरण द्वारा क्रियाएँ करता है, जबकि इस अवस्था में वह प्रत्यक्षीकरण द्वारा मूर्त कल्पना कर अपने पर्यावरण का ज्ञान प्राप्त करता है।
3. **प्रतीकात्मक अवस्था** - इस अवस्था में भाषा का विकास होता है तथा भाषा चिह्नों व संकेतों के द्वारा उनका सम्बन्ध वस्तुओं व विचारों से जोड़ा जाता है। यह बौद्धिक विकास की अन्तिम या उच्चतम अवस्था है, जिसमें बालक अपने अनुभवों को भाषा से सम्बद्ध करता है। इस प्रकार ब्रूनर ने बालक के बौद्धिक विकास के पूर्व मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की नई व्याख्या कर उन्हें स्पष्ट किया, जिससे शिक्षा-क्षेत्र में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में सहायता मिली है।

2. खोजपूर्ण अधिगम

ब्रूनर ने दूसरा सम्प्रत्यय खोजपूर्ण अधिगम का दिया, जिसके अनुसार शिक्षा में अन्वेषण विधि का महत्त्व स्पष्ट किया गया। ब्रूनर ने बतलाया कि अन्वेषण या खोज विधि से बालक में सृजनशीलता की वृद्धि होती है तथा उसकी स्मृति, चिन्तन व निर्णय शक्ति का विकास होता है।

3. सम्प्रत्यय निर्माण

सम्प्रत्यय निर्माण का विकासवादी मनोविज्ञान में सर्वाधिक महत्त्व है। ब्रूनर ने बतलाया कि सम्प्रत्यय निर्माण शैशवावस्था से ही आरम्भ हो जाता है तथा धीरे-धीरे सम्प्रत्ययों के संगठन में सामंजस्य उत्पन्न हो जाता है। सम्प्रत्ययों से ही संज्ञानात्मक विकास होता है। शिक्षा में इनका विशेष महत्त्व है।

4. भाषा विकास

ब्रूनर ने बालक के भाषा-विकास सम्बन्धी सम्प्रत्यय को स्पष्ट किया। भाषा का विकास प्रतीकात्मक रूप में होता है। भाषा विचारों को सुगम बना देती है। भाषा विकास पर सांस्कृतिकरण का प्रभाव पड़ता है। भाषा से बालक के विचारों का मौखिकीकरण होता है। शिक्षा में इन विचारों का सदुपयोग किया जा सकता है।

5. मूल अधिगम

मूल अधिगम का अर्थ नवीन सम्प्रत्यय एवं तर्क वाक्यों का ज्ञान होता है। इनके ज्ञान की सर्वोत्तम विधि अन्वेषण विधि है।

उपरोक्त विचारों से ब्रूनर ने विकासात्मक मनोविज्ञान का विकास किया तथा शिक्षा-क्षेत्र में नवीन सम्प्रत्ययों के अनुप्रयोग का मार्ग खोला। बौद्धिक विकास की अवस्थाएँ स्पष्ट कर शिक्षण में उनका महत्त्व बतलाया। सम्प्रत्यय

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

निर्माण में खोजपूर्ण अधिगम तथा भाषा विकास की प्रक्रिया को समझा कर शिक्षण को प्रभावी बनाने का प्रयास किया। ब्रूनर ने इन विचारों से शिक्षक शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण व सुगम बनाने में सहायता की तथा संज्ञानात्मक विकास हेतु नवीन प्रयोगों की प्रेरणा दी।

6.16.2 ब्रूनर के शिक्षण सिद्धान्त की विशेषताएँ

1. **अधिगम आधारित** – शिक्षण का सदैव अधिगम आधारित होना।
2. **ज्ञान की संरचना** – ज्ञान अथवा विषयवस्तु का नियोजन अधिगम को सरल बनाने के लिए किया जाए।
3. **तारतम्यता** – विषयवस्तु तथा अधिगम अनुभवों में क्रमबद्धता हो।
4. **पुनर्बलन** – पुरस्कार, दण्ड आदि से शिक्षण में पुनर्बलन किया जाये।

6.16.3 ब्रूनर के शिक्षण सिद्धान्त की शैक्षिक उपादेयता

1. शिक्षण सिद्धान्तों के कारण शिक्षा का आयोजन कक्षा–कक्ष में बालकों की आयु एवं ज्ञानात्मक विकास के आधार पर किया जाने लगा।
2. बालकों को कक्षा–कक्ष में दिया जाने वाला ज्ञान पूर्व अधिगम पर आधारित होना चाहिए।
3. बालक सिद्धान्त का अनुसरण करता है। अतः बालक को सक्रिय रखना चाहिए, सक्रियता से बालक जल्दी सीखता है।
4. बालक वस्तुओं का प्रतीकों के रूप में अवलोकन कर सीखता है।
5. ब्रूनर के सिद्धान्त द्वारा ज्ञान की संरचना पर बल दिया।
6. पाठ्यक्रम निर्माण एवं तारतम्यता।
7. पुनर्बलन का अधिगम महत्त्व ब्रूनर की देन है।
8. शिक्षा में अनुखोज अधिगम का प्रतिपादन ब्रूनर द्वारा किया गया।
9. मानसिक स्तर के अनुकूल नवीन शिक्षण कौशलों का विकास करना चाहिए।
10. शिक्षा क्षेत्र में अनुभवों के आधार पर ही अभ्यास करवाना चाहिए।
11. ब्रूनर के शिक्षण सिद्धान्त ने बाल–मनोविज्ञान या बाल–विकास को नई दिशा प्रदान की

****

अगर आप B.Ed, D.Ed, BSTC या शिक्षण अध्यापन के क्षेत्र में पढ़ाई कर रहे हैं तो आपसे निवेदन है कि निम्नलिखित Whatsapp No. अपनी कक्षा के व्हाट्सएप ग्रुप में जोड़ें। अगर आपका व्हाट्सएप ग्रुप नहीं बना हुआ है तो कृपया कम से कम 20 विद्यार्थी मिलकर व्हाट्सएप ग्रुप बना लें।

UPTET	-	95301 43210
MP Samvida	-	95302 43210
BTET	-	95302 43210
UTET	-	72209 29294
JTET	-	72209 29239
HTET	-	72209 29266
CGTET	-	72209 28969
HPTET	-	72209 28535

आपके क्लास के व्हाट्सएप ग्रुप में शिक्षा संबंधी सभी प्रतियोगी परीक्षा के पेपर्स, मॉडल पेपर्स एवं अन्य अध्ययन सामग्री भेजी जाएगी। आपका शुरू से मार्गदर्शन किया जाएगा, ताकि आप प्रतियोगी परीक्षा में अतिशीघ्र सफलता प्राप्त कर सकें।

www.praganya.org www.praganya.org www.praganya.org

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रतिक्रिया का विलोप होना निम्नलिखित में से किसके बाद अधिक कठिन है?
(1) आंशिक पुनर्बलन (2) निरन्तर पुनर्बलन
(3) दण्ड (4) मौखिक भर्त्सना

2. सीखने की प्रक्रिया में निम्नलिखित में से कौनसा सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है?
(1) बच्चे की आनुवंशिकता (2) सीखने की शैली
(3) बच्चों का परीक्षा परिणाम (4) बच्चे की आर्थिक स्थिति

3. पुनर्बलन का सिद्धान्त ..... से सम्बन्धित है।
(1) पावलॉव (2) थॉर्नडाइक
(3) कोह्लबर्ग (4) स्किनर

4. सीखने का वह सिद्धान्त जो पूर्ण रूप से और केवल **अवलोकनीय व्यवहार** पर आधारित है, सीखने के ..... सिद्धान्त से सम्बद्ध है।
(1) विकासवादी (2) व्यवहारवादी
(3) रचनावादी (4) संज्ञानवादी

5. **सीखने के अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त** को किसने बढ़ावा दिया?
(1) गेस्टाल्ट सिद्धान्तवादी (2) व्यवहारवादी
(3) रचनावादी (4) संज्ञानवादी

6. निम्नलिखित में से कौनसा सीखने का क्षेत्र है?
(1) व्यावसायिक (2) आनुभविक
(3) भावात्मक (4) आध्यात्मिक

7. **सूझ क्रमिक तथा क्रमबद्ध होती है**। यह किसने कहा है?
(1) कोहलर ने (2) वर्दीमर ने
(3) कोफ्का ने (4) डंकर ने

8. **आहा अनुभव** सीखने के किस सिद्धान्त से सम्बन्धित है?
(1) प्रयत्न एवं भूल सिद्धान्त से
(2) सूझ सिद्धान्त से
(3) प्रवर्तन अनुकूलन सिद्धान्त से
(4) अनुकूलन सिद्धान्त से

9. **प्रभाव प्रसार** का सम्बन्ध है–
(1) सूझ सिद्धान्त से
(2) प्रयत्न तथा भूल सिद्धान्त से
(3) क्लासिकी अनुबन्धन सिद्धान्त से
(4) प्रवर्तन अनुकूलन सिद्धान्त से

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.	9.	
(1)	(2)	(4)	(2)	(2)	(2)	(4)	(2)	(2)	

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

10. **अधिगम के संकलक (Eclectic) सिद्धान्त** के प्रतिपादक थे–
(1) गैग्ने (2) टॉलमैन
(3) स्किनर (4) हॉल

11. जब पूर्व का अधिगम नई स्थितियों के सीखने को बिल्कुल प्रभावित नहीं करता, तो यह ..... कहलाता है।
(1) अधिगम का शून्य स्थानान्तरण
(2) अधिगम का निरपेक्ष स्थानान्तरण
(3) अधिगम का सकारात्मक स्थानान्तरण
(4) अधिगम का नकारात्मक स्थानान्तरण

12. व्यवहार का करना पक्ष ..... में आता है।
(1) सीखने के गतिक (कोनेटिव) क्षेत्र
(2) सीखने के मनोवैज्ञानिक क्षेत्र
(3) सीखने के संज्ञानात्मक क्षेत्र
(4) सीखने के भावात्मक क्षेत्र

13. सीखने के सिद्धान्तों के सन्दर्भ में स्कैफोल्डिंग ..... की ओर संकेत करता है।
(1) अनुरूपित शिक्षक
(2) पूर्व अधिगम की पुनरावृत्ति
(3) सीखने में वयस्कों द्वारा अस्थाई सहयोग
(4) विद्यार्थियों द्वारा की गई गलतियों के कारणों का पता लगाना

14. पावलॉव द्वारा कुत्ते पर किए गए प्रयोग में अस्वाभाविक उद्दीपक निम्नांकित में से कौन था?
(1) घण्टी की आवाज (2) भोजन
(3) लार स्राव करना (4) इनमें से कोई नहीं

15. पावलॉव द्वारा कुत्ते पर किये गए प्रयोग में अनुबन्धित उद्दीपक कौन था?
(1) घण्टी की आवाज
(2) लार स्राव करना
(3) भोजन
(4) स्वयं पावलॉव

16. पावलॉव के अनुबन्धन प्रयोग में–
(1) पहले भोजनचूर्ण, इसके बाद ध्वनि उपस्थित की गयी थी।
(2) पहले ध्वनि, तत्पश्चात भोजनचूर्ण प्रस्तुत किया गया था।
(3) भोजन एवं ध्वनि दोनों साथ-साथ प्रस्तुत किये गये थे।
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

17. पावलॉव ने सीखने के अनुबन्ध-प्रतिक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन ..... पर प्रयोग करके किया था।
(1) खरगोश (2) चूहे
(3) कुत्ते (4) बिल्ली

18. निम्नलिखित में कौनसा भूलने का सिद्धान्त है?
(1) प्रतिस्पर्धात्मक अवरोध (2) प्रतीपकारी अवरोध
(3) प्रतिबोधित अवरोध (4) प्रतिच्छायित अवरोध

19. वाटसन तथा रेनर के प्रयोग में अनुबन्धित अनुक्रिया कौनसी थी?
(1) उजला चूहा (2) डर
(3) आवाज (4) उजला रोएँदार कोट

20. किस मनावैज्ञानिक ने **अव्यक्त अधिगम** का प्रत्यय दिया?
(1) टॉलमैन (2) लेविन
(3) वैण्डुरा (4) स्किनर

21. **चिह्न/संकेत अधिगम सिद्धान्त** किससे सम्बन्धित है?
(1) संज्ञानात्मकता (2) व्यवहारवाद
(3) संज्ञानात्मक पूर्णकार (4) प्रकार्यवाद

22. अधिगम का **तलरूप सिद्धान्त** दिया–
(1) टॉलमैन ने (2) लेविन ने
(3) थॉर्नडाइक ने (4) वाटसन ने

23. निम्नलिखित में से कौनसा सिद्धान्त यह दर्शाता है कि आपेक्षित व्यवहार के सन्निकट सकारात्मक प्रतिक्रिया तथा पुनर्बलन के फलस्वरूप व्यवहारात्मक विकास किया जा सकता है?
(1) शास्त्रीय अनुबन्धन (2) वाद्य अनुबन्धन
(3) ऑपरेन्ट अनुबन्धन (4) सामाजिक अनुबन्धन

24. प्राचीन अनुबन्धन को ..... भी कहा जाता है।
(1) नैमित्तिक अनुबन्धन (2) क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन
(3) पावलॉवियन अनुबन्धन (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

25. **क्रियात्मक अनुबन्धन का सिद्धान्त** किसकी देन माना जाता है?
(1) थॉर्नडाइक (2) पावलॉव
(3) स्किनर (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

26. S-R सम्बन्ध पाए जाते हैं–
(1) परम्परागत समायोजन में
(2) क्रियाशील समायोजन में
(3) थॉर्नडाइक के सिद्धान्त में
(4) इन सभी में

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

27. R-R तथा R-S सम्बन्ध दोनों ही विद्यमान होते हैं–
(1) परम्परागत समायोजन में
(2) क्रियाशील समायोजन में
(3) थॉर्नडाइक के सिद्धान्त में
(4) इन सभी में

10.	11.	12.	13.	14.	15.	16.	17.	18.	19.	20.	21.	22.	23.	24.	25.	26.	27.				
(1)	(1)	(3)	(3)	(2)	(1)	(2)	(2)	(2)	(2)	(1)	(3)	(2)	(3)	(3)	(3)	(3)	(3)				

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

28. S प्रकार का अनुबन्धन क्या होता है?
(1) परम्परागत अनुबन्धन
(2) क्रियाशील अनुबन्धन
(3) थॉर्नडाइक का सिद्धान्त
(4) ये सभी

29. अनुबन्धन प्रयोग में केवल अनुबन्धित उद्दीपक (ध्वनि) के उपस्थित करने पर होने वाली अनुक्रिया को क्या कहते हैं?
(1) अनानुबन्धित अनुक्रिया (2) अनुबन्धित अनुक्रिया
(3) अव्यस्त अनुक्रिया (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

30. **पम्परागत अनुबन्धन का सिद्धान्त** निम्न में से किसने प्रतिपादित किया था?
(1) पावलॉव ने (2) स्किनर ने
(3) थॉर्नडाइक ने (4) इन सभी ने

31. **कार्यात्मक अनुबन्धन** के प्रतिपादक थे–
(1) पावलॉव (2) स्किनर
(3) थॉर्नडाइक (4) इन सभी के

32. **अधिगम के प्रयास एवं त्रुटि सिद्धान्त के अनुसार, सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति गलतियाँ कर सकता है, किन्तु बार-बार किए गए प्रयासों के बाद वह सीखने में सफल हो जाता है।** इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया?
(1) पावलॉव ने (2) टॉलमैन ने
(3) थॉर्नडाइक ने (4) कोहलबर्ग ने

33. निम्नलिखित में से अधिगम में कौनसा सिद्धान्त यह बताता है कि कुछ पढ़ाया जाए अथवा कुछ सीखने के लिए कहा जाए, तो उसे अपने समग्र रूप में ही बच्चों के सामने प्रस्तुत किया जाए?
(1) अन्तर्दृष्टि या सूझ का सिद्धान्त
(2) सक्रिय अनुबन्धन सिद्धान्त
(3) अनुकरण सिद्धान्त
(4) प्रयास एवं त्रुटि सिद्धान्त

34. **सीखना विकास की प्रक्रिया है।** यह कथन किसका है?
(1) गेट्स का (2) वुडवथ का
(3) स्किनर का (4) कोहलर का

35. अधिगम की प्रक्रिया के एक चरण के रूप में छात्रों की त्रुटियों का पता लगाने के लिए शिक्षक को निम्नलिखित में किसकी जानकारी सर्वाधिक आवश्यक है?
(1) अधिगम की वैकल्पिक अवधारणाएँ
(2) अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक
(3) अधिगमकर्ता की सामाजिक-आर्थिक स्थिति
(4) उपरोक्त सभी

36. निम्नलिखित में से किस शिक्षा मनोवैज्ञानिक ने अभिप्रेरण एवं अधिगम के बीच सम्बन्ध स्थापित करते हुए यह कहा कि अभिप्रेरण से उत्पन्न क्रियाशीलता ही सीखने के लिए उत्तरदायी है?
(1) कोहलर ने (2) स्किनर ने
(3) थॉर्नडाइक ने (4) वुडवर्थ ने

37. सीखने के उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक कौन हैं?
(1) थॉर्नडाइक (2) पावलॉव
(3) कोहलर (4) स्किनर

38. **सीखने की असफलताओं का कारण, समझने की असफलताएँ हैं।** यह कथन किसका है?
(1) पावलॉव का
(2) स्किनर का
(3) मर्सेल का
(4) वुडवर्थ का

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

39. जब किसी क्रिया को बार-बार दोहराया जाता है, तो अस्वाभाविक उद्दीपक भी वही प्रतिक्रिया देने लगता है जो स्वाभाविक उद्दीपक देता है। यह अधिगम का निम्नलिखित में से कौनसा सिद्धान्त है?
(1) अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त
(2) शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त
(3) अनुकरण का सिद्धान्त
(4) अनुभवजन्य अधिगम सिद्धान्त

40. अधिगम के सन्दर्भ में शिक्षाशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने विविध प्रकार की परिभाषाएँ दी हैं। इन परिभाषाओं के अनुसार अधिगम ..... चलने वाली एक निरन्तर प्रक्रिया है।
(1) जीवन पर्यन्त (2) किशोरावस्था तक
(3) वृद्धावस्था तक (4) युवावस्था तक

41. निम्नलिखित में से कौनसा सिद्धान्त छात्रों के व्यवहार को वांछित स्वरूप तथा दिशा प्रदान करने में शिक्षकों की सहायता करता है?
(1) अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त
(2) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त
(3) अनुकरण सिद्धान्त
(4) अनुभवजन्य अधिगम सिद्धान्त

42. अधिगम का कौनसा सिद्धान्त यह बताता है कि सीखने हेतु कार्य को दोहराना आवश्यक है?
(1) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त
(2) शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त
(3) अनुभवजन्य अधिगम का सिद्धान्त
(4) अनुकरण का सिद्धान्त

28.	29.	30.	31.	32.	33.	34.	35.	36.	37.	38.	39.	40.	41.	42.							
(2)	(2)	(1)	(2)	(3)	(1)	(2)	(2)	(2)	(1)	(3)	(2)	(1)	(2)	(3)							

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

43. अधिगम के किस सिद्धान्त के आधार पर बालक में भय, प्रेम एवं घृणा के भाव आसानी से उत्पन्न किए जा सकते हैं?
(1) अनुभवजन्य अधिगम सिद्धान्त
(2) अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त
(3) शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त
(4) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त

44. किसी उद्दीपन के निरन्तर दिए जाने से व्यवहार में होने वाला अस्थायी परिवर्तन कहलाता है–
(1) अभ्यस्तता (2) अधिगम
(3) अस्थायी अधिगम (4) अभिप्रेरणा

45. व्यवहार में होने वाले स्थायी परिवर्तन, जो अभ्यास के कारण होते हैं, को कहा जाता है–
(1) सीखना (2) सोचना
(3) क्रिया करना (4) कल्पना करना

46. गैग्ने निम्न में से किससे सम्बन्धित है?
(1) अधिगम का श्रेणीक्रम (2) अधिगम के सिद्धान्त
(3) अधिगम का मूल्यांकन (4) अधिगम का प्रबन्धन

47. आंशिक पुनर्बलन–
(1) सतत् पुनर्बलन की अपेक्षा अधिक प्रभावी होता है।
(2) सतत् पुनर्बलन की अपेक्षा कम प्रभावी होता है।
(3) वास्तविक कक्षा कक्ष में अनुप्रयुक्त नहीं किया जा सकता।
(4) पशुओं को प्रशिक्षित करने में सर्वाधिक कार्य करता है।

48. अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों के अनुसार, एक शिक्षक ..... के द्वारा सीखने को संवर्द्धित कर सकता है।
(1) विद्यार्थियों से वास्तविक अपेक्षाएँ रखने
(2) अपेक्षाओं का एकरूप स्तर रखने
(3) विद्यार्थियों से किसी प्रकार की अपेक्षाएँ न रखने
(4) विद्यार्थियों से बहुत उच्च अपेक्षाएँ रखने

49. एक विद्यार्थी गुणन के सवालों को हल करना सीखता है। वह अपने जोड़ के पूर्व ज्ञान का प्रयोग करता है। इस प्रकार के अधिगम अन्तरण को क्या कहा जाता है?
(1) धनात्मक अन्तरण (2) क्षैतिज अन्तरण
(3) ऊर्ध्व अन्तरण (4) द्विपार्श्विक अन्तरण

50. निम्न में से कौनसी विशेषता परिपक्वता को अधिगम से अलग करती है?
(1) यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।
(2) यह अभ्यास पर निर्भर करती है।
(3) यह प्रेरकों पर निर्भर करती है।
(4) यह जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

51. निम्न में से कौनसा उदाहरण अधिगम को प्रदर्शित करता है?
(1) हाथ जोड़कर अध्यापक का अभिवादन करना
(2) स्वादिष्ट भोजन देखकर मुँह में लार का आना
(3) चढ़ना, भागना एवं फेंकना, तीन से पाँच वर्ष की अवस्था में
(4) इनमें से सभी

52. अन्तर्दृष्टि अर्थात् सूझ के द्वारा सीखने का सिद्धान्त गैस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक की देन है। यह सिद्धान्त किसके लिए सर्वाधिक उपयोगी है?
(1) मन्दबुद्धि बालकों के लिए (2) तीव्रबुद्धि बालकों के लिए
(3) पागलों के लिए (4) अनपढ़ों के लिए

53. अधिगम का कौनसा सिद्धान्त पाठ्यक्रम के विभिन्न अंगों के एकीकरण पर जोर देता है?
(1) उद्दीपन–अनुक्रिया सिद्धान्त
(2) सम्बन्ध–अनुक्रिया सिद्धान्त
(3) गैस्टाल्ट सिद्धान्त
(4) उपरोक्त सभी

54. **अन्तर्दृष्टि द्वारा अधिगम** का प्रतिपादन किया गया–
(1) गैस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों द्वारा (2) जीन पियाजे द्वारा
(3) पावलॉव द्वारा (4) वाइगोत्स्की द्वारा

55. **भूल और प्रयास द्वारा अधिगम** के सिद्धान्त का प्रतिपादन निम्न में से किसने किया था?
(1) थॉर्नडाइक ने (2) हेंगाटी ने
(3) कोहलर ने (4) पियाजे ने

56. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने अधिगम का **अनुबन्धित अनुक्रिया सिद्धान्त** का प्रतिपादन किया?
(1) पावलॉव ने (2) थॉर्नडाइक ने
(3) लॉयड मॉर्गन ने (4) एलेक्जेण्डर ने

57. गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अन्तर्दृष्टि को प्रभावित करती है–
(1) बुद्धि
(2) समस्या की रचना
(3) प्रत्यक्षीकरण
(4) उक्त सभी

58. कोहलर ने अपना अधिगम सिद्धान्त प्रतिपादित करने के लिए प्रयोग किया–
(1) अलबर्ट नामक बन्दर पर
(2) अलबर्ट नामक चिम्पैंजी पर
(3) सुल्तान नामक बन्दर पर
(4) सुल्तान नामक चिम्पैंजी पर

43.	44.	45.	46.	47.	48.	49.	50.	51.	52.	53.	54.	55.	56.	57.	58.						
(3)	(1)	(1)	(1)	(1)	(1)	(3)	(2)	(4)	(2)	(3)	(1)	(1)	(1)	(4)	(4)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

59. छः वनमानुष व केलों का प्रयोग किया था–
(1) कोहलर ने (2) स्किनर ने
(3) गुड ने (4) डेविस ने

60. **सूझ वास्तविक स्थिति का आकस्मिक, निश्चित और तात्कालिक ज्ञान है।** यह कथन है–
(1) कोहलर का (2) स्किनर का
(3) गुड का (4) डेविस का

61. किसी आगन्तुक के आने पर दरवाज़ा खोलने के व्यवहार को आप क्या कहेंगे?
(1) क्रियात्मक व्यवहार (2) ऑपरेन्ट व्यवहार
(3) प्रतिक्रियात्मक व्यवहार (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

62. गेस्टाल्टवादियों ने परिस्थिति के सही प्रत्यक्षीकरण को क्या कहा है?
(1) प्रात्यक्षिक स्थर्य (2) प्रात्यक्षिक सुरक्षा
(3) अन्तर्दृष्टि (4) प्रात्यक्षिक सतर्कता

63. थॉर्नडाइक मनोवैज्ञानिक थे–
(1) ब्रिटेन के (2) अमेरिका के
(3) भारत के (4) रूस के

64. स्किनर ने नैमित्तिक अनुबन्धन सम्बन्धी प्रयोग किस पर किया था?
(1) बिल्ली पर (2) चूहे पर
(3) कुत्ते पर (4) बन्दर पर

65. नैमित्तिक अनुबन्धन को अन्य किस नाम से जाना जाता है?
(1) शास्त्रीय अनुबन्धन (2) पावलॉवियन अनुबन्धन
(3) प्राचीन अनुबन्धन (4) क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन

66. निम्नलिखित युग्मों में से असत्य युग्म कौनसा है?
(1) स्किनर-चूहा (2) थॉर्नडाइक-बिल्ली
(3) पावलॉव-कुत्ता (4) कोहलर-कबूतर

67. ऐसे व्यवहार, जो ज्ञात एवं निश्चित उद्दीपकों द्वारा होते हैं, उन्हें कहते हैं–
(1) घटित व्यवहार (2) प्रतिकृत व्यवहार
(3) प्रत्यक्ष व्यवहार (4) अप्रत्यक्ष व्यवहार

68. थॉर्नडाइक के प्रयोग में बिल्ली के लिए पुरस्कार स्वरूप था–
(1) उलझन बॉक्स (2) प्रयोगकर्ता
(3) भोजन (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

69. थॉर्नडाइक के प्रयत्न एवं त्रुटि सिद्धान्त में किस पर विशेष बल नहीं दिया गया है?
(1) प्रेरणा (2) अभ्यास
(3) समझ (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

70. एक बालक ने एक कुत्ते को डण्डे से मारकर भगा दिया। अब जब भी कुत्ता बालक को देखता है, तो तुरन्त भाग जाता है। कुत्ते की यह सीखने की क्रिया किस प्रकार की है?
(1) अनुकरण प्रवृत्ति द्वारा सीखना
(2) सम्बद्ध सहज क्रिया द्वारा सीखना
(3) सूझ द्वारा सीखना
(4) प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखना

71. **व्यवहार में उत्तरोत्तर अनुकूलन की प्रक्रिया ही अधिगम है।** यह किसने कहा?
(1) वुडवर्थ ने (2) थॉर्नडाइक ने
(3) ई. ए. पील ने (4) स्किनर ने

72. बालकों में अधिगम सम्बन्धी योग्याताओं का विकास होता है–
(1) आत्माभिव्यक्ति से
(2) रचनात्मक क्रियाकलापों के माध्यम से
(3) आत्म मंथन से
(4) सहयोगात्मक कार्यों से

73. **पर्यवेक्षण अधिगम** इनमें से किसकी देन है?
(1) स्किनर (2) वाटसन
(3) थॉर्नडाइक (4) वैण्डुरा

74. निम्नलिखित में से किस अधिगम प्रणाली में मानव मस्तिष्क का सबसे अधिक प्रयोग होता है?
(1) अनुकरण (2) अनुबन्धन
(3) प्रयत्न और भूल (4) अन्तर्दृष्टि

75. एक स्थिति में अधिगम के दूसरी स्थिति के अधिगम को प्रभावित करने का क्या नाम है?
(1) प्रशिक्षण अन्तरण (2) सम्पोषण
(3) अनुबन्धन (4) अनुकरण

76. टॉलमैन ने सीखने को किन दोनों के बीच साहचर्य स्थापित होना माना है?
(1) उद्दीपक-अनुक्रिया (2) अनुक्रिया-अनुक्रिया
(3) 1 व 2 दोनों (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

77. अन्तर्दृष्टि कैसे होती है?
(1) आकस्मिक (2) धीरे-धीरे
(3) अनिश्चित (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

78. **क्लासिकी अनुबन्धन** का प्रवर्तक कौन है?
(1) थॉर्नडाइक (2) स्किनर
(3) हल (4) पावलॉव

59.	60.	61.	62.	63.	64.	65.	66.	67.	68.	69.	70.	71.	72.	73.	74.	75.	76.	77.	78.		
(1)	(3)	(2)	(3)	(2)	(2)	(4)	(4)	(2)	(3)	(3)	(2)	(4)	(2)	(4)	(4)	(1)	(1)	(1)	(4)		

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

79. अधिगम का सम्प्रेषण होता है, जब समानता हो–
(1) सीखने वालों में (2) लिंगों में
(3) उम्र वर्ग में (4) कार्यों में

80. अधिगम के विकास में निम्न में से सबसे महत्त्वपूर्ण क्या है?
(1) व्यस्त विद्यालय कार्यक्रम (2) अधिक पाठ्य पुस्तकें
(3) अधिगम उत्प्रेरित वातावरण (4) उत्सुक माता–पिता

81. डीवी सीखने का आधार किसे मानते थे?
(1) क्रियाओं को (2) आत्मा को
(3) बुद्धि को (4) ज्ञानेन्द्रियों को

82. निम्न में से कौनसा काम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सबसे पहले किया जाता है?
(1) उद्देश्यों का निर्धारण (2) रणनीतियों का चयन
(3) उद्देश्य लिखना (4) कार्य विश्लेषण

83. **गेस्टाल्ट स्कूल आफ साइकोलॉजी** के प्रणेता हैं–
(1) कोहलर (2) स्किनर
(3) पेस्टालॉजी (4) वाटसन

84. **हम करके सीखते हैं**। यह किसने कहा?
(1) डॉ. मेस ने (2) योक्म ने
(3) कोलेसनिक ने (4) सिम्पसन ने

85. **सक्रिय अनुबन्धन अनुक्रिया** को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जाता है–
(1) उद्दीपन → अनुक्रिया → पुनर्बलन
(2) उद्दीपन → पुनर्बलन → अनुक्रिया
(3) अनुक्रिया → उद्दीपन → पुनर्बलन
(4) उपरोक्त में से कोई नहीं

86. **अधिगम का साइमन–गेस्टाल्ट सिद्धान्त** का प्रतिपादन किया है–
(1) रॉबर्ट गैग्ने ने (2) टॉलमैन ने
(3) वाटसन ने (4) इनमें से कोई नहीं

87. सुमेलित कीजिए–

सूची I		सूची II
A.	बुद्धि	1. अन्तर्दृष्टि का सम्बन्ध प्राणी की बुद्धि से होता है।
B.	अनुभव	2. भूल में प्रयत्न अवश्य होता है।
C.	प्रत्यक्षीकरण	3. समस्या का पूर्णरूपेण प्रत्यक्षीकरण
D.	प्रयास तथा त्रुटि	4. अन्तर्दृष्टि के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका

कूट–	A	B	C	D
(1)	3	1	2	4
(2)	2	4	1	3
(3)	4	1	2	3
(4)	1	4	3	2

88. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. उद्दीपन तथा पुनर्बलन स्वतन्त्र चर हैं।
2. अनुक्रिया एक आश्रित चर है।
उपरोक्त कथनों में कौनसा/से कथन सही है/हैं?
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) 1 और 2 (4) न तो 1 और न ही 2

89. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. कोहलर ने अन्तर्दृष्टि द्वारा अधिगम के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए।
2. कोहलर के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि पशु में अन्तर्दृष्टि उत्पन्न होने से पूर्व समस्या के सभी अंगों के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है, तभी वह उनका पुनर्गठन कर सकता है।
उपरोक्त कथनों में कौनसा/से कथन सही है/ हैं?
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) 1 और 2 (4) न तो 1 और न ही 2

90. हल का पुनर्बलन सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया था?
(1) वर्ष 1915 में (2) वर्ष 1916 में
(3) वर्ष 1917 में (4) वर्ष 1918 में

91. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त के समर्थक मुख्य रूप से जर्मनी के गेस्टाल्ववादी मनोवैज्ञानिक हैं।
2. अन्तर्दृष्टि द्वारा अधिगम की विचारधारा के वैज्ञानिकों का विचार है कि व्यक्ति प्रयत्न और भूल द्वारा नहीं सीखता।
उपरोक्त कथनों में कौनसा/से कथन सही है/हैं?
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) 1 और 2 (4) न तो 1 और न ही 2

92. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. अन्तर्दृष्टि द्वारा अधिगम की विधि द्वारा सीखने में मानसिक प्रयास किया जाता है।
2. अन्तर्दृष्टि द्वारा अधिगम की विधि द्वारा मनुष्य के अतिरिक्त पशु भी सीख सकते हैं।
उपरोक्त कथनों में कौनसा/से कथन सही है/हैं?
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) 1 और 2 (4) न तो 1 और न ही 2

79.	80.	81.	82.	83.	84.	85.	86.	87.	88.	89.	90.	91.	92.								
(3)	(3)	(1)	(1)	(1)	(1)	(1)	(2)	(4)	(3)	(3)	(1)	(3)	(1)								

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

93. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. थॉर्नडाइक के अनुसार जिस कार्य को करने से व्यक्ति को सन्तोष मिलता है, उसे वह बार-बार करता है।
2. थॉर्नडाइक के अनुसार जब एक स्थिति और अनुक्रिया के मध्य एक परिवर्तनीय संयोग बनता है और उसके साथ ही या उसके परिणामस्वरूप सन्तोषजनक अवस्था पैदा होती है, तो उस संयोग की शक्ति बढ़ जाती है।

उपरोक्त कथनों में कौनसा/से कथन सही है/हैं?
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) 1 और 2 (4) न तो 1 और न ही 2

94. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. अनुबन्धन अनुक्रिया सिद्धान्त यान्त्रिकीकरण पर बल देता है।
2. प्रौढ़ तथा परिपक्व मनुष्य पर इस सिद्धान्त का प्रभाव नहीं पड़ता।

उपरोक्त कथनों में कौनसा/से कथन सही है/हैं?
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) 1 और 2 (4) न तो 1 और न ही 2

95. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. अनुबन्धन अनुक्रिया धीरे-धीरे स्वभाव बन जाती है। स्वभाव का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।
2. अनुबन्धन-अनुक्रिया सिद्धान्त की सहायता से बालकों में अच्छी अभिवृत्तियाँ विकसित की जा सकती हैं।

उपरोक्त कथनों में कौनसा/से कथन सही है/हैं?
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) 1 और 2 (4) न तो 1 और न ही 2

96. **सीखने या अधिगम शब्द में वातावरण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यवहार में होने वाले सभी प्रकार के परिवर्तन सम्मिलित हैं।**
उपरोक्त कथन किससे सम्बन्धित है?
(1) किंग्सले एवं गैरी से (2) गार्डनर मर्फी से
(3) वाटसन से (4) इनमें से कोई नहीं

97. निम्नलिखित में से कौनसा कथन पुनर्बलन सिद्धान्त की शिक्षा में उपयोग के आता है?
(1) इस सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया जाता है कि विभिन्न क्रियाओं में बच्चों की आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाए।
(2) सफलता प्राप्त करने पर बालकों को पुरस्कार दिया जाए।
(3) कक्षा में पढ़ाई जाने वाली वस्तु के उद्देश्य स्पष्ट हों।
(4) उपरोक्त सभी

98. सीखना की परिभाषा सबसे अच्छी ..... के अर्थ में दी जाती है।
(1) व्यवहार परिवर्तन (2) व्यवहार परिवर्जन
(3) उपर्युक्त दोनों (4) इनमें से कोई नहीं

99. निम्न कथनों में से कौनसा अधिगम का सूत्र नहीं है?
(1) सरल से कठिन की ओर
(2) विशिष्ट से सामान्य की ओर
(3) मूर्त से अमूर्त की ओर
(4) ज्ञात से अज्ञात की ओर

100. विद्यार्थियों में पाए जाने वाली अधिगम शैलियों में भिन्नता का कारण हो सकता है–
(1) विद्यार्थी के समाजीकरण की प्रक्रिया
(2) विद्यार्थी द्वारा अपनाई जाने वाली चिन्तन की युक्तियाँ
(3) परिवार का आर्थिक स्तर
(4) बालक का पालन-पोषण

101. निम्नलिखित में से कौनसा पावलॉवियन अनुबन्धन में आवश्यक नहीं है?
(1) प्रबलन (2) सामीप्य
(3) आनुषंगिकता (4) उत्सर्जित अनुक्रिया

102. स्किनर के अनुसार भाषा की अवाप्ति होती है–
(1) अनुकरण द्वारा
(2) संज्ञानात्मक प्रतिनिधित्व द्वारा
(3) उद्दीपक-अनुक्रिया प्रतिमान द्वारा
(4) क्लासिकी अनुबन्धन द्वारा

103. कोई भी प्रायोगिक संक्रिया, जिससे किसी प्रतिक्रिया के घटित होने की सम्भाव्यता बढ़ जाती है, को ..... कहते हैं।
(1) प्रबलन (2) संकेत
(3) आवश्यकता (4) प्रणोदन

104. उन उद्दीपन के प्रति, जो अनुबन्धित उद्दीपनों के समरूप होते हैं, किन्तु कभी उनके साथ युग्मित नहीं हुए, अनुबन्धित अनुक्रिया देने की प्रवृत्ति को ..... कहते हैं।
(1) विभेदन (2) अनुक्रिया सामान्यीकरण
(3) उद्दीपन सामान्यीकरण (4) विकिरण

105. वैण्डुरा के **प्रेक्षणात्मक अधिगम सिद्धान्त** में निम्नलिखित में से कौनसा एक घटक नहीं हैं?
(1) स्थानापन्न पुनर्बलन (2) प्रतिमान
(3) संकेत (4) प्रलोभक

106. क्रिया प्रसूत अधिगम के सन्दर्भ में अधोप्रदत्त में से कौन एक बेमेल पद है?
(1) विस्तारण (2) संचयित प्रतिवर्त
(3) पुनर्बलन अनुसूची (4) प्रतीक मितव्ययिता

93.	94.	95.	96.	97.	98.	99.	100.	101.	102.	103.	104.	105.	106.								
(3)	(3)	(3)	(2)	(4)	(3)	(2)	(1)	(3)	(4)	(1)	(3)	(4)	(1)								

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

107. निम्नलिखित में से कौन क्रिया प्रसूत अनुबन्धन के मूल मन्तव्य का वर्णन करता है?
(1) उपयुक्त परिस्थितियों में कोई प्राणी कोई भी अनुक्रिया करना सीख सकता है।
(2) प्राणी उन अनुक्रियाओं को निर्गत करना सीख लेते हैं, जो उनके लिये अधिकतम लाभकारक हो।
(3) व्यवहारों का रूपांकन उनके अपने परिणामों द्वारा होता है।
(4) व्यक्ति केवल तभी सीखते हैं, जब वे सीखना चाहते हैं।

108. स्किनर द्वारा प्रतिपादित अनुबन्धन को कहा जाता है–
(1) टाईप-एस अनुबन्धन (2) टाईप-आर अनुबन्धन
(3) टाईप-बी अनुबन्धन (4) टाईप-ए अनुबन्धन

109. थॉर्नडाइक द्वारा किये गए प्रयोगों में पहेली बॉक्स का उपयोग काफी किया गया था। जिस बॉक्स का उपयोग सीखने के प्रयोगों में काफी किया गया है, वह है–
(1) कबूतर बॉक्स (2) स्किनर बॉक्स
(3) केलर बॉक्स (4) इनमें से कुछ भी नहीं

110. हल द्वारा प्रतिपादित **सिद्धान्त निर्माण की विधि** को क्या कहा जाता है?
(1) काल्पनिक निगमनात्मक विधि
(2) काल्पनिक आगमनात्मक विधि
(3) तार्किक विधि
(4) चिह्न सीखना विधि

111. हल के द्वारा प्रतिपादित सीखने के सिद्धान्त में **SHR** को मजबूत करने के लिए जरूरत पड़ती है–
(1) पुनर्बलन की (2) अन्तर्नोद की
(3) प्रोत्साहन की (4) इनमें से किसी की भी नहीं

112. हल द्वारा प्रतिपादित सीखने के सिद्धान्त, जिनका उन्होंने 1952 ई. में संशोधन किया था, में–
(1) कुल 17 अभिगृहीत तथा 15 उपप्रमेय हैं।
(2) कुल 15 अभिगृहीत तथा 17 उपप्रमेय हैं।
(3) कुल 17 अभिगृहीत एवं 133 उपप्रमेय हैं।
(4) कुल 15 अभिगृहीत एवं 133 उपप्रमेय हैं।

113. सीखने के **संज्ञानात्मक सिद्धान्त** का प्रतिपादन किया गया था–
(1) कोहलर द्वारा (2) टॉलमैन द्वारा
(3) वर्दीमर द्वारा (4) इनमें से किसी के द्वारा भी नहीं

114. शाब्दिक सीखने के प्रयोगों में निम्नांकित में से किसका उपयोग नहीं किया जा सकता है?
(1) भोजन एवं पानी का वंचन (2) दण्ड
(3) ठोस पुरस्कार (4) डर

115. भूलभुलैया में चूहों पर टॉलमैन द्वारा किये गये प्रयोग का उद्देश्य अध्ययन करना था–
(1) क्रिया प्रसूत अनुबन्धन अधिगम का
(2) प्रयास एवं त्रुटि अधिगम का
(3) अव्यक्त अधिगम का
(4) क्लासिकी अनुबन्धन अधिगम का

116. जिस शिक्षण-वक्र में अभ्यास तथा सीखने की मात्रा के बीच सम्बन्ध बतलाया जाता है, उसे कहा जाता है–
(1) उत्पादन वक्र (2) काल वक्र
(3) त्रुटि वक्र (4) एस-आकारीय वक्र

117. जिस शिक्षण-वक्र से यह पता चले कि शिक्षण की गति प्रारम्भ में तीव्र होती है, परन्तु बाद के प्रयासों में मन्द हो जाती है, उसे कहा जाता है–
(1) समान-निष्पादन वक्र
(2) वर्द्धमान निष्पादन वक्र
(3) ह्रास-निष्पादन वक्र
(4) एस-आकारीय निष्पादन वक्र

118. जिस शिक्षण-वक्र से यह पता चले कि शिक्षण गति प्रारम्भ के प्रयासों में धीमी है, परन्तु बाद के प्रयासों में बढ़ रही है, तो इस तरह के वक्र को कहा जाता है–
(1) उत्पादन वक्र
(2) एस-आकारीय वक्र
(3) वर्द्धमान निष्पादन वक्र
(4) ह्रास निष्पादन वक्र

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

119. शिक्षण-वक्र के जिस भाग से यह पता चलता है कि अभ्यास देने के बाद भी शिक्षण गति में परिवर्तन नहीं होता है, उसे कहा जाता है–
(1) पठार (2) मध्य स्फुरण
(3) अन्तिम स्फुरण (4) प्रारम्भिक स्फुरण

120. जिस सीखने में शरीर के क्रियात्मक अंगों की भूमिका संवेदी अंगों से तुलनात्मक रूप से अधिक होती है, उसे कहा जाता है–
(1) शाब्दिक सीखना
(2) गत्यात्मक सीखना
(3) संवेदी-गत्यात्मक सीखना
(4) इनमें से कुछ भी नहीं

121. कोहलर के बॉक्स सम्बन्धी समस्या के प्रयोग में वनमानुष केले को इसलिए प्राप्त कर लेता है, क्योंकि–
(1) वह बॉक्स पर चढ़ गया था।
(2) उसमें सूझ विकसित हो गयी थी।
(3) वह भूखा था।
(4) वह केले को काफी पसन्द करता था।

107.	108.	109.	110.	111.	112.	113.	114.	115.	116.	117.	118.	119.	120.	121.		
(2)	(2)	(2)	(1)	(1)	(3)	(2)	(1)	(3)	(4)	(3)	(3)	(1)	(3)	(2)		

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

122. शिक्षार्थी जो पहले सीख चुके हैं, उसकी पुनरावृत्ति और प्रत्यास्मरण में शिक्षार्थियों की मदद करना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि–
(1) नई जानकारी को पूर्व जानकारी से जोड़ना सीखने को समृद्ध बनाता है।
(2) पूर्व पाठों को दोहराने का यह एक प्रभावी तरीका है।
(3) यह शिक्षार्थियों की स्मृति को बढ़ाता है, जिससे सीखना सुदृढ़ होता है।
(4) यह किसी भी कक्षानुदेशन के लिए एक सुविधाजनक शुरूआत है।

123. सूझ सिद्धान्त के बारे में निम्नांकित में से कौनसा कथन सत्य है?
(1) इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने की क्रिया धीरे-धीरे होती है।
(2) इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है।
(3) इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने में गत अनुभव महत्त्वपूर्ण नहीं होता है।
(4) इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने के लिए पुनर्बलन आवश्यक है।

124. अनुभवजन्य अधिगम सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता निम्नलिखित में से कौनसी हो सकती है?
(1) यह सिद्धान्त बताता है कि सीखना सभी तरह से एक उद्देश्यपूर्ण और लक्ष्योन्मुख प्रक्रिया है।
(2) यह सिद्धान्त बताता है कि जब कुछ पढ़ाया जाए अथवा कुछ सीखने के लिए कहा जाए, तो उसे अपने समग्र रूप में ही बच्चों के सामने प्रस्तुत किया जाए।
(3) छात्रों के व्यवहार को वांछित स्वरूप तथा दिशा प्रदान करने में यह सिद्धान्त शिक्षकों की सहायता करता है।
(4) इस सिद्धान्त की सहायता से छात्रों के लिए अधिगम स्रोतों एवं संसाधनों की व्यवस्था करने में सहायता मिलती है।

125. अनुबन्धित अनुक्रिया सिद्धान्त के अनुसार यदि CS तथा UCS के बीच का समय काफी लम्बा हो, तो क्या होगा?
(1) अनुबन्धित अनुक्रिया की शक्ति कमजोर हो जाएगी।
(2) अनुबन्धित अनुक्रिया की शक्ति बढ़ जाएगी।
(3) प्राणी CS की पहचान ठीक ढंग से नहीं कर पाएगा।
(4) प्राणी CS तथा UCS में स्पष्ट अन्तर नहीं कर पाएगा।

126. मानव सीखना में प्रशंसा तथा फटकार के तुलनात्मक अध्ययनों से कुछ तथ्य सामने आये हैं। इनमें से किसे सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया है?
(1) प्रशंसा से निष्पादन में वृद्धि होती है।
(2) फटकार से निष्पादन में ह्रास होता है।
(3) प्रशंसा तथा फटकार के पड़ने वाले प्रभाव प्रत्यक्ष न होकर इन अभिप्रेरकों को प्रदान करने वाले तथा प्राप्त करने वाले व्यक्ति के आपसी सम्बन्ध पर निर्भर करते है।
(4) इनमें से किसी को भी सबसे महत्त्वपूर्ण नहीं माना गया है

127. राजू खरगोश से डरता था। शुरू में खरगोश को राजू से काफी दूर रखा गया। आने वाले दिनों मे हर रोज खरगोश और राजू के बीच की दूरी कम कर दी गई। अन्त में राजू की गोद में खरगोश को रखा गया और राजू खरगोश से खेलने लगा। यह प्रयोग उदाहरण है–
(1) प्रयत्न एवं त्रुटि सिद्धान्त का
(2) शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त का
(3) क्रिया प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त का
(4) इनमें से सभी

128. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. मानव अधिगम तथा प्रशिक्षण में सक्रिय अनुबन्धन सिद्धान्त का उपयोग प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के प्रयोग से छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन किया जा सकता है।
2. सक्रिय अनुबन्धन के आधार पर स्किनर ने प्रशिक्षण प्रतिमान का विकास किया है, जिसका मुख्य लक्ष्य व्यवहार परिवर्तन है।
उपरोक्त कथनों में कौनसा/से कथन सही है/हैं?
(1) केवल 1
(2) कवेल 2
(3) 1 और 2
(4) न तो 1 और न ही 2

129. कथन (A) धनात्मक उद्दीपन प्रस्तुत किया जाता है, तो उसके परिणामस्वरूप अधिगम अनुक्रिया अधिक मात्रा में प्रकट होती है।
कारण (B) स्किनर के सिद्धान्त में अनुक्रिया उद्दीपन के सम्बन्ध को महत्त्व नहीं दिया जाता है।
कूट–
(1) A और R दोनों सही है।
(2) A और R दोनों गलत हैं।
(3) A सही है, किन्तु R गलत है।
(4) A गलत है, किन्तु R सही है।

130. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. हल के अनुसार प्रणोदन शक्ति, प्रणोदन का अनुभव करता है, तब अनेक प्रकार के उद्दीपक उत्पन्न होते हैं।
2. उद्दीपन व्यक्ति को उद्देश्य तक पहुँचाने में सहायक होते हैं।
उपरोक्त कथनों में कौनसा/से कथन सही है/हैं?
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) 1 और 2 (4) न तो 1 और न ही 2

131. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. हल के अधिगम सिद्धान्त का आधार पुनर्बलन है।
2. हल ने इस विचार की पुष्टि के लिए निगमन प्रणाली का प्रयोग नहीं किया।
उपरोक्त कथनों में कौनसा/से कथन सही है/हैं?
(1) केवल 1
(2) केवल 2
(3) 1 और 2
(4) न तो 1 और न ही 2

122.	123.	124.	125.	126.	127.	128.	129.	130.	131.						
(1)	(3)	(4)	(1)	(3)	(2)	(3)	(3)	(3)	(1)						

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

132. कथन (A) हल ने चूहों पर प्रयोग किए।
कारण (R) हल के अनुसार उद्दीपन तथा अनुक्रिया के मध्य सम्बन्ध प्रणोदन और पुरस्कार पर निर्भर है।
कूट–
(1) A और R दोनों सही हैं।
(2) A और R दोनों गलत हैं।
(3) A सही है, किन्तु R गलत है।
(4) A गलत है, किन्तु R सही है।

133. पाँच वर्ष का राजू अपनी खिड़की के बाहर तूफान को देखता है। बिजली चमकती है और कड़कने की आवाज आती है। राजू शोर सुनकर उछलता है। बार–बार यह घटना होती है। फिर कुछ देर शान्ति के पश्चात् बिजली कड़कती है। राजू बिजली की गर्जना सुनकर उछलता है। राजू का उछलना सीखने के किस सिद्धान्त का उदाहरण है?
(1) शास्त्रीय अनुबन्धन (2) क्रिया प्रसूत अनुबन्धन
(3) प्रयत्न एवं भूल (4) इनमें से कोई नहीं

134. एक कॉलेज जाने वाली लड़की ने फर्श पर कोट फेंकने की आदत डाल ली है। लड़की की माँ ने उससे कहा कि कमरे से बाहर जाओ और कोट को खूँटी पर टाँगो। लड़की अगली बार घर में प्रवेश करती है, कोट को हाथ पर रखकर अलमारी की तरफ जा कर कोट को खूँटी पर टाँग देती है। यह उदाहरण है–
(1) शृंखलागत अधिगम का
(2) उद्दीपन–अनुक्रिया अधिगम का
(3) प्रत्यय अधिगम का
(4) इनमें से सभी

135. निम्नलिखित में से किसे एस–आकारीय शिक्षण–वक्र की विशेषता कहा जाएगा?
(1) प्रारम्भिक प्रयासों में शिक्षण गति में तीव्रता और फिर बाद के प्रयासों में मन्दता
(2) प्रारम्भिक प्रयासों में शिक्षण गति में मन्दता और फिर बाद के प्रयासों में तीव्रता
(3) प्रारम्भिक प्रयासों में शिक्षण गति में मन्दता, फिर बाद के प्रयासों में तीव्रता और फिर अन्तिम कुछ प्रयासों में मन्दता
(4) प्रारम्भ से अन्त तक के प्रयासों में शिक्षण गति लगभग समान होना

****

अगर आप B.Ed, D.Ed, BSTC या शिक्षण अध्यापन के क्षेत्र में पढ़ाई कर रहे हैं तो आपसे निवेदन है कि निम्नलिखित Whatsapp No. अपनी कक्षा के व्हाट्सएप ग्रुप में जोड़ें। अगर आपका व्हाट्सएप ग्रुप नहीं बना हुआ है तो कृपया कम से कम 20 विद्यार्थी मिलकर व्हाट्सएप ग्रुप बना लें।

UPTET	-	95301 43210
MP Samvida	-	95302 43210
BTET	-	95302 43210
UTET	-	72209 29294
JTET	-	72209 29239
HTET	-	72209 29266
CGTET	-	72209 28969
HPTET	-	72209 28535

आपके क्लास के व्हाट्सएप ग्रुप में शिक्षा संबंधी सभी प्रतियोगी परीक्षा के पेपर्स, मॉडल पेपर्स एवं अन्य अध्ययन सामग्री भेजी जाएगी। आपका शुरू से मार्गदर्शन किया जाएगा, ताकि आप प्रतियोगी परीक्षा में अतिशीघ्र सफलता प्राप्त कर सकें।

प्रगण्य प्रकाशन द्वारा CTET एवं प्रत्येक राज्य के TET (UPTET, MP Samvida, BTET, UTET, JTET, HTET, CGTET, HPTET) के लिए मॉडल पेपर की फ्री PDF प्रकाशित की जाती है। मॉडल पेपर की फ्री PDF प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित Whatsapp No. अपने कॉलेज के क्लास ग्रुप या कोचिंग के क्लास ग्रुप या अन्य स्टडी ग्रुप में जोंडे। आपके ग्रुप में मॉडल पेपर भेज दिए जाएँगें।

UPTET	-	95301 43210
MP Samvida	-	95302 43210
BTET	-	95302 43210
UTET	-	72209 29294
JTET	-	72209 29239
HTET	-	72209 29266
CGTET	-	72209 28969
HPTET	-	72209 28535

132.	133.	134.	135.		
(1)	(1)	(1)	(3)		

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

अध्याय 7

बालकों में चिन्तन एवं अधिगम

7.1 प्रस्तावना

अधिगम सिद्धान्तों ने सदैव विज्ञान शिक्षण–अधिगम को प्रभावित किया है। शिक्षण सामग्री का विकास एवं प्रयोग भी अधिगम सिद्धान्तों से प्रभावित हुए हैं। एडगेर डेल द्वारा विकसित अनुभव शंकु इन प्रयासों का द्योतक है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् तथा अक्टूबर 1957 में रूस के प्रथम स्पूतनिक के पश्चात् विज्ञान शिक्षण में अधिगम मनोविज्ञान पर अधिक बल दिया जाने लगा। इस प्रविधि में मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाविदों ने बालक किस प्रकार चिन्तन करते हैं तथा किस प्रकार सीखते हैं? को जानने का प्रयास किया तथा यह स्वीकारा गया कि सम्प्रत्यय विकास आवश्यक हैं, जिसमें छात्र केन्द्र–बिन्दु है। प्रो. बी. एफ. स्किनर, प्रो. जीन पियाजे, प्रो. जॉन डीवी तथा प्रो. आसुबेल का योगदान सराहनीय है।

7.2 बालक किस प्रकार चिन्तन करते हैं?

भगवान ने मनुष्य को जो बहुत से वरदान दिये हैं, उनमें चिन्तन–प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस चिन्तन प्रक्रिया के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है। अन्य प्राणियों की अपेक्षा, मानव–जीवन अधिक गहन है। इस चिन्तन प्रक्रिया के कारण ही व्यक्ति वातावरण के साथ समायोजन बनाये रख सकता है और अपने जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति कर सकता है। विद्वानों का कथन है कि चिन्तन, सोचने की एक प्रक्रिया है, जो किसी समस्या के कारण प्रारम्भ होती है और समस्या–समाधान तक बराबर चलती रहती है। मनुष्य का चिन्तन जितना समुचित होगा, उतना उसका व्यवहार भी समुचित होगा और वह जीवन में सफलता प्राप्त करेगा। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि विद्यालय के विभिन्न विषयों के माध्यम से बालक–बालिकाओं की चिन्तन शक्ति का विकास किया जाए।

7.2.1 चिन्तन का अर्थ

दैनिक बोलचाल की भाषा में चिन्तन का अर्थ सोचने, समझने, कल्पना करने, विचार–विमर्श करने आदि से लिया जाता है, परन्तु मनोविज्ञान में चिन्तन के इतने अस्पष्ट रूप से काम नहीं चल सकता। चिन्तन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है, उसको सीखने, स्मरण, कल्पना आदि से अलग करना कठिन है।

ड्रेवर ने चिन्तन को **मन की क्रिया** कहा है। उसने चिन्तन और विचार में अन्तर करते हुए कहा है कि चिन्तन एक मानसिक प्रक्रिया है, जबकि विचार, मानसिक प्रक्रिया के समय, मन की विषय–वस्तु है। अतएव चिन्तन से तात्पर्य है मन के सामने प्रत्ययों का आना–जाना, परन्तु दिवास्वप्न या मनोविलास और वास्तविक चिन्तन में अन्तर है। दिवास्वप्न या मनोविलास में प्रत्यय अस्थायी या क्षणिक होते हैं। चिन्तन एक सक्रिय प्रक्रिया है, जिसमें मन, एक विशेष प्रयोजन के लिए प्रत्ययों को नियन्त्रित करता है। इसे हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं–

वीरेश्वर अपने परिवार के साथ गुरू शंकराचार्य का प्रवचन सुनने जाते हैं। वे अपनी कोठी के उस कमरे में ताला लगाकर जाते हैं, जो बाहर के बरामदे में खुलता है। पीछे से समाचार पत्र वाला आता है और बरामदे में समाचार–पत्र डालकर फाटक बन्द करके चला जाता है। वापस लौटते समय, समाचार–पत्र देने वाला मार्ग में उन्हें मिल जाता है और बताता है कि समाचार–पत्र तथा राष्ट्र–धर्म नामक पत्रिका बरामदे में डाल आया है। अपनी कोठी में पहुँचने पर, वे देखते हैं कि बरामदे में न तो समाचार–पत्र है और न ही राष्ट्र–धर्म। अब एक समस्या खड़ी हो जाती है– आखिर समाचार–पत्र को कौन ले गया? पहले तो कभी ऐसा हुआ नहीं था। समस्या का उपस्थित हो जाना चिन्तन प्रक्रिया की **प्रथमावस्था** है।

अब वीरेश्वर पास–पड़ोस से पूछता है कि कहीं उन्होंने समाचार–पत्र तो नहीं देखा उस दिन रविवार था और पास–पड़ोस वाले घर पर ही थे। यह मालूम करने के लिए पास–पड़ोस से पूछना कि समाचार–पत्र कौन ले गया? यह चिन्तन की **द्वितीयावस्था** है।

इसके बाद वह पिछले अनुभवों का ध्यान करने लगता है। वह सोचने लगता है कि आजकल गर्मी की छुट्टियाँ हैं। स्कूलों के बड़े–बड़े लड़के घरों में घुसकर फल तोड़ा करते हैं। कहीं यह उनका काम तो नहीं? उनका पड़ोसी उनसे अक्सर समाचार–पत्र माँगा करता है। हो सकता है कि वह समाचार–पत्र माँगने आया हो और उन्हें बरामदे में देखकर, उन्हें उठाकर ले गया हो। यह चिन्तन की **तृतीयावस्था** है।

तत्पश्चात् वह अपने पिछले अनुभवों के आधार पर एक अनुभव चुन लेता है। अपने पुराने अनुभवों के आधार पर वीरेश्वर का यह निश्चित मन हो जाता है कि हो न हो समाचार–पत्र की यह चोरी उसके पड़ोसी ने की है। अब उसकी समस्त चेष्टाएँ इस निष्कर्ष के अनुसार होती हैं। यह चिन्तन की **चतुर्थावस्था** है।

उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि चिन्तन एक सक्रिय प्रक्रिया है और इसमें मन एक विशेष प्रयोजन के लिए प्रत्ययों को नियन्त्रित करता है।

इस लम्बे उदाहरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि चिन्तन समस्या से प्रारम्भ होता है और उसके समाधान से समाप्त होता है। जब तक सुलझाव न निकले या जब तक व्यक्ति समाधान निकालने के प्रयत्न में थक न जाए, तब तक चिन्तन की प्रक्रिया चलती रहती है। इस प्रकार समस्या के अभाव में चिन्तन नहीं हो सकता। मनुष्य के जीवन में समस्याएँ बराबर आया करती हैं और उसको चिन्तन द्वारा उनका समाधान निकालना पड़ता है।

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

7.2.2 चिन्तन की परिभाषाएँ

चिन्तन क्या है, इसके लिए विभिन्न विद्वानों ने इसको कई प्रकार से परिभाषित किया है। नीचे कुछ परिभाषाएँ दी जा रही हैं–

1. डीवी के अनुसार

चिन्तन सक्रिय, संलग्नपूर्ण एवं सावधानीपूर्ण विचार करता है। यह किसी विश्वास या अनुमानित ज्ञान या उसके आधारों तथा प्रकाश में किन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचता है।

2. रॉस के अनुसार

चिन्तन संज्ञानात्मक सन्दर्भ में एक मानसिक प्रक्रिया है।

3. कालेसनिक के अनुसार

चिन्तन प्रत्ययों का पुनर्संगठन है।

4. वारेन के अनुसार

चिन्तन व्यक्ति के सामने समाधान के लिए उत्पन्न आदर्शात्मक समस्या है, जो प्रकृति में प्रतीकात्मक है तथा व्यक्ति को सक्रिय बनाती है, जिससे प्रभावित होकर कुछ सीमा तक प्रयास एवं त्रुटि से वह प्रतीकात्मक प्रकार की प्रत्ययात्मक प्रक्रिया करता है।

5. झा के अनुसार

चिन्तन एक क्रियाशील प्रक्रिया है, जिसमें मस्तिष्क विचारों की गति का नियन्त्रण तथा नियमन सोद्देश्य रूप से करता है।

6. स्किनर के अनुसार

सृजनात्मक चिन्तन से तात्पर्य है कि व्यक्ति के निर्णय या उसके पूर्वकथन नये, मौलिक, उद्भूत तथा वैयक्तिक हैं। सृजनात्मक चिन्तक वह होता है, जो नये क्षेत्र खोजता है, नये निरीक्षण करता है, नये पूर्वकथन करता है तथा नये निष्कर्ष निकालता है।

7. वेलेन्टाइन के अनुसार

चिन्तन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाता है, जिसमें शृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य या उद्देश्य की ओर अविराम गति से प्रवाहित होते हैं।

8. रेबर्न के अनुसार

चिन्तन, इच्छा–सम्बन्धी प्रक्रिया है, जो किसी असन्तोष के कारण प्रारम्भ होती है और प्रयास एवं त्रुटि के आधार पर चलती हुई उस अन्तिम स्थित पर पहुँच जाती है, जो इच्छा को सन्तुष्ट करती है।

9. क्रुज के अनुसार

चिन्तन एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो जीवन की किसी अन्य प्रक्रिया की भाँति चलती रहती है।

10. जे. पी. गिलफोर्ड के अनुसार

चिन्तन प्रतीकात्म्क व्यवहार है, जो सभी प्रकार के प्रतिस्थापन से सम्बन्धित होते हैं।

इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि चिन्तन वह मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य किसी समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करके उस समस्या के समाधान तलाशता है। सरल शब्दों, किसी भी समस्या के समाधान करने हेतु विचार करने वाली मानसिक प्रक्रिया को ही चिन्तन कहते हैं।

7.2.3 चिन्तन की विशेषताएँ

1. चिन्तन में मानसिक प्रक्रिया निहित होती है।
2. चिन्तन का कोई एक माध्यम होता है। यह माध्यम भाषा या प्रतीकात्मक व्यवहार हो सकते हैं।
3. चिन्तन के लिए किसी–न–किसी प्रकार की समस्या का होना आवश्यक है। जब तक कोई समस्या नहीं होगी, चिन्तन भी नहीं होगा।
4. चिन्तन में प्रयास एवं त्रुटि के तत्त्व निहित रहते हैं।
5. चिन्तन स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलता है।
6. चिन्तन में विश्लेषण तथा संश्लेषण की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।
7. चिन्तन में प्रत्यक्षीकरण न होकर प्रमुख रूप से विचार तथा प्रतीक होते हैं।
8. चिन्तन अत्यन्त ही जटिल प्रक्रिया है, किन्तु इसमें संज्ञानात्मक पक्ष का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व होता है।

7.2.4 चिन्तन के प्रकार

1. प्रत्यक्षात्मक चिन्तन

प्रत्यक्षात्मक चिन्तन का सम्बन्ध हमारी ज्ञानेन्द्रियों से होता है। इस प्रकार का चिन्तन अधिकतर पशुओं या बालकों में पाया जाता है। ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित ज्ञान को ही प्रत्यक्ष ज्ञान कहा जाता है। आशुतोष दस वर्ष का बालक है। वह कुत्तों को देखते ही पत्थर मारने लगता है। अब जब भी आसपास के घरों के कुत्ते उसे देखते हैं, तो डरकर भागने लगते हैं। अपने पिछले अनुभवों के आधार पर कुत्ते सोचते हैं कि आशुतोष उन्हें पत्थर मारने आ रहा है।

इस प्रकार के चिन्तन में न तो वस्तुओं के गुणों और नामों को जानने की आवश्यकता होती है और न ही उसमें कल्पनाओं या प्रत्ययों का कोई स्थान होता है।

2. कल्पनात्मक चिन्तन

इस प्रकार के चिन्तन में प्रत्येक वस्तु का अभाव होता है, परन्तु इस कमी की पूर्ति कल्पना द्वारा कर ली जाती है। ऊपर वर्णित प्रत्यक्षात्मक चिन्तन का सम्बन्ध वर्तमान से रहता है, परन्तु कल्पनात्मक चिन्तन भविष्य से सम्बन्धित होता है। इसमें स्मृति का प्रमुख हाथ होता है। कल्पनात्मक चिन्तन में, स्मृति के आधार पर तथा पूर्वानुभवों की पृष्ठभूमि में व्यक्ति या वस्तु से सम्बन्धित मानसिक प्रतिमाओं का प्रादुर्भाव होता है। कविता के पिताजी सोमनाथ गये थे, तो उसके लिए माला लाए थे। अब जब भी वे दूसरे नगर जाते हैं, तो कविता नई माला की कल्पना करने लगती है। उसके चिन्तन में दो मानस प्रतिमाएँ उभरती है– एक उसके पिताजी की और दूसरी माला की।

3. प्रत्ययात्मक चिन्तन

प्रत्ययात्मक चिन्तन का आधार प्रत्यय होते हैं। प्रत्ययों को सूक्ष्म विचार कहा जा सकता है। प्रत्यय भाषा के साथ–साथ चलते हैं। शब्द और प्रत्यय को अलग–

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

अलग नहीं किया जा सकता। एक जैसे पदार्थों और उनके गुणों का ज्ञान, जिन विशेष शब्दों से होता है, उन्हें प्रत्यय कहते हैं। जब बालक **बिल्ली** शब्द का उच्चारण करते हैं, तो उनके चिन्तन में कोई विशेष बिल्ली न होकर समस्त बिल्ली जाति तथा उसके गुण होते हैं।

प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं– एक तो वे प्रत्यय जिनका सम्बन्ध व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियों से है, जैसे– बिल्ली, गाय, मनुष्य, मोर, तोता आदि। दूसरे प्रकार के प्रत्ययों का सम्बन्ध गुणों से होता है, जैसे– दया, न्याय, सच्चाई, कठोरता आदि।

4. तार्किक चिन्तन

यह सर्वोच्च प्रकार का चिन्तन होता है। इस प्रकार के चिन्तन में कोई व्यक्ति विभिन्न विचारों का प्रयोग किसी विशिष्ट लक्ष्य को ध्यान में रखकर करता है। मनुष्य इस प्रकार के चिन्तन में एक दूसरी वस्तु या घटना के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है।

5. निर्देशित चिन्तन

निर्देशित चिन्तन से अभिप्राय व्यक्ति के द्वारा किसी विशिष्ट या लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले चिन्तन से होता है। इस प्रकार के चिन्तन में व्यक्ति का व्यवहार उसके जीवन के ज्ञात एवं स्पष्ट लक्ष्यों से निर्देशित होता है।

6. अनिर्देशित चिन्तन

इस प्रकार के चिन्तन में मनुष्य किसी स्पष्ट उद्देश्य और लक्ष्य के बिना ही निर्देशित हुए चिन्तन प्रक्रिया को जारी रखता है। इस प्रकार का चिन्तन प्रायः दिवा स्वप्नों, स्वतन्त्र साहचर्यों, कल्पना की उड़ान जैसी अनिर्देशित घटनाओं से परिचालित होता है।

7. परावर्तित चिन्तन

मनुष्य जीवन के विभिन्न पहलुओं और उनमें किये जाने वाले व्यवहार प्रतिमानों को सार्थक बनाने के लिए इस प्रकार का चिन्तन किया जाता है। यह एक उच्च स्तरीय चिन्तन की प्रक्रिया मानी जाती है। इस चिन्तन के द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने जटिल कार्यों या समस्याओं का समाधान करता है। इसमें पूर्व अनुभवों का प्रयोग करते हुए एक नये ढंग से आने वाली समस्या का समाधान किया जाता है।

7.2.5 जिम्बार्डो एवं रूक के अनुसार चिन्तन के प्रकार

जिम्बार्डो एवं रूक के अनुसार चिन्तन के दो मुख्य प्रकार बतलाये गये हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. स्वली चिन्तन

यह चिन्तन कल्पनात्मक विचारों और दिवा–स्वप्नों पर आधारित होता है, जिसमें किसी समस्या का समाधान नहीं हो पाता। यह केवल ख्याली पुलाब बनाना जैसा ही है।

2. यथार्थवादी चिन्तन

इस प्रकार के चिन्तन का सम्बन्ध वास्तविक परिस्थितियों या घटनाओं से ही होता है, जिसकी सहायता से व्यक्ति किसी समस्या का समाधान कर सकता है। मनोवैज्ञानिकों ने यथार्थवादी चिन्तन के तीन भाग बताये हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. **अभिसारी चिन्तन** – इस प्रकार के चिन्तन में व्यक्ति किसी दी गई परिस्थिति या वस्तु–स्थिति में तथ्यों के आधार पर ही समस्या का समाधान निकालता है। इसे निगमनात्मक चिन्तन भी कहते हैं। इसमें समस्या का निश्चित समाधान निकाला जाता है।
2. **सृजनात्मक चिन्तन** – इस प्रकार के चिन्तन में व्यक्ति दी गई परिस्थिति में पाये गये तथ्यों के साथ अपने दृष्टिकोण के आधार पर नये तथ्यों को जोड़कर समस्या समाधान की ओर बढ़ता है। इसमें समस्या का समाधान करने के लिए नये तथ्यों का सर्जन किया जाता है। इस प्रकार के चिन्तन को आगमनात्मक चिन्तन भी कहते हैं।
3. **आलोचनात्मक चिन्तन** – इस प्रकार के चिन्तन में व्यक्ति किसी भी घटने वाली घटना के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखता है। वह उपस्थित परिस्थिति या घटना की वास्तविकता को जाँच परखकर ही स्वीकार करते हैं। इसमें वस्तु, घटना या तथ्य की सच्चाई को उसके गुणों व दोषों की परख करने के बाद स्वीकार किया जाता है। गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक मैक्स वर्दीमर ने अपने सिद्धान्त में तीन प्रकार के चिन्तन की बात की है।

7.2.6 चिन्तन के साधन

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार चिन्तन की प्रक्रिया निम्न साधनों के माध्यम से तेजी से होती है–

1. प्रतिबोधन

चिन्तन की क्रिया को प्रतिबोधन के माध्यम से उत्तेजना मिलती है। जैसे– यदि कोई अध्यापक किसी बालक को किसी से झगड़ते हुए देखता है, तो वह अपने अनुभवों से उसके व्यवहार का अध्ययन कर सकेगा और उसकी झगड़ने की आदत को सुधार सकेगा।

2. प्रतिमा

प्रतिमा चिन्तन का एक प्रमुख साधन है। व्यक्ति के पूर्व अनुभव प्रतिमाओं के रूप में विद्यमान रहते हैं। ये प्रतिमाएँ इतनी शक्तिशाली होती हैं कि इनमें तथा प्रत्यक्ष में बहुत कम अन्तर रहता है। जैसे– यदि बालक घर में बैठा–बैठा अपनी कक्षा के बारे में चिन्तन करता है, तो वह अध्यापक, मेज, कुर्सी, श्यामपट्ट, सहपाठी आदि की एक अस्पष्ट मानसिक पुनरुत्पत्ति करता है, जिसे प्रतिमा कहा जाता है। मनोवैज्ञानिकों का पहले ऐसा मानना था कि चिन्तन में व्यक्ति किसी प्रकार की प्रतिमा का प्रयोग नहीं करता, परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है कि चिन्तन में प्रतिमाएँ होती हैं। इन प्रतिमाओं में अधिकांशतः दृष्टि प्रतिमाएँ होती है, परन्तु कभी–कभी घ्राण प्रतिमाएँ या श्रवण प्रतिमाएँ आदि भी होती हैं।

3. प्रत्यय

प्रत्यय चिन्तन का महत्त्वपूर्ण आधार है। प्रत्येक घटना या वस्तु का प्रत्यय व्यक्ति के मन में होता है, जो चिन्तन प्रक्रिया में सहायक होता है। जैसे– यदि किसी छात्र से पूछा जाए कि चार पैर, एक पूँछ, रम्भाना, दूध देने वाला पालतू आदि गुणों के आधार पर उसके मन में कौनसी अवधा या प्रत्यय आता है। इन गुणों के आधार पर छात्र एक सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचता है– **गाय**। यहाँ पर **गाय** प्रत्यय का उदाहरण है। स्पष्ट है कि प्रत्यय के आधार पर ही वस्तुओं का वर्गीकरण

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

किया जाता है तथा प्रत्यय से चिन्तन में कम समय लगता है। इसी से चिन्तन भूत, भविष्य तथा वर्तमान में व्याप्त हो जाता है।

4. भाषा

चिन्तन की प्रक्रिया में व्यक्ति भाषा के माध्यम से स्वयं से बातचीत करता है, इसलिए चिन्तन को आन्तरिक भाषण भी कहा जाता है। विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट हुआ है कि किसी समस्या का समाधान करते समय चिन्तन करने वाले व्यक्ति की वागीन्द्रीय जैसे जीभ तथा स्वर यन्त्र में कुछ पेशीय संकुचन होते हैं। जैसे– व्यक्ति अपने आप से बोल रहा हो। कुछ व्यक्ति चिन्तन के समय जोर–जोर से भी बोलते हैं। अतः भाषा चिन्तन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

5. संकेत एवं चिह्न

चिन्तन में संकेत एवं चिह्न भी सहायक होते हैं। जब संकेत किसी चेतन या क्रियात्मक अनुक्रिया के लिए उद्दीपन के रूप में कार्य करता है, तो इसे चिह्न कहते हैं। अतः चिह्न व्यक्ति को उत्तेजित करके चिन्तन करने के लिए प्रेरित करता है।

6. सूत्र

सूत्र चिन्तन में सहायक होते हैं। एक छोटे सूत्र में व्यापक अर्थ निहित होता है। विज्ञान तथा गणित में चिन्तन को सूत्रों के सहारे ही विकसित किया जाता है।

7.2.7 चिन्तन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ

1. सशक्त प्रेरणा

चिन्तन में प्रेरणा की आवश्यकता होती है। प्रेरणा के अभाव में व्यवस्थित और नियन्त्रित चिन्तन सम्भव नहीं है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि चिन्तन में किसी समस्या को सुलझाया जाता है। इस समस्या को सुलझाने की प्रेरणा जितनी सशक्त या सबल होगी, उस विषय का चिन्तन करने में मस्तिष्क उतना ही अधिक प्रयत्नशील होगा। कहावत है कि जहाँ चाह है, वहाँ राह है। चाह जितनी अधिक होगी, राह ढूँढ़ने का चिन्तन भी उतना ही अधिक होगा और राह निकाले बिना व्यक्ति कभी चैन नहीं पा सकता। प्रेरणा से उत्साह बना रहता है और थकान शीघ्र नहीं आती। प्रेरणा से चिन्तन के लिए आवश्यक शक्ति का संचालन आसानी से नहीं हो पाता है।

2. ध्यान और रुचि

ध्यान और रुचि चिन्तन में सहायक अवस्थाएँ हैं। जिस विषय में आपकी रुचि बिल्कुल नहीं है उस विषय में प्रामाणिक चिन्तन होना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। रुचि के अभाव में उस पर ध्यान नहीं लगाया जा सकता। इसके विपरीत, जिस विषय में आपकी रुचि है उसमें ध्यान स्वाभाविक रूप से लग जाता है और चिन्तन भी स्वाभाविक रूप से होने लगता है। जैसे– यदि आप को गणित की समस्याओं में रुचि है, तो आपको उनके चिन्तन में आनन्द आयेगा, उनमें आपका ध्यान लगेगा और आप आसानी से उनमें प्रगाढ़ चिन्तन कर सकेंगे।

3. सतर्कता और लचीलापन

सतर्कता और लचीलापन भी प्रामाणिक चिन्तन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ हैं। सतर्कता से चिन्तन में गलतियाँ और हेत्वाभास नहीं आने पाते। लचीलेपन से रुढ़िवादिता और अन्धविश्वास से बचाव होता है। सतर्क रहने से व्यक्ति नये–नये उपायों और विधियों पर भी दृष्टि रखता है और आवश्यकता पड़ने पर उनका चिन्तन में समुचित उपयोग करता है। सतर्क व्यक्ति चिन्तन में सहायक संकेतों, प्रयोगों, चिह्नों और सूत्रों के सही अर्थों को तुरन्त समझ जाता है और उनका उपयोग करता है। चिन्तन में समस्या का सुलझाव खोजना होता है। अतः उसमें इस बात के लिए सतर्क रहना पड़ता है कि कोई गलती न हो जाए और कोई बात छूट न जाए। इसमें सतर्कता की आवश्यकता है। चिन्तन की समस्या को सुलझाने में यदि एक विकल्प से काम नहीं निकलता, तो उसे छोड़कर दूसरा विकल्प ग्रहण करना पड़ता है। इसमें लचीलेपन की आवश्यकता है। इस प्रकार चिन्तन में सतर्कता और लचीलापन दोनों ही सहायक हैं।

4. बुद्धि का विस्तृत क्षेत्र

बुद्धि का विस्तृत क्षेत्र भी चिन्तन में सहायक होता है। चिन्तन में अन्तर्दृष्टि, पूर्वदृष्टि और पश्चात्दृष्टि बड़ी सहायक होती हैं। इनके लिए बुद्धि के क्षेत्र के पर्याप्त विकास की आवश्यकता होती है। चिन्तन में समस्या के सुलझाव के लिए उस समस्या के विभिन्न पहलुओं और उनके परस्पर सम्बन्धों पर दृष्टि रखना आवश्यक है। इन सबके लिए बुद्धि के विस्तृत क्षेत्र की आवश्यकता है।

5. समय की सीमा का कठोर न होना

चिन्तन नें समय लगता है। जब किसी समस्या का हल किया जा रहा हो, तो उसमें समय की सीमा कठोर नहीं होनी चाहिए। सीमा कठोर होने पर चिन्तन स्वाभाविक रूप से नहीं हो पाता और अप्रामाणिक हो जाता है। सीमा के अत्यधिक कम होने पर और अत्यधिक कठोर होने पर चिन्तन कभी भी प्रामाणिक नहीं हो सकेगा। यदि चिन्तन का विषय अरुचिकर हो, तो उसकी सीमा निर्धारित की जा सकती है, परन्तु यह सीमा भी कठोर नहीं होनी चाहिए। रोचक समस्या में समय निर्धारित करना व्यर्थ है, क्योंकि उसमें व्यक्ति स्वयं भरसक प्रयास करता है।

6. गर्भीकरण

गर्भीकरण भी चिन्तन में एक अनुकूल परिस्थिति है। यदि चिन्तन में किसी समस्या का कोई हल न निकल रहा हो और बार–बार असफलता मिल रही हो, तो अच्छा यह है कि उसको कुछ देर के लिए स्थगित कर दिया जाए। इससे जब आप और कामों में लगे रहेंगे, तब मस्तिष्क उस समस्या को सेता रहेगा और जैसे सेने से अथवा गर्भीकरण से अण्डे में बच्चा तैयार हो जाता है, उसी प्रकार इस मानसिक गर्भीकरण से समस्या का सुलझाव निकालना आसान होगा। सेने की प्रक्रिया क्या है, इसके विषय में अभी निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नहीं हो सका है, परन्तु यह दैनिक अनुभव की बात है कि जब समस्या को इस प्रकार छोड़ दिया जाता है, तब कभी–कभी अकस्मात् उसका हल अपने आप समझ में आ जाता है अथवा उस पर फिर चिन्तन किया जाता है, तो उसका हल निकालने में आसानी होती है, परन्तु गर्भीकरण का अर्थ समस्या से भागना या उसके सुलझाव के लिए पर्याप्त सामग्री एकत्रित करने से भागना नहीं है, क्योंकि ऐसी दशा में गर्भीकरण व्यर्थ है। अतः गर्भीकरण का लाभ तभी होता है, जबकि समस्या का भली प्रकार चिन्तन करने के बाद उसको छोड़ दिया गया हो।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

7. संवेग

संवेगात्मक दशा में चिन्तन नहीं हो सकता। भय, क्रोध, प्रेम आदि संवेग है। अतः चिन्तन के लिए संवेग–मुक्ति चाहिए।

8. भाषा

भाषा के बिना चिन्तन का विकास नहीं किया जा सकता। अतः व्यक्ति का भाषा विकास जितना जल्दी हो सके, अच्छा है।

9. प्रत्यय

प्रत्ययों के बिना भी चिन्तन सम्भव नहीं है। इसलिए प्रत्ययात्मक विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

10. सामाजिक सम्पर्क

व्यक्ति समाज से बहुत कुछ ग्रहण करता है। भाषा का ज्ञान भी व्यक्ति को सामाजिक सम्पर्क द्वारा होता है। सामाजिक सम्पर्क द्वारा छात्रों की चिन्तन–प्रक्रिया उन्नत होती है, क्योंकि उन्हें चिन्तन की नवीन दिशाएँ प्राप्त होती हैं।

11. प्रत्यक्षानुभव

जिन व्यक्तियों को स्थूल पदार्थों का प्रत्यक्षानुभव होता है, उनकी चिन्तन क्षमता अधिक होती है। एक कन्या अपनी पाठ्य–पुस्तक में मोर से सम्बन्धित पाठ पढ़ती है। अब जब तक वह मोर को देख नहीं लेती, तब तक वह मोर के बारे में चिन्तन कर ही नहीं सकती।

7.2.8 चिन्तन के विषय में स्पीयरमैन के नियम

चिन्तन की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया होती है। यह प्रक्रिया जटिल होने के साथ ही साथ नियमित भी होती है। इस प्रक्रिया की व्याख्या करने के लिए एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्पीयरमैन ने कुछ नियम प्रतिपादित किये थे–

1. सम्बन्धों का पृथक्कीकरण

स्पीयरमैन का चिन्तन का प्रथम नियम **सम्बन्धों का पृथक्कीकरण** है। इस नियम के अनुसार चिन्तन की प्रक्रिया में जब व्यक्ति के सम्मुख अनेक वस्तुएँ उपस्थित होती हैं, तो उनमें कुछ सम्बन्ध स्थापित कर लिए जाते हैं। ये सम्बन्ध निकटता, आकार तथा दूरी आदि पर निर्भर रहते हैं। इन सम्बन्धों को वास्तविक सम्बन्ध माना जाता है। स्पीयरमैन के अनुसार इन वास्तविक सम्बन्धों पर निम्नलिखित बातों का विशेष प्रभाव पड़ता है–

1. **गुण** – प्रत्येक वस्तु के अपने गुण होते हैं। इन गुणों के साथ उस वस्तु का एक विशिष्ट सम्बन्ध होता है। जैसे– नमक एक वस्तु है तथा नमकीन होना इसका गुण है। इस स्थिति में नमक तथा नमकीनपन में एक वास्तविक सम्बन्ध माना जाएगा। इस सम्बन्ध को किसी भी स्थिति में अलग नहीं किया जा सकता है।
2. **कालगत सम्बन्ध** – एक अन्य प्रकार का सम्बन्ध कालगत सम्बन्ध होता है। कुछ वस्तुओं अथवा तथ्यों के बीच कालगत सम्बन्ध भी पाया जाता है। जैसे– 9.30 पर स्कूल प्रारम्भ होता है। इस स्थिति में 9.30 बजने तथा स्कूल के प्रारम्भ होने में एक कालगत सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।
3. **स्थानगत सम्बन्ध** – कालगत सम्बन्ध की ही भाँति स्थानगत सम्बन्ध का भी एक विशिष्ट सम्बन्ध होता है। कुछ वस्तुओं में स्थानगत सम्बन्ध भी पाया जाता है। यह सम्बन्ध भी एक प्रकार से अभिन्न सम्बन्ध होता है। जैसे– मेज और कुर्सी में स्थानगत सम्बन्ध होता है। ये दोनों वस्तुएँ एक साथ पायी जाती है।
4. **कार्य–कारण सम्बन्ध** – कुछ वस्तुओं अथवा तथ्यों के मध्य कार्य–कारण सम्बन्ध भी पाया जाता है। इन वस्तुओं में से यदि एक **कार्य** होती है, तो दूसरी उसका **कारण**। जैसे– बर्फ तथा ठण्डक के बीच परस्पर कार्य–कारण सम्बन्ध है। इसी प्रकार आग एवं गर्मी में भी कार्य–कारण सम्बन्ध है।
5. **वस्तुगत सम्बन्ध** –यह भी एक प्रकार से अभिन्न सम्बन्ध होता है। जैसे– बाजार तथा दुकान, वाटिका तथा फूल का आपसी सम्बन्ध वस्तुगत सम्बन्ध ही कहलाएगा।
6. **निर्माणात्मक सम्बन्ध** – कुछ वस्तुएँ किसी अन्य सामग्री से बनी होती है। इन वस्तुओं तथा सम्बन्धित सामग्री के बीच जो सम्बन्ध होता है, उसे निर्माणात्मक सम्बन्ध कहा जाता है। जैसे– कपड़े तथा वस्त्र, लकड़ी तथा फर्नीचर, काँच तथा गिलास के मध्य निर्माणात्मक सम्बन्ध ही है।
7. **अन्य सम्बन्ध** – विभिन्न वस्तुओं एवं तथ्यों के बीच उपर्युक्त वर्णित सम्बन्धों के अतिरिक्त कुछ अन्य सम्बन्ध भी पाए जाते हैं, जिनका वर्णन स्पीयरमैन ने किया है। ये मानसिक सम्बन्ध होते हैं, इन्हें विचारात्मक सम्बन्ध भी कहा जाता है। इस प्रकार के मुख्य सम्बन्ध हैं– समानता का सम्बन्ध, समीपता का सम्बन्ध, पूर्वपक्ष तथा निष्कर्ष का सम्बन्ध तथा नियोजनात्मक सम्बन्ध।

2. सह सम्बन्धों का पृथक्कीकरण

कभी–कभी तथ्य को सम्बन्धों के संकेत के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस स्थिति में सह–सम्बन्धों का पृथक्कीकरण हो जाता है। जैसे– यदि कहा जाए कि आग गरम होती है तथा बर्फ? तो निस्संदेह रूप से उत्तर मिलेगा ठण्डी। इसी प्रकार यदि कहा जाए, कि चाय गरम होती है तथा शर्बत? तो स्वतः उत्तर मिलेगा ठण्डा। यह उत्तर सह–सम्बन्धों के पृथक्कीकरण का ही परिणाम है।

7.2.9 चिन्तन के सिद्धान्त

चिन्तन के सम्बन्ध में दो सिद्धान्त प्रचलित हैं। इन्हें केन्द्रीय सिद्धान्त तथा पेशीय अथवा स्नायुविक सिद्धान्त के नाम से जानते हैं। इन सिद्धान्तों का वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है–

1. केन्द्रीय सिद्धान्त

चिन्तन का केन्द्रीय सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह माना जाता है कि चिन्तन प्रक्रिया मस्तिष्क पर निर्भर करती है। मस्तिष्क के उच्च केन्द्र जब चिन्तन के आधार पर जटिल समस्याओं का निवारण करते हैं तब यही कहा जा सकता है कि चिन्तन के लिए मस्तिष्क की क्रियाएँ आवश्यक हैं। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत शारीरिक क्रियाओं को कोई प्रधानता नहीं दी गयी है। इस विचारधारा में कहा गया है कि चिन्तन के समय शारीरिक क्रियाओं का पूर्णतः अभाव रहता है। चिन्तन के केन्द्रीय सिद्धान्त को इतना समर्थन नहीं मिला है, जितना स्नायुविक अथवा पेशीय सिद्धान्त को मिला है।

www.praganya.org
www.praganya.org
www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

2. पेशीय अथवा स्नायुविक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार यह स्वीकार किया जाता है कि चिन्तन के समय मस्तिष्क की क्रियाओं के अतिरिक्त शारीरिक क्रियाएँ भी होती हैं। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक इस सिद्धान्त को समर्थन देते हैं। प्रसिद्ध व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक वाटसन ने इस सिद्धान्त के समर्थन में अनेक प्रयोग प्रस्तुत किए हैं। इनके अनुसार चिन्तन के समय स्वरयन्त्र में क्रिया होती है। इसी आधार पर इन्होंने चिन्तन को मौन वाणी कहकर पुकारा है। स्वरयन्त्र की इन क्रियाओं के साथ ही साथ अन्य शारीरिक क्रियाएँ भी होती है। वर्तमान समय में चिन्तन के समय शारीरिक क्रियाओं को अंकित करने के लिए विद्युत विधि का प्रयोग किया गया है। स्नायु–पेशीय क्रियाओं को जानने के लिए जैकबसन के प्रयोग अति सराहनीय है। गैल्वेनोमीटर के मापन का भी इस सिद्धान्त को समर्थन प्राप्त है। मैक्स के प्रयोग भी चिन्तन के समय स्नायुविक पेशीय क्रियाओं को समर्थन देते हैं।

7.2.10 चिन्तन तथा समस्या समाधान

समस्या के समाधान के समय जब व्यक्ति चिन्तन करता है, तो चिन्तन की यह अवस्था तर्कसंगत होती है। समस्या–समाधान में व्यक्ति विभिन्न प्रकार से चिन्तन करता है और उसके हल करने में अनेक प्रकार के साधन जुटाने के प्रयास करता है। जब तक समस्या का हल नहीं निकल जाता है, वह निरन्तर उसी के विषय में सोचता रहता है। समस्या के हल के समय इस चिन्तन के प्रभावित रूप को तर्क कहा जाता है।

समस्यात्मक स्थिति के स्वरूप की व्याख्या करते हुए विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। सामान्य रूप से समस्या की प्रकृति को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जब कभी भी प्राणी अपने को ऐसी उत्तेजक स्थिति में पाता है कि जिसमें उसे विविध प्रकार के उत्तेजक संकेत मिलते हैं और विभिन्न प्रतिक्रियाएँ करने पर भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता है। जॉनसन ने समस्या को परिभाषित करते हुए लिखा है कि समस्या की उत्पत्ति उस समय होती है, जब व्यक्ति किसी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अभिप्रेरित हो, परन्तु उसके प्रारम्भिक प्रयत्न लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हो जाते हो। एन्ड्रियाज ने समस्यात्मक स्थिति का विश्लेषण निम्नलिखित पाँच भागों को लेकर किया है–

1. प्राणी के समक्ष एक या अधिक लक्ष्य होते हैं।
2. प्राणी को विभिन्न प्रकार के उत्तेजक संकेत मिलते हैं।
3. प्राणी विविध प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करता है।
4. समस्यात्मक स्थिति का प्रत्येक संकेत उस परिस्थिति में होने वाली अलग–अलग प्रतिक्रियाओं के साथ पूर्व अनुभव के कारण विभिन्न प्रकार की तीव्रता के साथ सीखा जाता है।
5. प्राणी को त्रुटिपूर्ण तथा सत्य प्रतिक्रियाओं का ज्ञान हो जाता है। समस्या समाधान का स्वरूप पशु तथा मानव दोनों में ही मिलता है। निम्न कोटि के पशु भी अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु समस्या का समाधान करते हैं। जैसे– थॉर्नडाइक द्वारा किया गया बिल्ली पर प्रयोग, कोहलर का वनमानुष तथा बी.एफ. स्किनर का चूहे पर किया गया प्रयोग। ये सभी समस्या समाधान के क्षेत्र में आते हैं। मावरर ने नैमित्तिक अनुबन्धन को समस्या समाधान की संज्ञा दी है, परन्तु पशु–जगत में साधारण समस्या का ही हल हो सकता है। जटिल समस्या का समाधान मानव जगत में ही सम्भव है। मानव की तार्किक शक्ति को ही समस्या के समाधान का साधन कहा गया है।

तार्किक शक्ति में व्यक्तिगत भिन्नताएँ भी देखी जाती हैं। कुछ व्यक्ति दूसरों की अपेक्षा जटिल समस्याओं को जल्दी हल कर लेते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि उनमें जटिल समस्याओं को हल करने की विशेष योग्यता होती है। समस्या का हल भी एक स्तर पर सम्भव नहीं। मानव तथा पशु–जगत दोनों में ही समस्या सम्बन्धी विभिन्न स्तर मिलते हैं। मानव–जगत में समस्या समाधान के निम्न स्तर देखे जाते हैं–

1. समस्या की उपस्थिति।
2. समस्या का समझना।
3. समस्या के सम्बन्ध में सूचना एकत्र करना तथा उन्हें व्यवस्थित करना।
4. पूर्वकल्पना का मूल्य–निर्धारण करना।
5. समाधान को प्रयोग में लाना।

7.2.11 शिक्षक द्वारा बालकों में चिन्तन का विकास

क्रो तथा क्रो का कथन है कि सफल जीवनयापन के लिए स्पष्ट चिन्तन की योग्यता आवश्यक है। अतएव अध्यापक को इस बात का प्रयास करना चाहिए कि बालकों की चिन्तन शक्ति का विकास हो। बालक की चिन्तन शक्ति का विकास करने के लिए निम्नलिखित उपाय काम में लाए जा सकते हैं–

1. अध्यापक को बालकों को इस बात का प्रोत्साहन देना चाहिए कि वे चिन्तन करे तथा अपने विचार खुलकर प्रकट करे।
2. कौतूहल और रुचि इन दोनों का बाल–चिन्तन की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। शिक्षक बालकों की इन प्रवृत्तियों को सदा जाग्रत् रखे।
3. बालकों को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपे जाने चाहिए, ताकि वे चिन्तन के लिए प्रेरित हो।
4. इस बात का प्रयास किया जाए कि बालकों के भाषा ज्ञान में वृद्धि होती रहे, क्योंकि भाषा का चिन्तन की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है।
5. शिक्षा बालकों को समस्या के समझने तथा समस्या के समाधान की दिशा में प्रोत्साहित करे। मरसेल का कथन है कि समस्या की जानकारी तथा उसके समाधान की खोज–यही चिन्तन की प्रक्रिया है और यही सीखने की भी प्रक्रिया है।
6. अध्यापक को शिक्षण के समय तथा परीक्षा में ऐसे प्रश्न बालकों से पूछने चाहिए, जो उन्हें चिन्तन करने के लिए प्रोत्साहित करे।
7. चिन्तन का मुख्य आधार ज्ञान है, अतएव अध्यापक को बालकों का ज्ञान विकसित करना चाहिए।
8. अध्यापक को इस बात का प्रयास करना चाहिए कि बालक तथ्यों को रटे नहीं। रटने की प्रवृत्ति चिन्तन के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है।
9. तर्क, वाद–विवाद तथा समस्या–समाधान इनसे बालक चिन्तन करने के लिए प्रेरित होते हैं, इसलिए विद्यालयों में बालकों को इन बातों का अवसर दिया जाना चाहिए।
10. निरीक्षण, अनुभव और प्रयोग ये सभी बालक की चिन्तन शक्ति को विकसित करते हैं। अतएव अध्यापकों को बालकों के लिए ऐसी वस्तुएँ जुटानी चाहिए तथा उन्हें ऐसे स्थानों में ले जाना चाहिए, जहाँ वे निरीक्षण, अनुभव तथा प्रयोग कर सके।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

11. अध्यापक को अपने विषय का अच्छा ज्ञान होने पर ही छात्रों को वह उस विषय को ठीक प्रकार समझा सकता है। विषय का ज्ञान देते समय छात्रों की चिन्तन शक्ति के विकास पर शिक्षक को ध्यान देना चाहिए।
12. शिक्षक को परिस्थितियाँ उत्पन्न करके छात्रों को चिन्तन के लिए अभिप्रेरित करना चाहिए।

7.2.12 चिन्तन प्रक्रिया

चिन्तन प्रक्रिया का निम्नलिखित चार सोपानों में विश्लेषण करके अच्छे ढंग से समझा जा सकता है–

1. किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होना

व्यक्ति के सम्मुख जब कोई समस्या उत्पन्न होती है, तब वह उस समस्या का समाधान करने के लिए चिन्तन करता है। चिन्तन का लक्ष्य समस्या को दूर करना होता है।

2. लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रयास करना

चिन्तन में व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहता है। उसका प्रयास होता है कि शीघ्रातिशीघ्र समस्या का समाधान हो जाए।

3. पूर्व अनुभवों का स्मरण करना

चिन्तन में व्यक्ति अपने पुराने अनुभवों का पुनः स्मरण करता है, जिससे उनके आधार पर वह वर्तमान समस्या का समाधान करने में समर्थ हो सके।

4. पूर्व अनुभवों को वर्तमान समस्या से संयोजित करना

जब व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर वर्तमान समस्या का समाधान खोजने का प्रयास करता है, तब उसके सम्मुख समस्या के अनेक सम्भावित समाधान उपस्थित होने लगते हैं।

7.2.13 ह्यूजोज के अनुसार चिन्तन की प्रक्रिया

ह्यूजोज के अनुसार चिन्तन की प्रक्रिया के चार सोपान है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

1. समस्या का आकलन

चिन्तन समस्या के उत्पन्न होने से प्रारम्भ होता है। मूर्त तथा अमूर्त समस्याएँ जिज्ञासा के माध्यम से चिन्तन का आरम्भ करती हैं। इस पद में मूर्त से अमूर्त की ओर बढ़ा जाता है।

2. सम्बन्धित तथ्यों का संकलन

समस्या को समझने के बाद उन तथ्यों को एकत्र किया जाता है, जो समस्या का कारण खोजने में सहायक होते हैं। तथ्यों के संकलन में प्रेरणा का भी महत्त्व होता है।

3. निष्कर्ष पर पहुँचना

तथ्यों का संकलन कर उनका विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण से किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है।

4. निष्कर्ष का परीक्षण

चिन्तन से प्राप्त परिणामों का परीक्षण कर उनकी जाँच की जाती है। इससे चिन्तन की वैधता तथा विश्वसनीयता की परीक्षा हो जाती है।

7.2.14 चिन्तन का शैक्षिक महत्त्व

सफल जीवन के लिए चिन्तन अत्यन्त आवश्यक है। चिन्तन वस्तुतः व्यक्ति की वह मानसिक क्रिया है, जो उसे अन्य व्यक्तियों से श्रेष्ठ बनाती है। शैक्षिक अथवा व्यावसायिक क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने में व्यक्ति की चिन्तन शक्ति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। अतः अध्यापकों को बालकों की चिन्तन शक्ति को विकसित करने के यथासम्भव प्रयास करने चाहिए। प्रत्यक्षीकरण, विस्तृत अनुभव, प्रत्यय–निर्माण, भाषा विकास, विचार अभिव्यक्ति आदि को प्रोत्साहित करके अध्यापक बालकों की चिन्तन शक्ति के विकास में सहायता कर सकते हैं। बालकों की जिज्ञासा शक्ति को जाग्रत् करके उनमें ध्यान तथा रुचि का विकास करके, प्रेरणा प्रदान करके, दायित्व सौंपकर, वाद–विवाद के अवसर प्रदान करके तथा उनमें रटन्त स्मरण की आदत को दूर करके भी बालकों की चिन्तन शक्ति का विकास किया जा सकता है।

7.3 छात्र किस प्रकार सीखते हैं?

अनुदेशात्मक प्रक्रिया में विज्ञान शिक्षक विविध समस्याओं का सामना करते हैं और छात्रों के संज्ञानात्मक विकास में कठिनता से सफलता मिलती हैं। यदि शिक्षक यह जान सके कि छात्र किस प्रकार सीखते हैं, तो छात्रों की बौद्धिक विकास प्रविधि सरल बन सकेगी। साथ ही साथ छात्र यह समझ सके कि सूचना को किस प्रकार अर्जित किया जाये, तो अनुदेशन सरल हो सकेगा। छात्रों को स्मृतिकरण के स्थान पर सम्प्रत्यय, सामान्यीकरण, समस्या समाधान कौशल तथा मूल्य निर्धारण रणनीति अर्जित करनी है। इस प्रकार के उच्च स्तरीय अधिगम के लिए छात्रों तथा विज्ञान शिक्षकों को ज्ञान की प्राप्ति की प्रक्रिया समझना आवश्यक है। छात्र ज्ञान का सुरक्षित भण्डारण कर सके, आवश्यकतानुसार उसका प्रत्यास्मरण कर सके। और उपयुक्त प्रयोग कर सके, इसे प्रभावी शिक्षण अधिगम प्रविधि माना जायेगा। यदि छात्र अर्जित ज्ञान एवं कौशल का प्रयोग नवीन परिस्थितियों में कर सके, तो यह एक उत्तम अधिगम होगा। छात्रों को विवेचनात्मक चिन्तन अर्जित करना होगा जिसमें वह ज्ञान, कौशल का उचित प्रयोग कर सके।

मनोवैज्ञानिकों ने समय–समय पर प्रयोग और अनुभव से यह जानने का प्रयास किया है कि छात्र कैसे सीखता है? और उसके लिए कुछ सिद्धान्त विकसित किये हैं, जो निम्नलिखित है–

1. निर्मितवाद/ज्ञान संरचनावाद
2. आनुभविक अधिगम
3. संकल्पना मानचित्र
4. समस्या समाधान
5. खोज

7.4 निर्मितवाद/ज्ञान संरचनावाद

निर्मितवाद की उत्पत्ति संज्ञानात्मक मनोविज्ञान क्षेत्र से हुई है। निर्मितवादी प्रतिमान जीन पियाजे, लेव वाइगोत्स्की, जे. एस. ब्रूनर, हारवर्ड गार्डनर तथा नेलसन गुडसेन के कार्यो पर आधारित है। जॉन डीवी के अनुभव एवं चिन्तन का महत्त्व एवं शिक्षा

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

की आवश्यकताओं से सम्बन्धित विचारों का निर्मितवाद पर प्रभाव हैं। इस सन्दर्भ में अधिगम वह प्रक्रिया है, जो किसी व्यवस्था का इसलिए रूपान्तर करती है कि किसी समष्टि से लिये किये गये कार्यों के परवर्ती निष्पादन को न्यूनाधिक अपरिवर्तनीय रूप से सुधारा जा सके। निर्मितवाद में प्रत्येक छात्र की सक्रियता से पूर्व ज्ञान एवं नवीन ज्ञान की अन्तःक्रिया से ज्ञान की संरचना होती है।

7.4.1 निर्मितवाद का अर्थ

निर्मितवाद एक ऐसा सिद्धान्त है, जो यह मानता है कि ज्ञान का संज्ञानी प्राणियों के बाहर अस्तित्व नहीं हो सकता है, ज्ञान वास्तविकता/यथार्थ की संरचना है। निर्मितवाद की मुख्य मान्यता यह है कि ज्ञान बाहर वस्तुगत वास्तविकता में विद्यमान नहीं है। ज्ञान सीखने वाले छात्र द्वारा मन ही मन संरचित किया जाता है। सीखने वाला छात्र जब किसी नवीन स्थिति के सम्पर्क में आता है, तो उसके पास पूर्व ज्ञान होता है, जो पुराने अनुभवों पर आधारित है, उसके सम्पर्क में आता है। नवीन ज्ञान की संरचना पूर्व ज्ञान के एकीकरण से होती है।

निर्मितवाद पूर्व अधिगम एवं नये अधिगम की अन्तःक्रिया के माध्यम से प्रत्येक छात्र के द्वारा ज्ञान की संरचना के महत्त्व को बल देता है।

निर्मितवाद एक सिद्धान्त है जिसमें छात्र कैसे सीखते हैं, स्पष्ट किया जाता है। निर्मितवाद में छात्र अत्यन्त वैयक्तिक ढंग से ज्ञान का सक्रिय रूप से सृजन एवं पुनर्गठन करते हैं। इसके लिए छात्र इन अस्थायी बौद्धिक संरूपों को सामाजिक–सांस्कृतिक सन्दर्भों में घटित अपने औपचारिक शैक्षणिक अनुभवों, न्यूनाधिक वैयक्तिक सिद्धान्त तथा बोध के माध्यम के रूप में कार्य करने वाले अन्य अनेक प्रभावों पर आधारित करता है। यह समस्त क्रिया स्पष्ट करती है कि जानने वाले की व्याख्यात्मक अन्तःक्रिया तथा आनुभाविक तथ्य द्वारा संसार को जाना जाता है।

निर्मितवाद अनेक अधिगम परिप्रेक्ष्यों का संश्लेषण है। ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा अमेरिका में शोधकर्ताओं ने ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा शोधकर्ताओं के अधिगम सिद्धान्तों तथा विधियों की सहक्रिया को आधुनिक बनाया है। निर्मितवादी सिद्धान्त में जॉन डीवी के सीधे अनुभव एवं चिन्तन, ब्रूनर के विशिष्ट अनुभव द्वारा निर्मित उपयुक्त मानसिक संरचनाओं पर बल देना आदि सम्मिलित है। निर्मितवाद के समर्थन में अनेक शोध प्रमाण हैं। निर्मितवाद ने समस्त भाषा अध्ययन को ब्रिटेन में प्रभावित किया है। इसका प्रभाव गणित शिक्षण, विज्ञान शिक्षण पर भी है।

निर्मितवाद के बोध के लिए मनोविज्ञान, ज्ञान मीमांसा तथा दर्शन आदि का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि निर्मितवादी सिद्धान्त में इनकी मुख्य भूमिका है।

7.4.2 निर्मितवाद के प्रकार

शिक्षाविदों ने लगभग बारह निर्मितवादी सिद्धान्तों के मोड्यूल की व्याख्या की है, जिनका आधार मनोविज्ञान एवं ज्ञान–मीमांसा है। शिक्षा में निर्मितवाद सिद्धान्त के दो मूल प्रारूप है–

1. पियाजे का संज्ञानात्मक निर्मितवाद

जीन पियाजे का कार्य संज्ञानात्मक निर्मितवाद का आधार है, जिसमें किस प्रकार शिक्षार्थी वैयक्तिक रूप से अपने संसार में बौद्धिक संरचनाओं को स्वीकारते हैं? इसमें व्यक्ति अकेला अर्थ निकालता है। शिक्षकों को छात्रों में विशिष्ट कृत्यों द्वारा कठिनाई प्रस्तुत करते हुए संज्ञानात्मक परिवर्तन करना चाहिए।

2. सामाजिक निर्मितवाद

सामाजिक निर्मितवाद में यह स्वीकारा गया है कि ज्ञान के वैयक्तिक एवं सामाजिक दो भाग हैं और इन्हें किसी भी अर्थपूर्ण रूप में अलग से नहीं देखा जा सकता। व्यक्ति दूसरों की उपस्थिति में ज्ञान की संरचना करता है, जो पर्यावरण को भाषा, पूर्व निर्धारित सम्प्रत्यय तथा ज्ञान सृजन करने और उसे परखने की स्वीकृत विधियों से नियन्त्रित करते हैं। अनेक शिक्षाविद् संज्ञानात्मक एवं सामाजिक निर्मितवाद परिप्रेक्ष्य के उपयोगी संश्लेषण पर बल देते हैं तथा यह स्वीकारते हैं कि ज्ञान की संरचना वैयक्तिक रूप से होती है और सामाजिक मध्यस्थता से स्वीकारी जाती है।

इसमें दो प्रविधियाँ हैं–

1. स्थिति ज्ञान
2. सामाजिक सांस्कृतिक ज्ञान।

ये दोनों प्रविधियाँ पर्यावरण के सन्दर्भ में अर्थपूर्ण एकीकृत अधिगम अधिगम के महत्त्व को प्रधानता देती हैं। स्थिति ज्ञान निर्मितवाद में यह पहचानते हैं कि छात्र सामाजिक पर्यावरण में ज्ञान का रूपान्तरण करते हैं तथा इस अन्तः क्रिया से दोनों छात्र एवं पर्यावरण में परिवर्तन होता है। सामाजिक सांस्कृतिक ज्ञान निर्मितवाद अर्थपूर्ण एकीकृत अधिगम को केन्द्रित करता है। यह प्रविधि अर्थपूर्ण कार्यों के विकास पर बल देती है। इनमें अनेक विषयों को सम्मिलित करके प्रयोग में लाते हैं।

7.4.3 निर्मितवाद से उत्पन्न शैक्षिक सिद्धान्त

निर्मितवाद से अनेक शैक्षिक सिद्धान्तों की व्युत्पत्ति हुई है, कुछ शैक्षिक सिद्धान्त निम्नलिखित है–

1. अनुदेशन का मुख्य उद्देश्य सम्प्रत्यय विकास एवं गहन बोध है। अनुदेशन का अर्थ मात्र कौशल एवं व्यवहार विकास नहीं है।
2. अधिगम निर्मितवादी प्रक्रिया है, जिसे छात्रों को पूरा करना हैं। छात्र सक्रिय विद्यार्थी है। शिक्षाविदों का कार्य छात्रों को वह अवसर उपलब्ध कराना है, जिनसे छात्र ज्ञान का निर्माण कर सके।
3. छात्रों में समस्या समाधान सम्बन्धित प्रासंगिक बोध के निर्माण के लिए शिक्षकों को अर्थपूर्ण प्रमाणिक क्रियाएँ उपलब्ध कराना है।
4. विषय–वस्तु और अधिगम प्रविधि दोनों का चिन्तन सर्वोपरि है।
5. सहयोगी समूह द्वारा छात्रों के बोध का परीक्षण किया जाये तथा विशिष्ट समस्या सम्बन्धित बोध को बढ़ाया जाये।
6. शिक्षकों द्वारा छात्रों के लिए नवीन ज्ञान, जो कक्षा में पढ़ाया गया है तथा छात्रों के विगत अनुभवों में सुस्पष्ट सम्बन्ध जोड़ा जाये। शिक्षक पाठ अथवा इकाई के मुख्य सम्प्रत्ययों तथा विवेचनात्मक बिन्दुओं का सम्बन्ध सारांश द्वारा, अभ्यास द्वारा बनाये रखे।
7. पूर्व ज्ञान जो छात्र अधिगम स्थिति में उपयोग में लाते हैं, सदैव सम्प्रत्ययात्मक बोध को प्रभावित करता हैं, इस पूर्व ज्ञान को पूर्वाग्रह, सरल सिद्धान्त, वैकल्पिक ढाँचा तथा विचार भ्रान्ति कहते हैं।
8. शिक्षकों को पूर्वाग्रह द्वारा छात्रों के चिन्तन को चुनौती देनी चाहिए।
9. निर्मितवाद पूर्वज्ञान के अनुभव के परीक्षण पर बल देता है।
10. निर्मितवाद का मूल सिद्धान्त है कि व्यक्ति सक्रिय होकर अपने ज्ञान की, संरचना की, नवीन ज्ञान की अपने पूर्व ज्ञान से तुलना करे,

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

जिससे नवीन बोध कर सके।

11. अनेक शिक्षाविद् निर्मितवाद को विकल्प के रूप में लेते हैं, जैसे– निर्मितवाद की ज्ञान मीमांसा विषयनिष्ठवाद का विकल्प है। निर्मितवाद छात्र–केन्द्रित है, जो शिक्षक–केन्द्रित कक्षा का विकल्प है तथा शैक्षणिक सन्दर्भ में इसका महत्त्व बल अधिगम की खोज विधियों पर है, जो अनुदेशात्मक अधिगम का विकल्प है।

7.4.4 एक निर्मितवाद प्रारूप

निर्मितवाद में गहन बोध का प्रयास किया जाता है। शिक्षाविदों का मत है कि समस्त व्यक्तियों में उनका स्वयं का बोध होता है तथा जब तक वे स्वयं के लिए संरचना नहीं करते, उन्हें विश्वास नहीं होता। एलेन तथा बेकन (1994) के अनुसार निर्मितवादी सिद्धान्त पर आधारित अधिगम शिक्षण मॉडल बनाया जा सकता है। छात्रों को अन्वेषण के लिए सुविधाएँ उपलब्ध करायें, ताकि वे सामग्री को स्वयं प्रयोग में ला सके। उनसे प्रश्न पूछे और छात्रों को उपयोगी एवं उत्पादक प्रश्न पूछने के लिए प्ररित करे। छात्रों को उनकी व्याख्या में संरचना हेतु उनके विचारों में समानता एवं अन्तर पर चिन्तन करने दे तथा उनके विचारों में सम्बन्धों की संरचना करने दे। छात्रों के पर्यावरण, टेक्नोलॉजी के प्रयोग के विचारों को व्यापकता दे, जिसमें विज्ञान प्रविधियाँ, कौशल के प्रयोग पर बल हो। इससे छात्रों के चिन्तन को प्रोत्साहन मिलेगा। उनके विचारों तथा चिन्तन कौशलों के सन्दर्भ में उन्हे मूल्यांकन करने दे।

7.4.5 शिक्षण क्रियाएँ

छात्रों को अन्वेषण हेतु प्रोत्साहन दे, समूह सहयोग, प्रश्न पूछने पर बल दे। छात्रों से अन्तःक्रिया, उनके विचार जाने, उन्हें सम्प्रत्यय संरचना में सहयोग दे। भौतिक, मानसिक प्रक्रियाओं द्वारा छात्रों को विचारों का विस्तार करने दे। विज्ञान प्रविधि कौशलों के प्रयोग पर बल दे। छात्रों के विज्ञान प्रविधि कौशलों के स्वामित्व एवं विचारों के परिवर्तन का मूल्यांकन करे। इसमें तत्काल होने वाले प्रयोगों पर बल दे।

7.4.6 निर्मितवाद एक सांस्कृतिक प्रणाली के रूप में

निर्मितवादी शिक्षण में विज्ञान शिक्षक निर्मितवादी सिद्धान्त के प्रयोग के लिए छात्रों को सहयोग दे सकते हैं। सामान्यतः विज्ञान शिक्षक ज्ञान संरचना सरलीकरण करने वाला व्यक्ति है और निम्नलिखित भूमिका से वह छात्रों को बोध संरचना में सहायता दे सकता है, जिसमें कक्षा में होने वाली परिस्थितियों को समझना होगा, जिनसे ज्ञान का सृजन होता है और पुनः संरचना होती है–

1. सर्वप्रथम छात्रों को यह स्वीकारना होगा कि वे ज्ञान का सृजन कर सकते हैं और यह समझना होगा कि ज्ञान उनके बाहर विद्यमान नहीं है। शिक्षक को यह स्वीकारना है कि जब छात्र संसार को समझ रहे हैं, तो वे नवीन ज्ञान का सृजन कर रहे हैं। यदि छात्रों को बौद्धिक अवसर मिलेंगे, तो वे विषयवस्तु को समझेंगे और स्वयं बोध अर्जित करेंगे। इस प्रक्रिया में शिक्षक एक मार्गदर्शक, प्रेरणा देने वाला, अवसर उपलब्ध कराने वाला, छात्रों के साथ बोध विकसित करने वाला सहायक है। छात्र शिक्षक के साथ अन्तःक्रिया द्वारा सम्प्रत्यय, शब्दावली तथा खेल रणनीतियों को प्राप्त करता है।
2. यह महत्त्वपूर्ण है कि छात्र किस प्रकार विषयवस्तु को काम में लाते हैं। छात्र समस्या समाधान प्रविधि द्वारा चयनित सम्प्रत्ययों को जानने का प्रयास करते हुए उनको समझ पाते हैं। यह एक बौद्धिक क्रिया है, जिसमें विषयवस्तु एकीकृत है।
3. छात्रों के लिए विषयवस्तु एवं उसे जानने की प्रविधि दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। अधिक समय तक कार्यरत रहने से बोध होता है। विज्ञान में सशक्त सम्प्रत्यय चयन छात्रों को बोध में सहायक होगा। निर्मितवादी अधिगम दीर्घकालीन सक्रियता पर बल देता है, जिसमें समस्या समाधान विधि का प्रयोग किया गया है। इस विधि में छात्र प्रमाण एकत्रित करे तथा उनकी व्याख्या करे। शिक्षक की भूमिका छात्रों को सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। छात्रों में पूर्व ज्ञान को आधार मानकर नवीन ज्ञान को अर्जित करना महत्त्वपूर्ण है, जिसमें खोज आधारित प्रश्न, क्रियाएँ सम्मिलित हैं अर्थात् शिक्षक उच्च कौशल प्राप्त अधिगम सरलीकरण करने वाला है। निर्मितवादी संस्कृति में शिक्षक और छात्र पारस्परिक बातचीत से सीखते हैं तथा छात्रों का मूल्यांकन उनके निष्पादन पर आधारित है, इसलिए निर्मितवादी कक्षा को एक संस्कृति स्वीकारा गया है।

7.5 आनुभविक अधिगम

अधिगम अनुभव के माध्यम से घटित होता है। बालक का संसार, विशेष रूप से प्राथमिक शाला में, संवेदी–गत्यात्मक संसार होता है। वह उन वस्तुओं में रुचि लेता है, जिन्हें वह देख सकता है, सुन सकता है, स्पर्श कर सकता है, जिनका स्वाद ले सकता है, नियोजित कर सकता है, बना सकता है, कर सकता है और जाँच कर सकता है अर्थात् प्रयोग कर सकता है। जो अनुभव बालक के तुरन्त कल्याण से सम्बन्धित नहीं होते अथवा समय और दूरी के आधार पर दूरस्थ होते हैं, उन अनुभवों में बालक की रुचि नहीं रहती। माध्यमिक स्कूल स्तर की अवस्था में ये रुचियाँ परिवर्तित हो सकती हैं, किन्तु अनुभव की आवश्यकता प्रमुख महत्त्व की ही बनी रहती है। बालक के आरम्भिक वर्षों में अनुभव की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। आनुभविक अधिगम को **अनुभव द्वारा सीखना** या **अनुभव से सीखना** के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

7.5.1 आनुभविक अधिगम की प्रकृति

आनुभविक अधिगम की प्रकृति का निर्धारण निम्नलिखित कारकों से होता है–

1. करके सीखना

इसके अन्तर्गत कार्य करने और प्रत्यक्ष अनुभव को महत्त्व दिया जाता है। प्रयोगशाला कार्य, खेलकूद प्रशिक्षण, वृक्षारोपण आदि इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

2. दैनिक अनुभव के द्वारा व्यक्तिगत अधिगम

अधिगम के अन्तर्गत व्यक्ति का अपने अनुभवों की विशेषताओं, प्रारूपों और परिणामों से अवगत होना आता है।

3. आनुभविक सामाजिक समूह प्रक्रियाएँ

अनुभव द्वारा सीखने का विस्तार, सामाजिक कौशलों के सीखने तक किया गया है।

www.pragyan.org
www.pragyan.org
www.pragyan.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

4. कक्षा में आनुभविक अधिगम

समूह प्रक्रिया गतिविधियों से, जिसमें कई नवीन अन्तर्वैयक्तिक कार्यकलाप सम्मिलित होते हैं; कक्षा अधिगम संवृद्ध होता है। भूमिका अभिनय, खेल व अनुरूपण तथा मूल्य अभ्यास आदि से अधिगमकर्ता को ठोस अनुभव प्राप्त होते हैं, जिसके प्रक्रमण के पश्चात् संज्ञानात्मक परिवर्तन तो होता ही है, साथ ही अभिवृत्ति एवं व्यवहार में भी परिवर्तन होता है।

अन्य कार्यकलापों में श्रव्य-दृश्य साधनों का इस्तेमाल, कला, नाटक, संगीत, नृत्य और खेल सम्मिलित हैं।

7.5.2 कॉब के अनुसार आनुभविक अधिगम की अवस्थाएँ

कॉब ने अनुसार आनुभविक अधिगम की चार अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं-

1. ठोस व्यक्तिगत अनुभव।
2. उस अनुभव का प्रेक्षण और मनन।
3. अमूर्त अवधारणाएँ और सामान्यीकरण।
4. सक्रिय प्रयोगीकरण अर्थात् नवीन स्थितियों में सामान्यीकरण का परीक्षण।

इस चार अवस्थीय चक्र को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता हैं- जब सर्दी में बच्चे को ठण्ड लगती है, तब माँ उसे स्वेटर पहनने के लिए देती है। उसे स्वेटर से गर्मी मिलती है। उसकी ठण्ड कम होती है। यह ठोस अनुभव की **पहली अवस्था** है। स्वेटर, शॉल आदि गर्म कपड़ों से बच्चा इस तथ्य का प्रेक्षण करता है। यह **दूसरी अवस्था**। उसके प्रेक्षण से उसे सामान्यीकरण में सहायता मिलती है कि गर्म कपड़े ठण्ड कम करते हैं यह **तीसरी अवस्था** है। **अन्तिम अवस्था** वह है, जब बच्चा गर्म कपड़ों के साथ प्रयोग करता है और अपने कुत्ते के चारों ओर गर्म कपड़ा लपेटता है।

एक शिक्षक के रूप में हमें अनुभव इस प्रकार आयोजित करने चाहिए, जिससे बालक को अनुभव की चारों अवस्थाओं से निकलने के अवसर मिले। इनमें से कोई एक अवस्था सही रूप से अधिगम का निर्माण नहीं करती।

7.5.3 अधिगम को सुगम बनाने वाले अनुभव

1. उद्भासन

देखना, प्रेक्षण करना, सूँघना, स्वाद चखना, स्पर्श करना, ध्यान से देखना, प्रतिक्रिया करना, पहचानना।

2. सहभागिता

प्रेक्षण, विवेचना करना, अन्वेषण करना, आकलन करना, संकल्पना करना, निदेशित करना, अध्ययन करना, अनुमानित करना, संचालित करना, क्रमबद्ध करना, संग्रह करना, प्रतिरूपित करना, परिभाषित करना, सुनना।

3. अभिज्ञान

साहचर्य स्थापित वर्गीकरण करना, वर्गीकृत करना, व्याख्या करना, प्रयोग करना, मानचित्रण, अनुमानित करना, अनुप्रयुक्ति, पहचान, अन्वेषण करना, लिखना, चित्र बनाना, परिकल्पना निर्माण, चार्ट बनाना, पढ़ना, सूचना के लिए प्रेक्षण।

4. आन्तरीकरण (व्याख्या)

विश्लेषण करना, तुलना करना या संक्षेपण, खोजबीन करना (निगमन निष्कर्षण), विभेदन करना, सामान्यीकरण, गहन छानबीन, स्थानान्तरण।

5. विस्तारण

सम्प्रेषण, प्रदर्शित करना, प्रस्तुतीकरण, अभिप्रेरित करना।

7.5.4 आनुभविक अधिगम के लिए शैक्षणिक कार्यनीतियाँ

आनुभविक अधिगम के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बालकों को वांछित अवसर प्रदान करने के लिए शिक्षक को शिक्षण-कार्यनीति नियोजित करनी चाहिए। लेक्चर/व्याख्यान विधियों की जगह अधिक अन्तर्क्रियात्मक या कार्यकलापों पर आधारित विधियाँ प्रयोग करनी चाहिए। एक-तरफा सम्प्रेषण के स्थान पर दोतरफा अथवा बहुतरफा सम्प्रेषण का प्रयोग करना चाहिए। शिक्षण साधनों/सामग्री को कम करके अधिगम साधनों/सामग्री को प्रयुक्त करना चाहिए।

वे कार्यनीतियाँ अपनानी चाहिए जिनसे विद्यार्थी का संसार में आमना-सामना हो सके। इसके बाद चर्चा, स्पष्टीकरण एवं विवेचना के लिए पर्याप्त समय देना चाहिए। भूमिका अभिनय खेल, अनुरूपण, अभ्यास जैसी कार्यनीतियाँ, अनुभव प्राप्त करने, महसूस करने और महत्त्व समझने के अवसर प्रदान करती हैं। प्रयोगशाला कार्य, क्षेत्र-भ्रमण, चर्चाएँ, नाटकीकरण, सेमिनार तथा परियोजनाएँ, वे विधियाँ हैं जिनसे विद्यार्थी अधिगम प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदार होता है और अपने अधिगम को अधिक चुनौतीपूर्ण, आनन्दमय और साहसपूर्ण बनाता है।

आनुभविक अधिगम को प्रभावी बनाने हेतु शिक्षक द्वारा शिक्षण में खोज प्रशिक्षण मॉडल एवं अवधारणा उपलब्धि मॉडल का प्रयोग करना चाहिए। स्वयं अनुभव करके छात्र बेहतर तरीके से सीख पाते हैं। विभिन्न क्रियाकलाप, जो विद्यार्थियों को अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाते हैं, उन्हें संवर्द्धित अनुभव भी प्रदान करते हैं। अतः शिक्षण में ऐसे कार्यकलापों का आयोजन अवश्य किया जाना चाहिए। इससे छात्र रुचिपूर्वक शिक्षण प्रक्रिया में सक्रिय रहते हुए अधिगम कर सकेंगे।

7.6 संकल्पना मानचित्र

संकल्पना मानचित्र द्वारा कक्षा में छात्रों को अर्थपूर्ण अधिगम उपलब्ध कराना सम्भव है। संकल्पना मानचित्र को शिक्षा का अत्यन्त आशाजनक नवाचार स्वीकारा गया है। संकल्पना मानचित्र छात्रों को सूचना संगठित करने के लिए प्रत्यक्ष दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

संकल्पना मानचित्र एक संक्रिय अधिगम साधन है और विभिन्न रूप से इसका प्रयोग शिक्षण में सम्भव है, जैसे-नियोजन, शिक्षण, संशोधन तथा मूल्यांकन। आज संकल्पना मानचित्र को शिक्षण में एक महत्त्वपूर्ण अति संज्ञानात्मक उपकरण स्वीकारा गया है। इस अध्याय में संकल्पना मानचित्र का अर्थ, विकसित करने की विधि तथा कक्षा में इसके प्रयोग पर परिचर्चा की गई है।

बोध एक योग्यता है जिसमें किसी सम्प्रत्यय, विचार अथवा समस्या की प्रकृति, महत्त्व एवं व्याख्या की समझ और उसका स्पष्ट सम्पूर्ण वैचारिक ज्ञान की उपलब्धता होना आवश्यक हैं। संक्षिप्त में बोध समझ की योग्यता है।

बोध, पूर्व अर्जित ज्ञान को नवीन अनुभवों एवं परिस्थितियों में प्रयोग में लाने की उपलब्धि है। बोध, छात्रों में वैयक्तिव एवं पर्यावरणीय अनुकूलता को सक्षम बनाता है। संकल्पना मानचित्र द्वारा बोध अर्जित करना एक शैक्षिक नवाचार है। जिसके द्वारा अर्थपूर्ण अधिगम अर्जित करते है। अर्थपूर्ण अधिगम में

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

छात्र अनुदेशन के कारण पूर्व ज्ञान का नवीन ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करते है। इस प्रक्रिया में छात्र नवीन अर्थ प्राप्त करते हैं। यह उस विचार का बोध है। इस प्रक्रिया से ज्ञान में सतत् वृद्धि होती हैं, जिसमें पूर्व ज्ञान से नवीन ज्ञान संयोजन बनता है। फलस्वरूप इस प्रक्रिया में रटने पर कम बल होता है और बोध सरल होता है। शिक्षा का अर्थ छात्रों को सीखने में नवीन अर्थ ढूँढ़ना है, जिसे हम अर्थपूर्ण अधिगम कहते हैं। संकल्पना मानचित्र द्वारा सीखने में तीन प्रकार के ज्ञान का प्रयोग होता है– तथ्य, सम्प्रत्यय एवं सामान्यीकरण।

संकल्पना मानचित्र द्वारा शिक्षण में सुधार सम्भव है और छात्रों में विद्यमान विचार भ्रान्तियों को दूर किया जा सकता है। इस क्षेत्र में शोधकर्ता निर्मितवाद में संकल्पना मानचित्र की उत्पत्ति देखते हैं, जिससे यह विदित होता है कि छात्र स्वयं की व्यक्तिगत विशिष्टता से सम्प्रत्ययों का बोध करते हैं।

संकल्पना मानचित्र विकसित करने को बोध के लिए एक महत्त्वपूर्ण निर्देशात्मक रणनीति स्वीकारा गया है। शिक्षण में बोध की विविध रणनीतियों को प्रयोग में लाया जा सकता है। जैसे–सीखने के लिए लेखन, संकल्पना मानचित्र बनाना, बोध के लिए वाचन, चित्रों की व्याख्या करना, समूह कार्य द्वारा व्याख्या तथा चित्रों एवं मॉडल द्वारा सम्प्रत्यय स्पष्ट करना।

व्यक्ति की योग्यता तथा चिन्तन, प्रविधियों की जानकारी तथा उसकों मॉनिटर करना ही अति–संज्ञान है। एक अति संज्ञानी व्यक्ति अपने चिन्तन एवं अधिगम पर विचार करके उनमें आवश्यक परिवर्तन कर लेता है। इस प्रकार वह अनवरत सफलता प्राप्त करता है। अतः अति–संज्ञान सफल व्यक्तियों से जुड़ा हुआ है। स्व–नियमन इसका महत्त्वपूर्ण कौशल है।

स्वयं के चिन्तन अथवा अधिगम की जानकारी की योग्यता को अतिसंज्ञान कहते हैं, जो स्व–निर्भरता एवं सृजनात्मकता के नवीन पक्ष दिखाते हैं। इसमें उत्तम चिन्तनशील व्यक्ति अपने चिन्तन में सुधार ला सकते हैं, क्योंकि वह विधि स्वयं पर लागू होती है। यह चिन्तन को दूसरे स्तर पर ले जाती है। स्व–नियमन एक ऐसा कौशल है, जो सब पर (स्वयं पर भी) लागू होता है। आप अपने द्वारा प्रस्तुत व्याख्या को मॉनिटर कर सकते हैं और उसमें वांछित सुधार कर सकते हैं। स्व–नियमन एक संज्ञानात्मक कौशल है, जिसको प्रमुखता से भावनात्मक मनःस्थिति का भाग स्वीकारा गया है। इसमें सजगता से स्वयं की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को मॉनिटर कर सकते हैं। इसमें सहकौशल, जैसे–स्व–परीक्षण एवं स्व–सुधार सम्मिलित है।

शिक्षक को छात्रों में स्व–अधिगम को नियन्त्रित करने का उत्तरदायित्व विकसित करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अति संज्ञान कौशल तथा रणनीति की जानकारी छात्रों को देनी चाहिए, जिससे छात्र स्वयं की संज्ञानात्मक क्रियाओं को मॉनिटर कर सके। इस प्रकार के कौशल पाठ्यचर्या के किसी भी प्रकरण में विकसित किये जा सकते हैं। इस प्रकार के कुछ कौशल निम्नलिखित हैं–

1. स्व–प्रश्न करना
2. संकल्पना मानचित्र विकसित करना
3. स्व–मूल्यांकन

7.6.1 संकल्पना मानचित्र का अर्थ

संकल्पना मानचित्र एक आलेखी चित्र प्रणाली है, जिससे सम्प्रत्ययों के सह–सम्बन्ध का बोध होता है। सन् 1960 के दशक में जोसेफ डी. नोवक ने कार्नेल विश्वविद्यालय में संकल्पना मानचित्र तकनीकी का अध्ययन प्रारम्भ किया था। उनका कार्य डेविड आसुबेल के अधिगम सिद्धान्तों पर आधारित हैं, जिसमें नवीन सम्प्रत्यय सीखने के लिए पूर्वज्ञान के महत्त्व पर बल दिया गया है। नोवक के अनुसार अर्थपूर्ण अधिगम में नवीन सम्प्रत्ययों का आत्मीकरण तथा संयोजन उपस्थित संज्ञानात्मक रचनाओं में सम्मिलित है। नोवक (1977, 1984) ने संकल्पना मानचित्र विकसित करने की विधि को स्पष्ट किया है, जिसमें छात्र प्रायोगिक कार्य करते हुए विभिन्न सम्प्रत्ययों में सह–सम्बन्ध स्थापित कर सके। संकल्पना मानचित्र एक प्रकार का दो आयामी आलेखी रेखाचित्र है, जो विभिन्न सम्प्रत्ययों में सह–सम्बन्ध जोड़ता है।

संकल्पना मानचित्र लेखाचित्र द्वारा ज्ञान को प्रस्तुत करने की तकनीक है। ज्ञान रेखाचित्र सम्प्रत्ययों की शृंखलाओं में ग्रन्थियाँ तथा कड़ियाँ एकल अथवा दो दिशात्मक हो सकती है। सम्प्रत्ययों एवं कड़ियों को श्रेणीबद्ध किया जा सकता है, जैस–सहचर, विशिष्ट अथवा अनियमित अथवा अस्थायी आदि। संकल्पना मानचित्र पूर्ण विकसित होने पर एक लेखाचित्र दृश्य है, जो किसी प्रकरण अथवा विषय पर सृजन करने वाले का चिन्तन प्रस्तुत करता है।

किसी व्यक्ति द्वारा ज्ञान किस प्रकार संगठित किया जाता हैं, ऐसी स्थिति को संकल्पना मानचित्र द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। मार्टिन (1994) के अनुसार, संकल्पना मानचित्र संज्ञानात्मक संरचना के द्वि–आयामी चित्रण हैं, जो किसी विषय अथवा प्रकरण के सम्प्रत्ययों की श्रेणीबद्धता तथा अन्तः सम्बन्ध दिखाते हैं। यह प्रदर्शित करते हैं कि व्यक्ति किस प्रकार ज्ञान को संगठित करता है।

संकल्पना मानचित्र को परिभाषित करते हुए सम्प्रत्यय अमूर्त धारणाएँ हैं। दूसरी ओर संकल्पना मानचित्र यह घोषित करने वाले आलेखी निर्देशन हैं कि कोई एकल सम्प्रत्यय उसी श्रेणी के अन्य सम्प्रत्ययों के साथ किस प्रकार सम्बन्धित हैं ?

संकल्पना मानचित्र, जिन्हें आर्थी सयुज और मानस मानचित्र के रूप में भी माना जाता हैं, शिक्षार्थी के सम्प्रत्ययों के बीच संयोजनों और सम्बन्धों के बोध को आरेखीय रूप में निरूपित करने का एक तरीका है।

संकल्पना मानचित्र किसी विषय अथवा ज्ञान के क्षेत्र के लेखाचित्रीय मानचित्र हैं, जिनसे विभिन्न सम्प्रत्ययों का सह–सम्बन्ध दर्शाया जाता है।

संकल्पना मानचित्र मुख्य विचारों का दृश्य उदाहरण हैं। एक संकल्पना मानचित्र विविध अधीनस्थ सम्प्रत्ययो का अनुक्रमिक सम्बन्धी अधीनस्थ (प्रमुख,) सम्प्रत्ययों से दिखाते हैं। संकल्पना मानचित्र वैयक्तिक छात्र द्वारा रचित ज्ञान की विलक्षण संरचनाएँ हैं।

संकल्पना मानचित्र विचारों/सम्प्रत्ययों का सह–सम्बन्ध दिखाते हैं, जिससे समस्त सम्प्रत्ययों को एक साथ समग्रता में देखने में सरलता रहती है।

संकल्पना मानचित्र विभिन्न विचारों में दृश्य चित्र स्थापित करके उनके संयोजन को समझने में सहायता की तकनीक है। संकल्पना मानचित्र आपको –

1. विचारों में संयोजन देखने के लिए
2. विचारों को ज्ञान से जोड़ने के लिए
3. विचारों को तार्किक ढंग से संगठित करने के लिए एक विधि है।

मानचित्र एक गुच्छे की तरह दिखाई देते हैं और विचारों के सह–सम्बन्ध को दिखाते हैं। नोवक (1993) के अनुसार–

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

एक संकल्पना मानचित्र वह द्वि-आयामी सूचना प्रतिनिधि है, जो दो अथवा दो से अधिक सम्प्रत्ययों में सह-सम्बन्ध दिखाते हैं।

जब छात्र एक अधीनस्थ (प्रमुख) सम्प्रत्यय के आसपास ज्ञान से संकल्पना मानचित्र बनाते हैं, तो वे नवीन अन्तर्दृष्टि प्राप्त करते हैं। यह विचार नोवक एवं गोविन (1984) द्वारा समर्थन प्राप्त है। उनका मत है कि छात्र एवं शिक्षक एक नवीन सह-सम्बन्ध को पहचानते हैं, जो उन्होंने पहले नहीं देखा था।

संकल्पना मानचित्र प्रत्येक आयु के छात्र को सिखाया जा सकता है और इसके द्वारा छात्रों की योग्यताओं जैसे विचारों का नियमन एवं प्रस्तुतीकरण में वृद्धि होती (स्टिक, 1987) है। संकल्पना मानचित्र विज्ञान, भाषा शिक्षण में प्रयोग में लिये गये हैं।

संकल्पना मानचित्र बनाना एक प्रविधि है, जिसमें आपके अधिगम और बोध के लिए ज्ञान की वृद्धि का संगठन किया जाता है। संकल्पना मानचित्र किसी विषय में एक चित्र रेखा है, जिसमें विचारों का संगठन करना और सह-सम्बन्ध दिखाना है।

7.6.2 संकल्पना मानचित्र क्यों विकसित किये जाए?

संकल्पना मानचित्र एक प्रकार का ज्ञान चित्रण करना है। जॉनसन तथा ग्रेबोस्की (1993) का कहना है कि संरचनात्मक ज्ञान को एक भिन्न प्रकार के ज्ञान के रूप में देखा जा सकता है।

संरचनात्मक ज्ञान को अधिकतर एक प्रकार के सम्प्रत्यय मानचित्र में चित्रित किया जाता है, जो दृश्य रूप से (स्पष्टतया) उस ज्ञान पक्ष के विचारों के सह-सम्बन्ध का वर्णन करते हैं। इस प्रकार ज्ञान को स्पष्ट रूप से सम्प्रत्यय मानचित्र उस ज्ञान पक्ष का ऊपरी दृश्य दिखाता है, क्योंकि ग्रन्थि मात्र संकेत शब्द दिखाते हैं और अधिक व्याख्या आवश्यक होती है।

संकल्पना मानचित्र अनेक उद्देश्यों के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं-

1. नवीन विचार विकसित करने के लिए।
2. जटिल संरचनाओं की रूपरेखा बनाने के लिए।
3. जटिल विचारों के सम्प्रेषण के लिए।
4. नवीन एवं पूर्व ज्ञान को एकीकृत करके स्पष्टता से सीखने के लिए।
5. बोध में सहायता के लिए।
6. विचार भ्रान्ति के निदान के लिए।

7.6.3 संकल्पना मानचित्र विकसित करने के सोपान

रे शेनेडर के अनुसार हम सब किसी न किसी विचार का मानचित्र अपने मस्तिष्क में उत्पन्न करते हैं। जब हमारे मन में संवेदना हो, तो हम विश्वासमत बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। यह विकसित किया हुआ मत हमारा अपना होता है तथा भाषा द्वारा उसे दूसरों के साथ बाँटते हैं। इस प्रक्रिया को संकल्पना मानचित्र कहा गया है। यह मात्र विकसित मत को निरूपित करता है, जिससे हम इसे अधिक अच्छा समझ सके और प्रयोग में ला सके।

एक संकल्पना मानचित्र सम्पूर्ण विषय के लिए, एक इकाई के लिए अथवा एक प्रकरण के लिए विकसित किया जा सकता है। संकल्पना मानचित्र विकसित करने के लिए कोलहन और क्लार्क (1990) ने अनेक सोपान स्पष्ट किये हैं-

1. जिस विषय अथवा प्रकरण पर संकल्पना मानचित्र विकसित करना है, उसका व्यापक अध्ययन कीजिए। उसमें से 10-15 सम्प्रत्ययों का चयन कीजिए तथा उनमें से केन्द्रीय विचार (सम्प्रत्यय) को पहचानिये। यह केन्द्रीय विचार अन्य सम्प्रत्ययों से अर्थपूर्ण ढंग से सम्बन्धित है अर्थात् सर्वप्रथम समस्त सम्प्रत्ययों के नाम लिखिये।
   उदाहरण- प्रकाश संश्लेषण, रासायनिक ऊर्जा, सौर ऊर्जा, हरे पौधे का हरित लवक, प्रकाशिक पद, जल, हाइड्रोजन, कार्बन डाइ ऑक्साइड, अप्रकाशिक पद।
2. इन सम्प्रत्ययों के अलावा यदि कोई विशिष्ट तथ्य (उदाहरण), जो छात्रों के सीखने के लिए अनिवार्य है उसे भी लिखिए।
3. चयनित सम्प्रत्ययों की तालिका में से अधीनस्थ (प्रमुख) सम्प्रत्यय को पहचाने और सबसे ऊपर लिखे। उदाहरण- प्रकाश संश्लेषण।
4. अधीनस्थ सम्प्रत्यय के नीचे प्रथम स्तर के अधीनस्थ सम्प्रत्ययों को व्यवस्थित करे। इस स्तर पर संयोजन अथवा जोड़ने वाले शब्द, जैसे- देता है, प्रकार, इनमें से है, कर सकता है आदि का प्रयोग करे, जिनसे प्रमुख सम्प्रत्यय एवं अधीस्स्थ सम्प्रत्ययों में उपयुक्त सम्बन्ध स्थापित हो सके।
5. एक बार समान सम्प्रत्ययों की पहचान होने के बाद अधीनस्थ सम्प्रत्ययों को व्यवस्थित करना प्रारम्भ कर दीजिए, जो इससे ऊपर के स्तर के सम्प्रत्ययों से सीधे जुड़े हुए हैं। इस प्रकार एक पदानुक्रम बनाइए।
6. सम्प्रत्ययों के चारों ओर परिधि खींचिये तथा समान, अधीनस्थ सम्प्रत्ययों में सह-सम्बन्ध दिखाने के लिए अनुप्रस्थ रेखाएँ खींचें। इनको जोड़ने वाले शब्दों को रेखाओं के ऊपर लिख जिससे इनका सम्बन्ध स्थापित हो सके। यह सम्बन्ध एक सिद्धान्त बनाते हैं।
7. समस्त मानचित्र के चारों ओर कम से कम घेरे बनाये तथा मुख्य अध्ययन बिन्दुओं का सन्तुलन बनाये रखे।

7.6.4 संकल्पना मानचित्र में उभरने वाले कुछ संज्ञानात्मक स्वरूप

1. शाखाएँ

एक विचार पास और दूर के सम्बन्धित विचारों को मिलाने के लिए अनेक शाखाओं में विभाजित हो सकता है।

2. तीर के निशान

विभिन्न शाखाओं से विचार जोड़ने के लिए आप तीर के निशान का प्रयोग करेंगे।

3. समूहीकरण

यदि कई शाखाएँ सम्बन्धित विचार हैं, तो आप समस्त क्षेत्र पर चारों ओर गोला बनाना चाहेंगे।

7.6.5 अधिगम शिक्षण में संकल्पना मानचित्र का महत्त्व एवं लाभ

1. संकल्पना मानचित्र द्वारा अर्थपूर्ण अधिगम सम्भव है।
2. विज्ञान में संकल्पना मानचित्र नियोजन और शिक्षण के साधन हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

3. संकल्पना मानचित्र प्रत्यास्मरण में सहायक है।
4. संकल्पना मानचित्र द्वारा छात्र मूल्यांकन सम्भव है।
5. संकल्पना मानचित्र द्वारा विचार भ्रान्तियों का निदान होता है।
6. विज्ञान अनुदेशन सुधार में संकल्पना मानचित्र उपयोगी है, अधिगम शिक्षण में इनके द्वारा उत्तमता आती है।
7. संकल्पना मानचित्र द्वारा विशिष्ट सम्प्रत्ययों में पारस्परिक सम्बन्धों के तर्क अथवा कारण जानने का अवसर मिलता है।
8. संकल्पना मानचित्र कक्षा में अनुदेशन को दिशा देते हैं और उस समय यह मार्ग मानचित्र का कार्य करते हैं।
9. संकल्पना मानचित्र छात्रों के ध्यान को केन्द्रित करने तथा विषय का व्यापक रूप देखने के लिए अग्रिम व्यवस्थापक के रूप में मार्गदर्शन करते हैं।
10. जब विषय के चयनित अन्तर सम्बन्धित सम्प्रत्ययों पर आधारित पाठ योजना होती हैं, तो संकल्पना मानचित्र ऐसे पाठ विकास में सहायक होते हैं।
11. संकल्पना मानचित्र से सीखने पर कम से कम विचार भ्रान्तियाँ होती हैं। यह सत्य है कि छात्रों में विचार भ्रान्ति आम पाई जाती है और एक बार बनने के पश्चात् लम्बे समय तक बनी रहती है। जब छात्र ज्ञान संरचना करते हैं, उस समय विचार भ्रान्तियाँ बनती हैं, जिनका मुख्य कारण अपूर्ण ज्ञान तथा त्रुटिपूर्ण व्याख्या अथवा गलत अनुभव करना है।
12. संकल्पना मानचित्र द्वारा ज्ञान का लम्बे समय तक ठहराव तथा मूल्यांकन सम्भव है। संकल्पना मानचित्र विकसित करना छात्र की ज्ञान स्थिति को दर्शाता है तथा रेखाओं का बनाना उसके ठहराव और परिवर्तन को बतलाता है। यह बोध का परिचायक है।
13. जब छात्र अधीनस्थ सम्प्रत्यय के आसपास के ज्ञान से एक संकल्पना मानचित्र की संरचना करते हैं, तो वे एक नवीन अन्तदृष्टि प्राप्त करते हैं। इस अवधारणा को नोवक एवं गोविन (1984) द्वारा समर्थन दिया गया है- छात्र एवं शिक्षक यह स्वीकारते हैं कि संकल्पना मानचित्र प्रक्रिया में वे सम्प्रत्ययों में उन सम्बन्धों को देखते हैं, जो पहले कभी नहीं देखे।
14. संकल्पना मानचित्र बनाने से अधिगम सरल बनता है एवं बोध विकसित करता है। संकल्पना मानचित्र में पाठ्य-सामग्री मस्तिष्क पटल पर अंकित हो जाती है, जो प्रभावी बोध का परिचायक है।

7.6.6 संकल्पना मानचित्र के उदाहरण

यह माना गया है कि मनुष्य के मस्तिष्क में तीन भिन्न, किन्तु सम्बन्धित सूचना प्रविधि स्तर हैं—संवेदी, अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन। संवेदी स्मृति देखने, सुनने एवं अन्य ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होती हैं, जो अल्पकालीन स्मृति भण्डार में स्थानान्तरित कर दी जाती है। संवेदी स्मृति सूचना लगभग एक सेकण्ड के लिए याद रहती है तथा अल्पकालीन स्मृति सूचना लगभग 30 सेकण्ड तक तथा दीर्घकालीन समृति कुछ मिनट के लिए अथवा जीवन-पर्यन्त प्रत्यास्मरण के लिए है। मुख्य चुनौती है, नवीन ज्ञान को किस प्रकार दीर्घकालीन स्मृति में लिया जाये जो और नवीन ज्ञान अधिगम का सरलीकरण कर सके। यह सम्भव है यदि नवीन ज्ञान को चैतन्य से, पूर्व ज्ञान से अथवा विद्यमान सम्प्रत्ययों को संयोजनों से जोड़ सकें। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि सम्प्रत्यय तथा संयोजन क्या हैं ? सम्प्रत्यय घटनाओं अथवा वस्तुओं में एक सुव्यवस्थित क्रिया है, जो किसी संकेत अथवा प्रतीक से उल्लेखित होता है। संयोजन अथवा योजक शब्द दो अथवा अधिक सम्प्रत्ययों में एक विशिष्ट सह-सम्बन्ध है, जैसे- घास हरी है आदि। यदि सम्प्रत्ययों में अर्थपूर्ण संयोजन द्वारा सम्बन्ध स्थापित हो सके, तो सम्प्रत्यय अर्थ में वृद्धि करते हैं, जैसे- डी.एन.ए. में आनुवंशिक सूचना है।

छात्रों कों सम्प्रत्यय अधिगम के लिए संकल्पना मानचित्र विधि द्वारा सम्भावनाएँ बढ़ी हैं। संकल्पना मानचित्र सिखाने हेतु-

1. सरल सम्प्रत्यय का चयन करे, जैसे-पर्यावरण।
2. प्रमुख सम्प्रत्यय के आसपास सामान्य सम्प्रत्यय लिखे, जैसे- सामाजिक पर्यावरण अथवा बाधा वाला पर्यावरण।
3. इनको रेखाओं से जोड़े और योजक शब्दों से नामांकित करे, जैसे- यह इसका एक भाग है अथवा अन्योन्याश्रित है।
4. इस प्रकार छात्र विभिन्न सम्प्रत्ययों का अर्थपूर्ण सम्बन्ध देख सकेंगे।
5. संकल्पना मानचित्र यह प्रदर्शित करने में समर्थ है कि किस प्रकार अधिकतर सन्निवेशन, वरिष्ठ अधिगम प्रगतिशील विभेदीकरण तथा समाकलनात्मक समाधान कार्य करते हैं।

7.7 समस्या समाधान

बालक में इच्छाओं का जन्म होता है। ये इच्छाएँ निष्प्रयोजन नहीं होती हैं। प्रत्येक इच्छा का कोई न कोई लक्ष्य अवश्य होता है। हम अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए उस लक्ष्य या उद्देश्य तक पहुँचना चाहते हैं, किन्तु अनेक बाधाओं के कारण समस्या का जन्म होता है। समस्या परिभाषित करते हुए माथुर ने लिखा है कि समस्या उस परिस्थिति को कहते हैं, जिसके लिए मनुष्य के पास पहले से तैयार कोई प्रक्रिया नहीं होती। जब हम कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करके लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं, तो इसी को समस्या समाधान कहते हैं।

आइजेनक के मतानुसार समस्या समाधाान वह प्रक्रिया है, जिसमें प्राथमिक परिस्थितियों (संज्ञानात्मक) से प्रारम्भ कर वांछित लक्ष्य तक पहुँचना अपेक्षित है। उद्दीपन स्थिति में जब प्राणी अनुक्रियाएँ करने पर भी लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता, ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि प्राणी सामान्य स्थिति में नहीं है।

श्री माथुर ने लिखा है कि कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने का ढंग या समस्याओं का, जो आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पहुँचाती है, हल ही समस्या का समाधान कहलाता है। समस्या समाधान के बारे में स्किनर ने लिखा है कि समस्या समाधान किसी लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा पहुँचाती है, हल ही समस्या का समाधान कहलाता है। समस्या समाधान के बारे में स्किनर ने लिखा है कि समस्या समाधान किसी लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा डालती प्रतीत होती कठिनाइयों पर विजय पाने की प्रक्रिया है। यह बाधाओं के बावजूद समंजन करने की प्रक्रिया है।

स्टानले ग्रे के अनुसार समस्या समाधान वह प्रतिरूप है, जिसके भीतर सृजनात्मक चिन्तन और तर्क होता है। अमूर्त इच्छाओं से उत्पन्न तनाव व्यक्ति को अधिकतम प्रयत्न करने को प्रेरित करता है। ब्लेअर, जोन्स तथा सिम्पसन

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

के अनुसार समस्या समाधान का अभिप्राय है कि हम वे विधियाँ सीखे, जिनके द्वारा हम विविध प्रकार की समस्याओं को हल कर सके।

अतः सार रूप में हम कह सकते हैं कि समस्या समाधान का मतलब ऐसी विधियों का ज्ञान प्राप्त करना है, जिनके प्रयोग से हम आगामी जीवन में आने वाली समस्याओं को हल कर सके।

समस्यात्मक स्थिति में जो अनुक्रियाएँ होती है, उसमें कुछ विशेषताएँ पायी जाती हैं। अतः विशेषताओं का वर्णन जॉन्सन ने इस प्रकार किया है–

1. प्राणी का व्यवहार लक्ष्य की ओर होता है तथा उस व्यवहार में निरन्तरता देखने को मिलती है।
2. लक्ष्य प्राप्ति के बाद व्यवहार में निरन्तरता समाप्त हो जाती है।
3. समस्या समाधान में प्राणी विभिन्न प्रकार की अनुक्रियाएँ करता है।
4. समस्या समाधान में वैयक्तिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं।
5. समस्या समाधान के समय प्राणी प्रथम बार अधिक समय लेता है तथा पुनरावृत्ति के समय कम समय लेता है तथा यह समय घटता चला जाता है।
6. चिन्तन का एक विशिष्ट रूप समस्या समाधान व्यवहार है।

अधिगम और समस्या समाधान व्यवहार में भेद करते हुए डंकन ने बताया कि अधिगम अभ्यास एवं प्रबलन के कारण अनुक्रिया की दक्षता में वृद्धि है, जबकि समस्या समाधान किसी जटिल स्थिति में सही अनुक्रिया का आविष्कार है। इस प्रकार समस्या समाधान सृजनात्मक अधिगम व्यवहार है, क्योंकि सृजनात्मकता प्रत्येक अधिगम व्यवहार में नहीं मिलती है।

7.7.1 समस्या समाधान के स्तर

समस्या समाधान के दो स्तर कहे जा सकते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. सरल स्तर

सरल स्तर की समस्याओं का समाधान, उस समय, बिना किसी प्रकार की कठिनाई के हो जाता है, जैसे गर्मी लगने पर बिजली का पंखा खोल देना और उसकी हवा में बैठना।

2. जटिल स्तर

जटिल स्तर की समस्याओं का हल तात्कालिक रूप से नहीं होता। इसके हल के लिए कई बाधाओं को पार करना पड़ता है। जैसे– मरुस्थल में सिंचाई की समस्या ऐसी ही है। मरुस्थल में जल कहाँ से लाया जाये? नदी कितनी दूर है? क्या वहाँ से नहर लाई जा सकती है? उस पर कितना व्यय होगा? इत्यादि कई बाधाओं को पार करके ही इस जटिल स्तर की समस्या का हल किया जा सकता है।

7.7.2 समस्या समाधान की विधियाँ

समस्या समाधान की अनेक विधियाँ है, जिनका वर्गीकरण करते समय स्किनर ने बताया है कि कुछ विधियों का प्रयोग पशुओं के द्वारा मुख्यतः होता है और कुछ उच्च मानसिक योग्यता वाली विधियाँ हैं, जिनका प्रयोग चिन्तन एवं तर्क–शक्ति से सुसज्जित मानव के द्वारा होता है। यहाँ दोनों ही विधियों का विवरण प्रस्तुत है–

1. बिना सीखे एवं आदत के अनुसार समस्या समाधान

इस विधि का प्रयोग निम्न कोटि के पशु एवं कीट–पतंगों के द्वारा किया जाता है। ये अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वातावरण से न करके स्वयं की जन्मजात प्रवृत्तियों के आधार पर करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ये अपनी इच्छाओं को यान्त्रिक तरीके से पूरा करते हैं। पशु किसी भी परिस्थिति में अपनी इच्छा पूर्ति के लिए बिना सीखे निश्चित ढंग से अनुक्रिया करते हैं, जैसे– मधुमक्खी को भोजन की आवश्यकता फूलों की सुगन्ध के प्रति उनकी भावात्मक प्रतिक्रिया द्वारा पूरी होती है। इसी प्रकार खतरे से बचने की आवश्यकता शत्रु को डंक मारकर पूरी होती है, जिससे अक्सर स्वयं मधुमक्खी की भी मृत्यु हो जाती है, किन्तु कठिनाइयों के प्रति इस प्रकार की सहज क्रियाएँ तब तक सफल नहीं होती हैं, जब तक कठिनाइयाँ साधारण होती हैं। कठिनाइयों के जटिल होने पर ये सहज प्रतिक्रियाएँ विफल हो जाती हैं। बिना सीखे व्यवहार से समस्या का हल निकालना जाति को जीवित रखने की दृष्टि से उपयोगी है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्तिगत रूप से भी यह विधि उपयोगी हो।

2. प्रयास एवं त्रुटि विधि से समस्या समाधान

समस्या–समाधान में प्रयास एवं त्रुटि विधि का अध्ययन करने के लिए थॉर्नडाइक का बिल्ली पर किया गया प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। उसने एक भूखी बिल्ली को एक पिन्जरे में बन्द कर दिया और उसके पास भोजन से भरी प्लेट रख दी। बिल्ली पिन्जरे के दरवाजे से होकर ही बाहर आ सकती थी, जो कि एक रस्सी के खींचने पर ही खुल सकता था। इस प्रयोग में भूख प्रयोजन था, पिन्जरे के बाहर रखी प्लेट उसका लक्ष्य था और समस्या का हल रस्सी खींचकर दरवाजा खोलना था। बिल्ली ने भोजन प्राप्त करने के उद्देश्य से पिन्जरे के बाहर निकलने के सभी प्रयास किये। अकस्मात् उसके पन्जे से रस्सी खिंच गई और दरवाजा खुल गया। समस्या के हल होने पर उसने भोजन प्राप्त करके अपनी इच्छा पूरी की। दूसरी बार बिल्ली को पुनः पिन्जरे में यह जानने के उद्देश्य से बन्द किया कि उसने दरवाजा खोलना सीख लिया या नहीं। दूसरी बार उसने पहली वाली क्रियाओं की पुनरावृत्ति की, लेकिन एक प्रयास करने पर दरवाजा खोल लिया। अन्त में बिल्ली ने पिन्जरे में जाते ही रस्सी खींचकर दरवाजा खोल लिया और बाहर आ गई। इस प्रयोग से स्पष्ट हुआ कि जानवर **प्रयास एवं त्रुटि विधि** से समस्या का समाधान ढूँढ़ते हैं।

3. अन्तदृष्टि द्वारा समस्या समाधान

प्राणियों के द्वारा समस्या–समाधन के लिए अन्तदृष्टि विधि का भी प्रयोग किया जाता है। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कोहलर ने अफ्रीका के पश्चिमी तट के निकट एक द्वीप पर चिम्पैन्जियों पर प्रयोग किया। इस प्रयोग में एक पिन्जरे की छत से केले लटकाये, जो चिम्पैन्जी की पहुँच से परे थे तथा उस पिन्जरे में दो बक्से भी रखे गये। केले प्राप्त करने के लिए चिम्पैन्जी ने उन बक्सों को एक के ऊपर एक रखकर और उन पर चढ़कर केले प्राप्त कर लिये। दूसरे प्रयोग में पिन्जरे के बाहर केले रखे गये और पिन्जरे में चिम्पैन्जी तथा दो छड़ों को रखा गया। चिम्पैन्जी केलों तक पहुँचने का प्रयास करता रहा, किन्तु केले प्राप्त नहीं कर सका। बाद में छड़ों से खेलता रहा। अकस्मात् उसने दोनों छड़ों को जोड़ लिया। इसके बाद उसने उस छड़ से केले खींचकर प्राप्त किये। कोहलर ने कहा कि पशु सूझ या अन्तदृष्टि के कारण केले प्राप्त कर सका। इन प्रयोगों से स्पष्ट

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

होता है कि पशु **प्रयास एवं त्रुटि अथवा सूझ** से समस्या का समाधान करता है। इन विधियों का उपयोग प्राणी की बुद्धि तथा लक्ष्य और साधनहीन सम्बन्धों पर निर्भर करता है।

4. वाक्यात्मक भाषा विधि

इस विधि का प्रयोग मानव के द्वारा किया जाता है, क्योंकि मानव में ही भाषा का उपयोग करने की क्षमता विद्यमान होती है। मानव में ही यह शक्ति होती है कि वह अपने अतीत के अनुभवों का पुनर्गठन कर सकता है। इन अतीत के अनुभवों के आधार पर उन परिणामों का पूर्व कथन कर सकता है, जो अभी घटित नहीं हुए हैं। वाक्यात्मक भाषा समस्या समाधान की दृष्टि से सम्पूर्ण सभ्यता का आधार है। भाषा मानव के पास ऐसा शक्तिशाली साधन है, जिसके माध्यम से वह अपने अनुभवों को अगली पीढ़ी तक हस्तान्तरित कर सकता है। जब भाषा को मन ही मन में बोलकर प्रयोग किया जाता है, तो इस अवस्था को चिन्तन कहते हैं। स्किनर ने लिखा है कि चिन्तन का अर्थ है कि वाक्यात्मक भाषा का उपयोग, चाहे वह स्पष्ट रूप से बोली जाती हो, चाहे अस्पष्ट रूप से, चाहे बोली हुई, चाहे लिखित और चाहे संकेतात्मक।

5. समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि

आज मानव ने इतनी बौद्धिक प्रगति कर ली है कि वह समस्या समाधान में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करता है। वैज्ञानिक विधि का प्रयोग मानव द्वारा वैज्ञानिक समस्याओं के साथ-साथ व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिये भी किया जाता है। स्किनर ने मनोवैज्ञानिक विधि के बारे में लिखा है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसे बुद्धिमान व्यक्ति कठिन और जटिल समस्याओं का समाधान करते हुए उपयोग में लाते हैं।

ड्यूवी ने अपनी पुस्तक How We Think में सन् 1911 में समस्या-समाधान के विभिन्न पदों का वर्णन किया है। इसी को समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि कहते हैं। ड्यूवी ने अग्रलिखित सोपानों का उल्लेख किया है-

1. **समस्या को समझना** - प्रथम सोपान समस्या को समझने से सम्बन्धित है। समस्या को समझने के लिए आवश्यक है कि बालक अपनी इच्छाओं के प्रति सचेत हो। उसको इस बात का ज्ञान हो कि इच्छा पूर्ति में क्या कठिनाइयाँ हैं या हो सकती है और उनका समाधान क्या होगा? अध्यापक को इस स्तर पर समस्या को समझने में बालकों की सहायता करनी चाहिए।
2. **जानकारी या दत्त सामग्री का संग्रह** - समस्या समाधान का द्वितीय सोपान उस समस्या से सम्बन्धित सूचनाओं या दत्त सामग्री का संग्रह करने से सम्बन्धित है। अनाड़ी व्यक्ति समस्या के समाधान में तुरन्त जुट जाता है, किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति समस्या समाधान में संलग्न होने से पूर्व यह पता लगाने का प्रयास करेगा कि इसी प्रकार की समस्याओं में दूसरों ने क्या किया। हो सकता है कि समस्या से सम्बन्धित प्रदत्त किसी ने पहले संग्रह किये हो। यदि पहले किसी ने जो त्रुटि की है, वे ज्ञात हो जाये, तो उनसे बचा जा सकता है, किन्तु समस्या समाधान के लिए प्रदत्तों का संग्रह करना सरल कार्य नहीं है। अध्यापक को दत्त संग्रह में बालकों को सूचनाओं के स्रोतों का आलेख रखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिये, संक्षिप्त विवरण लिखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए तथा पूरे कागज की अपेक्षा कार्ड्स पर विवरण लिखने के लिए कहना चाहिए।
3. **सम्भावित समाधानों या प्राक्कल्पनाओं का निर्माण** - समस्या से सम्बन्धित प्रदत्तों का अध्ययन करने के बाद उसके समाधान के लिए सम्भावित उपाय मस्तिष्क में पैदा होते हैं। इनको ही प्राक्कल्पनाओं में निरूपित किया जा सकता है। एक विशिष्ट परिस्थिति के सम्भावित परिणाम के बारे में कोई सिद्धान्त या अनुमान लगाना ही प्राक्कल्पना कहलाती है। प्राक्कल्पनाओं की शुद्धता छात्रों के बौद्धिक स्तर पर निर्भर करती है। यह आवश्यक नहीं है कि एक बार निर्धारित प्राक्कल्पना सही हो। प्राक्कल्पनाओं की शुद्धता छात्रों के बौद्धिक स्तर पर निर्भर करती है। यह आवश्यक नहीं है कि एक बार निर्धारित प्राक्कल्पना सही हो। प्राक्कल्पनाओं में अध्ययन के बाद परिवर्तन भी किया जा सकता है। अध्यापक द्वारा छात्रों को स्वयं अनुमान लगाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, क्योंकि समस्या समाधान का आधार अनुभव होते हैं।
4. **प्राक्कल्पनाओं का मूल्यांकन**- समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि का चौथा सोपान प्राकक्ल्पना का मूल्यांकन करने से सम्बन्धित है। इसमें व्यक्ति पूर्व निर्धारित परिणामों की जाँच करता है। यदि वह पूर्व कथन में कुछ त्रुटि की आशा करता है, तो ऐसी स्थिति में वह पुनः तथ्यों एवं सूचनाओं का पुनर्गठन करके नवीन प्राक्कल्पनाओं का निर्माण कर सकता है। प्राक्कल्पनाओं का मूल्यांकन बहुत कुछ व्यक्ति की बुद्धि और कुछ संग्रह की गई सूचनाओं पर निर्भर करता है।
5. **निष्कर्षों का निरूपण** - समस्या समाधान में पाँचवाँ सोपान निष्कर्षों का निरूपण है। प्राक्कल्पना का मूल्यांकन एवं परीक्षण करने के बाद व्यक्ति समस्या-समाधान की विधियों से सम्बन्धित निष्कर्ष निकालता है। इस निष्कर्ष के रूप में वह यह अनुमान लगाता है कि अनेक सम्भावित विधियों में से कौन-सी विधि समस्या समाधान के लिए उपयुक्त होगी।
6. **समाधान का प्रयोग**- समस्या समाधान के जिस हल को निष्कर्ष के रूप में निकाला है, उसको प्रयोग में लाने पर ही सत्यता की सही जाँच हो सकती है। प्रयोगात्मक प्रकार की समस्या में तो समाधान को कार्य रूप में परिणित कर दिया जाता है, किन्तु मानसिक समस्या के निष्कर्ष को इतनी सरलतापूर्वक कार्य रूप में परिणित नहीं किया जा सकता है।
7. **सामान्यीकरण करना**- बर्नार्ड के अनुसार समस्या समाधान का अन्तिम सोपान प्राक्कल्पना का परीक्षण है, किन्तु और उच्च तर्क एवं चिन्तन के लिए एक और नया सोपान सामान्यीकरण करने से सम्बन्धित जोड़ा जा सकता है। सामान्यीकरण शोध को व्यापक व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न है। सामान्यीकरण करने में ये प्रश्न सहायक हो सकते हैं- अन्य किस परिस्थिति के लिए प्रस्तुत हल उपयुक्त प्रतीत होता है? प्रदत्तों का संग्रह करने एवं मूल्यांकन करने की विधि अन्य समस्या में कैसे प्रयोग में आ सकती है? जाँच के परिणामों को कैसे संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जा सकता है?

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

वैज्ञानिक विधि की आलोचना

1. यह विधि प्रयोग में अधिक लम्बी होती है।
2. इसके लिए अधिक प्रशिक्षण आवश्यक होता है।
3. इसमें समय भी अधिक लगता है।
4. इस विधि से भी भविष्यवाणियाँ अक्सर गलत होती हैं और गलतियाँ हो जाती हैं।

7.7.3 समस्या समाधान में प्रशिक्षण

हमारे देश की शिक्षा प्रणाली के अनेक दोषों में से एक दोष यह भी है कि यहाँ छात्रों को समस्या समाधान में कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है। जनसाधारण की यह मान्यता है कि विद्यालय की अवस्था में बालक इतना परिपक्व और अनुभवी नहीं होता कि वह समस्या–समाधान कर सके। इसके विपरीत मनोवैज्ञानिकों का मत है कि शैशवावस्था से ही बालक समस्या–समाधान में संलग्न होता है। हमारे यहाँ के अध्यापक भी शिक्षण में इस विधि का प्रयोग करने से कतराते हैं, क्योंकि इसमें अधिक परिश्रम और चिन्तन की आवश्यकता होती है। कुछ भी हो, समस्या–समाधान विधि का मूल्य अध्यापन की दृष्टि से और बालक के जीवन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस विधि से शिक्षण रोचक बनता है। बालक का भावी जीवन अनेक समस्याओं से युक्त होता है। प्रशिक्षण में अभाव के कारण अनेक व्यक्ति समस्याएँ उत्पन्न होने पर घबरा जाते हैं। अतएव बालक को समस्या समाधान का प्रशिक्षण अवश्य देना चाहिए तथा इसके लिए अध्यापकों को निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए–

1. समस्या के स्तरों को पहचानने का अधिगम

किसी समस्या की उपस्थिति को पहचानना कठिन है। उस समस्या का मूल्यांकन करना, उसके महत्त्व और जटिलता को पहचानना और भी कठिन है। बहुधा अध्यापक ऐसी समस्याएँ उपस्थित करते हैं, जो बालकों की समझ से उच्च स्तर की होती हैं अथवा प्रयोजनहीन होती हैं। परिणाम यह होता है कि बालक उस समस्या के समाधान की आवश्कता ही अनुभव नहीं करता है। बालक उन समस्यायाओं में अधिक रूचि लेते हैं, जिनका तात्कालिक मूल्य ऊँचा होता है। अध्यापकों को समस्या को पहचानने में छात्रों की सहायता करनी चाहिए। स्किनर का कथन है कि सफल समस्या समाधान के लिए समस्या के महत्त्व और उसके समाधान के परिणाम को जानने की योग्यता का होना आवश्यक है। यह योग्यता दो तत्त्वों पर निर्भर है– एक बुद्धि तथा दूसरे समाधान की क्षमता में प्रशिक्षण। अध्यापक को चाहिए कि वह प्रत्येक छात्र को दैनिक जीवन की समस्याओं में कठिनाई के स्तर को जानने की शिक्षा दे। इसके साथ ही पाठ्यक्रम में समस्या–समाधान शामिल होना चाहिए।

2. तथ्यों के संग्रह वर्गीकरण एवं विश्लेषण का अधिगम

समस्या समाधान में तथ्यों, सूचनाओं, अनुभवों का विशेष महत्त्व है। छात्रों को तथ्यों के संग्रह का प्रशिक्षण देना चाहिए। सूचनाएँ एकत्रित करना रुचिकर कार्य नहीं है। इसमें समय और परिश्रम दोनों ही लगते हैं। अध्यापकों को चाहिए कि वे छात्रों को इस कार्य हेतु ऐसी विधियों का ज्ञान कराए, जिससे कि यह कार्य रुचिकर हो जाए। बालकों को इन सूचनाओं को उपयोग में लाने की विधि भी सिखानी चाहिए। तथ्यों के वर्गीकरण करने के ढंग और विश्लेषण करने की तकनीक की भी शिक्षा देनी चाहिए।

3. चिन्तन और तर्क का प्रशिक्षण

समस्या–समाधान में इन दोनों शक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। सूचनाएँ एकत्रित करने के बाद उनका हल ढूँढ़ने में क्या योगदान हो सकता है, यह तर्क का विषय है। स्किनर ने सृजनात्मक चिन्तन की उपयोगिता को बताते हुए इसको सिखाने पर बल दिया है।

4. समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि का ज्ञान

किसी भी प्रकार की समस्या का समाधान करने की वैज्ञानिक विधि का ज्ञान शिक्षक को होना चाहिए। अध्यापक द्वारा इस विधि का ज्ञान एवं अभ्यास बालकों को भी करवाना चाहिए।

5. समस्या समाधान के प्रत्येक चरण पर बालकों को प्रेरित करना

छात्र जब समस्या समाधान में व्यस्त हो, तो प्रत्येक सोपान को ठीक प्रकार से सम्पादित करने पर अध्यापक द्वारा पुरस्कार देकर उनको उत्साहित करना चाहिए।

7.7.4 प्रायोगिक सामग्री

समस्या समाधान व्यवहार का अध्ययन करते समय पशु तथा मानव दोनों के लिए अलग–अलग प्रकार की प्रायोगिक सामग्री का प्रयोग किया जाता है, जिनका वर्णन निम्न प्रकार है–

1. पशुओं के लिए प्रायोगिक सामग्री

पशुओं के लिए जिन प्रायोगिक समस्याओं को प्रयोग में लाया जाता है, उनका वर्णन निम्न प्रकार है–

1. **बहुविकल्प समस्याएँ** – ऐसी समस्याओं का उपयोग बहुधा चूहों द्वारा समस्या समाधान में लिया जाता है। टी और वाई प्रकार की भूल–भुलैया का उपयोग इसी प्रकार की स्थिति में होता है। इस प्रकार की समस्यात्मक स्थिति में चूहा दाहिनी अथवा बायीं ओर मुड़कर भोजन को प्राप्त कर लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है।
2. **पहेली पेटी समस्याएँ** – ऐसी समस्याओं में एक ऐसे बक्से का प्रयोग किया जाता है, जिसमें से प्रयोज्यों का दरवाजा खोलकर बाहर जाना पड़ता है, क्योंकि बाहर प्रयोज्य को लक्ष्य भोजन होता है। बॉक्स की दीवारें काँच की बनाई जाती हैं, जिससे लक्ष्य दिखाई देता रहता है। बक्से के दरवाजे की खुलने की प्रक्रिया या चटखनी के दबाने से या प्रयोगकर्ता द्वारा निश्चित किसी अनुक्रिया विशेष के करने से होती है। इस प्रकार की समस्याओं से यह जानकारी मिलती है कि प्रयोज्य किसी प्रकार तथा कितने समय में बाहर निकलकर लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। थॉर्नडाइक तथा हॉर्टन के पहेली बक्से इस प्रकार की समस्या समाधान के अन्तर्गत आते हैं।
3. **अप्रत्यक्ष पथ समस्याएँ** – इस प्रकार की समस्या पहेलियों का प्रयोग वनमानुष, बन्दर, कुत्ते तथा बच्चों पर किए गए हैं। ऐसी समस्याओं में लक्ष्य तक पहुँचाने का मार्ग छिपा रहता है और प्रयोज्य को छिपे लक्ष्य तक पहुँचने पर पुरस्कृत किया जाता है।
4. **दुहरी क्रमान्तरण समस्याएँ** – चूहों पर प्रयोग करने के बाद हण्टर ने इस प्रकार की दुहरी क्रमान्तरण समस्याओं को जन्म दिया। इस प्रकार की समस्याओं में लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रयोज्य को एक

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

क्रम विशेष में दिए गए स्तूपों का चक्कर लगाना पड़ता है।

5. **पहेली–रहित समस्याएँ** – हॉब हाउस के प्रायोगिक अध्ययनों से इस प्रकार की समस्या को जन्म मिला। इसमें रस्सी विभेदन, दो या अधिक छड़िया तथा नली और छड़ी जैसी पहेली रहित समस्याओं को निर्मित करके प्रयोज्य से वांछित कार्य कराया जाता है।

2. मानव के लिए प्रायोगिक सामग्री

समस्या समाधान व्यवहार के क्षेत्र के अन्तर्गत पशुओं पर जिन समस्या पहेली का प्रयोग किया गया है, मानव पर उनसे भिन्न रूप से सामग्री को प्रयोग में लाया गया है। इनका वर्णन प्रस्तुत है–

1. **एना ग्राम्स** – एना ग्राम्स पहेली में शब्दों को तितर–बितर करके सही शब्द बनवाया जाता हैं जैसे– PALPE एक एना ग्राम्स है, जिसके अक्षरों को यदि तितर–बितर करे, तो APPLE शब्द बन जाता है। प्रयोज्य को ऐसे एना ग्राम्स की सूची मिलती है, जिसे वह सार्थक शब्दों में तितर–बितर करके पूरी करता है। प्रयोज्य के द्वारा लिया गया समय तथा अपनाई गई प्रक्रिया समस्या समाधान व्यवहार की परिचायक है।
2. **वाचिक पहेलियाँ** – दैनिक–जीवन में ऐसी वाचिक पहेलियों का उपयोग करते हुए प्रायः घरों में देखा जाता है। इनका उपयोग मनोरंजन की दृष्टि से होता है। इस प्रकार की समस्याओं में दिए गए प्रश्न का हल निकालना होता है। शेकली तथा जोन्स ने इस प्रकार ही पहेलियों का प्रयोग किया है।
3. **ज्यामितीय अथवा चित्रित उद्दीपक सामग्री** – इस प्रकार की समस्याएँ प्रयोज्य ज्यामितीय आकृतियों तथा चित्रों की सहायता से परिभाषित करता है। इस प्रकार का प्रायोगिक अध्ययन हॉवलैण्ड ने किया है।
4. **निर्माण समस्याएँ** – इस प्रकार की समस्याओं में प्रत्यक्षपरक संगठन तथा दक्षता का अध्ययन किया जाता है। इसमें प्रयोज्य कुछ वस्तुओं की सहायता से निर्माण करना सीखता है। इसी निर्माण में समस्या समाधान निहित होता है। शब्द समस्याएँ इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। शब्द समस्याओं में शब्दों की सहायाता से प्रत्यक्षपरक पुनर्गठन, अन्तःर्दृष्टि समस्याओं में बौद्धिक क्षमता व्यवहार तथा कार्य समाधान समस्याओं में प्रयोज्य द्वारा कार्य समाधान में लिया गया समय तथा विधि के आधार पर कुशलता का अध्ययन किया जाता है। सफल रीति से किया गया समाधान समस्या समाधान व्यवहार का संकेत देता है।

7.7.5 समस्या समाधान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक

समस्या समाधान व्यवहार के प्रयोगों में मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार के परिवर्ती के प्रभाव का अध्ययन किया है, जिनको समस्यात्मक स्थिति की विशेषताओं, समस्या समाधान की विशेषताओं तथा समाधानकर्ता की विशेषताओं के आधार पर प्रमुख तीन भागों में बाँटा गया है। इनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है–

1. समस्या समाधान की स्थिति की विशेषताओं का प्रभाव

समस्या समाधन की स्थिति की कुछ विशेषताएँ होती हैं, जो समाधान में प्रमुख भूमिका निभाती है। जैसे समस्या का आकार, समस्या तथा समाधान स्थितियों में समानता, समस्यात्मक स्थिति का संगठन आदि प्रमुख है। इनको निम्न प्रायोगिक रीति से अध्ययन करके सिद्ध किया गया है–

1. **समस्या का आकार** – समस्यात्मक स्थिति के आकार का प्रभाव इसके अन्तर्गत लगने वाले समय पर पड़ता है। प्रायोगिक रीति से यह स्पष्ट हो चुका है कि समस्या का आकार जितना बड़ा होगा, उसका समाधान उतना ही विलम्ब से होगा। नेमार्क तथा वैग्नर ने मानव प्रयोज्य के सम्मुख एक समस्यात्मक स्थिति को देखा। प्रयोज्यों को बहुत से चित्रों में से एक मानक चित्र के बराबर चित्र छाँटने को दिया। बहुत से चित्रों की आकृति को भी घटाया–बढ़ाया। लगने वाले समय को नोट करने से यह प्रमाणित हुआ कि समस्या का आकार समाधान में लगने वाले समय को प्रभावित करता है। उक्त प्रयोग में यह पाया गया कि चित्रों की संख्या जितनी अधिक होगी, समस्या समाधान उतना ही विलम्ब से होगा। कैपलान के प्रयोग परिणाम भी यह सिद्ध करते हैं कि एना ग्राम्स की संख्या जितनी अधिक होती है, समाधान में समय भी उतना ही लगता है। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि समस्यात्मक स्थिति का आकार जितना बड़ा होता है, उसका समाधान उतना ही कठिन होता है।
2. **समस्या एवं समाधान स्थितियों में समानता** – यह बात बड़ी ही सरलता से परिकल्पना से निर्मित की जा सकती है कि समस्या एवं समाधान स्थितियों में जितनी अधिक समानता होगी, प्रयोज्य को उस स्थिति का समाधान करने के लिए उतना ही पुनर्गठन कम करना पड़ेगा और इसका यह प्रभाव पड़ेगा कि समस्या का हल उतना ही सरल हो जाएगा। डौमीनोस्की के प्रयोग परिणाम जो एना ग्राम्स के अध्ययन के बाद निकाले हुए है, यह सिद्ध करते हैं कि एना ग्राम्स में एक अक्षर का परिवर्तन करने के बाद हल सर्वाधिक सरल होता है।
3. **समस्यात्मक स्थिति का संगठन** – समस्यात्मक स्थिति में उपस्थित घटकों का सुसंगठन समस्या समाधान को प्रभावित करते हैं। संगठित समस्याएँ समाधान को सरल बनाती हैं तथा असंगठित कठिन। इसी प्रकार के संगठित तथा असंगठित एना ग्राम्स को लेकर वाइलिन तथा हार्न ने प्रयोगात्मक निष्कर्ष ज्ञात किए हैं। संगठित एना ग्राम्स का उदाहरण COLOUR है तथा असंगठित का RLOUCO है। संगठित एना ग्राम्स से शब्द बनाने में कम समय लगता है तथा असंगठित से अधिक समय लगता है।

2. समाधान की विशेषताओं का प्रभाव

समस्या समाधान की प्रकृति में जटिलता हो सकती है। समाधान में यदि चरण अधिक हैं, तो समाधान अपेक्षाकृत कठिन होगा। इसके साथ ही विभिन्न चरणों के साथ प्रयोज्य का परिचित होना भी एक अन्य विशेषता है। इनका वर्णन निम्नलिखित है–

1. **समाधान की जटिलता** – हेयेस तथा अन्य के प्रयोग परिणाम यह सिद्ध करते हैं कि समाधान में जितने चरण होते हैं, समाधान करने में उतनी ही कठिनाई होती है। इस प्रकार के प्रयोग हेयेस ने जासूस समस्या तथा गैग्नी एवं स्मिथ ने पिरामिड पहेली पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि समस्या समाधान के चरणों में वृद्धि के कारण समस्या

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

अधिक कठिन हो जाती है और इसी कठिनाई के कारण समाधान भी विलम्ब से होता है।

2. **समाधान के चरणों की सामान्यता** – समस्या समाधान के समय परिचित उद्दीपक संकेत प्रयोज्य को प्रभावित करते हैं। यह पूर्व परिचय समाधान में सहायता देता है और इसी सुविधा के कारण समाधान सरलता से होता है।

3. समाधानकर्ता की विशेषताओं का प्रभाव

समस्या समाधान की सम्भावना समाधनकर्ता की विशेषताओं पर भी निर्भर करती है। इसमें अभिप्रेरणा स्तर, पूर्व अनुभव एवं सेट महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के रूप में जाने जाते हैं। इनका वर्णन प्रस्तुत है–

1. **अभिप्रेरणा स्तर** – यह स्पष्ट है कि अभिप्रेरित व्यक्ति ही कार्य करने को तैयार होता है। अभिप्रेरणात्मक वृत्ति चिन्ता के होने से निष्पादन में भी त्रुटियाँ होती हैं। एक कार्य में असफल हो जाने से भी दूसरे कार्य के निष्पादन पर प्रभाव पड़ता है और यह निष्पादन दुर्बल हो जाता है।
2. **अभ्यास अथवा पूर्ण अनुभव का प्रभाव** – मायर के प्रयोग परिणाम यह सिद्ध करते हैं कि समस्यात्मक स्थिति के चरों का पूर्व अनुभव समस्या समाधान में लाभकारी होता है। मायर ने टोपी रखने के लिए खूँटी बनाने की समस्या तीन समूहों में सामने रखी। प्रथम समूह के सम्मुख पूर्व अनुभव वाले चर प्रत्यक्षीकरण के लिए रखे गए, दूसरे को उनसे वंचित रखा गया तथा तीसरा समूह पूर्व अनुभव से रहित। प्रायोगिक परिणामों से ज्ञात हुआ कि प्रथम समूह के परिणाम द्वितीय से तथा द्वितीय के तृतीय समूह से अच्छे थे।
3. **मानसिक सेट का प्रभाव** – समाधान के समय किसी विशेष प्रकार से अनुक्रिया करने की प्रवृत्ति को सेट कहते हैं। यह एक ही प्रकार की अनुक्रिया करते रहने के कारण होती है। इस प्रभाव को वुडवर्थ तथा श्लासवर्ग ने अन्धा करने वाला प्रभाव कहा है। मनोवैज्ञानिकों ने एना ग्राम्स की सहायता से प्रयोग करके सेट के प्रभाव का अध्ययन कर स्पष्ट किया है। इस सेट के कारण प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी स्थिरता उत्पन्न होती है, जो समाधान में सहायक होती है। लुचिन्स ने इसी प्रकार के प्रयोग कर सेट के प्रभाव को प्रमाणित किया है।

7.7.6 समस्या समाधान की प्रक्रिया

वास्तव में देखा जाये तो अधिगम की प्रक्रिया ही समस्या समाधान की प्रक्रिया है। एक में सीखने पर बल दिया जाता है, दूसरी में समस्या समाधान पर। दोनों ही स्थितियों में व्यक्ति अपनी किसी आवश्यकता की पूर्ति करता है और उसके सामने कोई न कोई उद्देश्य होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति में कई बाधाएँ होती हैं। बाधाओं को पार करके उद्देश्य तक पहुँचने में जहाँ अधिगम या सीखना है, वहाँ समस्या समाधान भी है। व्यक्ति को समस्या की अनुभूति होती है, वह उसके समाधान में अपनी पूरी शक्ति लगा देता है। व्यक्ति किसी निष्कर्ष तक पहुँचता है और जब व्यक्ति अपने निष्कर्ष का मूल्यांकन करता है, तभी यह कहा जा सकता है कि समस्या–समाधान की प्रक्रिया पूरी हुई है।

विभिन्न विद्वानों ने समस्या–समाधान के जिन सोपानों का उल्लेख किया है, उनका वर्णन पहले किया जा चुका है। ब्लेयर, जोन्स तथा सिम्पसन और स्किनर का कथन है कि यह आवश्यक नहीं कि इन सोपानों से समस्या समाधान हो ही। अतएव इन पर आवश्यकता से अधिक बल देना उचित नहीं।

समस्या समाधान तो एक चक्रक प्रक्रिया है, जिसमें एक प्रश्न को हल करते कुछ और प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं। यह बात व्यक्ति और समूह दोनों पर ही लागू होती है। इसीलिए थॉर्नडाइक ने कहा है कि विद्यालय का कार्य समस्या समाधान ही नहीं, समस्याएँ उत्पन्न करना भी है।

7.7.7 समस्या समाधान और शिक्षा

विद्यालयों में समस्या–समाधान के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए–

1. समस्या–समाधान के लिए छात्रों के सामने व्यावहारिक समस्याएँ रखी जाए।
2. समस्या ऐसी हो, जिसमें तार्किक चिन्तन किया जा सके, जो महत्त्वपूर्ण हो तथा जिसका सम्बन्ध आधुनिक काल से हो।
3. समस्या ऐसी हो, जिसमें समस्या–समाधान के सभी सोपान आ जाए।
4. विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर, शैक्षिक स्तर तथा पूर्वानुभवों को दृष्टि में रखते हुए समस्या चुनी जाये।
5. शुरु–शुरु में केवल आगमन विधि का ही प्रयोग किया जाये। बाद में निगमन तथा आगमन दोनों विधियों का संयुक्त प्रयोग किया जा सकता है।
6. विद्यार्थियों में तार्किक चिन्तन के विकास के लिए प्रश्नोत्तर विधि, वाद–विवाद प्रतियोगिता तथा अध्ययन गोष्ठी आदि की व्यवस्था की जाये।
7. विद्यार्थियों में अनुसन्धान की अभिवृत्ति का, मन की एकाग्रता का, लगन का विकास किया जाये, क्योंकि समस्या समाधान में इनकी आवश्यकता पड़ती है।
8. समस्या को समझना, तथ्यों का संग्रह, उपकल्पनाओं का निर्माण, उनका मूल्यांकन, निष्कर्ष तक पहुँचना, निष्कर्ष का प्रयोग आदि बातों का पूरा पूरा शिक्षण विद्यार्थियों को मिलना चाहिए।
9. समस्या समाधान विधियों तथा मूल्यों आदि को विभिन्न परिस्थितियों में सीखा जाना चाहिए।
10. क्रो तथा क्रो ने शिक्षा मनोविज्ञान में कहा है कि समस्या समाधान की दृष्टि से अध्यापकों को वैज्ञानिक विधि का प्रशिक्षण देना चाहिए। तभी वे छात्र–छात्राओं का उचित मार्गदर्शन कर सकेंगे।

7.8 खोज

इसको सामान्य भाषा में पूछताछ करना भी कहते हैं। प्रायः देखा गया है कि छोटे बालकों में खोज करने की प्रवृत्ति प्रबल होती है। इसका कारण यह है कि वह उसके लिए इन नवीन वस्तुओं को जानने की तीव्र उत्कण्ठा होती है। इसलिए देखा गया है कि प्रायः छोटे बालक अपने माता–पिता, दादा–दादी से अनेक प्रकार के खोजपूर्ण प्रश्न पूछते रहते हैं। जैसे– रात्रि के समय में खुले में बैठे होने पर चन्द्रमा और तारों के बारे में अनगिनत प्रश्न पूछते हैं। इस प्रकार प्रश्नों की झड़ी लगने पर उत्तर देते–देते माता–पिता या तो झुँझला जाते हैं या फिर उनको डाँट देते हैं। इससे बालकों की खोज सम्बन्धी जिज्ञासा का दमन

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

होता है। नवीन अनुभव, नवीन ज्ञान, नवीन वस्तुओं का परिचय या जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा ही बालकों में खोज करने की प्रवृत्ति को जाग्रत् करती है। परिवार के सदस्य तथा शिक्षक बालकों में विद्यमान इस खोज की प्रवृत्ति का लाभ नहीं उठाते हैं।

खोज अधिगम की एक उत्तम विधि है, जिसमें बालक स्वयं अधिगम के लिए प्रेरित होता है। शिक्षक को बालकों की इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देना चाहिये। शिक्षक को सदैव भोजन पकाकर परोसने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए। खोज द्वारा जो ज्ञान और अनुभव अर्जित किए जाते हैं, वे अधिक स्थायी होते हैं।

खोज शिक्षण का एक उपागम है। इसे शिक्षण प्रतिमान के रूप में लिया जाता है। शिक्षण प्रतिमान के रूप में इसका विकास सन् 1962 में रिचर्ड सचमैन ने किया था। शिक्षण का यह उपागम सृजनात्मक अनुसन्धान पर आधारित है। यह उपागम छात्रों में सामाजिक दक्षताओं का इस प्रकार विकास करता है कि उससे छात्र सुविधापूर्वक समाज के साथ अपना समायोजन स्थापित कर लेता है।

7.8.1 खोज की मान्यताएँ

खोज उपागम निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1. छात्र नवीन ज्ञान को प्राप्त करने के लिए इच्छुक और उत्सुक होता है।
2. अधिगम प्रक्रिया में छात्र की सहभागिता बढ़ाने के साथ अधिगम प्रभावी होता जाएगा।
3. स्वतन्त्र खोज के अवसर प्रदान करने से अधिगम परिस्थितियों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
4. आवश्यक निर्देशन व सहायता देने पर छात्र अधिगम परिस्थितियों को सरल, सुगम और व्यवस्थित कर लेते हैं।
5. सहयोग पर आधारित खोज छात्रों के बौद्धिक अनुशासन में सहायता देती है।

7.8.2 खोज की प्रक्रिया

खोज उपागम का मुख्य उद्देश्य छात्रों में सकारात्मक कौशलों का विकास करना है, जिससे वे तथ्यों के सम्बन्ध में खोज, विश्लेषण तथा मूल्यांकन कर सकें। इसके लिए छात्रों में व्यक्तिगत क्षमताओं का विकास किया जाता है। खोज सम्बन्धी कार्य के लिए शिक्षक और छात्रों को चार स्तरों से गुजरना पड़ता है, जो निम्नलिखित हैं–

1. समस्या की पहचान तथा परिभाषीकरण।
2. समस्या से सम्बन्धित तथ्यों का संग्रह करना।
3. संकलित तथ्यों का विश्लेषण करना।
4. तथ्य विश्लेषण के आधार पर अधिगम परिस्थितियों का निर्माण करना।

7.8.3 खोज के उपयोग

खोज विधि बड़ी उपयोगी है। खोज के निम्नलिखित उपयोग हैं–

1. छात्रों को इसके द्वारा आत्मनिर्भर बनाया जाता है।
2. इसके द्वारा छात्रों में कार्य–कारण सम्बन्ध समझने में सहायता मिलती है।
3. छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास सम्भव है।
4. तथ्य एकत्रित करने की कला में प्रवीण बनाया जा सकता है।
5. तथ्यों का विश्लेषण करने की विधि का विकसित होना।
6. समस्या से सम्बन्धित उपकल्पनाओं का विकास तथा उनकी जाँच करने की योग्यता का विकास होना।
7. तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालने की योग्यता का विकास।

****

अगर आप B.Ed, D.Ed, BSTC या शिक्षण अध्यापन के क्षेत्र में पढ़ाई कर रहे हैं तो आपसे निवेदन है कि निम्नलिखित Whatsapp No. अपनी कक्षा के व्हाट्सएप ग्रुप में जोड़ें। अगर आपका व्हाट्सएप ग्रुप नहीं बना हुआ है तो कृपया कम से कम 20 विद्यार्थी मिलकर व्हाट्सएप ग्रुप बना लें।

UPTET - 95301 43210
MP Samvida - 95302 43210
BTET - 95302 43210
UTET - 72209 29294
JTET - 72209 29239
HTET - 72209 29266
CGTET - 72209 28969
HPTET - 72209 28535

आपके क्लास के व्हाट्सएप ग्रुप में शिक्षा संबंधी सभी प्रतियोगी परीक्षा के पेपर्स, मॉडल पेपर्स एवं अन्य अध्ययन सामग्री भेजी जाएगी। आपका शुरू से मार्गदर्शन किया जाएगा, ताकि आप प्रतियोगी परीक्षा में अतिशीघ्र सफलता प्राप्त कर सकें।

प्रगण्य प्रकाशन द्वारा CTET एवं प्रत्येक राज्य के TET (UPTET, MP Samvida, BTET, UTET, JTET, HTET, CGTET, HPTET) के लिए मॉडल पेपर की फ्री PDF प्रकाशित की जाती है। मॉडल पेपर की फ्री PDF प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित Whatsapp No. अपने कॉलेज के क्लास ग्रुप या कोचिंग के क्लास ग्रुप या अन्य स्टडी ग्रुप में जोंडे। आपके ग्रुप में मॉडल पेपर भेज दिए जाएँगें।

UPTET - 95301 43210
MP Samvida - 95302 43210
BTET - 95302 43210
UTET - 72209 29294
JTET - 72209 29239
HTET - 72209 29266
CGTET - 72209 28969
HPTET - 72209 28535

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

www.praganya.org
www.praganya.org
www.praganya.org

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. चिन्तन में ..... शामिल हैं–
(1) प्रतिमा, भाषा, कल्पना, प्रतिज्ञप्ति
(2) प्रतिमा, कल्पना, संकल्पना, प्रतिज्ञप्ति
(3) कल्पना, भाषा, संकल्पना, प्रतिज्ञप्ति
(4) प्रतिमा, भाषा, संकल्पना, प्रतिज्ञप्ति

2. निम्नलिखित में से कौनसा चिन्तन की प्रक्रिया में सबसे कम महत्त्वपूर्ण है?
(1) तर्कणा (2) समस्या
(3) सामान्यीकरण (4) स्मृति

3. सृजनात्मकता मुख्य रूप से ..... से सम्बन्धित है।
(1) मॉडलिंग
(2) अनुकरण
(3) अभिसारी चिन्तन
(4) अपसारी (बहुविध) चिन्तन

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

4. चिन्तन अनिवार्य रूप से है एक–
(1) संज्ञानात्मक गतिविधि (2) मनोगतिक प्रक्रिया
(3) मनोवैज्ञानिक परिघटना (4) भावात्मक व्यवहार

5. सृजनात्मक चिन्तन सदैव होता है–
(1) विनाशकारी (2) रचनात्मक
(3) अभिसारी (4) एकरस

6. निम्न में से कौनसा चिन्तन की प्रक्रिया में सबसे कम महत्त्वपूर्ण है?
(1) चित्र (2) प्रतीक एवं चिह्न
(3) माँसपेशीय क्रियाएँ (4) भाषा

7. चिन्तन की दृष्टि से किसी बच्चे में सर्वश्रेष्ठ चिन्तन है–
(1) कल्पनात्मक चिन्तन (2) प्रत्यक्षात्मक चिन्तन
(3) प्रत्ययात्मक चिन्तन (4) तार्किक चिन्तन

8. सृजनात्मक चिन्तन होता है–
(1) उच्च अपसारी चिन्तन (2) अभिसारी चिन्तन
(3) मूल्यांकन (4) भाषा विकास

9. चिन्तन तथा तर्क का उद्देश्य है–
(1) समस्या को जटिल बनाना
(2) संवेग को समाप्त करना
(3) समस्या का समाधान करना
(4) संज्ञान का अन्त करना

10. **तार्किक चिन्तन** निम्न में से किसका एक आवश्यक अंग है?
(1) सामान्य शिक्षा का (2) समस्या समाधान का
(3) सामुदायिक माँग का (4) इनमें से कोई नहीं

11. रचनात्मक चिन्तन में अन्तिम सोपान निम्नलिखित में से कौनसा है?
(1) तथ्य संग्रह (2) गर्भीकरण
(3) स्फुटन (4) जाँच

12. रचनात्मक चिन्तन में पहली अवस्था निम्नलिखित मे से कौनसी है?
(1) तथ्य संग्रह (2) गर्भीकरण
(3) स्फुटन (4) जाँच

13. विज्ञान और गणित में चिन्तन निम्नलिखित में से किनके बिना सम्भव नहीं है?
(1) प्रत्यक्ष (2) प्रतिमा
(3) प्रतीक (4) चिह्न और सूत्र

14. वस्तुओं की अनुपस्थिति में उनके विषय में चिन्तन निम्नलिखित में से किससे होता है?
(1) प्रत्यक्ष (2) प्रतिमा
(3) सम्प्रत्यक्ष (4) प्रतीक

15. मनुष्यों में चिन्तन के विकास में प्रथम सोपान निम्नलिखित में से कौनसा है?
(1) सर्वजीववाद (2) सर्वमानववाद
(3) यन्त्रवाद (4) यथार्थवाद

16. निम्नलिखित में से चिन्तन के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उपकरण कौनसे हैं?
(1) प्रत्यक्ष (2) प्रतिमाएँ
(3) सम्प्रत्यक्ष (4) सूत्र

17. निम्नलिखित में से चिन्तन के उपकरण हैं–
(1) प्रत्यक्ष (2) प्रतिमाएँ
(3) सम्प्रत्यक्ष (4) उपर्युक्त सभी

18. प्रतिमासहित चिन्तन को मनोवैज्ञानिकों ने निम्नलिखित में से क्या माना है?
(1) मूर्त चिन्तन (2) अमूर्त चिन्तन
(3) 1 एवं 2 दोनों (4) उपर्युक्त कोई नहीं

19. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने भाषाहीन और भाषायुक्त चिन्तन में अन्तर किया है?
(1) जे. बी. वाटसन (2) मुलर
(3) थॉर्सन (4) हैड

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.	9.	10.	11.	12.	13.	14.	15.	16.	17.	18.	19.			
(3)	(3)	(4)	(1)	(2)	(3)	(4)	(1)	(3)	(2)	(4)	(1)	(4)	(4)	(1)	(3)	(4)	(2)	(2)			

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

20. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने चिन्तन को **आन्तरिक वाणी** कहा है?
(1) जे. बी. वाटसन (2) क्लार्क
(3) थॉर्सन (4) हैड

21. मानव में चिन्तन के विकास में सबसे पहला संप्रत्यय (Concept) निम्नलिखित में से कौनसा है?
(1) अहम् का सम्प्रत्यय (2) देश का सम्प्रत्यय
(3) काल का सम्प्रत्यय (4) संख्या का सम्प्रत्यय

22. चिन्तन का परिणाम निम्नलिखित में से कौनसा है?
(1) प्रयत्न और भूल (2) विश्लेषण और संश्लेषण
(3) अन्तर्दृष्टि (4) समस्या सुलझाव

23. चिन्तन में पहला सोपान निम्नलिखित में से कौनसा है?
(1) प्रयत्न और भूल (2) विश्लेषण और संश्लेषण
(3) अन्तर्दृष्टि (4) समस्या सुलझाव

24. चिन्तन का प्रमुख रूप निम्नलिखित में से क्या है?
(1) विचार (2) सम्प्रत्यक्ष
(3) कल्पना (4) तर्क

25. चिन्तन की प्रक्रिया में निम्नलिखित में से क्या शामिल है?
(1) अन्तर्दृष्टि (2) पूर्वदृष्टि
(3) पश्चातदृष्टि (4) उपर्युक्त सभी

26. चिन्तन का लक्ष्य निम्नलिखित में से क्या है?
(1) अनुसन्धान (2) आविष्कार
(3) 1 तथा 2 दोनों (4) उपर्युक्त कोई नहीं

27. शिक्षक ..... के अलावा निम्नलिखित सभी को करते हुए समस्या समाधान को विद्यार्थियों के लिए मजेदार बना सकता है।
(1) जब विद्यार्थी से कोई कार्य कराने की कोशिश कर रहे हो, तो उनसे परिपूर्णता की अपेक्षा करने
(2) मुक्त अन्त वाली सामग्री उपलब्ध कराने
(3) मुक्त खेल के लिए समय देने
(4) सृजनात्मक चिन्तन के लिए असीमित अवसर उपलब्ध कराने

28. चिन्तन के सूचना प्रक्रमण सिद्धान्त में निम्नलिखित चरण आते हैं–
1. प्रतिक्रिया क्रियान्वयन
2. प्रतिक्रिया चयन
3. पूर्व–प्रक्रमण
4. श्रेणीकरण
(1) 2,4,3,1 (2) 3,1,4,2
(3) 4,3,2,1 (4) 3,4,2,1

29. बच्चे द्वारा संकल्पना निर्माण के सम्बन्ध में निम्नलिखित में से कौनसा कथन सही है?
(1) संकल्पनाएँ संवेगात्मक रूप से सुव्यवस्थित होती हैं।
(2) संकल्पना विकास की एक निश्चित संरचनात्मक व्यवस्था होती है।
(3) संकल्पनाओं की प्रकृति पदानुक्रमिक नहीं होती है।
(4) संकल्पनाएँ वैयक्तिक नहीं होती है।

30. निम्नलिखित में से कौनसी समस्या समाधान की वैज्ञानिक पद्धति का पहला चरण है?
(1) प्राक्कल्पना का निर्माण करना
(2) प्राक्कल्पना का परीक्षण करना
(3) समस्या के प्रति जागरूकता
(4) प्रासंगिक जानकारी को एकत्र करना

31. चिन्तन के सन्दर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. चिन्तन का सम्बन्ध वास्तविकता से होता है।
2. चिन्तन तर्क प्रधान होता है।
3. चिन्तन के लिए किसी समस्या का होना आवश्यक नहीं है।
उपरोक्त में से कौनसा/से कथन सत्य है/हैं?
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) केवल 3 (4) ये सभी

32. किसी बच्चे के चिन्तन में आयु के बढ़ने के साथ–साथ किसकी प्रधानता बढ़ती है?
(1) तर्क की (2) सामान्यीकरण की
(3) आत्मकेन्द्रीकरण की (4) जीववाद की

33. किसी बच्चे में चिन्तन का प्रमुख कारण क्या है?
1. समस्या समाधान करना
2. निर्णय लेने की भावना
3. वातावरण के प्रति चैतन्य समायोजन करने हेतु
(1) केवल 1 (2) केवल 2
(3) केवल 3 (4) ये सभी

34. गिलफोर्ड ने अभिसारी चिन्तन पद का प्रयोग किसके समान अर्थ में किया है?
(1) बुद्धि
(2) सृजनात्मकता
(3) बुद्धि एवं सृजनात्मकता
(4) इनमें से कोई नहीं

35. पियाजे की कौनसी अवस्था का सम्बन्ध अमूर्त एवं तार्किक चिन्तन से है?
(1) संवेदी गामक अवस्था (2) पूर्व संक्रियात्मक अवस्था
(3) अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था (4) मूर्त संक्रियात्मक अवस्था

20.	21.	22.	23.	24.	25.	26.	27.	28.	29.	30.	31.	32.	33.	34.	35.						
(1)	(1)	(4)	(1)	(4)	(4)	(3)	(1)	(4)	(2)	(3)	(4)	(1)	(4)	(2)	(3)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

36. **किसी बालक में चिन्तन की योग्यता उसके सफल जीवन का मूल आधार है।** यह कथन किसका है?
(1) जीन पियाजे का
(2) क्रो एवं क्रो का
(3) हरलॉक का
(4) स्किनर का

37. निम्नलिखित में से क्या चिन्तन की एक विशेषता नहीं है?
(1) चिन्तन का सम्बन्ध वास्तविकता से होता है।
(2) चिन्तन तर्कप्रधान होता है।
(3) चिन्तन के लिए किसी समस्या का होना आवश्यक नहीं है।
(4) चिन्तन कल्पना से अधिक चेतन होता है।

38. माध्यमिक कक्षाओं में एक अध्यापक छात्रों में चिन्तन का विकास कर सकता है–
(1) छात्रों की समस्याओं का समाधान करके
(2) तर्क और वाद-विवाद की प्रतियोगिताओं का आयोजन करके
(3) छात्रों की रूचियों का विकास करके
(4) उपर्युक्त सभी

39. जन्म के बाद किसी बालक में चिन्तन का विकास कब प्रारम्भ होता है?
(1) दो वर्ष की आयु के बाद
(2) पाँच वर्ष की आयु के बाद
(3) सात वर्ष की आयु के बाद
(4) पन्द्रह वर्ष की आयु के बाद

40. आपकी कक्षा का एक छात्र रमेश हमेशा आपके साथ तर्क करता हो, तो आपकी राय रमेश के विषय में क्या होगी?
(1) रमेश कक्षा में सबसे अधिक बोलने वाला छात्र है।
(2) रमेश एक कल्पनाशील छात्र है।
(3) रमेश एक चिन्तनशील छात्र है।
(4) रमेश की पारिवारिक परिस्थितियाँ ठीक नहीं है।

41. सृजनात्मकता के सम्बन्ध में निम्नलिखित में से कौनसा कथन सत्य है?
(1) सृजनात्मक चिन्तन में एक सीमा तक अभिसारी चिन्तन भी होता है।
(2) सृजनात्मकता एक लक्ष्य निर्देशित प्रक्रिया है।
(3) सृजनात्मकता में व्यक्ति कुछ नयी एवं भिन्न चीजों की रचना करता है।
(4) उपर्युक्त सभी

42. एल. एस. वाइगोत्स्की के अनुसार–
(1) भाषा एवं चिन्तन एक-दूसरे से स्वतन्त्र रूप से विकसित होते हैं।
(2) भाषा एक अर्जित योग्यता है।
(3) भाषा चिन्तन को निर्धारित करती है।
(4) चिन्तन भाषा को निर्धारित करता है।

43. टिचनर की कार्नेल प्रयोगशाला में हुए प्रयोगों से चिन्तन के निम्नलिखित रूपों में से किसका समर्थन हुआ?
(1) प्रतिमासहित चिन्तन (2) प्रतिमाहीन चिन्तन
(3) 1 तथा 2 दोनों (4) उपर्युक्त कोई नहीं

44. अपनी दो कन्याओं पर प्रयोग करके निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने प्रतिमाहीन चिन्तन का समर्थन किया?
(1) ई. बी. टिचनर (2) एल्फ्रेड बिने
(3) जी. ई. मुलर (4) जे. बी. वाटसन

45. ऊर्जबर्ग सम्प्रदाय में चिन्तन पर पहले प्रयोग निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने किए?
(1) कुल्पे ने (2) मार्बे ने
(3) मुलर ने (4) मेसर ने

46. ऊर्जबर्ग सम्प्रदाय ने निम्नलिखित में से किस प्रणाली में चिन्तन को प्रतिमाहीन पाया?
(1) निरीक्षण (2) अन्तर्दर्शन
(3) विश्लेषण (4) संश्लेषण

47. निम्नलिखित में से कौनसा मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय चिन्तन को संकलित प्रक्रिया मानता है?
(1) व्यवहारवाद (2) साहचर्यवाद
(3) ऊर्जबर्ग सम्प्रदाय (4) गैस्टाल्टवाद

48. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक के प्रयोगों से चिन्तन में बिम्ब का महत्त्व स्पष्ट होता है?
(1) वुण्ट (2) वाटसन
(3) मुलर (4) मार्बे

49. निम्नलिखित में से कौनसा मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय प्रतिमाहीन चिन्तन की पुष्टि करता है?
(1) व्यवहारवादी (2) साहचर्यवादी
(3) ऊर्जबर्ग सम्प्रदाय (4) गैस्टाल्टवादी

50. चिन्तन की सबसे बड़ी पहचान निम्नलिखित में से क्या है?
(1) विचार (2) कल्पना
(3) सम्प्रत्यक्ष (4) समस्या समाधान

51. बच्चों में सीखने और सुनने के लिए अधिगम योग्य वातावरण के लिए निम्नलिखित में से कौन उपयुक्त है?
(1) शिक्षार्थियों को यह छूट देना कि क्या सीखना है और कैसे सीखना है
(2) एक लम्बे समय के लिए निष्क्रिय रूप से सुनना
(3) निरन्तर गृहकार्य देते रहना
(4) सीखने वाले द्वारा व्यक्तिगत कार्य करना

36.	37.	38.	39.	40.	41.	42.	43.	44.	45.	46.	47.	48.	49.	50.	51.						
(2)	(3)	(4)	(1)	(3)	(4)	(1)	(1)	(2)	(1)	(2)	(3)	(1)	(3)	(4)	(1)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

52. **बालकों में सोचने की योग्यता सफल जीवन के लिए आवश्यक है।** निम्न में से यह मत किसका है?
(1) पियाजे का (2) क्रो एवं क्रो का
(3) स्किनर का (4) पावलॉव का

53. बच्चे के सोचने की प्रक्रिया में किस आधार पर सोचने को सबसे उच्च माना गया है?
(1) रूचि के आधार पर सोचना
(2) अनुभव के आधार पर सोचना
(3) तर्क के आधार पर सोचना
(4) अनुकरण के आधार पर सोचना

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

54. किसी बालक में तर्क के आधार पर सोचने की क्षमता के विकास के लिए आवश्यक तत्त्व है–
(1) भाषा सम्प्रेषण में निपुणता
(2) असीमित कल्पना शक्ति
(3) बालक के समक्ष अनेक समस्याएँ
(4) उसकी बोलने की गति

55. **हम करके सीखते हैं।** यह किसने कहा?
(1) डॉ. मेस ने (2) योक्म ने
(3) कालसैनिक ने (4) सिम्पसन ने

56. समस्या समाधान की प्रक्रिया का चरण नहीं हैं–
(1) परिणामों की आशा करना
(2) समस्या की पहचान
(3) समस्या को छोटे हिस्सों में बाँटना
(4) सम्भावित युक्तियों को खोजना

57. कोई बच्चा अपने द्वारा निश्चित की गई सर्वोत्तम विधि का प्रयोग करता है–
(1) समस्या समाधान के लिए
(2) स्कूल छोड़कर भाग जाने के लिए
(3) एक पक्षीय चिन्तन के लिए
(4) उपरोक्त सभी

58. जब कोई बच्चा अपनी समस्या का समाधान स्वयं करने लगता है, तो उसमें निम्न में से कौनसा गुण विकसित हो जाता है?
(1) वैज्ञानिक अन्वेषक का (2) प्रतिशोध का
(3) ईर्ष्या का (4) समस्या का

59. किसी बालक में तर्क तथा समस्या समाधान की शक्ति का विकास कब होता है?
(1) 15वें वर्ष में (2) 12वें वर्ष में
(3) 7वें वर्ष में (4) 8वें वर्ष में

60. **समस्या समाधान वह प्रतिमान है, जिसमें तार्किक चिन्तन निहित होता है।** निम्न में से यह कथन किसका है?
(1) स्टेनले का (2) स्किनर का
(3) पियाजे का (4) पावलॉव का

61. एक बालक द्वारा किसी समस्या का समाधान करने के लिए निम्न में से कौनसा गुण होना आवश्यक है?
1. भाषा का विकास 2. स्वावलम्बी
3. बार-बार प्रयास करने की आदत
(1) 1 एवं 2 (2) 1 एवं 3
(3) 2 एवं 3 (4) ये सभी

62. किसी समस्या के सम्भावित समाधानों का परीक्षण कहाँ किया जाता है?
(1) प्रयोगशाला में (2) कहीं पर भी
(3) विद्यालय में (4) घर पर

63. निम्नलिखित में से कौनसी विशेषता समस्या समाधान उपागम का विशेष चिह्न है?
(1) समस्या कथन में संकेत अन्तर्निहित रूप से दिया होता है।
(2) समस्या मौलिक होती है।
(3) सही उत्तर प्राप्त करने का सामान्यतः एक उपागम होता है।
(4) समस्या केवल एक सिद्धान्त/प्रकरण पर आधारित होती है।

64. किसी बालक की समस्याओं के विषय में पता लगाने के लिए कम उपयोगी मनोवैज्ञानिक विधि है–
(1) प्रयोगात्मक विधि (2) निरीक्षण विधि
(3) परीक्षण विधि (4) वैयक्तिक इतिहास विधि

65. किसी समस्या के समाधान हेतु आवश्यक तत्त्व हैं–
(1) जानकारी (2) तर्क
(3) आक्रोश (4) भय

66. समस्या समाधान की अन्तर्दृष्टि विधि के सम्बन्ध में किसके द्वारा वनमानुषों पर किए गए प्रयोग उल्लेखनीय हैं?
(1) थॉर्नडाइक द्वारा (2) कोहलर द्वारा
(3) स्किनर द्वारा (4) जीन पियाजे द्वारा

67. **एक शिक्षक को साधन सम्पन्न होना चाहिए।** इसका अर्थ है–
(1) उनके पास पर्याप्त धन-सम्पदा होनी चाहिए, ताकि उन्हें शिक्षण देने की जरूरत न पड़े।
(2) उनका अधिकारियों के उच्च स्तर से सम्पर्क होना चाहिए।
(3) उनको अपने विद्यार्थियों की समस्याओं को हल करने का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए।
(4) विद्यार्थियों के बीच उनकी प्रसिद्धि होनी चाहिए।

52.	53.	54.	55.	56.	57.	58.	59.	60.	61.	62.	63.	64.	65.	66.	67.						
(2)	(3)	(1)	(1)	(3)	(1)	(1)	(2)	(1)	(4)	(2)	(1)	(3)	(2)	(2)	(3)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

68. एक शिक्षक के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण क्या है?
(1) कक्षा में अनुशासन बनाए रखना
(2) कक्षा में समयानुवर्ती होना
(3) विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर करना
(4) एक सुवक्ता होना

69. समस्या के अर्थ को जानने की योग्यता, वातावरण के दोषों, कमियों एवं रिक्तियों के प्रति सजगता विशेषता है?
(1) प्रतिभाशाली बालकों की (2) सामान्य बालकों की
(3) सृजनशील बालकों की (4) इनमें से कोई नहीं

70. समस्या समाधान अधिगम का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है–
(1) स्मृति स्तर से (2) अवबोध स्तर से
(3) चिन्तन स्तर से (4) उपर्युक्त सभी

71. कक्षा में अनुशासन की समस्या निम्नलिखित में से किस से सम्बन्धित है?
(1) कौनसा विषय पढ़ाया जा रहा है?
(2) पढ़ाया जा रहा विषय कितना रोचक है?
(3) छात्र कक्षा में कैसे बैठे हैं?
(4) उपर्युक्त सभी

72. अनुशासन की समस्या के समाधान के लिए एक सुझाव यह भी अच्छा है–
(1) छात्रों को नैतिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाए।
(2) छात्रों के आचरण पर भी अंक दिए जाएँ।
(3) अनुशासनहीनता पर भारी दण्ड दिया जाए।
(4) उपर्युक्त सभी।

73. छात्र समस्या का समाधान सामूहिक रूप से करता है–
(1) अन्वेषण विधि में (2) परियोजना विधि में
(3) खोज विधि में (4) इन सभी में

74. शिक्षण को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक है कि–
(1) पाठ्यक्रम को बार-बार दोहराया जाए।
(2) गृहकार्य दिया जाए।
(3) छात्रों को प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
(4) छात्रों का मूल्यांकन और समस्या समाधान साथ-साथ किया जाए।

75. शिक्षा के किस स्तर की समस्या अधिक महत्त्वपूर्ण है?
(1) प्राथमिक स्तर की (2) उच्च प्राथमिक स्तर की
(3) माध्यमिक स्तर की (4) इनमें से कोई नहीं

76. निम्नलिखित में से कौनसा सीखने का क्षेत्र है?
(1) व्यावसायिक (2) आनुभविक
(3) भावात्मक (4) आध्यात्मिक

77. अधिगम प्रभावशाली रूप में होता है, यदि–
(1) बच्चे को सीखने के लिए तत्पर किया जाए।
(2) बच्चा, जो वह सीखता है, उसे दोहराए।
(3) बच्चा सन्तुष्ट अनुभव करे।
(4) बच्चा उपर्युक्त सभी करे।

78. आपकी कक्षा का एक बच्चा किसी समस्या को समझने का प्रयास कर रहा है। आप उस बच्चे के विषय में क्या कहेंगे?
(1) बच्चा सामान्य सोच वाला है।
(2) बच्चे की बुद्धिलब्धि 70 से कम है।
(3) बच्चे में वैज्ञानिक सोच का विकास हो रहा है।
(4) बच्चे का मन पढ़ाई में न लगकर इधर-उधर की बातों में लगा रहता है।

79. निम्नलिखित में से कौनसी विशेषता समस्या समाधान उपागम का विशेष चिह्न है?
(1) सही उत्तर प्राप्त करने का सामान्यतः एक उपागम होता है।
(2) समस्या केवल एक सिद्धान्त/प्रकरण पर आधारित होती है।
(3) समस्या कथन में संकेत अन्तर्निहित रूप से दिया जाता है।
(4) समस्या मौलिक होती है।

दीपक कुमार शर्मा
8859637150
मथुरा वृन्दावन
दीपक कुमार शर्मा
DEEPAK KUMAR SHARMA
MATHURA VRINDAVAN- 8859637150
दीपक कुमार शर्मा
8859637150
मथुरा वृन्दावन

68.	69.	70.	71.	72.	73.	74.	75.	76.	77.	78.	79.										
(3)	(3)	(3)	(4)	(1)	(2)	(4)	(4)	(2)	(1)	(3)	(3)										

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

अध्याय 8

अभिप्रेरणा एवं अधिगम

8.1 प्रस्तावना

विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा अध्यापक के लिए एक ऐसी समस्या है जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। विद्यार्थियों को पढ़ाते समय अध्यापक अभिप्रेरणा की समस्या को एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण समस्या समझते हैं। प्रत्येक मानवीय कार्य की तह में अभिप्रेरणा किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है, क्योंकि मनुष्य किसी न किसी रूप में आशय या मनोरथ द्वारा निर्देशन प्राप्त करता है। जीवन के हर क्षेत्र में तथा कार्यों के चरणों में अभिप्रेरणा का प्रमुख हाथ होता है इसलिए हमारे जीवन में सफलता की प्राप्ति अभिप्रेरणा पर ही निर्भर करती है। अभिप्रेरणा को **सीखने का हृदय**, **सीखने की सुनहरी सड़क**, **अनिवार्य स्थिति** और **सीखने का प्रमुख कारक** कहा जाता है, क्योंकि सारा सीखना प्रेरित सीखना होता है। समुचित अभिप्रेरणा विद्यार्थियों के प्रतिबिम्ब, ध्यान, रूचि तथा प्रयत्न पैदा करके सीखने के कार्य को उन्नत करती है। सीखने का कार्य प्रभावशाली या कुशल तथा सफल नहीं हो सकता जब तक कि निरन्तर मनोरथ पूर्ण तथा चयन करने की कोशिश न हो। इसलिए अध्यापक की समस्या यह है कि वह इन मनोरथों तथा रुचियों को शिक्षा के उद्देश्य के लिए खोजे, निर्देशन करे तथा मूलधन में बदल दे।

www.praganya.org

8.2 अभिप्रेरणा का अर्थ

अभिप्रेरणा शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के **मोटम** से हुई है, जिसका अर्थ है **गति करना** या **इन्साइट टु ऐक्शन**। अतः अभिप्रेरणा वह प्रक्रिया है जो कर्म पैदा करने, उन्नति को कायम रखने, कार्य के नमूने को नियमित रखने तथा दिशा देने का कार्य करती है। इसके लिए यह शरीर में तन्तुओं में शक्ति द्वारा परिवर्तन पैदा करती है। यह विद्यार्थियों में पढ़ाई तथा अन्य कार्यों के लिए रूचि पैदा करने तथा उनमें जोश भरने की कला है।

प्रेरणा का अर्थ स्पष्ट करने के लिए हमें इच्छाओं और प्रेरकों को स्पष्ट समझना आवश्यक है। जब हमें किसी वस्तु की आवश्यकता होती है, तो हमारे अन्दर एक इच्छा उत्पन्न होती है, जिसके फलस्वरूप ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है, जो प्रेरक शक्ति को गतिशील बनाती है।

8.3 अभिप्रेरणा की परिभाषाएँ

विभिन्न विद्वानों द्वारा अभिप्रेरणा की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं, उनमें से कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. स्किनर के अनुसार–

विद्यालय के सीखने में अभिप्रेरणा का अर्थ अपेक्षित व्यवहार के लिए प्रोत्साहित करना, आरम्भ करना, जारी रखना तथा दिशा प्रदान करना होता है।

2. वुडवर्थ के अनुसार–

अभिप्रेरणा व्यक्ति की वह दशा है जो किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए, निश्चित व्यवहार को स्पष्ट करती है।

3. गेट्स व अन्य के अनुसार–

अभिप्रेरणा प्राणी के भीतर की वे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दशायें हैं, जो उसे विशेष प्रकार की क्रिया करने के लिए प्रेरित करती है।

4. गुड के अनुसार–

अभिप्रेरणा क्रिया को प्रारम्भ करने, जारी रखने तथा नियन्त्रित रखने की प्रक्रिया है।

5. जॉनसन के अनुसार–

अभिप्रेरणा सामान्य क्रिया कलापों का प्रभाव है, जो प्राणी के व्यवहार को इंगित और निर्देशित करती है।

6. ब्लेयर, जोन्स व सिम्पसन के अनुसार–

अभिप्रेरणा एक प्रक्रिया है जिसमें अधिगम की आन्तरिक शक्तियाँ या आवश्यकताएँ उसके वातावरण में विविध लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती हैं।

7. लॉवेल के अनुसार–

अभिप्रेरणा एक ऐसी मनोवैज्ञानिक या आन्तरिक प्रक्रिया है, जो किसी आवश्यकता की उपस्थिति में उत्पन्न होती है। यह ऐसी क्रिया की ओर उन्मुख होती है, जो उस आवश्यकता को संतुष्ट करेगी।

8. गिलफोर्ड के अनुसार–

अभिप्रेरणा कोई विशेष आन्तरिक कारक अथवा दशा है, जिसमें क्रिया को आरम्भ करने एवं बनाये रखने की प्रकृति होती है।

9. बरनार्ड के अनुसार–

अभिप्रेरणा द्वारा उन विधियों की खोज की जाती है जो बालक को स्कूल द्वारा प्रदत्त अधिगम के लिए इच्छुक बनाती है।

10. मैगोच के अनुसार–

प्रेरक प्राणी की कोई दशा है जो दिए गये कार्य के अभ्यास की ओर इंगित करती है तथा उस कार्य के सन्तोषप्रद समापन को परिभाषित करती है।

11. शैफर व अन्य के अनुसार–

अभिप्रेरक क्रिया की एक ऐसी प्रवृत्ति है जो प्रणोदन द्वारा उत्पन्न होती है तथा समायोजन द्वारा समाप्त होती है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

12. पी. टी. यंग के अनुसार–

प्रेरण व्यवहार को जाग्रत करने, क्रिया के विकास को सम्बोधित करने और क्रिया के तरीकों को नियमित करने की प्रक्रिया है।

13. एवरिल के अनुसार–

अभिप्रेरणा का अर्थ है– सजीव प्रयास। यह कल्पना को क्रियाशील बनाती है, यह मानसिक शक्ति गुप्त और अज्ञात स्रोतों को जाग्रत और प्रयुक्त करती है। यह हृदय को स्पन्दित करती है यह निश्चय, अभिलाषा और अभिप्राय को पूर्णतया मुक्त करती है, यह बालक में कार्य करने, सफल होने और विजय पाने की इच्छा को प्रोत्साहित करती है।

14. डॉ. पचौरी के अनुसार–

अभिप्रेरणा का सम्बन्ध उन कारकों से है जो व्यक्ति की क्रिया का बल बढ़ाते हैं या घटाते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं–

1. प्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार को जाग्रत या उत्तेजित करती है। व्यवहार का संचालन प्रेरणा द्वारा ही होता है।
2. प्रेरणा व्यक्ति के अन्दर शक्ति परिवर्तन से प्रारम्भ होती है। अधिकांश प्रेरकों के लिये उत्तरदायी शक्ति परिवर्तनों का वर्णन नहीं किया जा सकता है।
3. प्रेरणा क्रियाशीलता की द्योतक होती है।
4. प्रेरणा की अभिवृत्ति भावात्मक प्रदर्शन द्वारा होती है। भावात्मक जाग्रति संवेगों से जुड़ी हुई है। अनेक बार भावात्मक पक्ष गुप्त रहता है।
5. प्रेरणा साधन है, साध्य नहीं। किसी कार्य को पूर्ण करने के लिये यह एक साधन है। अभिप्रेरणा अधिगम का मुख्य नहीं, सहायक अंग है।
6. प्रेरणा एक शक्ति है, जो क्रिया को प्रारम्भ करती है तथा निर्देशन करती है।
7. प्रेरणा प्राणी की आन्तरिक स्थिति या अवस्था है।
8. प्रेरणा एक कल्पनात्मक प्रक्रिया है, जो व्यवहार के निर्धारण से सम्बन्धित होती है।
9. प्रेरणा पर शारीरिक तथा मानसिक, बाह्य एवं आन्तरिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है।

संक्षेप में, हम कह सकते है कि व्यक्ति की आन्तरिक दशा की उपस्थिति में जब व्यक्ति कोई लक्ष्योन्मुख व्यवहार करता है, तो उसे प्रेरणा कहते हैं।

8.4 अभिप्रेरणा के प्रकार

मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया है, जो निम्नलिखित है–

1. आन्तरिक अभिप्रेरणा
2. बाह्य अभिप्रेरणा

1. आन्तरिक अभिप्रेरणा

आन्तरिक अभिप्रेरणा में किसी भी अनुक्रिया के लिए बाह्य उद्दीपन की आवश्यकता नहीं होती प्राणी स्वयं अपनी इच्छा से किसी कार्य को करता है। इस प्रकार की अभिप्रेरणा स्वयं प्राणी में ही निहित होती है।

2. बाह्य अभिप्रेरणा

इस प्रकार की अभिप्रेरणा में किसी भी अनुक्रिया के लिए बाह्य उद्दीपन की आवश्यकता पड़ती हैं। प्राणी स्वयं अपनी इच्छा से किसी अनुक्रिया को नहीं करता है। इस प्रकार की अभिप्रेरणा के अन्तर्गत प्रशंसा, निन्दा, पुरस्कार, प्रतिद्वन्दिता आदि आती है। बाह्य अभिप्रेरणा का सम्बन्ध निम्न स्तर की आवश्यकताओं से होता है। इस सन्दर्भ में प्रैसी, रोबिन्सन तथा होरोक्स के विचार निम्न है–

अधिगम विधि के रूप में बाह्य अभिप्रेरणा, आन्तरिक अभिप्रेरणा से निम्न कोटि की होती है।

8.4.1 मास्लो के अनुसार अभिप्रेरणा के प्रकार

मास्लो ने अभिप्रेरणा को मुख्यतः चार वर्गों में विभाजित किया है, जो निम्न प्रकार है–

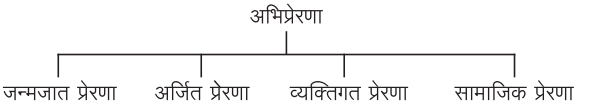

1. जन्मजात प्रेरणा

इस प्रकार की अभिप्रेरणा प्राणी में जन्म से ही पाई जाती है। इसकी सन्तुष्टि के अभाव में प्राणी जीवित नहीं रह सकता है। इस प्रकार की अभिप्रेरणा को हम शरीर जनित अभिप्रेरणा या प्राथमिक अभिप्रेरणा भी कहते है। जन्मजात प्रेरकों में प्यास, भूख, काम, विश्राम, प्रेम, क्रोध, मलमूत्र त्यागना आदि आते हैं।

2. अर्जित प्रेरणा

इस प्रकार की अभिप्रेरणा, व्यक्ति, शिक्षा, मानसिक परिपक्वता एवं वातावरण के सम्पर्क में आकर प्राप्त करता है। इस प्रकार यह जन्म से विद्यमान न होकर वातावरण के सम्पर्क से पायी जाती है।

3. व्यक्तिगत प्रेरणा

इस प्रकार की अभिप्रेरणा, व्यक्तिगत अनुभव द्वारा प्राप्त होती है। इसमें व्यक्तिगत विभिन्नताएँ पाई जाती है। इसके अन्तर्गत क्रमशः– आदत, आकांक्षा स्तर, जीवन लक्ष्य, मद व्यसन, रूचि, मनोवृत्ति तथा अचेतन अभिप्रेरणा होती हैं।

4. सामाजिक प्रेरणा

इस प्रकार की अभिप्रेरणा व्यक्ति को सामाजिक व्यवहार करने की प्रेरणा देती है। इसके अन्तर्गत क्रमशः सामूहिकता, आत्म गौरव, आध्यात्मिक, सामाजिक सुरक्षा आदि आते हैं।

8.4.2 गैरेट के अनुसार अभिप्रेरणा के प्रकार

गैरेट ने प्रेरणा को तीन प्रकार में वर्गीकृत किया है, जो निम्नलिखित है–

1. जैविक अभिप्रेरणा
2. मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा
3. सामाजिक अभिप्रेरणा

8.4.3 थॉमसन के अनुसार अभिप्रेरणा के प्रकार

थॉमसन ने अभिप्रेरणा को दो वर्गों में विभाजित किया है, जो निम्न प्रकार है–

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

1. स्वाभाविक अभिप्रेरणा
2. कृत्रिम अभिप्रेरणा

8.5 अभिप्रेरणा के स्त्रोत या चरण

कई शब्द ऐसे हैं जो अभिप्रेरणा से किसी न किसी अर्थ में जुडे हुए हैं। इन शब्दों का प्रयोग अभिप्रेरणा के सन्दर्भ में कई बार होता रहता है, लेकिन इन विभिन्न शब्दों का प्रयोग भी विशिष्ट ही होता है। अभिप्रेरणा की सभी परिस्थितियों में सभी शब्दों का प्रयास नहीं किया जाता। अभिप्रेरणा के सन्दर्भ में इन शब्दों का उचित प्रयोग करने के लिए उन शब्दों को व उनके अर्थों को समझना बहुत आवश्यक है अन्यथा अभिप्रेरणा की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझ पाना कठिन हो जाता है।

प्रेरणा के निम्नलिखित 4 स्रोत हैं–

1. आवश्यकताएँ
2. चालक
3. उद्दीपन
4. प्रेरक

1. आवश्यकताएँ

प्रत्येक प्राणी की कुछ आधारभूत आवश्यकताएँ होती हैं, जिनके अभाव में उसका अस्तित्व असम्भव है, जैसे– जल, वायु, भोजन आदि। यदि उसकी कोई आवश्यकता पूर्ण नहीं होती है, तो उसके शरीर में तनाव और असंतुलन उत्पन्न हो जाता है जिसे फलस्वरूप उसका क्रियाशील होना अनिवार्य हो जाता है, जैसे– जब प्राणी को भूख लगती है, तब उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है, जिसके फलस्वरूप वह भोजन की खोज करने के लिए क्रियाशील हो जाता है। जब उसे भोजन मिल जाता है, तब उसकी क्रियाशीलता और उसके साथ ही उसके शारीरिक तनाव का अन्त हो जाता है। अतः हम बोरिंग, लैंगफील्ड एवं वील्ड के शब्दों में कह सकते है–

> आवश्यकता, शरीर की कोई जरूरत या अभाव है, जिसके कारण शारीरिक असन्तुलन या तनाव उत्पन्न हो जाता है, इस तनाव में ऐसा व्यवहार उत्पन्न करने की प्रवृत्ति होती है जिससे आवश्यकता के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला असन्तुलन समाप्त हो जाता है।

इसी बात को वे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते है–

> आवश्यकताएँ प्राणियों के भीतर का तनाव है, जो कुछ उद्दीपनों (प्रोत्साहनों) या लक्ष्यों के सम्बन्ध में प्राणी के क्षेत्र को व्यस्थित करने में प्रस्तुत करती है जो लक्ष्य प्राप्ति हेतु निर्देशित क्रिया को उत्तेजित करता है।

2. चालक

प्राणी की आवश्यकताएँ उनसे सम्बन्धित चालकों को जन्म देती हैं। उदाहरणार्थ, भोजन प्राणी की आवश्यकता है। यह आवश्यकता उसमें **भूख–चालक** को जन्म देती है। इसी प्रकार पानी की आवश्यकता, **प्यास–चालक** की उत्पत्ति का कारण होती है। **चालक**, प्राणी को एक निश्चित प्रकार की क्रिया या व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है, जैसे– भूख–चालक उसे भोजन करने के लिए प्रेरित करता है। अतः हम बोरिंग, लैंगफील्ड एवं वील्ड के शब्दों में कह सकते हैं–

> चालक, शरीर की एक आन्तरिक क्रिया या दशा है, जो एक विशेष प्रकार के व्यवहार के लिए प्रेरणा प्रदान करती है।

प्रेरकों को **अन्तर्नोद** अथवा **चालक** भी कहते हैं। प्रेरक क्रिया करने की शक्ति या ऊजा है। डेशियल के अनुसार–

> प्रेरक आदि शक्ति का मूल स्रोत है जो मन को क्रियाशील बनाता है।

शेफर तथा अन्य के अनुसार–

> प्रेरक एक सुदृढ़ तथा अचल उत्तेजक है, जो किसी समायोजक की अनुक्रिया की माँग करता है।

हिलगार्ड के अनुसार–

> उपयुक्त उद्दीपन की प्राप्ति से अन्तर्नोद की तीव्रता कम हो जाती है और व्यक्ति का मानसिक तनाव दूर हो जाता है।

3. उद्दीपन

किसी वस्तु की आवश्यकता उत्पन्न होने पर उसको पूर्ण करने के लिए **चालक** उत्पन्न होता है। जिस वस्तु से यह आवश्यकता पूर्ण होती है, उसे **उद्दीपन** कहते हैं, जैसे– भूख एक चालक है, और भूख–चालक को भोजन सन्तुष्ट करता है। अतः भूख–चालक के लिए भोजन **उद्दीपन** है। इसी प्रकार, **काम–चालक** का उद्दीपन है– दूसरे लिंग का व्यक्ति, क्योंकि उसी से यह चालक सन्तुष्ट होता है। अतः हम बोरिंग, लैंगफील्ड एवं वील्ड के शब्दों में कह सकते हैं–

> उद्दीपन की परिभाषा उस वस्तु, स्थिति या क्रिया के रूप में की जा सकती है, जो व्यवहार को उद्दीप्त, उत्साहित और निर्देशित करता है।

आवश्यकता, चालक व उद्दीपन का सम्बन्ध–

हमने आवश्यकता, चालक और उद्दीपन के बारे में जो कुछ लिखा है, उससे सिद्ध हो जाता है कि इन तीनों का एक–दूसरे से सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को **आवश्यकता चालक–उद्दीपक** सूत्र से व्यक्त करते हुए हिलगार्ड ने लिखा है–

> आवश्यकता, चालक को जन्म देती है। चालक बढ़े हुए तनाव की दिशा है, जो कार्य और प्रारम्भिक व्यवहार की ओर अग्रसर करता है। उद्दीपन बाह्य वातावरण की कोई वस्तु होती है, जो आवश्यकता की सन्तुष्टि करती है और इस प्रकार क्रिया के द्वारा चालक को कम कर देती है।

4. प्रेरक

प्रेरकों के अन्तर्गत **उद्दीपन** के अतिरिक्त चालक, तनाव, आवश्यकता आदि सम्मिलित किये जाते हैं। गेट्स व अन्य के अनुसार–

> प्रेरकों के विभिन्न स्वरूप हैं और इनको विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे– आवश्यकताएँ, इच्छाएँ, तनाव, स्वाभाविक स्थितियाँ, निर्धारित प्रवृत्तियाँ, अभिवृत्तियाँ, रूचियाँ, स्थायी उद्दीपक और इसी प्रकार के अन्य नाम।

प्रेरक क्या हैं? इस सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ इनको जन्मजात या अर्जित शक्तियाँ मानते हैं, कुछ इनको व्यक्ति की शारीरिक या मनोवैज्ञानिक दशाएँ मानते हैं और कुछ इनको निश्चित दिशाओं में कार्य करने की प्रवृत्तियाँ मानते है पर सभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि प्रेरक व्यक्ति को विशेष प्रकार की क्रियाओं या व्यवहार करने के लिए उत्तेजित करते हैं।

ब्लेयर, जोन्स व सिम्पसन के अनुसार–

> प्रेरक हमारी आधारभूत आवश्यकताओं से उत्पन्न होने वाली वे शक्तियाँ हैं जो व्यवहार को दिशा और उद्देश्य प्रदान करती हैं।

www.praganya.org www.praganya.org www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

एलिस क्रो के अनुसार–

> प्रेरकों को ऐसी आंतरिक दशाएँ या शक्तियाँ माना जा सकता है, जो व्यक्ति को निश्चित लक्ष्यों की ओर प्रेरित करती हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि प्रेरक एक व्यापक शब्द है तथा इसके विभिन्न रूप हैं। प्रेरकों को आवश्यकता, इच्छा, तनाव, स्वाभावित स्थितियाँ, निर्धारित प्रवृत्तियाँ, रूचि, स्थायी उद्दीपक आदि नामों से भी पुकारा जाता है। प्रेरक वास्तव में व्यक्ति को उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं।

8.6 अभिप्रेरणा के सिद्धान्त

प्रेरणा के क्षेत्र में सिद्धान्तवादी कुछ प्रश्नों पर बल देते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. प्रमुख प्रेरणा तन्त्र क्या है और वह तन्त्र किस प्रकार प्रेरित करता है?
2. विभिन्न प्रेरणाएँ परस्पर किस प्रकार सम्बन्धित हैं?
3. प्रेरित व्यवहार में किस प्रकार परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया होती है तथा प्रेरित व्यवहार के मनोवैज्ञानिक, पर्यावरणीय तथा दैहिक कारण क्या क्या हैं?

इन प्रश्नों के उत्तर खोजने से ही विभिन्न सिद्धान्तों ने जन्म लिया है, जिनमें के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत हैं–

1. मैकडूगल का मूल प्रवृत्ति सिद्धान्त

इनके अनुसार कोई भी व्यवहार मूल प्रवृत्ति से प्रेरित होने पर ही किया जाता है।

2. आनुवंशिकी पैटर्न सिद्धान्त

लौरेन्ज ने बताया कि प्रेरणा आनुवंशिक होती है।

3. मनोविश्लेषण वादी सिद्धान्त

यह सिद्धान्त सिगमण्ड फायड नेडिया का है। इनके अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को अचेतन प्रेरक प्रभावित करता है, इन्होंने बताया कि मन में इद होता है, जो आनन्द चाहता है तथा अहं वास्तविकता के कार्य करता है तथा परम अहं आदर्शवादी होता है। अहं, इद व परम अहं में सन्तुलन करता है।

4. मास्लो का आवश्यकता अनुक्रम सिद्धान्त

इनके अनुसार व्यक्ति की आवश्यकताएँ एक के बाद एक पदानुक्रमिक अवस्थाओं में पूर्ण होती है। सर्वप्रथम शरीर की आवश्यकता व उसके बाद सुरक्षा की व इसके बाद सामाजिक आवश्यकताएँ तथा सम्मान व अन्त में आत्मयथार्थता की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

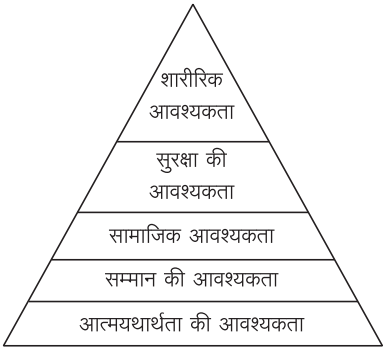

8.7 अभिप्रेरकों के प्रकार

अभिप्रेरकों का वर्गीकरण कई प्रकार से करते हैं। मास्लो के अनुसार अभिप्ररकों को जन्मजात अभिप्रेरक तथा अर्जित अभिप्रेरक में बाँटा जा सकता है। थॉमसन के अनुसार अभिप्रेरकों को स्वाभाविक अभिप्रेरक तथा कृत्रिम अभिप्रेरक में बाँटा जा सकता है। गैरेट के अनुसार अभिप्रेरकों को जैविक अभिप्रेरक, मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरक तथा सामाजिक अभिप्रेरक में बाँटा जा सकता है। इन सभी अभिप्रेरकों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है–

1. जन्मजात अभिप्रेरक

जन्मजात अभिप्रेरक वे अभिप्रेरक हैं, जो व्यक्ति में जन्म से पाये जाते हैं, जैसे– भूख, प्यास, विश्राम, निद्रा आदि।

2. अर्जित अभिप्रेरक

वे प्रेरक जिन्हें प्राणी अपने प्रयासों से प्राप्त करता है अर्जित अभिप्रेरक कहलाते हैं, जैसे– सामाजिकता, रूचि, प्रतिष्ठा आदि।

3. स्वाभाविक अभिप्रेरक

स्वाभाविक अभिप्रेरक व्यक्ति में स्वभाव से पाये जाते हैं, जैसे– खेलना, सुख प्राप्त करना आदि।

4. कृत्रिम अभिप्रेरक

ये प्रेरक प्राणी के कार्य अथवा व्यवहार को नियन्त्रित करने, प्रोत्साहित करने अथवा वांछित दिशा देने के लिए स्वाभाविक अभिप्रेरकों के पूरक के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं, जैसे– पुरस्कार, प्रशंसा, दण्ड आदि।

5. जैविक अभिप्रेरक

जैविक अभिप्रेरक प्राणी की जैविकी आवश्यकताओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। इसके अन्तर्गत प्रायः संवेगों को रखा जाता है, जैसे– क्रोध, भय, प्रेम आदि।

6. सामाजिक अभिप्रेरक

सामाजिक अभिप्रेरक सामाजिक मान्यताओं, सम्बन्धों, परिस्थितियों, आदर्शों आदि के कारण उत्पन्न होते हैं, जैसे– प्रतिष्ठा, सुरक्षा, रचनात्मकता आदि।

7. उपलब्धि अभिप्रेरक

किसी क्षेत्र–विशेष में अधिक से अधिक सफलता प्राप्ति के लिए उसी के अनुरूप कार्य करने की प्रवृत्ति उपलब्धि अभिप्रेरक होती है। मन, फर्नाल्ड के अनुसार–

> उपलब्धि अभिप्रेरक से तात्पर्य श्रेष्ठता का विशेष स्तर प्राप्त करने से होता है।

8. अनुमोदन अभिप्रेरक

अनुमोदन की अभिप्रेरणा जिन व्यक्तियों में अधिक होती है, वे व्यक्ति ऐसे कार्यों को करना अधिक पसन्द करते हैं जिनका करने पर अन्य लोग उनके कार्यों की सराहना व प्रशंसा करें। ऐसे व्यक्तियों की इच्छा होती है कि वे जो कार्य करें अन्य व्यक्तियों द्वारा उसे स्वीकार किया जाए। अन्य व्यक्तियों द्वारा किसी व्यवहार विशेष के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना ही अनुमोदन होता है। जिन व्यक्तियों में अनुमोदन प्रेरणा अधिक होती है वह समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार को करना अधिक पसन्द करते हैं व कई बार अन्य व्यक्तियों अथवा समूह के दबाव में अपना निर्णय बदल देते हैं। ऐसे व्यक्तियों में सुझाव ग्रहणशीलता अधिक पायी जाती है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

इस अभिप्रेरक की अधिकता वयस्कों की अपेक्षा किशारों में अधिक पायी जाती है। ऐसा देखा गया है कि व्यक्ति अपने आत्म–सम्मान को ऊँचा करने की इच्छा से भी इस अभिप्रेरक को अपने अन्दर बनाये रखते हैं अर्थात् सामाजिक नियमों के अनुरूप व्यवहार करते हुए देखे जाते हैं।

8.8 अभिप्रेरित व्यवहार की विशेषताएँ

अभिप्रेरित व्यवहार के लक्षण जानना अत्यावश्यक है, ताकि अध्यापक को कक्षा में अपनी अभिप्रेरणा प्रविधियों के प्रभाव और उनकी उपयोगिता का पूर्ण और वास्तविक ज्ञान हो सके। यदि अध्यापक अभिप्रेरित व्यवहार के लक्षणों से परिचित नहीं है, तो विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में अध्यापक द्वारा किये गये सभी प्रयत्न व्यर्थ जा सकते हैं। अतः अभिप्रेरित व्यवहार के लक्षणों का अध्ययन भी अति आवश्यक है। अभिप्रेरित व्यवहार के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं–

1. ध्यान केन्द्रित होना

अभिप्रेरित व्यक्ति का ध्यान एक ही व्यक्ति या एक ही कार्य पर केन्द्रित रहता है। लक्ष्य प्राप्ति का कार्य विद्यार्थी के लिए सुगम हो जाता है।

2. उत्सुकता

अभिप्रेरणा का प्रभाव विद्यार्थी की उत्सुकता के रूप में देखा जा सकता है। अभिप्रेरित विद्यार्थी कोई भी कार्य देने पर बड़ी उत्सुकता से परिणाम प्राप्त करने के लिए उस कार्य को करेगा। उत्सुकतावश वह कार्य करने के लिए हर समय तैयार रहता है।

3. निरन्तरता

अभिप्रेरित व्यवहार की एक विशेषता यह भी होती है कि व्यक्ति उस कार्य में निरन्तरता बनाये रखता है। वे उस कार्य को निरन्तर करते रहते हैं जब तक कि उनका लक्ष्य उन्हें प्राप्त नहीं हो जाता । यह उनकी अभिप्रेरणा का ही प्रभाव है।

4. आवश्यकता की पूर्ति

अभिप्रेरित व्यवहार द्वारा किसी व्यक्ति की आवश्यकता की सन्तुष्टि होती है, चूँकि आवश्यकता की पूर्ति का सम्बन्ध भी किसी न किसी रूप में अभिप्रेरणा से होता है। अतः अभिप्रेरित व्यवहार द्वारा आवश्यकता की पूर्ति करने में सहायता मिलती है।

5. क्रिया–केन्द्रित प्रक्रिया

अभिप्रेरित व्यवहार किसी न किसी क्रिया को जन्म देता है। अतः अभिप्रेरणा द्वारा उत्पन्न व्यवहार को नियन्त्रित रखना अति आवश्यक है।

6. बेचैनी का दूर होना

आवश्यकता की पूर्ति से या लक्ष्य की प्राप्ति पर व्यक्ति के अन्दर उत्पन्न तनाव या बेचैनी कम या दूर हो जाती है। अतः अभिप्रेरित व्यवहार से कोई कार्य किया जाए तो संवेगात्मक पक्ष नियन्त्रित रहता है।

7. शक्ति संचालन

अभिप्रेरणा के दौरान मनुष्य में एक प्रकार की शक्ति उत्पन्न होती है। इस शक्ति के संचालन से कोई कार्य बिना थके या बिना रूके किया जा सकता है। शक्ति संचालन के अन्तर्गत कई–कई घण्टों तक लगातार व्यक्ति कार्य करते रहने के लिए अभिप्रेरित रहता है।

8.9 अभिप्रेरणा की विधियाँ

शिक्षार्थियों का विद्यालय में आना इस बात की ओर संकेत करता है कि वे सीखने के लिए अभिप्रेरित हैं, पर कितने अधिक अथवा कम, यह अलग बात है। उनकी इस अभिप्रेरणा के पीछे कोई एक अभिप्रेरक भी हो सकता है, दो अभिप्रेरक भी हो सकते हैं और दो से अधिक अभिप्रेरक भी हो सकते हैं। हम जानते हैं कि सीखना मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। हो सकता है कि कुछ शिक्षार्थी अपनी इस प्रकृति की सन्तुष्टि के लिए विद्यालय आते हों। हम जानते हैं कि मनुष्य में सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति होती है, हो सकता है कुछ शिक्षार्थी इस मूल प्रवृत्ति की सन्तुष्टि के लिए विद्यालय आते हों। यह भी हो सकता है कि कुछ शिक्षार्थी मित्रों की संगत के लोभ से विद्यालय आते हों। कुछ शिक्षार्थी खेल–कूद सुविधाओं के कारण भी विद्यालय आ सकते हैं और कुछ शिक्षार्थियों के लिए समाज में पढ़े–लिखे व्यक्तियों का उच्च स्तर होना उनकी अभिप्रेरण का आधार हो सकता है। कुछ शिक्षार्थी इनमें से किसी एक अभिप्रेरक से अभिप्रेरित हो सकते हैं और कुछ एक से अधिक अभिप्रेरकों से। कोई शिक्षार्थी चाहे एक अभिप्रेरक से अभिप्रेरित हो और चाहे एक से अधिक अभिप्रेरकों से, वह जितना अधिक अभिप्रेरित होगा, सीखने की प्रक्रिया उतनी ही अधिक सुचारू रूप से चलेगी और सीखना भी उतना ही अधिक स्थायी होगा। शिक्षार्थियों को सीखने के लिए पूर्ण रूप से अभिप्रेरित करने के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा विकसित की गई कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. पढ़ाए जाने वाले विषय अथवा सिखाए जाने वाले कौशल की उपयोगिता

उपयोगिता सबसे अधिक शक्तिशाली अभिप्रेरक होता है। यदि शिक्षार्थियों को यह स्पष्ट कर दिया जाए कि पढ़ाया जाने वाला विषय अथवा सिखाया जाने वाला कौशल उनके जीवन में उनके लिए कितना उपयोगी है, तो जितना अधिक उन्हें उसकी उपयोगिता का आभास होगा, वे सीखने के लिए उतने ही अधिक अभिप्रेरित होंगे।

2. पढ़ाए जाने वाले विषय अथवा सिखाए जाने वाले कौशल के प्रशिक्षण के उद्देश्य

किसी विषय अथवा कौशल की जीवन में उपयोगिता के साथ किसी दिन पढ़ाए जाने वाले विषय अथवा सिखाए जाने वाले कौशल के उद्देश्य एवं लक्ष्य भी स्पष्ट करना आवश्यक होता है। ये प्रथम विधि से अभिप्रेरित शिक्षार्थियों को सीखने के लिए और अधिक अभिप्रेरित करते हैं। शिक्षार्थियों को सीखे जाने वाले ज्ञान अथवा कौशल के सीखने के उद्देश्य जितने अधिक स्पष्ट होते हैं वे सीखने के लिए उतने ही अधिक अभिप्रेरित होते हैं और उनकी सीखने सम्बन्धी क्रियाएँ भी उतनी ही अधिक उद्देश्य लक्षित होती हैं।

3. शिक्षार्थियों का आकांक्षा स्तर

कुछ शिक्षार्थी केवल उत्तीर्ण होने भर की आकांक्षा रखते हैं, कुछ द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने की और कुछ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने की। इसी प्रकार कुछ शिक्षार्थी छोटे–मोटे व्यवसाय को प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं, कुछ की

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

आकांक्षाएँ इससे अधिक होती हैं और कुछ की आकांक्षाएँ तो आसमान को छूती हैं। यह देखा गया है कि जिन शिक्षार्थियों का आकांक्षा स्तर जितना अधिक ऊँचा होता है वे तत्सम्बन्धी ज्ञान एवं कौशल सीखने के लिए उतने ही अधिक अभिप्रेरित होते हैं। साफ जाहिर है कि शिक्षार्थियों का आकांक्षा स्तर उठाकर हम उनकी अभिप्रेरणा में वृद्धि कर सकते हैं।

4. शिक्षार्थियों की आवश्यकताएँ

किसी विषय का ज्ञान एवं कौशल का शिक्षण एवं प्रशिक्षण अपने में कितना भी उपयोगी क्यों न हो, लेकिन यदि वह शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि नहीं करता तो शिक्षार्थी उसे सीखने के लिए अभिप्रेरित नहीं होते। शिक्षार्थियों को अभिप्रेरित करने के लिए यह आवश्यक होता है कि सिखाए जाने वाले ज्ञान अथवा कौशल का सम्बन्ध उनकी आवश्यकताओं से जोड़ा जाए। छात्रों की विषय अथवा कौशल के प्रति अभिप्रेरणा बढ़ाने की यह उत्तम विधि मानी जाती है, और वास्तव में होती भी है।

5. कक्षा का वातावरण

कक्षा का वातावरण भी शिक्षार्थियों को अभिप्रेरित करने में अभिप्रेरक का कार्य करता है। सुन्दर कक्ष, शुद्ध हवा, पर्याप्त प्रकाश, शान्त वातावरण, शिक्षक–शिक्षार्थियों के बीच के सम्बन्ध और शिक्षार्थियों के आपस के सम्बन्ध, इन सबसे कक्षा का वातावरण तैयार होता है। जिस कक्षा में सीखने के लिए जितना अच्छा वातावरण होता है उस कक्षा के शिक्षार्थी उतने ही अधिक अभिप्रेरित होते हैं।

6. शिक्षक का व्यवहार

शिक्षक का शिक्षार्थियों के प्रति आत्मभाव एक अचूक रामबाण होता है। वह अपने प्रेम, सहानुभूति एवं सहयोगपूर्ण व्यवहार से शिक्षार्थियों की अभिप्रेरणा को सरलता से बढ़ा सकता है। यह कार्य वह छात्रों की भावनाओं का सम्मान करके, उन्हें अभिव्यक्ति के स्वतन्त्र अवसर प्रदान करके और उनकी समस्याओं का तुरन्त हल करके कर सकता है।

7. प्रशंसा एवं निन्दा

इस सन्दर्भ में किए गए मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से दो तथ्य उजागर हुए। प्रथम यह कि औसत बुद्धि वाले शिक्षार्थियों के लिए प्रशंसा अच्छे अभिप्रेरक का कार्य करती है और छोटे बच्चों के लिए निन्दा अच्छे अभिप्रेरक का कार्य करती है और दूसरा यह कि निन्दा की अपेक्षा प्रशंसा अधिक अच्छा अभिप्रेरक होता है। यह कार्य शिक्षक शिक्षार्थियों की सही अनुक्रिया के लिए प्यार एवं मुस्कान भरी स्वीकृति एवं सुन्दर, बहुत ठीक आदि शब्दों के द्वारा कर सकते हैं। गलत अनुक्रिया पर निन्दा के स्थान पर सहयोग अधिक उत्तम अभिप्रेरक होता है। यदि कोई शिक्षार्थी बार–बार गलत अनुक्रिया करे तो भी उसकी निन्दा, प्रेम एवं सहानुभूति के साथ करनी चाहिए।

8. प्रतिद्वन्द्विता एवं प्रतियोगिता

कभी–कभी स्पर्धा आधारित प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता भी अच्छे अभिप्रेरक का कार्य करती हैं। यह प्रतिद्वन्द्विता व्यक्तिगत के स्थान पर सामूहिक स्तर पर अधिक प्रभावशाली होती है। व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विता एवं प्रतियोगिता, जहाँ अच्छे अभिप्रेरक का कार्य करती हैं वहाँ शिक्षार्थियों में द्वेष की भावना भी उत्पन्न करती हैं, परन्तु सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता एवं प्रतियोगिता शिक्षार्थियों को अपने समूह को विजयश्री दिलाने हेतु अधिक श्रम करने के लिए अभिप्रेरित करती है। शिक्षकों को प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता का उपयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए।

9. पुरस्कार एवं दण्ड

इस सन्दर्भ में किए गए मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में पाया गया कि जिस समूह की प्रशंसा की गई उसकी निष्पत्ति उस समूह से अधिक थी जिसकी आलोचना की गई थी और जिसे नियन्त्रण में रखा गया था। मनोवैज्ञानिकों ने स्पष्ट किया कि पुरस्कार छात्रों में सन्तोष उत्पन्न करता है और उनका मनोबल बढ़ाता है, जिससे वे सीखने के लिए अभिप्रेरित रहते हैं और दण्ड छात्रों में खीज उत्पन्न करता है और उनका मनोबल गिराता है जिससे छात्रों का सीखने में मन नहीं लगता, परन्तु पुरस्कार बड़ी सावधानी से देना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि छात्र मूल उद्देश्य से भटक जाएँ और पुरस्कार पाना ही उनका उद्देश्य हो जाए। पुरस्कार छात्रों की विशेष सफलता पर ही देना चाहिए और तुरन्त देना चाहिए और प्रशंसा, प्रमाण–पत्र अथवा पदक के रूप में देना चाहिए। कुछ परिस्थितियों में बच्चों को दण्ड देना अभिप्रेरक का कार्य करता है, जैसे– उन्हें अन्यथा आचरण से रोकने के लिए दिए जाने वाला दण्ड, परन्तु दण्ड बड़ी सावधानी से देना चाहिए। क्रोध की स्थिति में दण्ड देना हानिकारक होता है। इससे शिक्षार्थी अभिप्रेरित होने के स्थान पर पलायन कर जाते हैं।

10. सफलता का ज्ञान

मनोवैज्ञानिक स्कीनर ने अपने प्रयोगों में पाया कि यदि सीखने वाले को अपनी सफलता का ज्ञान तुरन्त करा दिया जाए, तो वह उसके लिए अभिप्रेरक का कार्य करता है, वह उससे आगे के कार्य को और अधिक उत्साह से करता है। स्कीनर ने इसे पुनर्बलन की संज्ञा दी। उन्होंने शिक्षार्थियों के इस प्रकार के पुनर्बलन देने हेतु अभिक्रमित अध्ययन का विकास भी किया।

11. उपयुक्ततम शिक्षण विधियों का प्रयोग

शिक्षक उपयुक्ततम शिक्षण विधि वह होती है जिसमें छात्रों की रुचि होती है और जिसके द्वारा वे शीघ्र सीखते हैं। शीघ्र सफलता से पुनर्बलन मिलता है, सीखने वाले अभिप्रेरित होते हैं और सीखने की क्रिया को और अधिक गति प्रदान होती है।

शिक्षार्थियों की अभिप्रेरणा बढ़ाने की और भी अनेक विधियाँ हो सकती हैं। शिक्षकों को किसी भी विधि का चयन शिक्षार्थियों की आयु, परिपक्वता, मनोदशा, विषयवस्तु अथवा कौशल की प्रकृति और शिक्षार्थियों के पर्यावरण, इन सबको दृष्टि में रखकर करना चाहिए, जब जो विधि या विधियाँ उपयुक्त हों, तब उनके द्वारा उनकी अभिप्रेरणा को बढ़ाना चाहिए। यह भी अपने में एक कला है, शिक्षक को इस कला में निपुण होना चाहिए।

8.10 अभिप्रेरणा के लिए उत्तरदायी कारक

व्यक्ति का समस्त व्यवहार अभिप्रेरणा पर ही आधारित होता है। शिक्षा प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए तथा बालक को ज्ञान प्राप्त कराने के लिए उसे प्रेरित करना अति आवश्यक है। प्रेरणा मिलने से बालक की पढ़ने में रुचि हो जाती है। जॉन पी. डिसेकी ने अभिप्रेरणा देने वाले चार कारकों का वर्णन किया है, जो निम्नलिखित हैं–

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

1. उत्तेजना
2. आकांक्षा
3. प्रोत्साहन
4. दण्ड तथा अनुशासन

8.10.1 उत्तेजना

उत्तेजना शक्ति प्रदान करती है परन्तु निर्देशन नहीं प्रदान करती। जैसे– किसी मशीन को चालू कर दिया जाए परन्तु उसका मार्ग निश्चित नहीं किया जाए। उत्तेजना व्यक्ति की सक्रियता के लिए आवश्यक घटक माना जाता है।

उत्तेजना के तीन स्तर होते हैं–

1. उच्च स्तर
2. मध्य स्तर
3. निम्न स्तर

व्यक्ति को उत्तेजना दो स्रोतों से मिलती है–

1. **आन्तरिक उत्तेजना स्रोत** – शारीरिक रूप से शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए व्यक्ति सक्रिय होता है। व्यक्ति स्वभाव से ही सक्रिय होता है। आन्तरिक योजना स्त्रोत शारीरिक निम्न स्तर की आवश्यकताओं से लेकर उच्च स्तर की आवश्यकताओं तक होता है।
2. **बाह्य उत्तेजना स्रोत** – सामान्यतया वातावरण से व्यक्ति को उत्तेजना मिलती है। वातावरण के तत्त्व उद्दीपन का कार्य करते हैं। वातावरण की नवीनता भी बालकों को प्रेरित करती है। नीरसता को दूर करने के लिए परिवर्तन तथा वातावरण की नवीनता आवश्यक होती है। उत्सुकता तथा उत्तेजना दोनों ही भावना के स्तर को उठाने में सहायक होते हैं। उत्तेजना में भावुकता की मात्रा अधिक होती है। उत्तेजना का छात्र की निष्पत्तियों से धनात्मक सह–सम्बन्ध होता है।

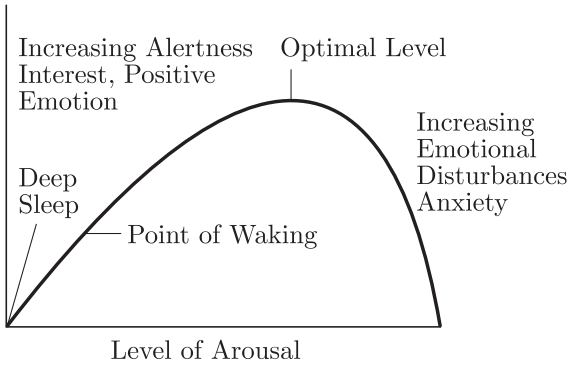

प्राणी को अधिकाधिक कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए मध्य स्तर की जागरूकता पर्याप्त होती है। वह अधिकतर हल्के उद्दीपनों को ग्रहण करता है तथा तेज उद्दीपनों से बचना चाहता है। संलग्न वक्र से यह स्पष्ट होता है कि स्मरण करना, जोड़ने की समस्याओं को हल करना तथा अक्षरों को याद करना आदि क्रियाओं में मध्य स्तर की जागरूकता कुशलतापूर्वक होती है।

उत्तेजना के लिए शिक्षक का कार्य

शिक्षण में उत्तेजना से तात्पर्य छात्रों की सक्रियता के सामान्य स्तर से है। शिक्षक के समक्ष छात्रों के लिए उत्तेजना की समस्या आती है। छात्रों की निष्पत्ति उसी समय अच्छी होती है, जबकि छात्र न अधिक भावुक और न अधिक सुस्त होता है। शिक्षक का कार्य छात्रों को सक्रिय रखना है। कक्षा की दैनिक क्रियाओं की नीरसता को कम करने के लिए छात्रों को उत्तेजित करना चाहिए। अमूर्त प्रकरण को उदाहरणों की सहायता से स्पष्ट करना चाहिए। अज्ञात प्रकरण को सादृश्य अनुभव की सहायता से बोधगम्य बनाना चाहिए। उत्तेजना के कार्य का अर्थ शिक्षक के लिए छात्रों को सीखने में संलग्न रखने तथा सक्रिय बनाने हेतु प्रयत्न करना है। इसके लिए शिक्षक को अन्वेषण तथा बेन–स्टॉरमिंग विधियों को प्रस्तुत करना चाहिए। छात्रों के पूर्व व्यवहार के आधार पर शिक्षक उनकी आवश्यकतानुसार उत्तेजना स्तर कम तथा अधिक कर सकता है।

8.10.2 आकांक्षा

किसी कार्य के लिए हम कितनी अपेक्षा करते हैं और कितना वास्तव में कर पाते हैं, यह अन्तर हमें उत्तेजित करता है। यह उत्तेजना प्रदान करने का एक स्रोत भी माना जाता है।

अनुदेशन के उद्देश्य भी आकांक्षा का कार्य करते हैं। इनसे शिक्षक का विशेष सम्बन्ध रहता है, परन्तु शिक्षक को छात्रों की आकांक्षाओं तथा मूल्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

छात्र जिस शक्ति से अनुदेशन उद्देश्यों को पाने का प्रयास करता है वही उसकी आकांक्षा तथा शक्ति– सन्तुलन का परिणाम होता है। इस प्रकार छात्र जिस प्रेरक को पाना चाहता है। उससे उसकी आकांक्षा तथा शक्ति सन्तुलन का पता चलता है। ब्रून के अनुसार–

> आकांक्षा एक क्षणिक विश्वास होता है कि एक विशेष क्रिया के करने से एक विशेष परिणाम निकलेगा।

आकांक्षा तथा प्रत्यक्षीकरण में अन्तर उत्तेजना स्रोत का कार्य करता है। अन्तर के आकार को छात्र की भावना निर्धारित करती है। अधिक अन्तर होने पर असन्तुष्टि की भावना विकसित होती है और कम अन्तर होने पर प्रसन्नता का अनुभव करता है। निष्पत्ति अभिप्रेरणा इसी का परिणाम होता है।

आकांक्षा के लिए शिक्षक का कार्य

शिक्षक का मुख्य कार्य छात्रों की आकांक्षाओं को बदलना है, जिससे वह अनुदेशन उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके। छात्रों की तत्कालीन आकांक्षा को अन्तिम आकांक्षा से सम्बन्ति करना चाहिए, जिससे छात्र सीखने में पूर्णतः संलग्न हो सकें। आकांक्षाएँ पूर्व–अनुभवों तथा निष्पत्तियों पर आधारित होती हैं। शिक्षक का कर्त्तव्य होता है कि कक्षा के आकांक्षा स्तर को ऊँचा उठाये, क्योंकि आकांक्षा स्तर ही निष्पत्ति स्तर के लिए उत्तरदायी माना जाता है, इसके लिए शिक्षक को छात्रों की आकांक्षा में परिवर्तन लाना चाहिए, तभी वह अनुदेशन उद्देश्यों की प्राप्ति करने में सफल हो सकता है।

8.10.3 प्रोत्साहन

प्रोत्साहन वास्तव में मानव जीवन का लक्ष्य होता है। हल तथा स्पेन्स का मत है कि प्राणी की क्रियाओं को लक्ष्य अथवा प्रोत्साहन द्वारा प्रेरित किया जा सकता है। जीव जो भी क्रियाएँ करता है उनमें कुछ न कुछ पाना चाहता है। जितना ही प्रोत्साहन का आकार बड़ा होता है उतना ही अधिक प्रेरणा मिलती है। व्यक्ति

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

के कार्य की शक्ति प्रोत्साहन की प्रकृति से प्रभावित होती है।

प्रोत्साहन के लिए शिक्षक का कार्य

शिक्षक का कर्त्तव्य यह है कि छात्रों की अनुक्रियाओं को इस प्रकार पुनर्बलन प्रदान करे जिससे वह अनुदेशन के उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके, इसके लिए प्रशंसा, उत्साहवर्धन, परीक्षाफल, प्रतियोगिता आदि को प्रयुक्त करना चाहिए। प्रशंसा करने से छात्रों का निष्पत्ति स्तर ऊँचा उठता है।

परीक्षाफल पृष्ठपोषण के लिए अधिक प्रभावशाली माना जाता है। परीक्षाफल में आशा से अधिक अंक पाने पर उस विषय को सीखने के लिए प्रेरणा मिलती है तथा सीखने की प्रक्रिया की गति में वृद्धि भी होती है। शिक्षक को गृह–कार्यों का मूल्यांकन करने में उनका अंकन तथा मूल्यांकन करना चाहिए तथा उन्हें शीघ्र छात्रों को वापस लौटाना चाहिए। इससे अधिगम के कार्यों में छात्रों की रूचि बढ़ती है।

8.10.4 दण्ड तथा अनुशासन

दण्ड एक उद्दीपन के समान होता है जिससे व्यक्ति बचने को प्रयास करता है। दण्ड व्यवहार को रोकने के लिए उतना ही दिया जाना चाहिए जितने से अपना उद्देश्य प्राप्त किया जा सके। दण्ड के दो रूप होते हैं–

1. उस व्यक्ति को दिया जाए जिसने गलत व्यवहार किया है, जिससे वह भविष्य में उस व्यवहार की पुनरावृत्ति न करे।
2. अन्य व्यक्ति के समक्ष इसलिए दिया जाता है, जिससे वह व्यक्ति भी ऐसे व्यवहार न करे।

दण्ड के लिए शिक्षक का कार्य

अध्यापक को छात्र के अवांछित व्यवहारों को रोकने के लिए दण्ड दिया जाना चाहिए। कक्षा अनुशासन तथा विद्यालय में अनुशासन रखने के लिए दण्ड दिया जा सकता है। दण्ड अनुशासन का ही रूप होता है। दण्ड उस समय विशेष उपयोगी होता है जबकि–

1. पुरस्कार के साथ प्रयुक्त किया जाए, अच्छे व्यवहार की प्रशंसा तथा अवांछनीय व्यवहारों के लिए दण्ड दिया जाए।
2. अवांछित व्यवहार का परिणाम क्षतिपूर्ण हो।
3. अवांछित व्यवहार के लिए तत्काल ही दण्ड दिया जाए जिससे, छात्र यह अनुभव कर सके कि उसको अवांछनीय कार्य के कारण दण्ड दिया गया है।

स्किनर ने दण्ड को स्वयं संवेग नहीं माना है, क्योंकि इसका आधार भय होता है। उनका सुझाव है कि अवांछनीय कार्यों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, क्योंकि दण्ड देने पर अवांछनीय व्यवहारों को बल मिलता है। छात्रों में हीनभावना का विकास होता है, शिक्षक के प्रति सद्भावना नहीं रहती है। अतः इसका प्रयोग कभी–कभी ही करना चाहिए।

8.11 अधिगम में अभिप्रेरणा का स्थान

शिक्षा के क्षेत्र में अधिगम तथा अधिगम के क्षेत्र में अभिप्रेरणा का विशेष स्थान होता है। किसी भी प्रकार का अधिगम बिना अभिप्रेरणा के सम्भव नहीं होता है। इस सन्दर्भ में एंडरसन का कहना है कि–

> अधिगम अभिप्रेरणा पाकर सर्वोत्तम ढंग से आगे बढ़ता है।

जबकि इस सन्दर्भ में थॉमसन का विचार है कि–

> अभिप्रेरणा छात्र में रूचि उत्पन्न करने की कला है।

शिक्षण के नियोजन तथा व्यवस्था को चाहे कितना ही अच्छा क्यों न बना लिया जाये, परन्तु जब तक छात्रों के व्यवहार को अभिप्रेरित नहीं किया जाता, तब तक अधिगम प्रक्रिया तथा शिक्षण प्रक्रिया दोनों ही आगे नहीं बढ़ सकती है। अतः छात्रों के व्यवहार को उत्प्रेरित, प्रोत्साहित और निर्देशित करने के लिए अध्यापक को अभिप्रेरणा का सहारा लेना पड़ता है, जिससे अधिगम उद्देश्यों को भली–भाँति प्राप्त किया जा सके। मानव के समस्त व्यवहार और क्रियाएँ प्ररेणा पर ही आधारित होती है। शिक्षा की प्रक्रिया भी प्रेरणा के बिना सम्भव नहीं हो सकती है। इस प्रेरणा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कैली ने कहा है कि–

> अभिप्रेरणा अधिगम प्रक्रिया के उचित व्यवस्थापन में केन्द्रीय कारक होता है। किसी प्रकार की भी अभिप्रेरणा सभी अधिगम में अवश्य उपस्थित रहनी चाहिए।

क्लासमियर व गुडविन ने लिखा है–

> सीखने के लिए प्रेरणा का महत्त्व निस्संदेह रूप से साधारणतः स्वीकार किया जाता है।

यह उद्धरण इस विचार का समर्थन करता है कि सीखने की प्रक्रिया में प्रेरणा के महत्त्वपूर्ण स्थान के सम्बन्ध में मत–विभिन्नता नहीं हो सकती है। प्रेरणा, सीखने का महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रेरणाहीन क्रिया के सीखने में व्यक्ति रूचि नही लेता। सीखने में प्रेरणा का महत्त्व इस प्रकार है–

1. बालक के व्यवहार में परिवर्तन

शिक्षक प्रशंसा, निन्दा, पुरस्कार, भर्त्सना आदि कृत्रिम प्रेरकों का बुद्धिमानी से प्रयोग करके बालकों के व्यवहार को निर्देशित और परिवर्तित कर सकता है।

2. चरित्र–निर्माण में सहायता

शिक्षक, बालकों को उत्तम गुणों और आदर्शों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर सकता है। इस प्रकार, वह उनके चरित्र–निर्माण में सहायता दे सकता है।

3. ध्यान केन्द्रित करने में सहायता

क्रो एवं क्रो के अनुसार–

> शिक्षक, बालकों को प्रेरित करके, उन्हें अपने ध्यान को पाठ्य–विषय पर केन्द्रित करने में सहायता दे सकता है।

4. मानसिक विकास

क्रो व क्रो के शब्दों में–

> प्रेरक, छात्र को अपनी सीखने की क्रियाओं में प्रोत्साहन देते हैं।

अतः शिक्षक, प्रेरकों का प्रयोग करके छात्रों को ज्ञान का अर्जन करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। इस प्रकार, वह उनके मानसिक विकास में अपूर्व योग दे सकता है।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

5. रूचि का विकास

थॉमसन के अनुसार–

> प्रेरणा, छात्र में रूचि उत्पन्न करने की कला है।

अतः शिक्षक, प्रेरणा का प्रयोग करके बालकों में कार्य या अध्ययन के प्रति रूचि का विकास कर सकता है। इस प्रकार, वह उनके लिए ज्ञान प्राप्त करने का कार्य सरल बना सकता है।

6. अनुशासन की भावना का विकास

शिक्षक, बालकों को अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकता है। इस प्रकार, वह उनमें अनुशासन की भावना का विकास करके अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान कर सकता है।

7. सामाजिक गुणों का विकास

शिक्षक, बालकों को सामुदायिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रेरित करके उनमें सामुदायिक भावना और सामाजिक गुणों का विकास कर सकता है। इस प्रकार, वह उनको समाज के अच्छे और उपयोगी सदस्य बनने का प्रशिक्षण दे सकता है।

8. अधिक ज्ञान का अर्जन

क्रो एवं क्रो के अनुसार–

> शिक्षक बालकों में प्रतियोगिता की भावना का विकास करके, उन्हें अधिक ज्ञान का अर्जन करने के लिए प्रेरणा प्रदान कर सकता है।

9. तीव्र गति से ज्ञान का अर्जन

शिक्षक उत्तम शिक्षण विधियों का प्रयोग करके बालकों को तीव्र गति से ज्ञान का अर्जन करने के लिए प्रेरित कर सकता है।

10. व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार प्रगति

प्रेरक, व्यक्ति को उस क्रिया को चुनने में सहायता देते हैं, जिसे करने की उसकी इच्छा होती है। अतः शिक्षक उचित प्रेरकों का प्रयोग करके, बालकों को अपनी इच्छानुसार कार्य या विषय का चुनाव करने में योग दे सकता है। इस प्रकार, वह उनको अपनी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार प्रगति करने का अवसर दे सकता है।

प्रेरणा, शिक्षा की प्रक्रिया का मुख्य आधार और सीखने का ऐसा शक्तिशाली साधन है, जिसका प्रयोग करके शिक्षक, बालकों को उनके साध्य तक पहुँचा सकता है, उनकी क्रियाओं को किसी भी दिशा में मोड़ सकता है उनके व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन कर सकता है। इसीलिए, कुप्पूस्वामी ने लिखा है–

> हमारे विद्यालय में सीखने के लिए वास्तविक और स्थायी प्रेरकों को प्रदान किए जाने के प्रयास की आवश्यकता है।

8.12 अभिप्रेरणा में शिक्षक के कार्य

अधिगम की प्रक्रिया को सशक्त एवं प्रभावशाली बनाने के लिये शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। सीखने की क्रिया में शिक्षण तथा अधिगम, दोनों शामिल होते हैं। शिक्षक सिखाता है, छात्र सीखते हैं। छात्र उस समय अधिक रूचि तथा गति से सीखते हैं जब उन्हें अध्यन प्रेरणा देता है। यह प्रेरणा पुरस्कार तथा दण्ड, दोनों प्रकार से दी जा सकती है। शिक्षक को छात्रों में सीखने की गति को तीव्र तथा प्रभावशाली बनाने के लिये ये अभिप्रेरणात्मक कार्य करने चाहिए –

1. शिक्षक को चाहिये कि वह छात्रों को अभिप्रेरित करने के लिये उन्हें नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रोत्साहन दे, उसे शिक्षण सामग्री के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिये। छात्रों में निहित गुणों की पहचान करना आवश्यक है।
2. शिक्षक को चाहिये कि वह छात्रों को अभिप्रेरणा देते समय उनके वैयक्तिक गुणों पर ध्यान दे।
3. छात्रों में समाजिकता के गुणों को विकसित कर उन्हें लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर किया जा सकता है।
4. शिक्षक, छात्रों को प्रेरणा देकर उनके व्यवहार को निर्देशित करता है। लक्ष्य प्राप्ति के लिये छात्रों को निरन्तर प्रेरित किया जाना आवश्यक है।
5. छात्रों को मार्गदर्शन देकर उनके जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर सकता है।
6. शिक्षक, छात्रों की आवश्यकताओं को समझ कर, उन्हें उनकी पूर्ति हेतु प्रेरणा दे सकता है।
7. शिक्षक, छात्रों में अभिप्रेरणा के द्वारा उत्तेजना करता है। इससे उसमें शक्ति संचार होता है। यह शक्ति छात्रों में उत्साह भरती है।
8. अभिप्रेरणा प्रदान कर छात्रों में रूचि को विकसित किया जा सकता है।
9. अभिप्रेरित व्यवहार में अनुशासन का विकास होता है। अच्छी आदतों का विकास किया जा सकता है।
10. अभिप्रेरणा के द्वारा छात्रों में ज्ञान प्राप्ति तथा कौशल को सीखने की इच्छा उत्पन्न की जा सकती है।
11. शिक्षक, बालकों को चरित्र निर्माण की शिक्षा अभिप्रेरणा के द्वारा दे सकता है।

शिक्षक, यदि अभिप्रेरणा का सही उपयोग करे तो वह शिक्षण की क्रिया को अधिक महत्त्वपूर्ण बना सकता ह। वह छात्रों के अन्दर उन शक्तियों को जन्म दे सकता है जो व्यक्ति, समुदाय तथा समाज के निर्माण में सहायक हो सकती है। संघर्ष, अन्तर्द्वन्द, तथा लक्ष्य की ओर अनुसरण द्वारा वह शिक्षण–अधिगम को सशक्त बना सकता है।

8.13 अभिप्रेरणा का शिक्षा में उपयोग

अभिप्रेरणा का शिक्षा में अत्यन्त महत्त्व है। बालक को प्रशंसा एवं दोष, स्वीकृति एवं अस्वीकृति के मध्य अनेक कार्य करने पड़ते हैं। अभिप्रेरणा के द्वारा अधिगम एवं व्यवहार परिवर्तन के आधार पर सैद्धान्तिक रूप में जो विचार किया गया, उसके व्यावहारिक पक्ष पर शैक्षिक दृष्टि से विचार करें, तो–

1. शिक्षक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों की क्रियाओं अर्थात् व्यवहार को बदलने की अपेक्षा उनकी भावनाओं को बदलने का प्रयास करे।
2. कक्षा में कभी भी कोई ऐसी बात न कहें जिससे विद्यार्थियों में हीन भावनाएँ उत्पन्न हों।

www.praganya.org

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

3. विद्यार्थी सम्मान चाहते हैं, उन्हें सम्मान दिया जाए।
4. उनकी जिन आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं, उनकी पूर्ति करने का प्रयास किया जाए।
5. प्रशंसा, पुरस्कार, भर्त्सना एवं दण्ड आदि को कभी भी अपने शिक्षण का अंग न बनाया जाए, अर्थात् इनका उपयोग तभी किया जाए जब आवश्यकता पड़े।
6. विद्यार्थियों में भावना परिवर्तन की दृष्टि से उन गुणों का अनुसरण स्वयं भी किया जाए जिनकी अपेक्षा हम अपने विद्यार्थियों से करते हैं।
7. पुरस्कार एवं प्रशंसा की अवधि लम्बी हो अर्थात् जल्दी-जल्दी या बार-बार प्रशंसा करना तथा पुरस्कार देना भी ठीक नहीं।
8. विद्यार्थियों की भावनाओं का कभी भी दमन न किया जाए।
9. दण्ड और भर्त्सना का तभी प्रयोग किया जाए जब उत्प्रेरित करने का कोई अन्य उत्प्रेरक काम न करे तथा वह भी केवल नियम विरूद्ध कार्यों को रोकने के लिए।
10. प्रशंसा एवं पुरस्कार समूह में सभी के सामने दिये जाए और भर्त्सना या दण्ड अकेले में।
11. विद्यार्थियों को उत्प्रेरित करते समय उनकी आयु एवं लिंग का ध्यान अवश्य रखा जाए। सबके साथ अलग-अलग उत्प्रेरक कार्य करेंगे।
12. दण्ड भी देना हो तो शारीरिक या आर्थिक दण्ड न देकर पढ़ने या कार्य करने के रूप में दिया जाए।
13. बाह्य उत्प्रेरकों का प्रयोग कम से कम और आन्तरिक उत्प्रेरकों का उपयोग अधिक से अधिक किया जाए।
14. सामूहिक बातों को सभी से और वैयक्तिक बातों को सम्बन्धित विद्यार्थी से ही कहा जाए।
15. अन्त में, विद्यार्थियों के साथ सदैव निष्पक्ष व्यवहार किया जाए।

****

प्रगण्य प्रकाशन द्वारा CTET एवं प्रत्येक राज्य के TET (UPTET, MP Samvida, BTET, UTET, JTET, HTET, CGTET, HPTET) के लिए मॉडल पेपर की फ्री PDF प्रकाशित की जाती है। मॉडल पेपर की फ्री PDF प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित Whatsapp No. अपने कॉलेज के क्लास ग्रुप या कोचिंग के क्लास ग्रुप या अन्य स्टडी ग्रुप में जोंडे। आपके ग्रुप में मॉडल पेपर भेज दिए जाएँगें।

UPTET - 95301 43210
MP Samvida - 95302 43210
BTET - 95302 43210
UTET - 72209 29294
JTET - 72209 29239
HTET - 72209 29266
CGTET - 72209 28969
HPTET - 72209 28535

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अभिप्रेरण से तात्पर्य होता है-
(1) व्यवहार में परिवर्तन से
(2) मनोवृत्ति परिवर्तन से
(3) एक आन्तरिक बल से, जो व्यक्ति के व्यवहार को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है।
(4) एक ऐसे आन्तरिक बल से, जो व्यक्ति के व्यवहार को छिन्न-भिन्न कर देता है।

2. सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा-
(1) शिक्षार्थियों की स्मरण शक्ति को पैना बनाती है।
(2) पिछले सीखे हुए को नये अधिगम से अलग करती है।
(3) शिक्षार्थियों को एक दिशा में सोचने योग्य बनाती है।
(4) शिक्षार्थियों में सीखने के प्रति रूचि का विकास करती है।

3. निम्नलिखित में से अभिप्रेरणा चक्र के संघटकों का सही क्रम है-
(1) प्रोत्साहन→चालन→आवश्यकता
(2) चालन→आवश्यकता→प्रोत्साहन
(3) आवश्यकता→चालन→प्रोत्साहन
(4) आवश्यकता→प्रोत्साहन→चालन

4. अभिप्रेरणा एक-
(1) वैज्ञानिक विचारधारा है।
(2) मनोवैज्ञानिक विचारधारा है।
(3) स्वाभाविक विचारधारा है।
(4) भौतिकवादी वस्तु है।

5. अभिप्रेरणा अधिगम का है-
(1) मुख्य अंग (2) सहायक अंग
(3) कोई अंग नहीं (4) कार्य

6. अभिप्रेरण का एक मुख्य तत्त्व है-
(1) प्रत्यक्षण (2) संवेग
(3) चिन्तन (4) अन्तर्नोद

7. निम्नलिखित में से कौनसा तत्त्व बाह्य अभिप्रेरणा में सहायक नहीं है?
(1) पुरस्कार (2) आदर्श
(3) प्रशंसा (4) निन्दा

8. प्रेरणा किसकी व्याख्या करती है?
(1) व्यवहार क्या है (2) व्यवहार के प्रभाव
(3) व्यवहार क्यों घटित होता है (4) उपरोक्त में से कोई नहीं

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.		
(3)	(4)	(3)	(2)	(2)	(4)	(4)	(3)		

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

9. 6 से 10 वर्ष की अवस्था में बालक रूचि लेना प्रारम्भ करते हैं–
(1) धर्म में (2) मानव शरीर में
(3) यौन सम्बन्धों में (4) विद्यालय में

10. निम्नलिखित में से जन्मजात अभिप्रेरक कौनसा है?
(1) निद्रा (2) खेलना
(3) प्रशंसा (4) क्रोध

11. **अभिप्रेरणा की व्याख्या जन्मजात मूल प्रवृत्तियों के आधार पर की जा सकती है।** यह किसने कहा है?
(1) मैक्डूगल ने (2) कर्ट लेविन ने
(3) फ्रायड ने (4) स्किनर ने

12. निम्नलिखित में से कौनसा जन्मजात प्रेरक नहीं है?
(1) भूख (2) प्यास
(3) आदत (4) निद्रा

13. छात्रों को प्रेरित करने में अहम भूमिका है–
(1) शिक्षक–छात्र वार्ता की
(2) शिक्षक के आदर्श व्यवहार की
(3) शिक्षक के उपदेश की
(4) समय पर पुरस्कार एवं दण्ड की

14. आप अपनी प्रशंसा पर–
(1) प्रसन्न हो जाते हैं।
(2) आपका सिर गर्व से ऊँचा हो जाता है।
(3) आप पर विशेष फर्क नहीं पड़ता।
(4) अपने काम को और अच्छे तरीके से करते हैं।

15. प्रेरणा का स्त्रोत नहीं है–
(1) चालक (2) उद्दीपन
(3) प्रेरक (4) भोजन

16. **अभिप्रेरणा से उत्पन्न क्रियाशीलता ही सीखने के लिए उत्तरदायी होती है।** यह कथन है–
(1) बिने का (2) डगलस का
(3) वी. एफ. स्किनर का (4) इनमें से कोई नहीं

17. प्रेरणा होती है–
(1) सकारात्मक (2) नकारात्मक
(3) भावात्मक (4) 1 और 2 दोनों

18. निम्नांकित में से कौनसा अभिप्रेरण में शामिल नहीं है?
(1) आवश्यकता (2) प्रणोद
(3) रूचि (4) इन्सेन्टिव

19. **अभिप्रेरणा का प्रश्न क्यों का प्रश्न है।** यह कथन है–
(1) हिलगार्ड का (2) क्रेच व क्रचफ्रील्ड का
(3) वुडवर्थ का (4) स्किनर का

20. ..... को एक अभिप्रेरित शिक्षण का संकेतक माना जाता है।
(1) कक्षा में अधिकतम उपस्थिति
(2) शिक्षक द्वारा दिये गये उपचारात्मक कार्य
(3) विद्यार्थियों द्वारा प्रश्न पूछने
(4) कक्षा में एकदम खामोशी

21. बालकों को अभिप्रेरण प्रदान करने हेतु उत्तम उपाय है–
(1) अच्छा व्याख्यान देना
(2) अभिभावकों से शिकायत करना
(3) नवाचारों का प्रयोग
(4) इनमें से कोई नहीं

22. **जब अधिगम करने वाले में स्वयं ही अधिगम कार्य पर अधिकार प्राप्त करते हुए तनाव उत्पन्न होता है,** यह स्थिति कहलाती है–
(1) मध्य अभिप्रेरणा (2) आन्तरिक अभिप्रेरणा
(3) बाह्य अभिप्रेरणा (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

23. अभिप्रेरणा से सम्बन्धित अवधान नहीं है–
(1) बुद्धि (2) अभिक्षमता
(3) सामाजिक अयोग्यता (4) अभिवृत्ति

24. निम्नलिखित में से कौनसी विशेषता आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित बच्चों के लिए सही नहीं है?
(1) उन्हें कार्य करने में आनन्द आता है।
(2) वे कार्य करते समय उच्च स्तर की ऊर्जा प्रदर्शित करते हैं।
(3) वे चुनौती भरे कार्यों को पसन्द करते हैं।
(4) वे हमेशा सफल होते हैं।

25. अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों के अनुसार, एक शिक्षक ..... के द्वारा सीखने को संवर्द्धित कर सकता है।
(1) विद्यार्थियों से वास्तविक अपेक्षाएँ रखने
(2) अपेक्षाओं का एकरूप स्तर रखने
(3) विद्यार्थियों से किसी प्रकार की अपेक्षाएँ न रखने
(4) विद्यार्थियों से बहुत उच्च अपेक्षाएँ रखने

26. एक विद्यार्थी मेडिकल कॉलेज में दाखिला लेने के लिए कठिन परिश्रम करता है, ताकि वह प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण हो सके। यह विद्यार्थी ..... रूप से अभिप्रेरित है।
(1) वैयक्तिक (2) आनुभविक
(3) आन्तरिक (4) बाह्य

9.	10.	11.	12.	13.	14.	15.	16.	17.	18.	19.	20.	21.	22.	23.	24.	25.	26.				
(4)	(1)	(1)	(3)	(3)	(4)	(4)	(3)	(4)	(3)	(2)	(3)	(3)	(2)	(3)	(4)	(1)	(3)				

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

27. मोहित को बच्चों को पढ़ाना अच्छा लगता है, इसलिए वह बी.एड. की प्रवेश परीक्षा के लिए खूब मेहनत करता है। मोहित ..... अभिप्रेरित है।
(1) आन्तरिक रूप से (2) बाह्य रूप से
(3) सक्रिय रूप से (4) बौद्धिक रूप से

28. निम्नलिखित में से कौनसा सीखने के लिए अधिकतम रूप से अभिप्रेरित करता है?
(1) बहुत सरल या कठिन लक्ष्यों का चयन करने की प्रवृत्ति
(2) लक्ष्यों को प्राप्त करने में व्यक्तिगत सन्तुष्टि
(3) बाह्य कारक
(4) असफलता से बचने के लिए अभिप्रेरण

29. आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित विद्यार्थी–
(1) के लिए पुरस्कार की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं है।
(2) के लिए बाह्य पुरस्कार उसकी अभिप्रेरणा को बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं है।
(3) का बाह्य रूप से अभिप्रेरित विद्यार्थी की तुलना में अभिप्रेरणा स्तर कम होता है।
(4) के लिए औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं है।

30. उपलब्धि अभिप्रेरणा है–
(1) चुनौतीपूर्ण कार्य करने में डटे रहने की प्रवृत्ति
(2) असफलता से बचने की प्रवृत्ति
(3) सफलता व असफलता को समान रूप से स्वीकार करने की तत्परता
(4) बिना विचारे, जल्दबाजी में कार्य करने की प्रवृत्ति

31. अधिगम के प्रक्रम में अभिप्रेरण–
(1) सीखने वालों की स्मृति को तेज बनाता है।
(2) पुराने अधिगम से नये अधिगम को विभेदित करता है।
(3) एकदिशीय रूप से सोचने में सीखने वालों को प्रस्तुत करता है।
(4) नये सीखने वालों में अधिगम के लिए रूचि का सृजन करता है।

32. आप अपनी कक्षा के किसी बालक को पढ़ाने हेतु उसे प्रेरित करने का कौनसा तरीका उपयुक्त मानते हैं?
(1) बालक के आत्मसम्मान को सुरक्षित करना
(2) उसकी प्रशंसा दूसरे बालकों के समक्ष करना
(3) उसे सकारात्मक प्रलोभन देना
(4) बालक के प्रेरकों का मार्गन्तीकरण करना

33. सीखने में प्रेरणा का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे बालकों में–
(1) व्यक्तिगत विभिन्नताओं में कमी होती है।
(2) शारीरिक विकास होता है।
(3) अनुशासन की भावना का विकास होता है।
(4) सामाजिक गुण सीमित रहते हैं।

34. मास्लो के आवश्यकतानुसार पदानुक्रम सिद्धान्त के अनुसार कौनसी आवश्यकता सबसे अन्त में पूरी होती है?
(1) सम्मान (2) आत्म–यथार्थता
(3) सुरक्षा (4) सामाजिक

35. मास्लो के अनुसार, निम्नलिखित प्रेरणाओं में सबसे अधिक शक्तिशाली प्रेरणाएँ कौनसी हैं?
(1) दैहिक आवश्यकताएँ (2) व्यक्तिगत सामाजिक
(3) अर्जित प्रेरणाएँ (4) सामान्य सामाजिक

36. **प्रेरणा कोई भी विशेष आन्तरिक कारक अथवा अवस्था है, जो क्रिया को आरम्भ करने अथवा बनाए रखने की प्रवृत्ति रखती है।** यह कथन निम्नलिखित में से किसका है?
(1) आर. एस. वुडवर्थ का
(2) जे. पी. गिलफोर्ड का
(3) गार्डनर मर्फी का
(4) एन. एल. एन का

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

37. **एक प्रेरणा व्यक्ति की एक अवस्था अथवा उन्मुखता है, जो कि उसे कुछ व्यवहार करने तथा कुछ लक्षणों को खोजने की ओर ले जाती है।** प्रेरणा की यह परिभाषा निम्नलिखित में से किसने दी है?
(1) गार्डनर मर्फी ने (2) एन. एल. एन. ने
(3) आर.एस.वुडवर्थ ने (4) जे. पी. गिलफोर्ड ने

38. अन्तर्नोद उत्पन्न होता है–
(1) प्रोत्साहन से (2) भूख से
(3) प्यास से (4) आवश्यकता से

39. किसी विशेष होटल की मिठाई खाने की आवश्यकता को कहा जाएगा–
(1) भूख (2) विशिष्ट भूख
(3) प्रबल आवश्यकता (4) इनमें से कुछ भी नहीं

40. निम्नलिखित में से किसे जैविक अभिप्रेरक में आप नहीं रखेंगे?
(1) प्यास (2) भूख
(3) यौन (4) उपलब्धि आवश्यकता

41. निम्नांकित में किस अभिप्रेरक को कुछ मनोवैज्ञानिकों ने जैविक तथा अर्जित दोनों ही श्रेणियों में रखा है?
(1) भूख (2) नींद
(3) लिंग (4) प्यास

42. जिन अभिप्रेरकों को व्यक्ति अपने सामाजिक वातावरण में सीखता है, उन्हें कहा जाता है–
(1) अर्जित अभिप्रेरक (2) जन्मजात अभिप्रेरक
(3) अन्वेषण अभिप्रेरक (4) फलकारी अभिप्रेरक

27.	28.	29.	30.	31.	32.	33.	34.	35.	36.	37.	38.	39.	40.	41.	42.						
(1)	(2)	(2)	(1)	(4)	(4)	(3)	(2)	(1)	(3)	(3)	(4)	(2)	(4)	(3)	(1)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

43. निम्नांकित समुच्चय में से कौन एक सामाजिक अभिप्रेरक का समुच्चय है?
(1) उपलब्धि, सम्बन्धन, सत्ता एवं अनुमोदन
(2) उपलब्धि, सम्बन्धन, काम इच्छा एवं अनुमोदन
(3) उपलब्धि, सम्बन्धन, अनुमोदन, भूख
(4) उपलब्धि, सम्बन्धन, अनुमोदन एवं प्यास

44. अभिप्रेरण के तीन प्रमुख तत्त्व बतलाये गये हैं। निम्नांकित में से किसे उन तत्त्वों की सूची में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है?
(1) आवश्यकता (2) प्रणोद
(3) प्रोत्साहन (4) तनाव

45. उपलब्धि अभिप्रेरक को किस श्रेणी में रखा जा सकता है?
(1) सामाजिक अभिप्रेरक
(2) जैविक अभिप्रेरक
(3) प्रभावोत्पादक अभिप्रेरक
(4) उपर्युक्त में से किसी भी श्रेणी में नहीं

46. अभिप्रेरित व्यवहार खासकर दैहिक अभिप्रेरक एक खास क्रम में होते हैं। सही क्रम कौनसा है?
(1) प्रणोद, लक्ष्य, आवश्यकता, तुष्टि
(2) लक्ष्य, तुष्टि, आवश्यकता, प्रणोद
(3) आवश्यकता, प्रणोद, लक्ष्य, तुष्टि
(4) तुष्टि, लक्ष्य, प्रणोद एवं आवश्यकता

47. धन कमाने की इच्छा को किस श्रेणी का अभिप्रेरक माना जाता है?
(1) आन्तरिक अभिप्रेरक
(2) बाह्य अभिप्रेरक
(3) जैविक अभिप्रेरक
(4) उपर्युक्त में से किसी भी श्रेणी का अभिप्रेरक नहीं

48. **स्वतः अभिरूचि** एक उदाहरण है–
(1) बाह्य अभिप्रेरक का
(2) आन्तरिक अभिप्रेरक का
(3) जैविक अभिप्रेरक का
(4) उपर्युक्त में से किसी का भी नहीं

49. अगर किसी भूखे व्यक्ति को टी. ए. टी. दिया जाए, तो वह सम्भवतः–
(1) कुछ नहीं कर पायेगा, जब तक कि उसे कुछ खाना नहीं दिया जाता हो
(2) ऐसी कहानी लिखेगा, जिसका विषय भोजन एवं खाना खाने से सम्बद्ध रहेगा
(3) ऐसी कहानी लिखेगा, जिसमें भोजन और खाने से संबद्ध व्यवहार की चर्चा नहीं होगी
(4) भरपेट भोजन किये हुए व्यक्ति के समान ही कहानी लिखेगा।

50. अभिप्रेरण के किस सिद्धान्त में दैहिक आवश्यकताओं पर बल डाला जाता है?
(1) मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त में (2) प्रणोद सिद्धान्त में
(3) प्रत्याशा सिद्धान्त में (4) व्यवहार सिद्धान्त में

51. निम्नलिखित में से सामाजिक मूल्य कौनसा है?
(1) प्राथमिक लक्ष्य (2) मूलप्रवृत्ति
(3) सहायतापरक व्यवहार (4) आक्रामक आवश्यकता

52. झूठ का पता लगाने वाला यन्त्र सामान्यतया मापन करता है–
(1) गैल्वेनिक त्वचा प्रतिक्रिया एवं रक्तचाप का
(2) पसीना एवं पेशीय तनाव का
(3) मस्तिष्कीय तरंगों का
(4) पेट संकुचन एवं श्वसन का

53. अन्तर्नोद सिद्धान्त के अनुसार अन्तर्नोद के कारण अभिप्रेरणा होती है। अन्तर्नोद किस पर आधारित है?
(1) मूल प्रवृत्ति (2) प्रलोभन
(3) संज्ञान (4) आवश्यकता

54. जब दो अभिप्रेरणाएँ आपस में मेल नहीं खाती हैं, तो परिणाम होता है–
(1) मनस्ताप (2) कुण्ठा
(3) द्वन्द्व (4) प्रत्याहार

55. शक्ति अभिप्रेरणा का मापन प्राथमिकतः किया गया है–
(1) ई. पी. पी. एस. द्वारा (2) 16 पी. एफ. द्वारा
(3) टी. ए. टी. द्वारा (4) ई. पी. क्यू. द्वारा

56. निम्नलिखित में से कौन अभिप्रेरणा के **कर्षण सिद्धान्त** का प्रतिनिधित्व करता है?
(1) अन्तर्नोद सिद्धान्त (2) उद्वोलन सिद्धान्त
(3) प्रत्याशा सिद्धान्त (4) आवश्यकता सोपान सिद्धान्त

57. मास्लो के आवश्यकता सोपान क्रम में जैविक आवश्यकताओं के ठीक बाद आती है–
(1) सुरक्षा आवश्यकताएँ (2) स्व–सिद्धि आवश्यकता
(3) प्रेम व सम्बन्धन आवश्यकताएँ (4) स्व–सम्मान आवश्यकताएँ

58. जिन बच्चों में उपलब्धि अभिप्रेरणा अधिक होती है, उनके माता–पिता प्रायः–
(1) स्वातन्त्र्य को हतोत्साहित करते हैं।
(2) मानकों की प्राप्ति हेतु असफलता पर दण्डित करते हैं।
(3) ऊँचे मानदण्ड स्थापित करते हैं।
(4) बच्चों के व्यवहार को बिना शर्त स्वीकार करते हैं।

43.	44.	45.	46.	47.	48.	49.	50.	51.	52.	53.	54.	55.	56.	57.	58.						
(1)	(4)	(1)	(3)	(2)	(2)	(2)	(2)	(3)	(1)	(4)	(3)	(3)	(3)	(1)	(3)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

59. जिस उद्दीपक से व्यक्ति को सन्तुष्टि होती है, उससे उसमें–
(1) सुखद भाव उत्पन्न होता है।
(2) दुखद भाव उत्पन्न होता है।
(3) संवेग उत्पन्न होता है।
(4) अभिप्रेरण उत्पन्न होता है।

60. अभिप्रेरित व्यवहार के बारे में निम्नलिखित में से कौन सही नहीं है?
(1) अनुक्रियाओं का ऊर्जाकरण
(2) व्यवहारात्मक शक्ति एवं कुशलता
(3) व्यवहार की दिशा
(4) अनुक्रियाओं का साहचर्य

61. निम्नलिखित सलाहों में से कौन आन्तरिक अभिप्रेरणा जागृत करने हेतु सर्वाधिक उपयुक्त है?
(1) स्कूल का कार्य समाप्त कर लेने पर छात्रों को छुट्टी का लाभ दिया जाए।
(2) अच्छी श्रेणियाँ प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहित करना।
(3) परिश्रमी छात्रों की प्रशंसा अन्य सहपाठियों की उपस्थिति में करना।
(4) अच्छे शैक्षणिक निष्पादन से जुड़े धनात्मक अनुभवों को प्रवलित करना।

62. **व्यक्ति अभिप्रेरित क्यों होता है?** इस सम्बन्ध में वर्तमान में कौनसी अवधारणा मान्य है?
(1) मूल प्रवृत्तियों की अवधारणा
(2) प्रलोभन सम्बन्धी अवधारणा
(3) अन्तर्नोद सम्बन्धी अवधारणा
(4) आत्मसिद्धि सम्बन्धी अवधारणा

63. निम्नलिखित में से सही कथन है–
(1) शक्ति अभिप्रेरणा समाज द्वारा स्वीकृत नहीं की जा सकती है।
(2) परिपक्वता और अभिप्रेरणा में कोई सम्बन्ध नहीं होता।
(3) प्रलोभन बालक में अन्तर्नोद सम्बन्धी व्यवहार उत्पन्न करते हैं।
(4) अनुमोदन अभिप्रेरण में व्यक्ति दूसरों के कार्यों का अनुमोदन करता है।

64. बालकों में पाठ के प्रति रूचि उत्पन्न करने के लिए–
(1) निरन्तर मौखिक शिक्षण करना चाहिए।
(2) पाठ की पुनरावृत्ति करानी चाहिए।
(3) पाठ को बालकों के व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित करना चाहिए।
(4) रटने की प्रवृत्ति पर बल देना चाहिए।

65. निम्न में से कौनसा कथन **अभिप्रेरण एक प्रक्रिया** के सन्दर्भ में उपयुक्त नहीं है?
(1) वह व्यक्ति को लक्ष्य की ओर ले जाता है।
(2) यह व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करता है।
(3) यह मनोवैज्ञानिक आकांक्षा को प्राप्त करने में सहायता करता है।
(4) यह व्यक्ति को अप्रिय स्थिति से दूर रखता है।

66. उपलब्धि अभिप्रेरक के सम्बन्ध में निम्न में से कौनसा कथन सही है?
(1) उपलब्धि अभिप्रेरक जीवित रहने के लिए आवश्यक है।
(2) यदि व्यक्तिगत क्षमताओं की सन्तुष्टि महत्त्वपूर्ण है, तो उपलब्धि अभिप्रेरक को विकास प्रेरक कहा जा सकता है।
(3) यदि व्यक्तियों के मध्य प्रतियोगिता पर बल है, तो उपलब्धि अभिप्रेरक को सामाजिक अभिप्रेरक कहा जा सकता है।
(4) इनमें से सभी

67. एक छात्र ने आपके प्रश्न का जो उत्तर दिया, वह पाठ्य पुस्तक में नहीं है। अध्यापक के रूप में आप–
(1) उसे नहीं मानेंगे।
(2) उत्तर की समीक्षा कर छात्र की व्यक्तिगत समझ के लिए शाबाशी देंगे।
(3) छात्र की शरारत मानेंगे।
(4) उसकी उपेक्षा करेंगे।

68. मान लीजिए कि आपकी किशोरी पुत्री एक सहशिक्षा कॉलेज में सहभागी है, तो आपका व्यवहार क्या होगा–
(1) हठीला
(2) सहानुभूतिपूर्ण
(3) दबंग
(4) प्रेरक

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

69. बालकों में आत्मनिर्भरता के गुण का विकास करने के लिए क्या करना चाहिए?
(1) आप उन्हें पाठ्य सहगामी क्रियाओं का नेतृत्व सौंप दें।
(2) आप उन्हें अपने फीस कलेक्शन के कार्य में मदद ले।
(3) आप उन्हें मॉनिटर बना दें।
(4) उपर्युक्त सभी करें।

70. नवीन सत्र में प्रवेश ले चुके छात्रों से सुरूचिपूर्ण सम्बन्ध रखने के लिए आप क्या करेंगे?
(1) प्रभुत्व संरक्षण के लिए गम्भीरता का प्रदर्शन
(2) छात्रों से अपेक्षित सम्मान की कामना
(3) छात्रों से समकक्ष मित्र की भावना का प्रदर्शन
(4) छात्रों के साथ मित्रवत् व्यवहार तथा नवीन वातावरण में समायोजन हेतु मार्गदर्शन

71. यदि आप छात्रों के व्यक्तित्व का उचित सम्मान करते हैं, तो आपके विचार में आपकी अनुभूति का कारण क्या हो सकता है?
(1) आपकी प्रभुसत्ता का संरक्षण
(2) उच्चस्तरीय नैतिकता प्रदर्शन
(3) छात्रों को प्रोत्साहित करने की एक दशा
(4) आपकी प्रौढ़ मानसिकता

59.	60.	61.	62.	63.	64.	65.	66.	67.	68.	69.	70.	71.									
(1)	(1)	(3)	(3)	(3)	(3)	(4)	(4)	(2)	(4)	(4)	(4)	(3)									

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

72. यदि आप एक ऐसे विद्यालय में पढ़ा रहे हैं, जहाँ की अधिकांश जनसंख्या अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों से ग्रस्त है, तो आप ऐसे जनसमूह में शिक्षा के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति उत्पन्न करने के लिए निम्न में से क्या करेंगे?
(1) ऐसे लोगों को धैर्यपूर्वक समझाएँगे तथा परिणाम प्राप्त होने तक प्रयास जारी रखेंगे।
(2) ऐसे लोगों का प्रतिवाद करेंगे तथा अपने सुझाव उन पर थोपेंगे।
(3) केवल अपनी नौकरी पर ध्यान देंगे तथा स्थानान्तरण के लिए प्रयास जारी रखेंगे।
(4) उन्हें शिक्षा के लाभ समझाकर उनकी संकीर्ण सोच का परिमार्जन करेंगे।

73. निम्न में से कौनसा कारक आदतों के निर्माण में प्रभावी भूमिका का निर्वाह करता है?
(1) निरन्तरता (2) अभ्यास
(3) पुरस्कार एवं दण्ड (4) उपर्युक्त सभी

74. उपलब्धि प्रेरक (Achievement Motive) एक प्रेरक है–
(1) शारीरिक
(2) मनोवैज्ञानिक
(3) शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

75. ऐसा प्रेरक जिसका अनुमान व्यक्ति के व्यवहार से किया जा सके, परन्तु व्यक्ति उसकी उपस्थिति का अनुभव नहीं करता, उसे कहते हैं–
(1) अवचेतन प्रेरक (2) अचेतन प्रेरक
(3) चेतन प्रेरक (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

76. भूख (Hunger) एक प्रेरक है–
(1) अर्जित (2) प्राथमिक
(3) अचेतन (4) द्वितीयक

77. भूख किस प्रकार का अन्तर्नोद (Drive) है?
(1) धनात्मक (2) ऋणात्मक
(3) तटस्थ (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

78. अचेतन प्रेरक (Unconscious motive) का महत्त्व सर्वप्रथम किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया?
(1) वुण्ट द्वारा (2) मैक्डूगल द्वारा
(3) फ्रायड द्वारा (4) वाटसन द्वारा

79. जैविक (Biological) या शारीरिक आवश्यकताओं से उत्पन्न अन्तर्नोद को क्या कहते हैं?
(1) गौण या द्वितीयक अन्तर्नोद
(2) समाजजन्य प्रेरक
(3) प्राथमिक अन्तर्नोद
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

80. निम्नलिखित युग्मों में से कौनसा युग्म असत्य है?
(1) भूख–शारीरिक अन्तर्नोद
(2) उपलब्धि प्रेरक–जन्मजात प्रेरक
(3) आक्रामकता का प्रेरक–अर्जित प्रेरक
(4) क्रोध–संवेग

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

81. पुरस्कार एवं दण्ड का एक प्रकार है–
(1) बाह्य प्रेरणा
(2) आन्तरिक प्रेरणा
(3) भाषायी प्रेरणा
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

82. निम्नलिखित युग्मों में से असत्य युग्म कौनसा है?
(1) निषेधात्मक पुनर्बलन–गाली देना
(2) शारीरिक प्रेरक–निद्रा
(3) बाह्य प्रेरक–पुरस्कार
(4) आन्तरिक प्रेरक–वेतन

83. किसी कार्य को सीखने में पुरस्कार मिलने का क्या प्रभाव पड़ता है?
(1) प्राणी उस कार्य को देर से सीखता है।
(2) प्राणी उस कार्य को जल्दी सीख लेता है।
(3) पुरस्कार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
(4) उपर्युक्त सभी

84. प्रेरणा के लक्ष्य को लेकर प्रेरणाजन्य कार्य में निम्नलिखित में से कौनसी विशेषता पायी जाती है?
(1) परिवर्तनशील (2) लक्ष्य प्राप्त करने की बेचैनी
(3) लक्ष्य प्राप्ति से शान्ति (4) उपरोक्त सभी

85. **क्रिया को उत्तेजित करने, नियमित करने तथा जारी रखने की प्रक्रिया को अभिप्रेरणा कहते हैं।** यह किसका कथन है?
(1) जॉनसन का (2) गुड का
(3) मैगोच का (4) बर्नार्ड का

86. मैक्डूगल के अनुसार अभिप्रेरणा की व्याख्या किस आधार पर की जा सकती है?
(1) उत्तेजक व अनुक्रिया (2) जीवन चक्र व लक्ष्य प्राप्ति
(3) जन्मजात मूल प्रवृत्तियाँ (4) उत्तेजक व अर्द्धचेतन

87. अभिप्रेरणा का स्वास्थ्य सिद्धान्त किसने दिया?
(1) डी.हैब ने (2) डिस्को ने
(3) फ्रेड्रिक हर्जबर्ग ने (4) स्किनर ने

88. जॉन पी. डिस्को ने अभिप्रेरणा देने वाले घटकों की संख्या बताई है–
(1) 2 (2) 4
(3) 7 (4) 10

72.	73.	74.	75.	76.	77.	78.	79.	80.	81.	82.	83.	84.	85.	86.	87.	88.					
(1)	(4)	(2)	(2)	(2)	(1)	(3)	(3)	(2)	(1)	(4)	(2)	(4)	(2)	(3)	(3)	(4)					

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

89. **अभिप्रेरणाएँ प्राणी की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक अन्तर्दशाएँ हैं।** यह कथन किस मनोवैज्ञानिक का है?
(1) ड्रेवर का (2) मैक्डूगल का
(3) वुडवर्थ का (4) गिलफोर्ड का

90. मैक्डूगल के अनुसार मूल प्रवृत्तियाँ हैं–
(1) अर्जित (2) जन्मजात
(3) उपर्युक्त दोनों (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

91. अर्जित प्रेरक के अन्तर्गत आते हैं–
(1) जीवन लक्ष्य व मनोवृत्तियाँ (2) मद-व्यसन
(3) आदत की विवशता (4) उपर्युक्त सभी

92. बालक किसी कार्य को अपनी इच्छा से करता है, वह है–
(1) व्यक्तिगत प्रेरणा (2) सामाजिक प्रेरणा
(3) मनोदैहिक प्रेरणा (4) सकारात्मक प्रेरणा

93. फ्रायड ने सबसे अधिक बल किस मूल प्रवृत्ति पर दिया है?
(1) काम प्रवृत्ति (2) रचना प्रवृत्ति
(3) संचय प्रवृत्ति (4) समूह प्रवृत्ति

94. **मूल प्रवृत्ति अभिप्रेरणा सिद्धान्त** के प्रवर्तक कौन हैं?
(1) फ्रायड तथा जुंग (2) कर्ट लेविन
(3) मैक्डूगल (4) स्किनर

95. प्रेरकों को पुकारा जाता है–
(1) स्थायी उद्दीपक (2) निर्धारित प्रवृत्तियाँ
(3) आवश्यकता (4) इनमें से सभी

96. **प्रेरक सिद्धान्त** दिया–
(1) हल ने (2) वाटसन ने
(3) वैण्डुरा ने (4) टॉलमैन ने

97. प्रेरणा के मूल प्रवृत्ति के सिद्धान्त में कितनी मूल प्रवृत्तियाँ हैं?
(1) 14 (2) 15
(3) 16 (4) 17

98. **प्रेरणा का आवश्यकता सिद्धान्त** दिया–
(1) हल ने (2) मरे ने
(3) मैक्लीलैण्ड ने (4) लैजारस ने

99. उपलब्धि प्रेरणा का मापन किसके द्वारा किया जा सकता है–
(1) साक्षात्कार विधि
(2) प्रसंगात्मक बोध परीक्षण
(3) प्रश्नावली निरीक्षण
(4) निरीक्षण

100. उपलब्धि आवश्यकता का मापन किसने किया?
(1) मरे ने (2) मैक्लीलैण्ड ने
(3) एटर्किसन ने (4) मैक्लीलैण्ड तथा एटर्किसन ने

101. सामाजिक अनुशासन का आधार होता है–
(1) भय और दण्ड
(2) निन्दा और प्रशंसा
(3) अच्छा बनने की इच्छा
(4) संस्कार

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

102. कक्षा में बेहतर अनुशासन रहता है, यदि–
(1) शिक्षण सामग्री का कारगर उपयोग किया जाए।
(2) पाठ्य विषय में मनोरंजनपूर्ण बातें हो।
(3) अध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली हो।
(4) छात्रों को पता हो कि प्रधानाध्यापक किसी भी समय कक्षा में आने वाले हैं।

103. बच्चों में स्व-अनुशासन की भावना किस प्रकार पैदा की जा सकती है?
(1) उन्हें कठोर अनुशासन में रखकर
(2) उन्हें अनुशासन में रहने के लाभ बताकर
(3) अनुशासनहीनता पर उन्हें दण्ड देकर
(4) उन्हें जिम्मेदारी सौंपकर

104. कक्षा में अनुशासन सुधारने की दृष्टि से अध्यापक का क्या करना सर्वोत्तम होगा?
(1) अध्यापक छात्रों को पढ़ाई जाने वाली विषय वस्तु, पढ़ाने की विधि और छात्रों के प्रति अपने दृष्टिकोण का मूल्यांकन करे।
(2) कक्षा के छात्रों की सहमति से अनुशासनहीनता के लिए दिये जाने वाले दण्ड का प्रकार/उसकी मात्रा निर्धारित करे।
(3) इस समस्या पर विचार करने हेतु अभिभावकों को बुलाकर बात करे।
(4) अनुशासनहीन छात्रों के नाम प्रधानाध्यापक के पास भेज दे।

105. संकोची और शर्मीले छात्रों को कक्षा के शिक्षण कार्य में भाग लेने की प्रेरणा देने का उपाय यह है कि–
(1) उनको गृहकार्य से मुक्त रखा जाए।
(2) उनको कक्षा में अपनी रूचि के विषय पर कुछ बताने को प्रोत्साहित किया जाए।
(3) यदि वे किसी प्रश्न का उत्तर न दे सकें, तो उन्हें शर्मिन्दा किया जाए।
(4) उनको विशेष स्नेह दिया जाए।

106. अन्तर्भूत अभिप्रेरणा का आशय है कि छात्र–
(1) पुरस्कार पाने की इच्छा से कठिन परिश्रम करता है
(2) दण्ड से बचने के लिए नित्य पाठशाला आता है
(3) अध्यापक के डर से गृहकार्य पूरा करता है
(4) ज्ञान की वृद्धि के लिए लगन से पढ़ाई करता है

89.	90.	91.	92.	93.	94.	95.	96.	97.	98.	99.	100.	101.	102.	103.	104.	105.	106.
(2)	(2)	(4)	(3)	(1)	(3)	(4)	(1)	(1)	(1)	(2)	(1)	(3)	(1)	(4)	(1)	(2)	(4)

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

107. शिक्षक को चरित्रवान होना चाहिए, इससे–
(1) छात्रों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।
(2) समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।
(3) उसके छात्र भी चरित्रवान बनने की कोशिश करेंगे।
(4) वह कभी कोई गलत काम नहीं करेगा।

108. रीता कक्षा IV की विद्यार्थी, गणित में अच्छे अंक प्राप्त नहीं कर पा रहीं है, हालाँकि अन्य विषयों में उसकी उपलब्धि अच्छी है। इसका सम्भावित कारण हो सकता है–
(1) लड़कियाँ गणित में कमजोर होती है।
(2) लड़कियों के लिए गणित आवश्यक विषय नहीं है।
(3) बच्चों को गणित सीखने के लिए अधिक बुद्धिमान होना आवश्यक है।
(4) गणित पढ़ाने के ढंग में कुछ समस्या है।

109. अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में निम्न में से कौनसा कथन सही नहीं है?
(1) यह छात्रों में रूचि बढ़ाने की क्रिया है।
(2) यह व्यक्ति को लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मजबूर करती है।
(3) यह आन्तरिक एवं बाह्य, दोनों प्रकार की प्रक्रियाएँ हैं।
(4) यह क्रिया को आगे बढ़ाती तथा उसे दिशा देती है।

110. जैसे ही अभिप्रेरणा की प्रक्रिया रूकती है–
(1) व्यक्ति की क्रिया भी रूक जाती है।
(2) कार्य करने की आवश्यकता भी मर जाती है।
(3) (1) व (2) दोनों
(4) उपरोक्त कोई नहीं

111. कक्षा में छात्रों को अभिप्रेरित किया जा सकता है–
(1) उनकी सफलता की दर को बढ़ाकर
(2) यदि वे प्रतिभावान हैं, तो उनके मार्ग में रूकावटें खड़ी करके
(3) उनमें प्रतियोगी भावना विकसित करके
(4) उपरोक्त सभी

112. स्किनर का अभिप्रेरण सिद्धान्त आधारित है–
(1) बाह्य स्पष्ट व्यवहारों पर, जो कि पुनर्बलन देकर परिवर्तित किये जाते हैं।
(2) इच्छित व्यवहार की पहचान पर
(3) उपरोक्त दोनों
(4) उपरोक्त कोई नहीं

113. एक शिक्षक, जो अपनी कक्षा में उत्तम वातावरण तैयार करना चाहता है, उसे निम्नलिखित कार्य करना चाहिए–
(1) उसे कठोर अनुशासन सिद्धान्तों का अनुसरण करना चाहिए।
(2) उसे छात्रों को चुनौतीपूर्ण नवीन अनुभव प्रदान करने चाहिए।
(3) उसे छात्रों को निरन्तर मौखिक एवं वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं में व्यस्त रखना चाहिए।
(4) उसे कठोर नियमों की स्थापना बिना किसी भेदभाव के करनी चाहिए।

114. निम्नलिखित में से कौनसे कारक अभिप्रेरक से जुड़े हुए नहीं हैं?
(1) रूचि एवं जिज्ञासा (2) जीवन के लक्ष्य
(3) शारीरिक फिटनेस (4) मानसिक स्वास्थ्य

115. कक्षानुशासन बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि अध्यापक छात्रों के मन में–
(1) भय का भाव पैदा करें। (2) सकारात्मक भाव पैदा करें।
(3) जिज्ञासा पैदा करें। (4) उपरोक्त सभी

116. अनुशासन और संस्कार डालने की प्रारम्भिक जिम्मेदारी है–
(1) विद्यालय की
(2) परिवार की
(3) अध्यापक की
(4) अध्यापक और परिवार दोनों की

117. पुरस्कार एक प्रेरणा है–
(1) अप्रत्यक्ष (2) प्रत्यक्ष
(3) नकारात्मक (4) सकारात्मक

118. विद्यार्थियों को पुरस्कार देने का उद्देश्य होता है–
(1) उत्तम गुणों का विकास (2) प्रलोभन देने की आदत
(3) रिश्वत का अर्थ समझाना (4) संवेगों को उद्दीप्त करना

119. एक अभिप्रेरित बालक निम्न में से कौनसा गुण प्रदर्शित नहीं करता?
(1) सीखने की इच्छा (2) सीखने में आवेष्टन
(3) आकांक्षा स्तर (4) समूह से अलगाव

120. दण्ड बालकों पर कैसा प्रभाव डालता है?
(1) पाराविकता (2) सुधारात्मक
(3) अल्पकालिक (4) बदला प्रेरक

121. एक सामाजिक प्रेरक है–
(1) भूख (2) प्यास
(3) आत्मगौरव (4) प्रेम

122. प्रशंसा व निन्दा दो ऐसी प्रेरणाएँ हैं, जो बालक में वृद्धि करती हैं–
(1) अनुशासन की (2) शरीर की
(3) सामाजिक प्रेरक की (4) उपरोक्त सभी

123. **अभिप्रेरणा का स्वास्थ्य सिद्धान्त** दिया है–
(1) डी हैब ने (2) डिस्को ने
(3) एच वर्ग ने (4) स्किनर ने

124. अभिप्रेरणा देने वाला घटक है–
(1) आकांक्षा स्तर (2) उत्तेजना देना
(3) प्रोत्साहन करना (4) उपरोक्त सभी

107.	108.	109.	110.	111.	112.	113.	114.	115.	116.	117.	118.	119.	120.	121.	122.	123.	124.				
(3)	(4)	(2)	(3)	(3)	(3)	(2)	(3)	(3)	(2)	(2)	(1)	(4)	(2)	(3)	(1)	(3)	(4)				

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

125. प्रेरक होता है–
(1) निष्पत्ति (2) प्रगति
(3) उत्तरदायित्व (4) उपरोक्त सभी

126. सशक्त अभिप्रेरणा सीखने का प्रभावशाली घटक है–
(1) बालक स्वस्थ रहता है। (2) भक्ति करता है।
(3) शीघ्र सीखता है। (4) प्रसन्न रहता है।

127. विकास का अर्थ है–
(1) परिवर्तनों की उत्तरोत्तर श्रृंखला
(2) अभिप्रेरणा के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों की उत्तरोत्तर श्रृंखला
(3) अभिप्रेरणा एवं अनुभव के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों की उत्तरोत्तर श्रृंखला
(4) परिपक्वता एवं अनुभव के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों की श्रृंखला

128. सकारात्मक दण्ड का निम्नलिखित में से कौनसा उदाहरण है?
(1) मित्रों के द्वारा उपहास
(2) मित्रों के साथ समय बर्बाद करना
(3) मीनमेख निकालना बन्द करना
(4) उपर्युक्त सभी

129. बच्चों में अच्छे चरित्र के निर्माण के लिए–
(1) पाठ्य पुस्तकों में चरित्र निर्माण सम्बन्धी पाठ होने चाहिए।
(2) चरित्र निर्माण के लिए व्याख्यान दिए जाने चाहिए।
(3) कक्षा कक्ष गतिविधि इस प्रकार से हो कि बच्चों को चरित्र निर्माण में सहायता मिल सके।
(4) महापुरूषों की जीवनी बच्चों को पढ़ाई जानी चाहिए।

130. प्रेरणा का वही सम्बन्ध उपलब्धि से है, जो अधिगम का ..... से है।
(1) तर्क (2) चिन्तन
(3) बोध (4) विवेक

131. छोटे शिक्षार्थियों को कक्षा कक्ष में समवयस्कों के साथ अन्तःक्रिया करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे–
(1) वे एक–दूसरे के प्रश्नों से सीख सकें।
(2) पाठ्यक्रम को बहुत जल्दी पूरा किया जा सके।
(3) वे पढ़ने के दौरान सामाजिक कौशल सीख सकें।
(4) शिक्षक कक्षा कक्ष को बेहतर तरीके से नियंत्रित कर सकें।

132. निम्नलिखित में से कौनसा सीखने के लिए अधिकतम रूप से अभिप्रेरित करता है?
(1) बाह्य कारक
(2) असफलता से बचने के लिए अभिप्रेरणा
(3) बहुत सरल या कठिन लक्ष्यों का चयन करने की प्रवृत्ति
(4) लक्ष्यों को प्राप्त करने में व्यक्तिगत सन्तुष्टि

133. बच्चों को सीखने हेतु अभिप्रेरित करने के लिये शिक्षक को बढ़ावा देना चाहिए–
(1) प्रतिस्पर्धा
(2) कक्षा में प्रथम आने वाले बच्चे को पुरस्कृत करके
(3) सीखने हेतु उचित स्थिति और वातावरण का सृजन
(4) कक्षा में प्रतिभाशाली बच्चों की प्रशंसा करके

134. यदि कक्षा में पढ़ाते समय आपको महसूस होता है कि अचानक सभी बच्चे पढ़ने में रूचि नहीं ले रहे हैं, तो आप क्या करेंगे?
(1) कोई ध्यान नहीं देंगे और पढ़ाना जारी रखेंगे।
(2) पढ़ाना बन्द कर देंगे।
(3) बच्चों को ध्यान देने को कहेंगे।
(4) कारण जानने की कोशिश करेंगे।

135. बच्चों को सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के दौरान, वे उस कार्य को किस प्रकार से कर रहे हैं, इसकी जानकारी उन्हें–
(1) कार्य समाप्त होने के पश्चात् दी जानी चाहिए।
(2) कार्य करते समय सतत् रूप से दी जानी चाहिए।
(3) कार्य के बीच में एक बार दी जानी चाहिए।
(4) इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

136. एक शिक्षक को विद्यार्थियों के तत्परता स्तर को बढ़ाना है। ऐसा करने के लिए सबसे अच्छा तरीका कौनसा होगा?
(1) विशेष प्रकरण से सम्बन्धित सृजनात्मक क्रियाकलाप को कक्षा में संगठित करवाकर
(2) कक्षा में एक इनडोर गेम आयोजित करवाकर
(3) कहानी कथन विधि द्वारा
(4) कक्षा के किसी एक विद्यार्थी द्वारा नियन्त्रण करवाकर

137. यदि आपकी कक्षा में कोई बच्चा अधिगम अक्षम हो, तो आप क्या करेंगे?
(1) उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देंगे।
(2) उसकी अक्षमता किस प्रकार की है यह जानकर उसको सिखाने का प्रयास करेंगे।
(3) उसकी अतिरिक्त कक्षा लेंगे।
(4) उसकी बैठक व्यवस्था कक्षा के बुद्धिमान बच्चों के साथ करेंगे।

138. निम्नलिखित में से किस शिक्षा मनोवैज्ञानिक ने अभिप्रेरण एवं अधिगम के बीच सम्बन्ध स्थापित करते हुए यह कहा कि अभिप्रेरण से उत्पन्न क्रियाशीलता ही सीखने के लिए उत्तरदायी है?
(1) कोहलर ने
(2) स्किनर ने
(3) थॉर्नडाइक ने
(4) वुडवर्थ ने

125.	126.	127.	128.	129.	130.	131.	132.	133.	134.	135.	136.	137.	138.								
(4)	(3)	(3)	(1)	(4)	(3)	(1)	(4)	(3)	(4)	(2)	(1)	(2)	(2)								

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

139. विद्यार्थियों में श्रम की स्फूर्ति का विकास करने के लिए–
(1) शिक्षक अपने ही श्रम में प्रवृत्ति दिखाएगा।
(2) शिक्षक श्रम के महत्त्व पर व्याख्यान करेगा।
(3) समय-समय पर विद्यार्थियों को श्रम करने का अवसर देना पड़ेगा।
(4) विद्यार्थियों को श्रम करने वाले लोगों का उदाहरण देना पड़ेगा।

140. आपको शिक्षक दिवस पर कुछ विद्यार्थियों ने एक बधाई पत्र भेजा है, आप क्या करेंगे?
(1) कुछ नहीं करेंगे।
(2) उन्हें धन्यवाद देंगे।
(3) उन्हें पैसों की बर्बादी नहीं करने के लिए बोलेंगे।
(4) उन्हें बदले में शुभकामनाएँ देंगे।

141. विद्यालय में नियमित उपस्थिति के लिए वंचित बच्चों को प्रोत्साहित करने का निम्नलिखित में से कौनसा तरीका सर्वाधिक उपयुक्त होगा?
(1) बच्चों को आकर्षित करने के लिए ₹5 देना
(2) आवासीय विद्यालय खोलना
(3) बच्चों को विद्यालय आने की अनुमति न देने को कानूनन दण्डनीय अपराध बनाया जाए।
(4) विद्यालय द्वारा बच्चों को एकत्रित करने वाले एक व्यक्ति को नियुक्त किया जाए, जो प्रतिदिन घरों से बच्चों को लेकर आए।

142. छात्रों को **ठीक, शाबाश, बहुत अच्छा** कहना है–
(1) शाब्दिक पुनर्बलन (2) अशाब्दिक पुनर्बलन
(3) सकारात्मक शाब्दिक पुनर्बलन (4) नकारात्मक शाब्दिक पुनर्बलन

143. नृत्य, ड्रामा एवं शिल्पकला का प्रयोग किया जाता है–
(1) विशिष्ट गुणों के विकास हेतु
(2) व्यक्तित्व को ढालने के लिए
(3) दबे एवं बर्दाश्त न किये जा सकने वाले अन्तर्नोद के प्रकटीकरण हेतु
(4) इनमें से सभी

144. राजेश अति लोलुप पाठक है। वह अपने कोर्स की पुस्तकें पढ़ने के अतिरिक्त प्रायः पुस्तकालय जाता है और भिन्न प्रकरणों की पुस्तकें पढ़ता है। इतना ही नहीं राजेश भोजन अवकाश में अपने परियोजना कार्य करता है। उसे परीक्षाओं के लिए पढ़ने के लिए अपने शिक्षकों अथवा अभिभावकों द्वारा कभी भी कहने की जरूरत नहीं है और वह वास्तव में सीखने का आनन्द लेता नजर आता है। उसे ..... के रूप में सर्वाधिक बेहतर रूप में वर्णित किया जा सकता है।
(1) आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित शिक्षार्थी
(2) तथ्य आधारित शिक्षार्थी
(3) शिक्षक अभिप्रेरित शिक्षार्थी
(4) मापन आधारित शिक्षार्थी

145. निम्न में से कौनसा उदाहरण अभिप्रेरणा का परिणाम नहीं है?
(1) कृष्णा ने नृत्य का समय एक घण्टे से बढ़ाकर दो घण्टे कर दिया है।
(2) जॉन स्टुअर्ट मिल ने 12 वर्ष की उम्र में दर्शन का अध्ययन आरम्भ कर दिया था।
(3) जगन ने श्वास लेने की प्रक्रिया में रूचि दिखानी प्रारम्भ कर दी है।
(4) राम ने तेजी से आधुनिक एवं प्राचीन ऐतिहासिक प्रवृत्तियों में सहसम्बन्ध स्थापित करने में प्रगति की है।

146. निम्न में से क्या एक प्रभावी प्रशंसा के रूप में अध्यापक के लिए कार्य करेगा?
(1) विद्यार्थियों के अवधान को उनके कार्य से सम्बन्धित व्यवहार पर केन्द्रित करता है।
(2) विद्यार्थियों के वर्तमान कार्य निष्पादन को उनके समूह के अन्य साथियों के सन्दर्भ में वर्णित करता है।
(3) विद्यार्थियों को उनकी योग्यताओं अथवा कार्य निष्पादन के महत्त्व की सूचना देता है।
(4) जब विद्यार्थी अपने व्यवहार को नियन्त्रित नहीं कर पाते तो उन्हें सकारात्मक व्यवहारात्मक समर्थन प्रदान करता है।

****

अगर आप B.Ed, D.Ed, BSTC या शिक्षण अध्यापन के क्षेत्र में पढ़ाई कर रहे हैं तो आपसे निवेदन है कि निम्नलिखित Whatsapp No. अपनी कक्षा के व्हाट्सएप ग्रुप में जोड़ें। अगर आपका व्हाट्सएप ग्रुप नहीं बना हुआ है तो कृपया कम से कम 20 विद्यार्थी मिलकर व्हाट्सएप ग्रुप बना लें।

UPTET	-	95301 43210
MP Samvida	-	95302 43210
BTET	-	95302 43210
UTET	-	72209 29294
JTET	-	72209 29239
HTET	-	72209 29266
CGTET	-	72209 28969
HPTET	-	72209 28535

आपके क्लास के व्हाट्सएप ग्रुप में शिक्षा संबंधी सभी प्रतियोगी परीक्षा के पेपर्स, मॉडल पेपर्स एवं अन्य अध्ययन सामग्री भेजी जाएगी। आपका शुरू से मार्गदर्शन किया जाएगा, ताकि आप प्रतियोगी परीक्षा में अतिशीघ्र सफलता प्राप्त कर सकें।

139.	140.	141.	142.	143.	144.	145.	146.													
(3)	(2)	(2)	(3)	(4)	(1)	(3)	(4)													

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगत्य प्रकाशन द्वारा www.praganya.org वेबसाइट द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन में सभी प्रकाशन प्रगत्य प्रकाशन के सौजन्यकार प्रगत्य प्रकाशन के द्वारा सुविधा है।

अध्याय 9

व्यक्तिगत विभिन्नताएँ

9.1 प्रस्तावना

संसार में सभी वस्तुएँ गतिशील होती हैं, किसी में भी समानता नहीं पायी जाती। सभी जैवीय पदार्थों में समानता नहीं होगी, क्योंकि उनका विकास अपनी-अपनी गति से होता है। यह विभिन्नता मनुष्यों में सबसे अधिक मात्रा में पायी जाती है, क्योंकि मानव प्रकृति की सबसे गतिशील रचना है। अतः कह सकते हैं कि संसार में कोई भी दो मानव या मनुष्य समान नहीं होते। यह भिन्नता शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक रूप से पायी जाती है।

कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं होते हैं। यहाँ तक कि जुड़वाँ बच्चों में भी किसी न किसी आधार पर भिन्नता देखी जा सकती है। वह भिन्नता मनुष्यों में ही नहीं पायी जाती वरन् यह जानवरों, पेड़-पौधों में भी होती है। जैसे गुलाब व गेंदे के सभी पौधे एक जैसे नहीं होते हैं व उनमें पुष्पों में भी कोई समानता नहीं होती।

वर्तमान काल में व्यक्तिगत विभिन्नता के अनुसार ही शिक्षा प्रदान की जाती है। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जिसका ध्यान अध्यापकों को पढ़ाते समय रखना चाहिए।

9.2 व्यक्तिगत विभिन्नताओं की परिभाषाएँ

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तिगत विभिन्नताओं की अनेक परिभाषाएँ दी है, उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. टायलर के अनुसार–

शरीर के आकार और स्वरूप, शारीरिक कार्यों, गति सम्बन्धी क्षमताओं, बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान, रूचियों, अभिवृत्तियों व व्यक्तित्व के लक्षणों में माप की जा सकने वाली विभिन्नताओं की उपस्थिति सिद्ध की जा चुकी हैं।

2. स्किनर के अनुसार–

व्यक्तिगत विभिन्नताओं से हमारा तात्पर्य व्यक्तित्व के उन सभी पहलुओं से है, जिनका मापन व मूल्यांकन किया जा सकता है।

3. कार्टर वी. गुड के अनुसार–

व्यक्तिगत विभिन्नता, व्यक्तियों में किसी एक विशेषता या अनेक विशेषताओं को लेकर पायी जाने वाली विभिन्नता है, जो सम्पूर्ण रूप में वे सारे भेद व अन्तर हैं, जो एक व्यक्ति को दूसरे से अलग करती है।

4. जेम्स ड्रेवर के अनुसार–

औसत समूह से मानसिक, शारीरिक विशेषताओं के सन्दर्भ में समूह के सदस्य के रूप में भिन्नता या अन्तर को वैयक्तिक भेद कहते हैं।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक आदि किसी भी दृष्टि से दो व्यक्तियों के व्यक्तित्व तथा क्रियाओं में जो भिन्नताएँ पायी जाती हैं, उन्हें व्यक्तिगत विभिन्नताएँ कहते हैं।

9.3 व्यक्तिगत विभिन्नताओं के प्रकार

व्यक्तिगत भिन्नता से तात्पर्य किसी न किसी रूप में व्यक्ति से भिन्न होना है। टर्मन के अनुसार–

> उच्च योग्यता वालों या प्रतिभाशाली बच्चों में कुछ हद तक अपनी अनेक योग्यताओं के मामले में अपने ही भीतर या अन्य व्यक्तियों के साथ भिन्नताएँ होती हैं।

एक व्यक्ति आवश्यक नहीं है कि दूसरे से सभी बातों में समान हो। उसका अन्तर एक नहीं अनेक रूपों में हो सकता है। व्यक्तिगत विभिन्नताएँ निम्नलिखित प्रकार की हो सकती है–

1. शारीरिक विभिन्नताएँ

शारीरिक भिन्नता से तात्पर्य रंग-रूप, कद, यौन-भेद, शारीरिक परिपक्वता आदि के अन्तर से है। लम्बा या छोटा कद, मोटा या पतला आकार शारीरिक भिन्नता को प्रकट करते हैं।

2. बौद्धिक विभिन्नताएँ

बुद्धि के आधार पर भी व्यक्ति में विभिन्नता होती है। बौद्धिक स्तर के आधार पर व्यक्तियों को असाधारण प्रतिभाशाली से मूढ़ तक विभिन्न श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

3. दृष्टिकोणों में विभिन्नताएँ

उपलब्धि परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग उपलब्धि योग्यताएँ होती हैं। यह विभिन्नता पढ़ने, लिखने तथा गणित सीखने में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। एक ही बुद्धि स्तर के बच्चों में भी यह उपलब्धि विभिन्नता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। बुद्धि के विविध तत्त्वों की विभिन्नता तथा विविध अनुभवों, रूचियों तथा शैक्षणिक पृष्ठभूमि के कारण उपलब्धि विभिन्नता उत्पन्न होती है।

4. गत्यात्मक योग्यता में विभिन्नताएँ

प्रत्येक व्यक्ति में गत्यात्मक योग्यता भी अलग-अलग होती है। कई व्यक्ति मैकेनिकल काम आसानी से कर सकते हैं, परन्तु कई व्यक्ति एक ही आयु स्तर के होने पर भी कार्यों में कठिनाई अनुभव करते हैं।

5. लैंगिक आधार पर विभिन्नताएँ

टर्मन ने कुछ अध्ययनों के आधार पर स्त्री तथा पुरूषों में निम्नलिखित विभिन्नताओं की खोज की हैं–

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

1. स्त्रियाँ ड्रॉइंग दर्पण मे अपेक्षाकृत अधिक कुशल होती हैं। वाणी आदि की त्रुटियाँ पुरूषों में नारी की अपेक्षा तीन गुना होती है।
2. नारियाँ सुझावों के प्रति अधिक ग्रहणशील होती हैं, जबकि पुरूषों में नारियों की अपेक्षा अधिक रंग-अन्धता होती है।

6. व्यक्तित्व में विभिन्नताएँ

लोगों में व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्नताएँ भी होती हैं। इन विभिन्नताओं के आधार पर व्यक्तियों को कई वर्गों में विभाजित किया गया है। जैसे–

1. स्प्रैंगर ने व्यक्तित्व भिन्नता के आधार पर छः वर्ग– सैद्धान्तिक, आर्थिक, सामाजिक, सौन्दर्यात्मक, राजनीतिक तथा धार्मिक बनाये हैं।
2. जुंग ने व्यक्तित्व भिन्नता के आधार पर तीन वर्ग– अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी तथा उभयमुखी बनाये हैं।
3. थॉर्नडाइक ने चिन्तनशीलता के आधार पर चार वर्ग– अमूर्त चिन्तक, विचारात्मक चिन्तक, वस्तुपरक चिन्तक तथा आंगिक अनुभव प्रधान चिन्तक बनाये हैं।
4. टर्मन ने बुद्धि स्तर के आधार पर नौ वर्ग– प्रतिभाशाली, प्रतिभाशाली के निकट, अति उत्तम, उत्तम, औसत, पिछड़े हुए, दुर्बल मानसिकता वाले, मन्द बुद्धि तथा मूढ़ बनाये हैं।
5. जोर्डन ने व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर दो वर्ग– क्रियाशील तथा विचारात्मक बनाये हैं।
6. ट्राटर ने व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर दो वर्ग– स्थिर मानसिकता सम्पन्न तथा अस्थिर मानसिकता वाले बनाये हैं।

7. भावात्मक विभिन्नताएँ

हम देखते हैं कि कुछ व्यक्ति जल्दी ही क्रोधित हो जाते हैं और कुछ देर से। कुछ व्यक्ति बहुत ही शान्त रहते हैं और कुछ जल्दी ही चिढ़ जाते हैं। संवेगों की यह भिन्नता व्यक्तित्व समायोजन के लिए समस्या होती है।

8. चरित्र में विभिन्नताएँ

चरित्र भी सभी व्यक्तियों का समान नहीं होता। कुछ अच्छे चरित्र वाले होते हैं और कुछ खराब, कुछ कामुक होते हैं, कुछ सज्जन आदि। चरित्र की विशेषताएँ ही व्यक्ति-व्यक्ति में भेद उत्पन्न करती हैं।

9. उपलब्धि की विभिन्नताएँ

सभी व्यक्तियों की शैक्षिक अथवा व्यावहारिक जीवन में उपलब्धि समान नहीं होती, कोई कम परिश्रम से अधिक परिणाम प्राप्त करता है तो कोई अधिक परिश्रम से कम। शिक्षक एक ही वातावरण में पढ़ाता है, परन्तु सभी छात्रों के अंक समान नहीं आते।

10. अधिगम की विभिन्नताएँ

किसी कार्य को सीखने की योग्यता भी प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न होती है। कोई जल्दी सीखता है, तो कोई देर से। साथ सीखी गई क्रिया से लाभ उठाने की योग्यता में भी भिन्नता पाई जाती है।

9.4 व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के पाये जाने के अनेक कारण विद्यमान हैं, जिनमें से कुछ कारण निम्नलिखित हैं–

1. वंशानुक्रम

व्यक्तिगत विभिन्नताओं का एक प्रमुख कारण वंशानुक्रम है। व्यक्ति को कई गुण अपने वंश से विरासत में मिलती हैं, जैस–चेहरे के नक्श, आँखों का रंग, बाल, रंग-रूप, सिर का आकार; कुछ बीमारियाँ– रक्तचाप, कैंसर, टी.बी., आदि की ओर प्रवृत्ति, कुछ मानसिक विशेषताएँ, जैसे– बुद्धि, अमूर्त चिन्तन, दृष्टिकोण, संकीर्णताएँ आदि। वंशानुगत विभिन्नताओं के कारण व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक विकास भी अन्य व्यक्तियों से भिन्न होता है।

2. वातावरण

व्यक्तिगत विभिन्नताओं को प्रभावित करने में वातावरण का महत्त्वपूर्ण हाथ है। वातावरण में परिवर्तन बच्चे के व्यक्तित्व के परिवर्तन में प्रतिबिम्बित होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यक्ति के वातावरण में वे सभी उत्प्रेरणाएँ सम्मिलित हैं जो वह जन्म से मरण तक प्राप्त करता है। इसमें भौतिक, सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक शक्तियाँ सम्मिलित हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों व्यक्तिगत विभिन्नताओं को प्रभावित करते हैं।

3. जाति, प्रजाति एवं राष्ट्र का प्रभाव

विभिन्न जातियों के लोगों में विभिन्नता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। प्रायः यह देखा गया है कि क्षेत्रीय के लड़के में अपेक्षाकृत अधिक साहस होता है और एक व्यापारी के लड़के में व्यापार की अधिक प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार विभिन्न राष्ट्रों के लोगों के चरित्र, व्यक्तित्व तथा मानसिक योग्यताओं में भी विभिन्नता होती है। यह विभिन्नता भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण में पैदा होती है। कई अध्ययनों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि अमेरिकन तथा नीग्रो जाति के लोगों में विभिन्नताएँ हैं, चीनियों तथा जापानियों में विभिन्नताएँ हैं, अंग्रेजों तथा भारतीयों में विभिन्नताएँ है आदि।

4. लैंगिक विभिन्नताएँ

लड़कों तथा लड़कियों के विकास में उनकी लैंगिक विभिन्नता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। लड़कियों का शारीरिक विकास लड़कों से एक या दो साल पहले होता है। 11 से 14 वर्ष की अवस्था के बीच में लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक लम्बी और भारी हो जाती हैं, परन्तु 15 वर्ष की अवस्था में लड़के अधिक तेजी से बढ़ने लगते हैं।

5. आयु तथा बुद्धि

आयु की वृद्धि से शारीरिक, बौद्धिक तथा भावात्मक विकास भी होता है। बुद्धि विभिन्नता के कारण व्यक्तियों में भी विभिन्नता उत्पन्न होती है। जिन बच्चों का बौद्धिक स्तर तथा मानसिक अवस्था औसत से नीचे होती है, उन्हें सीखने में बहुत कठिनाई होती हैं, जबकि औसत बुद्धि वाले बच्चों को सीखने में आसानी होती है।

6. स्वभाव और भावों में स्थिरता

कुछ व्यक्ति स्वभाव से ही जल्दी काम करने वाले होते हैं जबकि कुछ व्यक्ति धीरे-धीरे काम करते हैं। कुछ व्यक्ति विनोदप्रिय होते हैं, तो कुछ व्यक्तियों को जल्दी गुस्सा आ जाता है। व्यक्ति की भावात्मक स्थिरता शारीरिक एवं मानसिक तत्त्वों तथा वातावरण के कारण विभिन्न रूप धारण कर लेती हैं। भावात्मक

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

स्थिरता की यह विभिन्नता व्यक्तिगत विभिन्नता का कारण बनती हैं

7. आर्थिक स्थिति और शिक्षा

माता-पिता की आर्थिक स्थिति तथा शिक्षा से भी व्यक्तिगत विभिन्नताएँ पैदा होती हैं। दो आर्थिक वर्गों के बच्चों में समानता होना असम्भव है।

9.5 शिक्षा के क्षेत्र में वैयक्तिक भिन्नता का महत्त्व एवं उपयोगिता

शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किए हैं। कभी शिक्षा शिक्षक केन्द्रित थी, मनोविज्ञान के प्रवेश से वह बाल केन्द्रित हो गई। इतना ही नहीं अपितु वैयक्तिक भिन्नता के अध्ययन से उसे पूर्ण रूप से बाल केन्द्रित बनाने के प्रयत्न शुरू हो गए। वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में वैयक्तिक भिन्नता का महत्त्व बढ़ गया है, उसकी उपयोगिता बढ़ गई है और शिक्षा के हर क्षेत्र में उसका उपयोग किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में वैयक्तिक भिन्नता का महत्त्व निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

1. शिक्षा के उद्देश्य निर्धारण में

वर्तमान में किसी भी स्तर की शिक्षा के उद्देश्य उस स्तर के औसत शिक्षार्थियों की दृष्टि से निर्धारित किए जाते हैं और उच्च अंशों के स्थान पर यथार्थ के धरातल पर निश्चित किए जाते हैं।

2. शिक्षा की पाठ्यचर्या के निर्माण में

वर्तमान में सर्वप्रथम किसी भी स्तर के शिक्षार्थियों को वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर तीन वर्गों–निम्न, मध्य और उच्च में वर्गीकृत किया जाता है, क्योंकि किसी भी समूह में अधिकतर (लगभग 68 प्रतिशत) शिक्षार्थियों के गुण विशेष में प्राप्तांक मध्यमान अर्थात् औसत की ओर झुके होते हैं, लगभग 27 प्रतिशत के औसत से कुछ दूर होते हैं और लगभग 4.5 प्रतिशत के प्राप्तांक औसत से बहुत कम अथवा बहुत अधिक होते हैं, इसीलिए किसी भी स्तर की पाठ्यचर्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग औसत शिक्षार्थियों की दृष्टि से तैयार किया जाता है, लगभग 15 प्रतिशत भाग औसत से नीचे के छात्रों की दृष्टि से तैयार किया जाता है और उसका लगभग 15 प्रतिशत भाग ऐसा होता है, जिसे उच्च स्तर के छात्र ही सरलता से समझ सकते हैं। साथ ही सहपाठ्यचारी क्रियाओं के निर्धारण में भी वैयक्तिक भिन्नता का ध्यान रखा जाता है।

3. छात्रों के वर्गीकरण में

वर्तमान में इस बात पर बहुत बल दिया जाता है कि किसी भी कक्षा के छात्रों का उनकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं के आधार पर कम से कम तीन वर्गों में वर्गीकरण किया जाए–निम्न, औसत और उच्च। आदर्श स्थिति तो वह मानी जाती है, जिसमें इन तीनों वर्गों के छात्रों की शिक्षा व्यवस्था अलग-अलग की जाए, लेकिन जहाँ ऐसा सम्भव न हो, उन पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाता है।

4. कक्षा के आकार निर्धारण में

यदि वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर छात्रों को निम्न, औसत और उच्च तीन समरूप समूहों में विभाजित किया जाता है तो भी, और यदि उन्हें एक ही साथ एक ही कक्षा में पढ़ाया जाता है तो भी, कक्षा का आकार छोटा होना चाहिए, उसी स्थिति में शिक्षक उनकी वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर व्यक्तिगत रूप से सहायता कर सकते हैं। शिशु स्तर पर एक कक्षा वर्ग में 25, बाल स्तर पर 30, किशोर स्तर पर 40 और उससे ऊपर के स्तर पर 50 से अधिक छात्र–छात्राओं की संख्या नहीं होनी चाहिए।

5. शिक्षण विधियों के चयन में

वर्तमान में उन शिक्षण विधियों को अच्छा माना जाता है जो कक्षा विशेष के छात्रों के अनुकूल हों, जिनमें अधिकतर छात्रों की रूचि हो, जिनमें छात्र अपनी वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर अपनी गति से सीख सकें। इस दृष्टि से शिशु स्तर पर मॉन्टेसरी प्रणाली और किण्डर गार्टन प्रणाली अच्छी मानी जाती हैं और बाल एवं किशोर स्तर पर योजना विधि और अभिक्रमिक अनुदेशन अच्छी विधियाँ मानी जाती हैं।

6. शिक्षण साधनों के चयन में

हम जानते हैं कि सभी बच्चे सभी शिक्षण साधनों में समान रूचि नहीं लेते अतः आवश्यक है कि शिशु, बाल और किशोर स्तर पर भिन्न-भिन्न शिक्षण साधनों का प्रयोग किया जाए। वर्तमान में दृश्य-श्रव्य साधनों–ओवर हेड प्रोजेक्टर, टेलीविजन और कम्प्यूटर का प्रयोग बढ़ता जा रहा है, पर इनमें भी सभी बच्चे समान रूप से रूचि नहीं लेते, जो जिसमें रूचि लें उन्हें उसी के द्वारा सीखने के अवसर दिए जाने चाहिए।

7. वैयक्तिक सहायता में

बच्चों में वैयक्तिक भिन्नता इतनी अधिक होती है कि सब दृष्टियों से समरूप समूह बनाना कठिन होता है इसीलिए वैयक्तिक सहायता आवश्यक होती है। यह सहायता कई रूपों में देनी होती है। कक्षा में पाठ का विकास करते समय प्रायः प्रश्न पूछे जाते हैं, शिक्षकों को चाहिए कि प्रश्नों का वितरण पूरी कक्षा में करें, सरल प्रश्नों के उत्तर निम्न स्तर के छात्रों से पूछें, सामान्य प्रश्नों के उत्तर सामान्य स्तर के छात्रों से पूछें और कठिन प्रश्नों के उत्तर उच्च स्तर के छात्रों से पूछें और प्रश्नों के सही उत्तर न देने पर छात्रों की कठिनाई को समझें और उसे दूर करें। कमजोर छात्रों को अलग से समय देकर भी उनकी वैयक्तिक रूप से सहायता करनी चाहिए।

8. गृहकार्य की मात्रा में

वैयक्तिक भिन्नता का पहला तकाजा यह है कि शिशु स्तर पर बहुत कम मात्रा में गृहकार्य दिया जाए, बाल एवं किशोर स्तर पर उससे अधिक मात्रा में और ऊपर के छात्रों को स्वाध्याय की ओर प्रवृत्त किया जाए। किसी भी कक्षा के छात्रों में से निम्न स्तर के छात्रों को अपेक्षाकृत कम, औसत स्तर के छात्रों को औसत और उच्च स्तर के छात्रों को अपेक्षाकृत अधिक गृहकार्य दिया जाए।

9. शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन में

वैयक्तिक भिन्नता के ज्ञान से अब यह आवश्यक समझा जाता है कि छात्रों को उनकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता एवं रूचि तथा रूझान के आधार पर अध्ययन के विषय एवं क्षेत्र चुनने में सहायता की जाए और उनकी अधिक्षमता एवं विशिष्ट योग्यता के आधार पर उन्हें प्रशिक्षण हेतु कौशल अथवा व्यवसाय चयन में सहायता दी जाए। इसे ही क्रमशः शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन कहते हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

9.6 व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर आधारित शिक्षण प्रविधियाँ

व्यक्तिगत शिक्षण की प्रमुख प्रविधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. प्रोजेक्ट प्रणाली

इस पद्धति का जन्म अमेरिका में हुआ तथा इस पद्धति के जन्मदाता किलपैट्रिक थे। उनके अनुसार–

> प्रोजेक्ट पूरे मन से किया जाने वाला एक उद्देश्यपूर्ण कार्य है जो सामाजिक वातावरण में सम्पन्न होता है।

इस प्रणाली में छात्र अपनी रूचि से योजना का चयन करता है, जैसे– मिट्टी के बर्तन बनाना, गुड़िया का घर बनाना, नाटक खेलना, बागवानी करना, जानवरों को पालना आदि। यह विधि **करके सीखो** सिद्धान्त पर बल देती है। इस विधि में छात्रों को एक-एक कार्य सौंप दिया जाता है, जिसे वे मिल-जुल कर पूरा करते हैं जैसे–सांस्कृतिक कार्यक्रम या पिकनिक की व्यवस्था करना। योजना के पदों में परिस्थिति निर्माण, चयन, नियोजन, पूर्ण करना, मूल्यांकन तथा अंकन प्रमुख हैं। किलपैट्रिक के अनुसार–

> योजना, सामाजिक वातावरण में पूर्ण संलग्नता से किया जाने वाला उद्देश्यपूर्ण कार्य है।

2. डाल्टन प्रणाली

इस प्रणाली को मिस हेलेन पार्कहर्स्ट ने दिया। इस प्रणाली में छात्र को अपनी योग्यता, क्षमता व रूचि के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता होती है। उसे समय के बन्धन में नहीं बाँधा जाता। विद्यार्थी चाहे तो सारे दिन एक ही विषय पढ़ सकता है। इसमें प्रत्येक विषय के लिये प्रयोगशाला बनाई जाती है। इस प्रणाली की मुख्य विशेषता कार्य का ठेका है जिसे छात्र को निश्चित अवधि में पूरा करना होता है। वर्ष भर के कार्य को वह महीनों, सप्ताहों व दिनों में बाँट सकता है। इस प्रणाली में अध्यापक मात्र एक पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य करता है। मिस हेलेन पार्कहर्स्ट ने डाल्टन योजना के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि–

> डाल्टन प्रयोगशाला योजना शिक्षण की प्रणाली अथवा पद्धति नहीं है। यह शैक्षिक पुनर्गठन की एक विधि है, जो सीखनें की सम्बद्ध क्रियाओं में एकता स्थापित करती है।

3. विनेटिका प्रणाली

इस योजना का प्रतिपादन डॉ. कार्लटन वाशवर्न ने किया। इस योजना में भी बालक को कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। इसमें पूरे पाठ्यक्रम को छोटी-छोटी इकाईयों में बाँटा गया है। छात्र एक इकाई का सफलतापूर्वक अध्ययन करने के बाद ही दूसरी इकाई का अध्ययन करता है। छात्र अपने ज्ञान की परीक्षा स्वयं करता है। अध्यापक मात्र मार्ग-दर्शक होता है। इस योजना में कोई बालक अनुत्तीर्ण नहीं होता तथा प्रत्येक विषय में बालक को अलग से ग्रेड दिया जाता है। इस विधि में बालक का ईमानदार होना आवश्यक है।

4. डेक्रोली प्रणाली

इस प्रणाली के जन्मदाता डॉ. ओविड डेक्रोली थे जो बेलज्यिम में प्रोफेसर थे। उनके अनुसार बालक को शिक्षा उसके जीवन से ही मिलनी चाहिये। इस विधि में बालकों का विभाजन उनकी रूचि, क्षमता एवं स्तर के अनुसार कर दिया जाता है। फिर उन्हें उनकी क्षमता के अनुसार आगे बढ़ने दिया जाता है। डेक्रोली प्रणाली में स्कूल का वातावरण प्राकृतिक होता है। जहाँ बालकों को उदार शिक्षा दी जाती है। लड़के-लड़कियों को एक साथ शिक्षा दी जाती है तथा इनकी संख्या 20-25 होती है। इस प्रणाली में माता-पिता का भी सहयोग लिया जाता है तथा बालक में सामूहिक भावना का विकास किया जाता है। ह्यूज तथा ह्यूज के अनुसार–

> डेक्रोली विधि बालक को मूर्त एवं अमूर्त कार्यों को करने का अवसर प्रदान कर आत्म प्रकाशन को उत्साहित करती है। यह विधि **जीवन के लिये**, **जीवन द्वारा** सिद्धान्त पर आधारित है।

5. कॉन्ट्रेक्ट प्रणाली

यह योजना एक प्रकार से डाल्टन प्रणाली तथा विनेटिका प्रणाली का मिला-जुला रूप है। इसमें छात्र को सप्ताह, महीने या वर्षभर का कार्य एक साथ ही दे दिया जाता है। कोई समय-सारणी का बन्धन नहीं होता और न ही पाठ्यक्रम के छोटे-छोटे भाग किये जाते हैं। छात्र को कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता रहती है। वह चाहे तो वर्ष का कार्य 8 महीने में पूरा कर सकता है और यदि वह किन्ही कारणों से कार्य पूरा नहीं कर पाता, तो वह उसे अगले वर्ष पूरा कर सकता है। कार्य की समाप्ति पर उसकी परीक्षा ली जाती है और उसके असफल होने पर उसके कारणों को जानने का प्रयास किया जाता है।

6. क्रिया-योजना

क्रिया-योजना वस्तुतः कोई योजना नहीं है, बल्कि शिक्षण प्रक्रिया का एक पहलू है। अध्यापक का यह प्रयास रहता है कि उसके विद्यार्थी कक्षा में पूरे समय सक्रिय बने रहें। इसलिये जब तक विद्यार्थी प्रश्न पूछकर पाठ्य-वस्तु को आत्मसात करने की कोशिश नहीं करता, अध्यापक को सन्तुष्टि नहीं होती। इस विधि में अध्यापक छात्र की क्रियाओं का निरीक्षण करता है। छात्र को वही क्रिया सौंपी जाये, जो उसके मानसिक स्तर के अनुकूल हो।

इस विधि का प्रयोग कब किया जाये? इस सम्बन्ध में शोइनचेन ने लिखा है कि

> क्रिया-योजना विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है जब किसी विषय में शिक्षण लक्ष्यों को आगे बढ़ाने हेतु बालकों द्वारा किसी प्रकार की क्रिया की जाती है।

7. अभिक्रमित अनुदेशन

यह प्रणाली एक प्रकार से विनेटिका प्रणाली का ही रूप है। जिस प्रकार विनेटिका प्रणाली में हम पाठ्यक्रम को छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट लेते है, वैसे ही ये इकाइयाँ इस अभिक्रमित अनुदेशन में **प्रोग्राम** कहलाती हैं। अब छात्र एक-एक प्रोग्राम को लेकर चलता है तथा उसे पूरा करता है। एक प्रोग्राम के सफलतापूर्वक कर लेने पर ही उसे दूसरा प्रोग्राम दिया जाता है। जो विद्यार्थी प्रथम प्रयास में प्रोग्राम नहीं सीख पाता उसे फीडबेक दी जाती है तथा जो सीख जाता है उसे पुरस्कार दिया जाता है। छात्र को निर्धारित समय सीमा में ही सारे प्रोग्राम करने होते हैं। डी. एल. कुक के अनुसार–

> अभिक्रमित अध्ययन स्वयं शिक्षण विधियों की विस्तृत अवधारणा को स्पष्ट करने के लिये प्रयुक्त एक पर्याय है।

फ्रैड स्टोफैल के अनुसार–

> ज्ञान के छोटे–छोटे अंगों को एक तार्किक क्रम में व्यवस्थित करने की अभिक्रम व इसकी समग्र प्रक्रिया को अभिक्रमित अध्ययन कहते हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

8. किण्डरगार्टन प्रणाली

इस प्रणाली के जन्मदाता फ्रोबेल हैं। किण्डरगार्टन शब्द का अर्थ है **बच्चों का बगीचा**। फ्रोबेल शिक्षक को माली तथा बच्चे को पौधा मानता है। उसका कहना है कि बालक एक अविकसित पौधा है जो शिक्षक रूपी माली की देखरेख में पनपता है। इस प्रणाली में बालक को पुस्तकों से नहीं लादा जाता बल्कि उसे स्वतन्त्र रूप से हँसने, खेलने, बोलने व घूमने दिया जाता है। इस प्रणाली में बालक खेल-खेल में सब कुछ सीख जाता है।

9. मॉण्टेसरी प्रणाली

छोटे बच्चों को शिक्षित करने की यह एक लोकप्रिय प्रणाली है। इस प्रणाली की जन्मदात्री डॉ. मेरिया मॉण्टेसरी हैं। यह विधि मन्द बुद्धि बालकों के लिये बहुत उपयोगी है। यह प्रणाली मनावैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। स्वतन्त्रता, आत्म-अनुशासन, आत्मनिर्भरता, व्यावहारिक शिक्षा, व्यक्तिगत शिक्षा, खेल, कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा आदि इस प्रणाली के आधार हैं। दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, स्वाद एवं घ्राण शक्तियों तथा घरेलू उपकरणों के द्वारा शिक्षा दी जाती है।

10. ह्यूरिस्टिक पद्धति

इस पद्धति के प्रतिपादक आर्मस्ट्रॉंग हैं। इसका अर्थ होता है **मैंने खोज लिया**। इस पद्धति द्वारा बालक, शिक्षक, निरीक्षण, यन्त्रों और पुस्तकों की सहायता से स्वयं ज्ञानार्जन करता है। यह पद्धति विज्ञान के लिये विशेष लाभकर होती है। यह पद्धति बालक की जिज्ञासा प्रवृत्ति को तीव्र करती है और उसे सदैव सक्रिय बनाये रखती है। इस पद्धति के सम्बन्ध में नन के विचार हैं–

> क्योंकि ह्यूरिस्टिक पद्धति का उद्देश्य-बालक को मौलिक अन्वेषक की स्थिति में रखना है, इसीलिये यह स्पष्ट रूप से खेल-प्रणाली है।

11. बेसिक शिक्षा प्रणाली

इस प्रणाली के जन्मदाता गाँधी जी थे। यह प्रणाली बालक के सर्वांगीण विकास पर बल देती है। इसमें निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था है तथा यह प्रणाली हस्तकला पर आधारित है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होता है तथा बालक में आत्म-निर्भरता एवं आदर्श नागरिक के गुणों का विकास किया जाता है। छात्र को देशप्रेम तथा सत्य एवं अहिंसा की शिक्षा दी जाती है। यह प्रणाली बाल-केन्द्रित शिक्षा पर बल देती है।

उपरोक्त सभी पद्धतियाँ, खेल-प्रणाली के प्रमुख सिद्धान्तों-स्वतन्त्रता का सिद्धान्त, रूचि का सिद्धान्त, स्व-शिक्षा का सिद्धान्त, उत्तरदायित्व का सिद्धान्त आदि पर आधारित हैं। इन पद्धतियों के समुचित रूप से क्रियान्वयन के लिये सुयोग्य शिक्षक का होना परमावश्यक है। ऐसा न होने पर शिक्षा, शिक्षा न होकर केवल खेल ही खेल रह जायेगी।

****

www.praganya.org

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वैयक्तिक विभिन्नता का अर्थ है–
   (1) किन्हीं दो व्यक्तियों में शारीरिक विभिन्नता है।
   (2) किन्हीं दो व्यक्तियों में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक विभिन्नता होना
   (3) सभी व्यक्तियों का व्यक्तित्व समान होना
   (4) उपरोक्त सभी

2. वैयक्तिक भिन्नता की अवधारणा की खोज किसने की?
   (1) थॉर्नडाइक ने (2) टेलर ने
   (3) गाल्टन ने (4) टर्मन ने

3. वैयक्तिक विभिन्नताओं को समझाने का प्रयत्न सबसे पहले किसने किया था?
   (1) जेम्स ड्रेवर ने (2) स्किनर ने
   (3) टॉयलर ने (4) गाल्टन ने

4. एक कक्षा में वैयक्तिक विभिन्नताओं के क्षेत्र हो सकते हैं–
   (1) रूचियों के
   (2) सीखने के
   (3) चरित्र के
   (4) उपरोक्त सभी

5. अध्यापन के समय अध्यापक को निम्नलिखित में से किसका सर्वाधिक ध्यान रखना चाहिए?
   (1) विषयवस्तु
   (2) विद्यार्थियों की आयु
   (3) वैयक्तिक भिन्नता
   (4) विद्यार्थियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि

6. वैयक्तिक भिन्नता का प्रमुख कारण है–
   (1) आर्थिक स्थिति (2) वंशक्रम
   (3) बौद्धिकता (4) सामाजिक स्तर

7. **बालक की भिन्नताएँ उद्दीपनों का परिणाम है।** यह किसने कहा?
   (1) थॉर्नडाइक ने (2) गिलफोर्ड ने
   (3) जरशील्ड ने (4) गैरीसन ने

8. व्यक्तिगत विभिन्नताओं का प्रकार है–
   (1) आन्तरिक विभिन्नता
   (2) बाह्य विभिन्नता
   (3) उपर्युक्त दोनों
   (4) इनमें से कोई नहीं

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.		
(2)	(3)	(4)	(4)	(3)	(2)	(4)	(3)		

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

9. वैयक्तिक विभिन्नता का प्रमुख कारण है–
1. वातावरण 2. वंशानुक्रम
3. आयु
(1) 1 एवं 2 (2) केवल 2
(3) 1 एवं 3 (4) ये सभी

10. सीमा हर पाठ को बहुत जल्दी सीख लेती है, जबकि लीना उसे सीखने में ज्यादा समय लेती है। यह विकास के ..... सिद्धान्त को दर्शाता है।
(1) वैयक्तिक भिन्नता (2) अन्तःसम्बन्ध
(3) निरन्तरता (4) सामान्य से विशिष्ट की ओर

11. हालाँकि यह स्पष्ट रूप से उनकी सुरक्षा आवश्यकताओं के उल्लंघन में था, कैप्टन विक्रम बतरा अपने देश को बचाने के दौरान कारगिल युद्ध में मारे गए। सम्भवतः उन्हें ..... थी।
(1) नवीन अनुभव की प्राप्ति की इच्छा
(2) आत्म–सिद्धि की प्राप्ति की इच्छा
(3) अपने अपनत्व सम्बन्धी आवश्यकताओं की उपेक्षा
(4) अपने परिवार के नाम की ख्याति–प्राप्ति की इच्छा

12. निम्न में से कौनसा व्यक्तिगत विभिन्नता का प्रकार नहीं है?
(1) व्यक्तित्व में विभिन्नता (2) अभिवृत्ति में विभिन्नता
(3) ऊँचाई में विभिन्नता (4) उपलब्धि में विभिन्नता

13. निम्नलिखित में कौन व्यक्तिगत विभिन्नता का प्रकार है?
(1) रूचि
(2) अधिगम
(3) सामाजिक विकास में विभिन्नता
(4) उपरोक्त सभी

14. व्यक्तिगत भिन्नता के कारक सदैव ही होते हैं–
(1) वंशागत (2) सामाजिक एवं आर्थिक
(3) संवेगात्मक एवं व्यक्तिगत (4) पर्यावरणीय एवं वंशागत

15. **शिक्षार्थी वैयक्तिक भिन्नता प्रदर्शित करते हैं।** अतः एक शिक्षक को–
(1) अधिगम की एकसमान गति पर बल देना चाहिए।
(2) सीखने के विविध अनुभवों को उपलब्ध कराना चाहिए।
(3) कठोर अनुशासन सुनिश्चित करना चाहिए।
(4) परीक्षाओं की संख्या बढ़ा देनी चाहिए।

16. व्यक्तिगत शिक्षार्थी एक–दूसरे से ..... में भिन्न होते हैं।
(1) विकास की दर
(2) विकास–क्रम
(3) विकास की सामान्य क्षमता
(4) वृद्धि एवं विकास के सिद्धान्तों

17. इरफान खिलौनों को तोड़ता है और उसके पुर्जों को देखने के लिए उन्हें अलग–अलग कर देता है। आप क्या करेंगे?
(1) उस पर हमेशा नजर रखेंगे।
(2) उसके जिज्ञासु स्वभाव को प्रोत्साहित करेंगे और उसकी ऊर्जा को सही दिशा में संचरित करेंगे।
(3) उसे समझाएँगे कि खिलौनों को तोड़ना नहीं चाहिए।
(4) इरफान को खिलौनों से कभी भी नहीं खेलने देंगे।

18. व्यक्तिगत विभिन्नता का/के कारण है/हैं–
(1) शारीरिक आधार (2) मानसिक आधार
(3) व्यक्तित्व के गुण (4) ये सभी

19. जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से रूप, रंग, रूचि, अभिरूचि आदि में भिन्न हो, तो यह कहा जाता है–
(1) अधिगम अक्षमता (2) वैयक्तिक विभिन्नता
(3) विकृत व्यक्तित्व (4) इनमें से कोई नहीं

20. वैयक्तिक विभिन्नता को जानने के लिए कौनसी विधि नहीं है–
(1) बुद्धि परीक्षण
(2) व्यक्ति इतिहास विधि
(3) व्यक्तिगत परीक्षण
(4) अन्तर्दर्शन विधि

21. वैयक्तिक विभिन्नता पर आधारित शिक्षण विधि है–
(1) डाल्टन प्रणाली (2) प्रोजेक्ट प्रणाली
(3) मॉण्टेसरी प्रणाली (4) उपरोक्त सभी

22. वैयक्तिक विभिन्नता पर आधारित विधि नहीं है–
(1) डेक्रोली (2) विनेटिका
(3) किण्डरगार्टन (4) व्याख्यान विधि

23. वैयक्तिक विभिन्नता का/के कारण है/हैं–
(1) आनुवंशिकता
(2) वातावरण
(3) शारीरिक मानसिक विचारों का प्रभाव
(4) उपरोक्त सभी

24. **किण्डरगार्टन प्रणाली** के जन्मदाता हैं–
(1) रूसो (2) फ्रोबेल
(3) पेस्टालॉजी (4) इनमें से कोई नहीं

25. **विनेटिका प्रणाली** के जन्मदाता हैं–
(1) कार्लटन वाशवर्न
(2) ओविड डेक्रोली
(3) डब्ल्यू. ए. बर्ट
(4) इनमें से कोई नहीं

9.	10.	11.	12.	13.	14.	15.	16.	17.	18.	19.	20.	21.	22.	23.	24.	25.					
(4)	(1)	(2)	(3)	(4)	(3)	(2)	(1)	(2)	(4)	(2)	(4)	(2)	(4)	(4)	(2)	(1)					

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

26. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने वैयक्तिक भिन्नताओं की उत्पत्ति में आनुवंशिकता की भूमिका को सर्वाधिक महत्त्व दिया?
(1) वाटसन ने (2) गाल्टन ने
(3) बिने ने (4) वुण्ट ने

27. मानव जाति में वे कौनसे वैयक्तिक निर्धारक तत्त्व होते हैं, जो मानव जाति की विविधता को बताते हैं?
(1) पर्यावरण का अन्तर
(2) आनुवंशिकता का अन्तर
(3) आनुवंशिकता व पर्यावरण की अन्तःक्रिया
(4) इनमें से कोई नहीं

28. **मनोविज्ञान ने छात्रों की क्षमताओं एवं भिन्नताओं का विश्लेषण करके शिक्षा के विकास में योगदान दिया है।** उपर्युक्त मत निम्न में से किसका है?
(1) डेविस का
(2) वाटसन का
(3) स्टाउर का
(4) स्किनर का

29. आपके विचार में निम्नलिखित में से कौनसा एक वैयक्तिक विभिन्नता का कारण नहीं है?
(1) जाति
(2) वातावरण
(3) जनसंख्या
(4) लैंगिक भेद

30. बालकों में पायी जाने वाली जन्मजात विभिन्नताओं के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारक कौनसा है?
(1) पर्यावरण (2) वंशानुक्रम
(3) समाज (4) जाति-धर्म

31. बालकों में प्रायः शैक्षिक उपलब्धि के सम्बन्ध में भी वैयक्तिक विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। इसके क्या कारण हो सकते हैं?
(1) रूचि एवं निर्देशन
(2) संवेगात्मक समस्याएँ एवं आलस्य
(3) बौद्धिक योग्यताएँ, पूर्व अनुभव एवं प्रेरणा
(4) उपर्युक्त सभी

32. एक अध्यापक किसी भी समूह में समुदाय आधारित व्यक्तिगत विभिन्नताओं को समझ सकता है-
(1) आँखों के सम्पर्क के आधार पर
(2) बुद्धि के आधार पर
(3) भाषा एवं अभिव्यक्ति के आधार पर
(4) गृह कार्य के आधार पर

33. सफल एवं प्रभावी शिक्षण के लिये आवश्यक है-
(1) व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ज्ञान
(2) अपने वेतन का ज्ञान
(3) सहकर्मी की योग्यताओं का ज्ञान
(4) उपरोक्त सभी का ज्ञान

34. किसी बालक में वैयक्तिक विभिन्नता का कारण नहीं है-
(1) वंशानुक्रम (2) परिपक्वता
(3) वातावरण (4) इनमें से कोई नहीं

35. किसी बालक की आयु में वृद्धि होने के साथ-साथ उसमें उत्पन्न होने वाली वैयक्तिक विभिन्नताओं का प्रमुख कारण है-
(1) शारीरिक विकास (2) मानसिक विकास
(3) संवेगात्मक विकास (4) ये सभी

36. अध्यापक बालकों के व्यक्तिगत भेद को किसके द्वारा सबसे उपयुक्त ढंग से माप सकता है?
(1) विद्यार्थियों से निबन्ध लिखवाकर
(2) मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा
(3) विद्यालय के परीक्षाओं के परिणाम देखकर
(4) विद्यार्थियों को वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग दिलाकर

37. मानव स्वभाव में व्यक्तिगत भिन्नता पर निम्नलिखित में से किसका प्रभाव पड़ता है?
(1) अन्तरासर्गी ग्रन्थियों का
(2) शरीर रसायन का
(3) सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण का
(4) उपर्युक्त सभी

38. व्यक्तिगत भेदों को ज्ञात करने की विधि है-
(1) बुद्धिमापक परीक्षाएँ
(2) ज्ञानार्जन मापक परीक्षाएँ
(3) व्यक्तिमापक एवं संवेगात्मक परीक्षाएँ
(4) उपरोक्त सभी

39. मानसिक विभेद के अन्तर्गत नहीं आता है-
(1) स्वभावगत भेद
(2) रूचि सम्बन्धी भेद
(3) आन्तरिक भेद
(4) शारीरिक संरचना सम्बन्धी भेद

40. मनो शारीरिक असमानताओं को कहा जाता है-
(1) व्यक्ति (2) समायोजन
(3) भग्नाशा (4) व्यक्तिगत विभिन्नता

www.praganya.org
बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

26.	27.	28.	29.	30.	31.	32.	33.	34.	35.	36.	37.	38.	39.	40.							
(2)	(3)	(1)	(3)	(2)	(4)	(3)	(1)	(4)	(4)	(2)	(4)	(4)	(4)	(4)							

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

41. शारीरिक रूप से व्यक्ति–व्यक्ति के मध्य जो भिन्नता दिखाई देती है, वह कहलाती है–
(1) व्यक्तित्व (2) सामाजिक असमानता
(3) आन्तरिक विभिन्नता (4) बाह्य विभिन्नता

42. बाह्य रूप से दो व्यक्ति एक समान हैं, लेकिन वे अन्य आन्तरिक योग्यताओं की दृष्टि से समरूप नहीं हैं। ऐसी व्यक्तिगत विभिन्नता कहलाती है–
(1) व्यक्तित्व
(2) आन्तरिक विभिन्नता
(3) बाह्य विभिन्नता
(4) सामाजिक असमानता

43. वैयक्तिक विभिन्नता के मिलन के सम्बन्ध में एक अध्यापक की भूमिका होनी चाहिए–
(1) व्यक्ति के दृष्टिकोण, अभिरूचि और योग्यता को जानने का प्रयास
(2) व्यक्ति आधारित पाठ्यक्रमों को उनकी आवश्यकता के अनुसार जानने की कोशिश
(3) (1) व (2) दोनों
(4) इनमें से कोई नहीं

44. **प्रत्येक शिक्षार्थी स्वयं में विशिष्ट है।** इसका अर्थ है कि–
(1) शिक्षार्थियों में न तो कोई समान विशेषताएँ होती हैं और न ही उनके लक्ष्य समान होते हैं।
(2) सभी शिक्षार्थियों के लिए एकसमान पाठ्यचर्या सम्भव नहीं है।
(3) एक विषमरूपी कक्षा में शिक्षार्थियों की क्षमताओं को विकसित करना असम्भव है।
(4) कोई भी दो शिक्षार्थी अपनी योग्यताओं, रूचियों और प्रतिभाओं में एकसमान नहीं होते।

45. मॉण्टेसरी प्रणाली का विकास मन्द–बुद्धि और सुविधाहीन बालकों के लिए ..... को ध्यान में रखते हुए किया गया था।
(1) शिक्षा के साधनों के अभाव
(2) वैयक्तिक विभिन्नता
(3) भेदभाव को समाप्त करने की इच्छा
(4) शिक्षा को व्यवसाय का रूप देने

46. **स्किनर के अनुसार व्यक्तिगत भेदों के स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है।** यह किसके लिये कहा गया है?
(1) प्राधानाचार्य के लिये
(2) आचार्य के लिये
(3) नेता के लिये
(4) प्रशासक के लिये

47. **बालक गणित और विज्ञान में आगे होते हैं,जबकि बालिकाएँ भाषा और सुन्दर हस्तलेख में।** क्यों?
(1) व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण
(2) रूचि के कारण
(3) संवेग के कारण
(4) चिन्तन के कारण

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

48. विशिष्ट बालकों के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था करना वैयक्तिक विभिन्नताओं का कौनसा कारण है?
(1) जैविक कारण
(2) वैज्ञानिक कारण
(3) शैक्षिक कारण
(4) सामाजिक महत्त्व

49. **एक समूह के व्यक्तियों में, समूहों की औसत से मानसिक अथवा शारीरिक विशेषताओं का विचलन ही व्यक्तिगत भिन्नता है।** यह कथन किस विद्वान से सम्बन्धित है?
(1) ल्यूना टाइलर से
(2) ड्रेवर से
(3) रॉबर्ट गैग्ने से
(4) स्कीनर से

50. सह–शैक्षणिक क्षेत्रों में निष्पादन के आधार पर शैक्षणिक क्षेत्रों में निष्पादन के स्तर को बढ़ाने का औचित्य स्थापन किस आधार पर किया जा सकता है?
(1) यह वैयक्तिक भिन्नताओं को सन्तुष्ट करता है।
(2) यह हाशियाकृत विद्यार्थियों के लिए प्रतिपूरक भेदभाव की नीति का अनुगमन करता है।
(3) यह सार्वभौमिक धारणा को सुनिश्चित करता है।
(4) यह हाथ से किए जाने वाले श्रम के प्रति सम्मान विकसित करता है।

51. आप देखते हैं कि एक छात्र बुद्धिमान है। आप–
(1) उसके साथ सन्तुष्ट रहेंगे।
(2) उसे अतिरिक्त गृहकार्य नहीं देंगे।
(3) वह जैसे अधिक प्रगति कर सके, उस तरह से उसे अनुप्रेरित करेंगे।
(4) उसके अभिभावकों को सूचित करेंगे कि वह बुद्धिमान है।

52. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में व्यक्तिगत रूप से ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि–
(1) शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों में ऐसा ही बताया गया है।
(2) इससे प्रत्येक शिक्षार्थी को अनुशासित करने के लिए शिक्षकों को बेहतर अवसर मिलते हैं।
(3) बच्चों की विकास दर भिन्न होती है और वे भिन्न तरीकों से सीख सकते हैं।
(4) शिक्षार्थी हमेशा समूहों में ही बेहतर सीखते हैं।

41.	42.	43.	44.	45.	46.	47.	48.	49.	50.	51.	52.										
(4)	(2)	(3)	(4)	(2)	(2)	(1)	(3)	(2)	(1)	(3)	(3)										

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

53. यदि कुछ विद्यार्थी कक्षा में अध्ययन की चित्तवृत्ति में नहीं हैं, तो आप–
(1) उन्हें अध्ययन के लिए बाध्य करेंगे।
(2) उन विद्यार्थियों को कक्षा छोड़ने के लिए कहेंगे।
(3) उन्हें चेतावनी देंगे कि वे अवश्य अध्ययन करें नहीं, तो आप प्रधानाध्यापक को सूचित कर देंगे।
(4) उन्हें उनकी रूचि अथवा आप अपने विषय के अनुसार रूचिपूर्ण चीजें बताएँगे।

54. वैयक्तिक विभिन्नता के सन्दर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए–
1. समुदाय के आधार पर वैयक्तिक विभिन्नता देखने को मिलती है।
2. बुद्धि के आधार पर वैयक्तिक विभिन्नता सम्भव है, किन्तु संवेग के आधार पर नहीं।
3. समुदाय के आधार पर वैयक्तिक विभिन्नता सम्भव है।
उपरोक्त में से कौनसा/से कथन सत्य है/हैं?
(1) केवल 2 (2) 1 एवं 2
(3) 1 एवं 3 (4) ये सभी

55. विद्यालयों को किसके लिए वैयक्तिक भिन्नताओं को पूरा करना चाहिए?
(1) वैयक्तिक शिक्षार्थी को विशिष्ट होने की अनुभूति कराने के लिए
(2) वैयक्तिक शिक्षार्थियों के मध्य खाई को कम करने के लिए
(3) शिक्षार्थियों के निष्पादन और योग्यताओं को समान करने के लिए
(4) यह समझने के लिए कि क्यों शिक्षार्थी सीखने के योग्य या अयोग्य हैं।

56. वैयक्तिक विभिन्नता के विकास हेतु पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में बालकों का शिक्षण किस प्रकार किया जाना चाहिए?
1. खेल विधि के माध्यम से बालकों को गणित तथा भाषा का ज्ञान देना चाहिए।
2. उन्हें अक्षर ज्ञान तथा गणना की जानकारी प्रारम्भ से ही मौखिक रूप से दी जानी चाहिए।
3. लिखने तथा सिखाने से पूर्व बच्चों से चित्र बनवाए जाने चाहिए।
(1) केवल 1
(2) 1 एवं 3
(3) केवल 3
(4) ये सभी

57. एक शिक्षिका अपनी कक्षा के प्रतिभाशाली बच्चों की योग्यताओं की उपलब्धि चाहती है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसे निम्नलिखित में से क्या नहीं करना चाहिए?
(1) तनाव को नियन्त्रित करना सिखाना
(2) विशेष ध्यान के लिए उन्हें उनके समकक्षियों से अलग करना
(3) उनकी सृजनात्मकता को समृद्ध करने के लिए उन्हें चुनौती देना
(4) गैर–शैक्षणिक गतिविधियों में आनन्द लेना सिखाना

58. आप अपनी कक्षा में अपने शिक्षण के दौरान कड़ी मेहनत करते हैं, फिर भी आपकी कक्षा में काफी विभिन्नता दिखाई पड़ती है। इसका कारण क्या हो सकता है?
(1) आपकी कक्षा के कुछ छात्र कक्षा में सो जाते हैं।
(2) आपकी कक्षा के कुछ छात्र आपको पसन्द नहीं करते हैं।
(3) भिन्न–भिन्न छात्रों में वैयक्तिक गुण भिन्न–भिन्न होते हैं।
(4) उपरोक्त में से कोई नहीं

59. आप अपनी कक्षा के छात्रों में परिपक्वता का अवलोकन करने पर पाते हैं कि कुछ छात्र आयु के पहले परिपक्वता प्राप्त कर चुके हैं, जबकि कुछ छात्र परिपक्वता प्राप्त करने की आयु में तो हैं, लेकिन उनमें परिपक्वता नहीं है। इसका कारण क्या हो सकता है?
(1) कक्षा में उनके बैठने का क्रम
(2) वैयक्तिक विभिन्नता
(3) विद्यालय आने व जाने के उनके भिन्न साधन
(4) उपरोक्त में से कोई नहीं

60. शिक्षार्थियों में व्यक्तिगत भिन्नताओं को सम्बोधित करने के लिए एक विद्यालय किस प्रकार का सहयोग उपलब्ध करवा सकता है?
(1) सभी शिक्षार्थियों के लिए समान स्तर की पाठ्यचर्या का अनुगमन करना।
(2) बाल केन्द्रित पाठ्यचर्या का पालन करना और शिक्षार्थियों को सीखने के अनेक अवसर उपलब्ध कराना।
(3) शिक्षार्थियों में वैयक्तिक भिन्नताओं को समाप्त करने के लिए हर सम्भव उपाय करना।
(4) धीमी गति से सीखने वाले शिक्षार्थियों को विशेष विद्यालयों में भेजना।

61. आपकी कक्षा का एक छात्र पढ़ने में बहुत तेज है। वह सातवीं कक्षा में होते हुए भी दसवीं कक्षा के विषयों को आसानी से समझ लेता है। उसका इस वैयक्तिक विभिन्नता का कारण है?
(1) उसका विशिष्ट शारीरिक विकास
(2) उसका विशिष्ट संज्ञानात्मक विकास
(3) उसका विशिष्ट संवेगात्मक विकास
(4) उसका विशिष्ट सामाजिक विकास

****

www.praganya.org

53.	54.	55.	56.	57.	58.	59.	60.	61.
(4)	(3)	(4)	(4)	(2)	(3)	(2)	(2)	(2)

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

अध्याय 10
व्यक्तित्व

10.1 प्रस्तावना

शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यापक रूप से करता है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जिनके आधार पर वह परिस्थिति के प्रति विभिन्न प्रतिक्रियाएँ प्रकट करता है। इन्हीं का सामूहिक नाम व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व ऐसे गुणों का योग है, जिनके कारण कोई व्यक्ति आकर्षक या अनाकर्षक दिखता है।

आप किसी भी कक्षा में चले जाइये, व्यक्तित्व सम्बन्धी भेद स्पष्ट दिखलायी दे जायेंगे। कुछ व्यक्ति अपने विचारों के प्रति बड़े आशावादी होते हैं और वे किसी भी परिचर्चा में बड़े उत्साह से भाग लेते है। अन्य व्यक्ति दब्बू होते हैं और कुछ भी बोलने से घबराते हैं। एक विद्यार्थी सर्वथा अनमनीय होता है और अपने विचारों में कुछ भी परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं होता। दूसरा विद्यार्थी इतना चलायमान होता है, कि उसके अपने कोई विचार नहीं होते। वह जो कुछ भी सुनता है, उसे ही सत्य मान लेता है।

10.2 व्यक्तित्व का अर्थ

पाश्चात्य देशों में व्यक्तित्व सम्बन्धी भिन्न विचारधाराएँ पाई जाती है। **व्यक्तित्व** अंग्रेजी के **पर्सनेल्टी** शब्द का रूपान्तर है। अंग्रेजी के पर्सनेल्टी शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के **पर्सोना** शब्द से हुई, जिसका अर्थ है– **नकाब** या **मुखौटा** अर्थात **नकली चेहरा**। यूनानी लोग नकाब पहनकर मंच पर अभिनय करते थे, ताकि दर्शकगण यह न जान सके कि अभिनय करने वाला कौन है– दास, विदूषक, राजकुमार, राजा, रानी या राजनर्तकी। अभिनय करने वाले जिस प्रकार के पात्र का पाठ या अभिनय करते थे, उसी प्रकार का नकाब धारण कर लेते थे। इस प्रकार यूनान में प्रारम्भ में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य स्वरूप से लिया जाता था, परन्तु कालान्तर में व्यक्तित्व के अन्तर्गत व्यक्ति के आन्तरिक स्वरूप को भी सम्मिलित किया जाने लगा। व्यक्तित्व में एक मनुष्य के न केवल शारीरिक और मानसिक गुणों का अपितु उसके सामाजिक गुणों का भी समावेश होता है। इसीलिए मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि व्यक्तित्व–मानव के गुणों, लक्षणों, क्षमताओं, विशेषताओं आदि की संगठित इकाई है। यही कारण है कि व्यक्तित्व को आज तक किसी निश्चित अर्थ से सम्बन्ध नहीं किया जा सका है और न किसी निश्चित सीमा में बाँधा जा सकता है। साधारणतः यह स्वीकार किया जाता है कि व्यक्तित्व विचित्र है, जटिल है, व्याख्या से परे है।

10.3 व्यक्तित्व की परिभाषाएँ

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की जो परिभाषाएँ दी हैं, उन्हें निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

1. डैशियल के अनुसार–

व्यक्तित्व व्यक्ति के सभी व्यवहारों का वह समायोजित संकलन है, जो उसके सहयोगियों में स्पष्ट रूप से दिखलायी दे।

2. एलपर्ट के अनुसार–

व्यक्तित्व, व्यक्ति में उन मनोदैहिक अवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन है, जिनके आधार पर व्यक्ति अपने परिवेश के साथ समायोजन स्थापित करता है।

3. ड्रेवर के अनुसार–

व्यक्ति के दैहिक, मानसिक, नैतिक तथा सामाजिक गुणों के गतिशील और सुसंगठित संगठन के लिए, व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग किया जाता है।

4. बीसेंज एवं बीसेंज के अनुसार–

व्यक्तित्व, मनुष्य की आदतों, दृष्टिकोणों और लक्ष्यों का संगठन है और प्राणीशास्त्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के संयुक्त कार्य से उत्पन्न होता है।

5. बिग तथा हण्ट के अनुसार–

किसी व्यक्ति के समस्त व्यवहार–प्रतिमानों और उसकी विशेषताओं का योग ही उसका व्यक्तित्व है।

6. बोरिंग, लैंगफील्ड तथा वैल्ड के अनुसार–

व्यक्तित्व से अभिप्राय है– व्यक्ति का अपने परिवेश के साथ स्थायी तथा अपूर्व समायोजन।

7. वैलन्टाईन के अनुसार–

व्यक्तित्व जन्मजात और आर्गेन प्रवृत्तियों का योग है।

8. वारेन के अनुसार–

व्यक्तित्व व्यक्ति का सम्पूर्ण मानसिक संगठन है, जो उसके विकास की किसी भी अवस्था में होता है।

9. थार्प तथा शमुलर के अनुसार–

व्यक्तित्व एक जटिल तथा एकीकृत प्रक्रिया है।

10. मनु के अनुसार–

व्यक्तित्व, व्यक्ति के सभी पक्षों का एक विशिष्ट संकलन होता है, जो उसके सम्पूर्ण रूप को कुछ पक्ष, अन्यों की अपेक्षा अधिक विशिष्टता प्रदान करते है।

11. मॉटर्न के अनुसार–

व्यक्तित्व, व्यक्ति के जन्मजात तथा अर्जित स्वभाव, मूल–प्रवृत्तियों, भावनाओं तथा

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

इच्छाओं आदि का योग है।

इन परिभाषाओं से व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डालने वाले निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं–

1. यह व्यक्ति की मनोदैहिक अवस्थाओं का संगठन है।
2. वातावरण, व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।
3. यह जन्मजात तथा अर्जित प्रवृत्तियों का योग है।
4. वातावरण के साथ अपूर्व समायोजन है।
5. इसमें व्यक्ति के गठन, व्यवहार आदि का संगठन है।
6. इसमें व्यक्ति के जीवन के सभी पक्ष सम्मिलित होते हैं।

10.4 व्यक्तित्व की विशेषताएँ

मानव के व्यक्तित्व में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं–

1. सामाजिकता

मानव एक सामाजिक प्राणी है, जिसका विकास समाज में रहकर ही सम्भव हो सकता है। वह समाज से अलग नहीं रह सकता। समाज में रहकर ही व्यक्ति अन्तःक्रिया द्वारा अपना सामाजिक विकास करता है। व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का विकास समाज में रहकर ही भली–भाँति हो सकता है। अतः सामाजिकता व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता है।

2. लक्ष्य–प्राप्ति की ओर अग्रसर होना

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कोई न कोई उद्देश्य अपने सामने अवश्य रखता है। किसी मनुष्य ने अपने सामने क्या लक्ष्य रखा है, उसके प्रति वह कितना सजग है, उसकी प्राप्ति के लिए वह कितना प्रयासशील है– इसको देखकर ही यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति में यह विशेषता किस सीमा तक है।

3. आत्म–चेतना

आत्म–चेतना से तात्पर्य है अपने **स्व** या अपने **अहं** के सम्बन्ध में सचेत होना। आत्म–चेतना के कारण ही व्यक्ति इस बात की ओर विशेष ध्यान देता है कि अन्य लोग उसे किस दृष्टि से देखते हैं। उसे इस बात का पता होता है कि किस कारण से लोग उसकी प्रशंसा करते है और किस कारण से उसकी निन्दा करते हैं। बालक या पशु में आत्म–चेतना का अभाव होता है, इसीलिए उनके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि उनका कोई अपना व्यक्तित्व होता हैं।

4. परिवेश के साथ समायोजन

समायोजन का अभिप्राय है– अपने आपको परिवेश के मतानुसार ढालना तथा परिवेश को अपने अनुकूल बना लेना। समायोजन के कारण ही व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है। एक विद्यार्थी, एक कर्मचारी, एक पुत्र, एक पिता, एक पत्नी तथा एक पति के व्यवहार को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने परिवेश तथा परिस्थितियों के साथ कैसा समायोजन किया है।

5. दैहिक तथा मानसिक स्वास्थ्य

एक अच्छे व्यक्तित्व के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति का, जहाँ दैहिक स्वास्थ्य अच्छा हो, वहीं वह मानसिक रूप से भी स्वस्थ हो, क्योंकि मानव मानोदैहिक जीव है।

6. अनवरत विकास

व्यक्तित्व की एक प्रधान विशेषता है कि व्यक्ति के विकास में कभी भी व्यवधान नहीं पड़ता। वह अनवरत रूप से जारी रहता है। जब से जीव का जन्म होता है, उस समय से लेकर व्यक्ति की मृत्यु तक, उसका विकास निरन्तर जारी रहता है। इसी दृष्टि को सामने रखकर गैरीसन, किंगस्टन तथा मैकडॉनल्ड ने कहा है–

व्यक्तित्व अनवरत विकास की प्रक्रिया में रहता है।

व्यक्ति का यह विकास विभिन्न दिशाओं जैसे– शारीरिक विकास, वैचारिक विकास, अनुभव विकास आदि में बराबर होता रहता है।

7. अथाह उत्साह

एक अच्छे व्यक्तित्व की सातवीं विशेषता है– उत्साह का होना। जीवन के कठिन से कठिन संघर्ष में भी उत्साह से युक्त व्यक्ति कभी घबराता नहीं। विपरीत से विपरीत परिस्थिति को चीरता हुआ, उत्साही व्यक्ति सफलता प्राप्त करता है।

8. एकता

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि विभिन्न दैहिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक तथा संवेगों का योग ही व्यक्तित्व है। व्यक्ति सदा एक इकाई के रूप में कार्य करता है। जिस प्रकार व्यक्ति की विभिन्न ज्ञानेन्द्रियाँ और मन साथ–साथ कार्य करते हैं, उसी प्रकार व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्न तत्त्व मिलकर काम करते हैं।

10.5 व्यक्तित्व का वर्गीकरण

भिन्न–भिन्न अनुशासनों में व्यक्तित्व के भिन्न–भिन्न प्रकार निश्चित किए गए हैं। किसी एक अनुशासन में भी व्यक्तित्व को भिन्न–भिन्न रूपों में विभाजित किया गया है। हम यहाँ केवल मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए कुछ मुख्य वर्गीकरण का वर्णन कर रहे हैं।

10.5.1 शारीरिक रचना के आधार पर वर्गीकरण

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण मनुष्य की शारीरिक रचना के आधार पर किया है। इनमें से शैल्डन द्वारा किए गए वर्गीकरण की चर्चा हम व्यक्तित्व के शारीरिक रचना सम्बन्धी सिद्धान्त के अन्तर्गत कर चुके हैं। यहाँ मनोवैज्ञानिक क्रेचमर द्वारा किया गया वर्गीकरण प्रस्तुत है –

1. लम्बकाय

इस वर्ग में क्रेचमर ने लम्बे और दुबले–पतले व्यक्तियों को रखा है। ये व्यक्ति प्रायः अलग रहना पसन्द करते हैं और दूसरों की आलोचना में आनन्द लेते हैं, परन्तु अपनी आलोचना सहन नहीं करते।

2. सुडौलकाय

इस वर्ग में क्रेचमर ने सामान्य कद के स्वस्थ एवं पुष्टकाय व्यक्तियों को रखा है। इन व्यक्तियों का व्यक्तित्व सामान्य होता है। इनमें सामंजस्य की क्षमता अधिक होती है।

3. गोलकाय

इस वर्ग में क्रेमचर ने छोटे कद के स्वस्थ व्यक्तियों को रखा है। ये व्यक्ति प्रायः आरामतलब होते हैं और विनोदी स्वभाव के होते हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

10.5.2 स्वभाव के आधार पर वर्गीकरण

मनोवैज्ञानिक गलैन ने व्यक्तियों को उनके स्वभाव के आधार पर चार वर्गों में विभाजित किया है–

1. उग्र स्वभावी

इस वर्ग में गलैन ने शक्तिशाली एवं उग्र स्वभाव वाले व्यक्तियों को रखा है। इस वर्ग के व्यक्तियों को क्रोध बहुत शीघ्र आता है।

2. चिन्ताग्रस्त

इस वर्ग में गलैन ने चिन्ता से ग्रस्त रहने वाले व्यक्तियों को रखा है। इस वर्ग के व्यक्ति प्रायः उदास रहते हैं और बड़े दब्बू एवं निराशावादी होते हैं।

3. निरूत्साही

इस वर्ग में गलैन ने उत्साहहीन व्यक्तियों को रखा है। इस वर्ग के व्यक्ति प्रायः शान्तप्रिय और आलसी होते हैं।

4. उत्साही

इस वर्ग में गलैन ने उत्साह से पूर्ण व्यक्तियों को रखा है। इस वर्ग के व्यक्ति आशावादी और क्रियाशील होते हैं।

10.5.3 मूल्यों के आधार पर वर्गीकरण

मनोवैज्ञानिक स्प्रेंजर ने मूल्यों को छः वर्गो में विभाजित किया है और उनके आधार पर व्यक्तित्व को भी निम्नलिखित छः वर्गो में विभाजित किया है–

1. सैद्धान्तिक

इस वर्ग में स्प्रेंजर ने उन व्यक्तियों को रखा है, जो सदैव ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं, सिद्धान्तों को महत्त्व देते हैं और कुछ कष्ट सहनकर भी आदर्शो का पालन करते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रायः अव्यावहारिक होते हैं।

2. आर्थिक

इस वर्ग में स्प्रेंजर ने उन व्यक्तियों को रखा है, जो भौतिक सुखों के इच्छुक होते हैं, धन को अधिक महत्त्व देते हैं और धनार्जन के लिए कुछ भी कर सकते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रायः व्यावहारिक होते हैं।

3. सामाजिक

इस वर्ग में स्प्रेंजर ने उन व्यक्तियों को रखा है, जो समाज और सामाजिक सम्बन्धों को अधिक महत्त्व देते हैं; दयालु, त्यागी और परोपकारी होते हैं, समाज सेवक एवं समाज सुधारक होते हैं। ऐसे व्यक्ति बहुत अधिक व्यवहारकुशल होते हैं।

4. राजनैतिक

इस वर्ग में स्प्रेंजर ने उन व्यक्तियों को रखा है, जो राजकार्य में रूचि लेते हैं, राजसत्ता से जुड़े रहना चाहते हैं और राज्य में अपनी भागीदारी चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति राजनैतिक दाँव–पेंच में बड़े माहिर होते हैं।

5. धार्मिक

इस वर्ग में स्प्रेंजर ने उन व्यक्तियों को रखा है, जो ईश्वर में विश्वास करते हैं, दैवीय प्रकोप से डरते हैं और आध्यात्मिक मूल्यों का पालन करते हैं। आध्यात्मिक मूल्यों का पालन करते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रायः आत्मसन्तोषी एवं परोपकारी होते हैं।

6. सौन्दर्यात्मक

इस वर्ग में स्प्रेंजर ने उन व्यक्तियों को रखा है, जो सौन्दर्य प्रिय होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का झुकाव प्रायः कला, संगीत, एवं नृत्य आदि की ओर अधिक होता है।

10.5.4 सामाजिक अन्तःक्रिया के आधार पर वर्गीकरण

मनोवैज्ञानिक जुंग ने व्यक्तियों को उनकी सामाजिक अन्तःक्रिया के स्वरूप के आधार पर निम्नलिखित तीन वर्गो में विभाजित किया है–

1. अन्तर्मुखी

इस वर्ग में जुंग ने उन व्यक्तियों को रखा है जो आत्मकेन्द्रित, आत्मचिन्तक, एकान्तप्रिय और संकोची होते हैं। साथ ही संवेदनशील, कर्त्तव्यनिष्ठ और मितभाषी होते है। ऐसे व्यक्ति लोक व्यवहार में प्रायः कम कुशल होते हैं।

2. बहिर्मुखी

इस वर्ग में जुंग ने उन व्यक्तियों को रखा है जो समाजकेन्द्रित, व्यावहारिक, साहसिक, चिन्तामुक्त और आशावादी होते हैं। ऐसे व्यक्ति सामाजिक कार्यों में रूचि लेते हैं और लोकप्रियता प्राप्त करते हैं।

3. उभयमुखी

जिन व्यक्तियों में अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के अधिक लक्षण होते हैं, उन्हें अन्तर्मुखी वर्ग में रखते हैं और जिन में बहिर्मुखी व्यक्तित्व के अधिक लक्षण होते हैं, उन्हें बहिर्मुखी वर्ग में रखते हैं और जिन व्यक्तियों में अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी दोनों व्यक्तित्वों के लक्षण लगभग समान रूप से होते हैं, उन्हें उभयमुखी वर्ग में रखा जाता हैं।

10.5.5 सृजनात्मक शक्ति के आधार पर वर्गीकरण

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों को उनकी सृजनात्मक शक्ति के आधार पर दो वर्गो में विभाजित किया है–

1. सृजनात्मक

जिन व्यक्तियों में लीक से हटकर चलने, कुछ नया सोचने एवं करने की इच्छा एवं शक्ति दोनों होती हैं और वे वैसा करते भी हैं, उन्हें सृजनात्मक व्यक्ति कहते हैं। पर यह सोच एवं कार्य सदैव सकारात्मक एवं प्रगतिशील होने चाहिए। सृजनशील व्यक्ति संवेदनशील होते हैं, उनमें नवीनता एवं मौलिकता के प्रति आकर्षण होता है, उनके चिन्तन में प्रवाह होता है और वे स्वतन्त्र निर्णय लेने में सक्षम होते हैं और प्रगतिशील होते हैं।

2. असृजनात्मक

जो व्यक्ति न कभी नया सोचते हैं और न कभी कुछ नया करते हैं और जो है उसी का अनुसरण करते हैं, उन्हें असृजनात्मक व्यक्ति कहते हैं। ऐसे व्यक्तियों में स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता नहीं होती, ये दूसरों पर निर्भर करते हैं और रूढ़िवादी होते हैं।

10.5.6 समायोजन के आधार पर वर्गीकरण

अधिकतर मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व को समायोजन के रूप में लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति कुछ जन्मजात शक्तियाँ लेकर पैदा होता है। जब वह अपने बाह्य पर्यावरण

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

के सम्पर्क में आता हैं, तो उसे अनेक बाह्य शक्तियों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति को अपनी जैविक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इन पर्यावरणीय शक्तियों एवं समस्याओं से पार पाना होता है। इस हेतु वह जो प्रयत्न करता है उसे समायोजन कहते हैं। यह समायोजन भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। इस आधार पर व्यक्तियों को अग्रलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जाता है-

1. सुसमायोजित

जो व्यक्ति अपनी आन्तरिक एवं बाह्य शक्तियों एवं माँगों में सन्तुलन बनाने में समर्थ होते हैं, उन्हें सुसमायोजित व्यक्तित्व कहा जाता हैं। ऐसे व्यक्तियों का व्यवहार बहुत सन्तुलित होता है और समाज सम्मत होता है।

2. कुसमायोजित

जो व्यक्ति अपनी आन्तरिक एवं बाह्य शक्तियों एवं माँगों में सन्तुलन नहीं बना पाते हैं और इधर या उधर झुक जाते हैं या किसी अन्य ओर झुक जाते हैं, उन्हें कुसमायोजित व्यक्तित्व कहा जाता है। ऐसे व्यक्तियों का व्यवहार बड़ा असन्तुलित होता है और प्रायः असामाजिक होता है।

10.6 व्यक्तित्व के सिद्धान्त

व्यक्तित्व का अध्ययन मनोवैज्ञानिकों के लिए अपरिहार्य अंग हो गया है। सच तो यह है कि मानव का व्यक्तित्व एक नहीं, अनेक कारकों से निर्मित होता हैं। वैयक्तिक धारणाओं के आधार पर ही व्यक्तित्व सम्बन्धी सिद्धान्तों का निरूपण हुआ है। ये सिद्धान्त संक्षेप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

10.6.1 मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त

इस मत के प्रतिपादक सिगमंड फ्रायड हैं। फ्रायड के अनुसार, व्यक्तित्व का निर्माण इड्, इगो तथा सुपर इगो के द्वारा होता है। इड् को सामान्य अहं के, इगो को अहं के तथा सुपर इगो को नैतिक मत के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। इड्, अचेतन मन हैं, जिसमें मूल प्रवृत्तियाँ एवं नैसर्गिक इच्छाएँ रहती हैं। ये शीघ्र तृप्ति चाहती हैं। इगो चेतना, इच्छा-शक्ति, बुद्धि तथा तर्क हैं। सुपर इगो आदर्शो से निर्मित होता है। फ्रायड ने इगो के विषय में कहा है-

> इगो, इड् का वह भाग है जो बाह्य संसार के अनुमान तथा सम्भावना से परिष्कृत होता है और उसका कालान्तर में प्रभाव भी पड़ता है, जो प्राणी को उद्दीपन करने एवं उसके इर्द-गिर्द जमी परत के अंश के रूप में व्याप्त रहता है।

इसी प्रकार सुपर इगो के विषय में कहा है-

> सुपर इगो, इगो का वह पक्ष है जो आत्म-निरीक्षण की प्रक्रिया को सम्भव बनाता है, जिसे सामान्य रूप में चेतना कहते हैं।

इस प्रकार मानव व्यक्तित्व का निर्माण इन्हीं तत्त्वों से होता है। ये तत्त्व व्यक्तित्व के अनेक रूप प्रकट करते हैं।

10.6.2 रचना सिद्धान्त

इस मत के प्रतिपादक शैलडॉन हैं। शैलडॉन ने व्यक्तित्व के तीन प्राथमिक आधार बताए हैं-

1. गोलाकृति

इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले मनुष्य गोल गर्दन तथा माँसपेशियों से पूर्ण विकसित होते हैं। चर्बी का बढ़ना आदि गुणों से युक्त ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व अलग प्रकट होता हैं।

2. आयताकृति

इस प्रकार के व्यक्तित्व में हड्डियों तथा माँसपेशियों का विकास परिलक्षित होता हैं।

3. लम्बाकृति

इस प्रकार के व्यक्तित्व में केन्द्रीय स्नायु संस्थान के माँसपेशीय तन्तु विकसित होते हैं।

इस मत के अनुसार शरीर के विभिन्न अंगों को व्यक्तित्व के निर्माण का आधार माना जाता है।

10.6.3 प्रतिकारक प्रणाली सिद्धान्त

इस मत के प्रतिपादक आर.बी.कैटल हैं। व्यक्तित्व के विषय में इनका कथन है-

> व्यक्ति जो किसी विशेष परिस्थिति में जो भी कार्य करता है, उसका प्रतिरूप ही व्यक्तित्व हैं।

> कैटल ने चरित्र को अनेक कारकों से युक्त बताया है। उनके अनुसार- चरित्र की सुन्दरता अर्थात्, भावात्मक एकता, सामाजिकता, कल्पनाशीलता, अभिप्रेरक, उत्सुकता, लापरवाही आदि प्रतिकारक चरित्र का निर्माण करते हैं।

कैटल ने आगे कहा है कि-

> एक आन्तरिक मनोदैहिक स्थिति जो व्यक्ति को प्रतिक्रिया (अवधान, अभिज्ञान) करने की अनुज्ञा देती है, वह भी उद्देश्यों के वर्गों से, विशेष संवेगों के अनुभव प्राप्त करती है एवं कार्यों को पूर्ण रूप से करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। इसके अतिरिक्त इन प्रतिमानों में ऐसे व्यवहार को प्राथमिकता दी जाती है, जो कि उद्देश्य की प्राप्ति करते हैं।

10.6.4 ऑलपोर्ट का सिद्धान्त

गोर्डन डब्ल्यू. ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में, जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, वह वंशक्रम तथा वातावरण, वैयक्तिक भेद आदि पर आधारित हैं। ऑलपोर्ट ने वंशक्रम द्वारा निर्धारित व्यक्तित्व के जटिल मिश्रण के प्रति न्याय करने, स्वभाव, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों के प्रति न्याय करने पर बल दिया है। साथ ही व्यक्तित्व की नवीनता को मान्यता देने पर भी बल दिया है, जो अनेक सम्प्रदायों तथा व्यक्तित्वों में विद्यमान होती है। व्यक्तित्व को निर्धारित करने वाली प्रवृत्तियों, विशेषताओं तथा वातावरण के प्रति समायोजन से व्यक्तित्व का निर्धारण होता है।

10.6.5 मुर्रे का सिद्धान्त

एच. ए. मुर्रे ने व्यक्तित्व के सन्दर्भ में कहा है-

> व्यक्तित्व कार्यात्मक रूप एवं शक्तियों की निरन्तरता है, जो संगठित प्रक्रिया के रूप में जन्म से मृत्यु तक बहिर्मुखी होकर प्रकट होती है। इस मत के अनुसार कार्यात्मक रूपों की निरन्तरता ऋणात्मक तथा धनात्मक अभिनिवेश सम्बन्ध, मतभेद, सक्रियता, निष्क्रियता आदि का योग कर व्यक्तित्व का निर्माण करती है।

इस मत पर कतिपय आरोप भी हैं, जैसे- अचेतन निर्धारकों का व्यवहार

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

पर प्रभाव, अधिगम की भूमिका, अभिप्रेरणा की स्थिति व्यक्तित्व पर प्रभाव डालती है और उसकी अभिव्यक्ति का कारण बनती है।

10.7 व्यक्तित्व के विकास के कारक या तत्त्व

तत्त्व के विषय में आलपोर्ट का कथन है कि यह मनोदैहिक संगठन है। प्रत्येक व्यक्ति, व्यक्तित्व शब्द से पृथक्–पृथक् आशय लगाता है। कोई शरीर सौष्ठव को व्यक्तित्व मानता है तो कोई बातचीत के प्रभावशाली ढंग को, कोई सहानुभूति व्यवहार तथा सहायता करने को, सदैव तत्पर व्यक्ति को प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप में लेता है तो कोई आकर्षक परिधान और कलात्मक मेकअप को व्यक्तित्व की श्रेणी में लाते हैं। मिशेल ने कहा है–

> विचार और संवेगों सहित व्यक्तित्व, व्यवहार की विशिष्टता की ओर संकेत करता है। यह स्थिति वातावरण में उसके समायोजन की ओर संकेत करती है।

व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं–

1. शारीरिक प्रभाव

शरीर के स्नायुमण्डल और क्रियाओं का व्यक्तित्व के विकास पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। शारीरिक कमी का मनुष्य के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की बुद्धि, मानसिक योग्यता, मानसिक दुर्बलता व्यक्तित्व के विकास में सहायक होते हैं। दुर्बल व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्णतः विकसित नहीं होता।

2. वंश परम्परा

मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यवहार में वंश–परम्परा का प्रभाव कम दिखाई पड़ता है। स्कॉट के अनुसार–

> इसकी भूमिका के सम्बन्ध में वंश परम्परा पर प्रभाव डालने वाले तत्त्वों के निर्धारकों का विकास होता है। अनुकरणशीलता इसमें पाई जाती है। वंशक्रम का समस्त ज्ञान वैयक्तिक भिन्नता को प्रकट करता है।

वंशानुक्रम के आधार पर बहुत से व्यक्ति उत्थान नहीं कर पाते। ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि मनुष्य के विकास में वंशानुक्रम ही विशेष योग देता है।

3. वातावरण का प्रभाव

व्यक्तित्व के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव वातावरण का पड़ता है। जन्म से ही मानव निश्चित वातावरण में रहता है। उसको जैसा वातावरण मिलेगा, वैसे ही उसकी विशेषताओं का विकास होगा। घर के आदर्श, रीति–रिवाज, बोल–चाल सभी बातें बच्चे के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालती है। वातावरण दो रूपों में प्रभाव डालता है–

1. **सामाजिक वातावरण–** सामाजिक अवस्था का व्यक्तित्व के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। डलर्ड का कहना है कि मनुष्य का व्यक्तित्व समाज के वातावरण से गूँथा होता है। लॉरेन्स के अनुसार–

   > संस्कृति वह आधार भूमि है, जिससे व्यक्ति विकसित होता है। सामाजिक वातावरण व्यक्तित्व के विकास में विशेष हाथ बँटाता है।

2. **सांस्कृतिक सम्यक्–** मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में उसकी सभ्यता, रहन–सहन का ढंग भी विशेष योग देता है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास पर सभ्यता की अमिट छाप रहती है।

4. बाल्यावस्था के अनुभव

बाल्यकाल के अनुभव स्थायी रूप से मनुष्य के व्यक्तित्व का अंग बन जाते हैं। माता–पिता का तथा घर के अन्य सदस्यों का व्यवहार बच्चे के विकसित मस्तिष्क पर प्रभाव डालता है। स्टार्ट के अनुसार–

> किशोर के व्यक्तित्व पर माता–पिता, घर के सदस्य, मित्रों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। घर की आर्थिक एवं सामाजिक अवस्था भी अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे के विकास पर प्रभाव डालती है।

5. विद्यालय का अनुभव

विद्यालय का वातावरण, अध्यापकों एवं अन्य विद्यार्थियों का व्यवहार, पाठ्यक्रम आदि बच्चे के व्यक्तित्व को बनाने में सहयोग देते हैं। जो विद्यालय बच्चों को अच्छा वातावरण, सहानुभूति, मिल–जुलकर कार्य करने का शिक्षण देते हैं, वहाँ पर बच्चों के व्यक्तित्व का विकास अच्छा होता है और इसके साथ–साथ बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखता है तथा हृदय में समूह भावना का विकास करता है। विद्यालय में बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति, मनोरंजन के साधन, खेलों का प्रबन्ध, उच्चादर्श, शिक्षा, नाटक, ड्रामा, सुन्दर पुस्तकालय तथा अध्यापकों के आदर्श– ये सभी बातें अच्छे बच्चे के अच्छे व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक सिद्ध होती हैं।

6. नली विहीन ग्रन्थियाँ

ये ग्रन्थियाँ व्यक्तित्व के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योग देती हैं। इन ग्रन्थियों से मानव के व्यक्तित्व का विकास निर्धारित मनोदैहिक दिशा में होता है।

7. समूह की सदस्यता

व्यक्तित्व के विकास की एक अवस्था समूह की सदस्यता भी है। व्यक्ति एक साथ जब अनेक समूहों की सदस्यता ग्रहण करता है, तो उसके व्यवहार का चतुर्मुखी विकास होता है। उसे बहुर्मुखी व्यक्तित्व के रूप में पहचाना जाता है।

8. अधिगम अवस्था

व्यक्तित्व के विकास की एक अवस्था अधिगम की है। व्यक्ति किसी नवीन अनुभव को किस प्रकार सीखता है, इससे उस व्यक्तित्व की अवस्था का पता चलता है। स्किनर, मिलर तथा डॉलर्ड ने इस तथ्य पर बल दिया। इरिकसन, ऑलपोर्ट, बॉस, शैल्डन आदि ने व्यक्तित्व का विकास अधिगम की अवस्था में बताया है।

9. व्यवहार की इकाई

स्किनर ने व्यवहार को अनेक इकाईयों में बाँटा है। उसका कहना है कि छोटी–छोटी इकाईयाँ जब पूर्ण व्यवहार के रूप में व्यक्त होती है, तो वे व्यक्तित्व के विकास का एक भाग बन जाती हैं।

10. अभिप्रेरणा का बाहुल्य

व्यक्तित्व के विकास की एक अवस्था अभिप्रेरणा का बाहुल्य भी हैं। व्यवहार तथा व्यक्तित्व की पहचान अभिप्रेरणा के अनेक चरों के द्वारा होती है।

11. विकास की सातत्यता

एरिकसन ने विकास को एक सतत् क्रिया माना हैं। उसका विश्वास है कि व्यक्तित्व को विकास की विभिन्न अवस्थाओं जैसे–भाषा, शारीरिक, संवेगात्मक,

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक उपभागों में नहीं बाँटा जा सकता। यह विश्वास सतत् एवं समग्र रूप से चलता रहता है।

10.8 व्यक्तित्व एवं शिक्षा

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। यदि व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है, तो उसके व्यक्तित्व का भी विकास होगा। अतः व्यक्तित्व के अध्ययन का शिक्षाशास्त्रियों के लिए अत्यन्त महत्त्व है।

1. व्यक्तित्व के विकास से अन्तर्दृष्टि विकसित होती है और उसमें विभिन्न शक्तियाँ संगठित होने लगती है।
2. ज्ञान से आत्मविकास को बल मिलता है। स्वयं के प्रति अनेक प्रत्ययों का स्पष्टीकरण हो जाता है।
3. विश्वास तथा आत्म-विश्वास विकसित होता है।

अभिप्रेरणा, अधिकार, भावना, सत्य का ज्ञान तथा अवबोध, परिचय, निकटता, घनिष्टता आदि के विकास में शिक्षा सहायक होती है। इसीलिए कहा गया है- यह इस बात को देखता है कि व्यक्ति स्वयं को जानता है अथवा नहीं, कि वह सम्मान, अवबोध तथा प्यार पाने लायक है; वह स्वयं को जानने तथा अपने को दूसरों में मिलने के योग्य है।

10.9 व्यक्तित्व विकास में अध्यापक की भूमिका

व्यक्तित्व विकास पर विद्यालय के वातावरण तथा पठन-पाठन का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। इसमें शिक्षक की भूमिका भी काफी अहम् होती है। शिक्षक के व्यवहार, उनके व्यक्तित्व का प्रभाव छात्रों के व्यक्तित्व विकास पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता ही है, पर अध्यापक प्रत्यक्ष रूप से उनके व्यक्तित्व विकास में योगदान भी करता है। अतः इस दृष्टि से शिक्षकों को व्यक्तित्व विकास में अपनी भूमिका को सार्थक करने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए-

1. प्रत्येक छात्र की वैयक्तिकता को पहचानने का प्रयास किया जाना चाहिए तथा उनकी व्यक्तिगत विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए उनकी जन्मजात क्षमताओं के विकास का अवसर दिया जाना चाहिए।
2. बालकों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करने के प्रयास किये जाये।
3. बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु विद्यालय में अनेक पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाये।
4. बालकों की व्यक्तिगत, शैक्षिक एवं व्यावसायिक समस्याओं के समाधान हेतु विद्यालय में निर्देशन एवं परामर्श सेवाएँ आयोजित की जाये।
5. विद्यालय का वातावरण सरल, मधुर, शान्त एवं प्रेममय बनाया जाये।
6. बालकों की सृजनशीलता का विकास किया जावे तथा उनको स्वतन्त्र चिन्तन हेतु प्रोत्साहित किया जाये।
7. बालको को ऐसे अनुभव दिये जाये, जिससे उनमें विश्वास एवं आत्मविश्वास विकसित हो सके।
8. व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने के लिए आदर्श व्यक्तियों के अनुकरण के अवसर दिये जायें।
9. विद्यालय में बच्चों को उपयुक्त मनोरंजन के अवसर भी दिये जाये।
10. बालकों का पारिवारिक वातावरण अच्छा हो इस हेतु अभिभावकों को मार्गदर्शन दिया जावे।
11. जन्मजात शक्तियों के विकास हेतु विद्यालय में अच्छा वातावरण बनाया जायें।
12. अध्यापक को अपने स्वयं के व्यक्तित्व को अनुकरणीय बनाना चाहिए।
13. छात्रों में सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास किया जाये
14. अध्यापकों को अपना दृष्टिकोण भी सकारात्मक बनाने चाहिए।
15. छात्र अध्यापक सम्बन्ध स्नेह पूर्ण एवं मधुर बनाने की ओर ध्यान देना चाहिए।
16. छात्रों के समग्र मूल्यांकन की व्यवस्था की जाये।
17. बालकों को नकारात्मक दृष्टिकोण एवं संवेगों से बचाया जाये।
18. छात्रों को स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के लिए अवसर प्रदान किये जाये।

10.10 व्यक्तित्व मापन

मनुष्य के व्यक्तित्व के मापन का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल में हमारे देश में मनुष्य के व्यक्तित्व से तात्पर्य उसके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के समग्र रूप से लिया जाता था। अतः तब इसका मापन भी इनके विकास के आधार पर किया जाता था। आगे चलकर उसे उसकी सत्,रज् और तम् वृत्तियों के रूप में देखा-समझा जाने लगा और जिस व्यक्ति में जिस वृत्ति की अधिकता होती थी, उसे उसी के अनुकूल सात्विक, राजसी अथवा तामसी व्यक्तित्व का कहा जाने लगा। वर्तमान में न तो हम व्यक्तित्व के स्वरूप के विषय में एकमत है और न ही उसके मापन के विषय में एकमत है।

दूसरे देशों की कहानी हमारे देश से कुछ भिन्न हैं। प्राचीनकाल में वहाँ मनुष्य के व्यक्तित्व से तात्पर्य उसके बाह्य स्वरूप से लिया जाता था। वह जिस प्रकार का व्यवहार करता था उसे उसके व्यवहार के अनुकूल उसी वर्ग में रखा जाता था। रोमन काल में वहाँ उसके व्यक्तित्व में उसके आन्तरिक स्वरूप को भी सम्मिलित किया जाने लगा और तब उसका मापन भी दोनों आधारों पर किया जाने लगा।

वर्तमान में मनुष्य के व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या और उसके मापन की विधियों का विकास पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने शुरू किया। उन्होंने व्यक्तित्व मापन की अनेक विधियों का विकास भी किया है। हमारे देश के मनोवैज्ञानिक उनका आधुनिकरण कर रहे हैं। इस बीच व्यक्तित्व मापन की जिन विधियों का विकास हुआ है, उन्हें मूलतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- अप्रक्षेपी विधियाँ और प्रक्षेपी विधियाँ। अप्रक्षेपी विधियों में कुछ विधियाँ व्यक्तिनिष्ठ हैं और कुछ विधियाँ वस्तुनिष्ठ हैं। व्यक्तिनिष्ठ विधियों में मुख्य विधियाँ हैं- अवलोकन विधि, साक्षात्कार विधि, प्रश्नावली विधि, व्यक्ति इतिहास विधि और आत्मकथा विधि। वस्तुनिष्ठ विधियों में मुख्य विधियाँ हैं- नियन्त्रित निरीक्षण विधि, श्रेणी मापनी, शारीरिक परीक्षण और परिस्थिति परीक्षण। प्रक्षेपी विधियों में मुख्य विधियाँ हैं- साहचर्य प्रविधि, रचना प्रविधि, पूर्ति प्रविधि, चयन प्रविधि और अभिव्यक्ति परीक्षण। अभिव्यक्ति परीक्षण में रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण,

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण और बाल अन्तर्बोध परीक्षण मुख्य हैं। व्यक्तित्व परीक्षणों के इस वर्गीकरण को नीचे के चार्ट द्वारा एक दृष्टि में देखा-समझा जा सकता है-

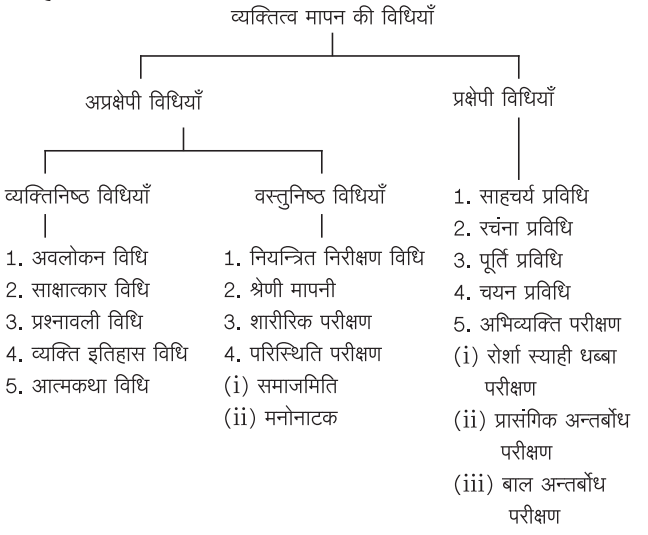

10.10.1 व्यक्तित्व मापन की व्यक्तिनिष्ठ विधियाँ

व्यक्तित्व मापन की व्यक्तिनिष्ठ विधियों से तात्पर्य उन विधियों से है, जिनके मापन परीक्षण परिणाम मापनकर्ता की अपनी मान्यताओं, अपनी पसन्द-नापसन्द और अपने व्यक्तिगत मानदण्डों से प्रभावित होते हैं। इन विधियों में निम्नलिखित विधियाँ सम्मिलित हैं-

1. अवलोकन विधि
2. साक्षात्कार विधि
3. प्रश्नावली विधि
4. व्यक्ति इतिहास विधि
5. आत्मकथा विधि

1. अवलोकन विधि

इस विधि में मापनकर्ता प्रयोज्य के व्यवहार का अवलोकन करता है और यह देखता है कि उसमें व्यक्तित्व के कौन-कौन से लक्षण हैं और वे कितनी-कितनी मात्रा में हैं- अधिक, सामान्य अथवा न्यून मात्रा में। मनोवैज्ञानिक थॉर्नडाइक और जर्सिल्ड ने प्रारम्भ में इसी विधि का प्रयोग किया था।

इस विधि का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें मापनकर्ता प्रयोज्य की विशेषताओं (व्यक्तित्व लक्षणों) को स्वयं अपनी आँखों से देखता है और दिमाग से समझता है, उसे किसी मापन उपकरण की आवश्यकता नहीं होती।

इस विधि में कुछ कमियाँ भी हैं। पहली कमी तो यह है कि इस विधि से व्यक्तित्व मापन में समय बहुत अधिक लगता है और दूसरी कमी यह है कि इसके मापन परिणाम मापनकर्ता पर निर्भर करते हैं, वे वस्तुनिष्ठ न होकर व्यक्तिनिष्ठ होते हैं।

2. साक्षात्कार विधि

इस विधि में मापनकर्ता और प्रयोज्य एक-दूसरे के आमने-सामने होते हैं। मापनकर्ता प्रयोज्य से व्यक्तित्व के लक्षण सम्बन्धी प्रश्न पूछता है और प्रयोज्य उनके उत्तर देता है। यह कार्य औपचारिक अथवा अनौपचारिक किसी भी रूप में किया जा सकता है।

इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मापनकर्ता सर्वप्रथम प्रयोज्य से सौहार्द्र स्थापित करता है। इसलिए प्रयोज्य अपने सम्बन्ध में गोपनीय तथ्य भी बता देता है। दूसरी विशेषता यह है कि इसके द्वारा प्रयोज्य के कुछ ऐसे लक्षणों की जानकारी भी की जा सकती है, जो अन्य विधियों से नहीं की जा सकती; जैसे- आत्मविश्वास एवं अभिव्यक्ति शैली। इस विधि से दूसरी विधियों द्वारा प्राप्त आँकड़ों की पुष्टि भी की जा सकती है। इस विधि का प्रयोग मुख्य रूप से प्रयोज्यों की समस्याओं का पता लगाकर उन्हें व्यक्तिगत निर्देश देने से किया जाता है।

इस विधि से व्यक्तिगत मापन में समय बहुत अधिक लगता है और चूँकि एक समय में केवल एक ही प्रयोज्य के व्यक्तित्व का मापन किया जा सकता है, इसलिए समय के साथ-साथ शक्ति भी बहुत अधिक लगती है। फिर यह व्यक्तिनिष्ठ विधि है, इसके परिणामों पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

3. प्रश्नावली विधि

प्रश्नावली विधि को **परिसूची विधि** भी कहते हैं। यह साक्षात्कार का औपचारिक एवं लिखित रूप है। इस विधि में व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं- बुद्धि, अभिक्षमता, संवेग, आदर्श, मूल्य और सामाजिकता आदि से सम्बन्धित प्रश्नों की रचना कर उन्हें सूचीबद्ध किया जाता है। इन सूचियों को **व्यक्तित्व परिसूची** कहा जाता है। ये परिसूचियाँ प्रयोज्य अथवा प्रयोज्यों को वितरित की जाती हैं और उनसे या तो इन्हीं परिसूचियों पर या अलग से दिए गए उत्तर पत्र पर उन प्रश्नों के उत्तर देने को कहा जाता है। प्रश्नों के प्रकार के आधार पर प्रश्नावलियों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जाता है-

1. **प्रतिबन्धित प्रश्नावली**- ये वे प्रश्नावली हैं, जिनमें प्रयोज्यों को प्रश्नों का उत्तर प्रतिबन्धित रूप से देना होता है; जैसे- हाँ या ना प्रश्न। इस प्रकार के प्रश्नों का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

   क्या आप अतिथियों के आगमन पर प्रसन्न होते हैं? हाँ/ना

2. **खुली प्रश्नावली**- ये वे प्रश्नावली हैं, जिनमें प्रयोज्यों को प्रश्नों के उत्तर अपने तरीकों से देने की स्वतन्त्रता होती है। इस प्रकार के प्रश्नों का एक उदाहरण है-

   परिवार में अतिथि के आगमन पर हमें उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए?

3. **चित्रात्मक प्रश्नावली**- इस प्रश्नावलियों में प्रश्नों को चित्र रूप में प्रस्तुत किया जाता है और प्रयोज्यों को उचित चित्र का चयन कर निशान लगाकर उत्तर देना होता है।
4. **मिश्रित प्रश्नावली**- ये वे प्रश्नावली हैं, जिनमें उपरोक्त दो या तीनों प्रकार के प्रश्न होते हैं।

इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके द्वारा व्यक्तियों के व्यक्तित्व के अनेक लक्षणों- आत्मविश्वास, अधीनता, अन्तर्मुखता, बहिर्मुखता एवं प्रभुत्व प्रवृत्ति आदि का पता लगाया जा सकता है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रयोज्यों के उत्तरों की भिन्नता के आधार पर उनके व्यक्तित्वों की तुलना की जा सकती है और तीसरी विशेषता यह है कि इस विधि से एक समय में अनेक

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

प्रयोज्यों के व्यक्तित्व का मापन एक साथ किया जा सकता है, इससे समय एवं शक्ति, दोनों की बचत होती है।

इस विधि की अपनी कुछ कमियाँ भी हैं। पहली कमी तो यह है कि प्रयोज्य प्रायः बिना सोचे उत्तर दे सकते हैं। दूसरी कमी यह है कि वे बनावटी उत्तर भी दे सकते हैं, और देते भी हैं। प्रयोज्यों को अपने व्यक्तित्व के बारे में सूचना देनी होती है, इसलिए वे प्रायः धनात्मक तथ्यों को बढ़ा-चढ़ा कर व्यक्त करते हैं और ऋणात्मक तथ्यों को छिपाने का प्रयत्न करते हैं।

सामान्यतया यह एक अच्छी विधि मानी जाती है। इस बीच व्यक्तित्व मापन की अनेक परिसूचियों का निर्माण हुआ है। उनमें से कुछ मुख्य परिसूचियों के नाम निम्न दिए जा रहे हैं-

1. बैल की समायोजन परिसूची
2. मिनासोटा नाना स्थितिक व्यक्तित्व परिसूची
3. बर्नर्यूटर व्यक्तित्व परिसूची
4. ऑलपोर्ट ए. एस. प्रतिक्रिया अध्ययन
5. फ्रायड हीडब्रेकडर का अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी परीक्षण
6. कार्नल सूचक
7. वुडवर्थ का व्यक्तित्व तथ्य पत्रक
8. मनोविज्ञानशाला उत्तर प्रदेश की व्यक्तित्व परिसूची

4. व्यक्ति इतिहास विधि

व्यक्ति इतिहास विधि को **जीवन इतिहास विधि** भी कहते हैं। इस विधि में प्रयोज्य के जन्म से लेकर अब तक के विषय में सामान्य सूचनाएँ एकत्रित की जाती है; जैसे- शारीरिक स्वास्थ्य, परिपक्वता, बुद्धि, पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्ध, शिक्षा और व्यक्तिगत समस्याएँ। मापनकर्ता ये सूचनाएँ दो प्रकार से प्राप्त करते हैं- एक सीधे प्रयोज्यों से और दूसरे प्रयोज्यों से सम्बन्धित व्यक्तियों (माता-पिता, पड़ोसी, सहपाठी आदि) से।

शिक्षा के क्षेत्र में इस विधि का प्रयोग मुख्य रूप से बाल अपराधों के कारणों का पता लगाने के लिए किया जाता है। चिकित्सा के क्षेत्र में इसका प्रयोग मुख्य रूप से मनोचिकित्सक करते हैं।

इस विधि की अपनी कुछ कमियाँ भी हैं। पहली यह है कि प्रयोज्य अथवा प्रयोज्यों से सम्बन्धित व्यक्ति प्रयोज्य के बारे में प्रायः सही सूचना नहीं देते और दूसरी यह है कि यह व्यक्तिनिष्ठ विधि है, इसके परिणाम मापनकर्ता की अपनी पसन्द-नापसन्द और अपने व्यक्तिगत मानदण्ड पर निर्भर करते हैं, वे सही भी हो सकते हैं और गलत भी।

5. आत्मकथा विधि

आत्मकथा विधि के निम्नलिखित दो रूप होते हैं-

1. **रूपरेखा आधारित आत्मकथा**- इस विधि में मापनकर्ता प्रयोज्य के सम्मुख कोई शीर्षक अथवा रूपरेखा प्रस्तुत करता है और उससे उस शीर्षक अथवा रूपरेखा के अनुसार अपने जीवन के आधार पर विचार अभिव्यक्त करने को कहता है। शर्त यह होती है कि प्रयोज्य एक बार जो लिख देता है उसे उसको काटने की अनुमति नहीं होती। तब उसके इस आत्मकथा सम्बन्धी लेख में उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं का अभिव्यक्त होना स्वाभाविक है। मापनकर्ता इस लेख का विश्लेषण कर प्रयोज्य के व्यक्तित्व सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी करता है।
2. **रूपरेखा रहित आत्मकथा**- इस विधि में प्रयोज्य को स्वतन्त्र रूप से अपनी आत्मकथा लिखनी होती है, उसे किसी प्रकार का शीर्षक, रूपरेखा अथवा निर्देश नहीं दिए जाते। इसमें भी प्रयोज्य को जो एक बार लिख दिया, उसे काटने की अनुमति नहीं होती। परिणामस्वरूप उसके चेतन एवं अचेतन, दोनों पक्षों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है। मापनकर्ता प्रयोज्य की आत्मकथा का विश्लेषण कर उसके व्यक्तित्व सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करता है।

आत्मकथा किसी भी प्रकार से लिखवाई जाए, उसमें प्रयोज्य के व्यक्तित्व के अतिविशिष्ट पक्ष उजागर होते हैं। इस आत्मकथा से प्रयोज्य के जटिल संवेगों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है और उन्हें व्यक्तिगत निर्देश दिए जा सकते हैं।

यह विधि सामान्य व्यक्तित्व का मापन करने के लिए अच्छी नहीं मानी जाती, इसका उपयोग उन्हीं व्यक्तियों के व्यक्तित्व का मापन करने के लिए किया जाता है, जिन्हें व्यक्तिगत निर्देश देने हो।

10.10.2 व्यक्तित्व मापन की वस्तुनिष्ठ विधियाँ

व्यक्तित्व मापन की वस्तुनिष्ठ विधियों से तात्पर्य उन विधियों से है, जिनके मापन परिणाम मापनकर्ता की अपनी पसन्द-नापसन्द और अपने व्यक्तिगत मानदण्डों से प्रभावित नहीं होते। इन विधियों में मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं-

1. नियन्त्रित अवलोकन विधि
2. श्रेणी मापनी विधि
3. शारीरिक परीक्षण विधियाँ
4. परिस्थिति परीक्षण

1. नियन्त्रित अवलोकन विधि

इस विधि में किसी व्यक्ति के व्यक्तिव का मापन नियन्त्रित परिस्थितियों में उसके बौद्धिक कार्यों, संवेगात्मक विकास, रुचियों, अभिवृत्तियों एवं आदतों आदि का निरीक्षण करके किया जाता है। इसमें कुछ ही आँकड़ों से निष्कर्ष नहीं निकाले जाते, अपितु प्रयोज्य को विभिन्न नियन्त्रित परिस्थितियों में रखकर उसका निरन्तर वस्तुनिष्ठ ढंग से निरीक्षण किया जाता है और उसके बाद निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें व्यक्ति की अनुक्रियाओं का अध्ययन विभिन्न प्रकार की नियन्त्रित परिस्थितियों में किया जाता है, इसलिए उसके व्यक्तित्व के वास्तविक तथ्यों की जानकारी हो जाती है।

इस विधि में कुछ कमियाँ भी है। इस प्रकार का सही निरीक्षण योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकते हैं। साथ ही यह विधि सामान्य अवलोकन की अपेक्षा तो वस्तुनिष्ठ होती है, परन्तु पूर्णरूप से वस्तुनिष्ठ नहीं होती।

2. श्रेणी मापनी विधि

श्रेणी मापनी विधि को **निर्धारण मापनी विधि** और **क्रम निर्धारण विधि** भी कहते हैं। सर्वप्रथम इस विधि का प्रयोग मनोभौतिकी में फैक्नर ने किया था, परन्तु इस प्रकार की श्रेणी मापनी का प्रकाशन सर्वप्रथम गाल्टन ने 1889 में किया था। वर्तमान में इस विधि का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है। इस विधि

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

में व्यक्तित्व सम्बन्धी अनेक लक्षणों को प्रस्तुत कर उनके लिए क्रम निर्धारित करना होता है। क्रम निर्धारण का कार्य या तो उसी व्यक्ति से कराया जाता है, जिसके व्यक्तित्व का मापन करना होता है या उससे सम्बन्धित किसी एक अथवा एक से अधिक व्यक्तियों से कराया जाता है। वर्तमान में कई प्रकार की श्रेणी मापनियों का प्रयोग किया जाता हैं, उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1. **चैक लिस्ट**– चैक लिस्ट दो प्रकार की होती हैं। एक में व्यक्तित्व से सम्बन्धित कुछ लक्षण दिए होते हैं और निर्धारक से यह अपेक्षा की जाती है कि प्रयोज्य में इनमें से जो लक्षण (गुण) हो, उन पर सही का निशान (✓) लगा दे और जो सही नहीं हो, उन पर नहीं (×) लगा दे; जैसे–

   साहस – है/नहीं है

   दूसरे प्रकार की चैक लिस्ट में गुण के आगे मात्रा लिखी होती है और निर्धारक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रयोज्य में वह गुण जिस मात्रा में हो उस पर सही (✓) का चिह्न लगाए; जैसे– प्रयोज्य में निम्नलिखित गुण जिस मात्रा में हो, उस पर सही (✓) का चिह्न लगाए–

   साहस – बहुत अधिक/अधिक/सामान्य/कम/बहुत कम

2. **आंकिक मापनी**– यह भी दो प्रकार की होती है। एक में व्यक्तित्व से सम्बन्धित कुछ लक्षण दिए होते हैं, निर्धारक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रयोज्य में जो लक्षण सबसे अधिक हो, उन्हें 1 अंक दे, जो इससे कम हो उन्हें 2 अंक दे और इसी प्रकार अन्य लक्षणों को 3, 4 व 5 अंक दे। दूसरी आंकिक मापनी ऐसी होती है, जिसमें व्यक्तित्व सम्बन्धी 3, 5 अथवा 7 लक्षण दिए होते हैं और निर्धारक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रयोज्य में जो लक्षण सर्वाधिक मात्रा में हो, उसे 1 और उसी क्रम में जो लक्षण सबसे कम हो उसे अन्तिम अंक 3, 5 अथवा 7 अंक प्रदान करे; जैसे– आप निम्नलिखित मूल्यों में जिसको सर्वाधिक महत्त्व देते हैं, उसे 1 अंक प्रदान करें, जिसे उससे कम महत्त्व देते हैं, उसे 2 अंक प्रदान करें और इसी क्रम में अन्य मूल्यों को 3, 4 व 5 अंक प्रदान करें–

   सत्य अहिंसा अस्तेय अपरिग्रह ब्रह्मचर्य

3. **ग्राफिक मापनी**– इसमें व्यक्तित्व के किसी गुण को अंक प्रदान करने के स्थान पर उसे ग्राफ पर बनी क्षैतिज रेखा पर बिन्दु से व्यक्त किया जाता हैं इसे क्षैतिज रेखा को **सातत्य** कहते हैं। मापनकर्ता क्षैतिज रेखा पर लगाए गए बिन्दुओं की दूरी के आधार पर व्यक्तित्व के यथा लक्षण की मात्रा को ज्ञात करता है। वैसे इस प्रकार की श्रेणी मापनी का प्रयोग बहुत कम किया जाता है।

4. **क्रमिक मापनी**– इसमें व्यक्तित्व सम्बन्धी किसी लक्षण से सम्बन्धित प्रश्न अथवा कथनों के स्थान पर व्यक्तित्व के कई लक्षणों को एक साथ प्रस्तुत किया जाता है और निर्धारक से उन्हें प्रयोज्य द्वारा प्रदान महत्त्व के अनुसार क्रमबद्ध कराया जाता है; जैसे– आपकी दृष्टि से एक शिक्षक में जो गुण होने चाहिए उन्हें प्राथमिकता के क्रम में प्रस्तुत करो–

   विषय का ज्ञान, शिक्षण कौशल, सहानुभूति, कर्त्तव्यनिष्ठा।

5. **बाध्य चयन मापनी**– इसमें व्यक्तित्व के किसी लक्षण से सम्बन्धित प्रश्न के दो या दो से अधिक उत्तर दिए होते हैं– प्रयोज्य या निर्धारक को उन्हीं उत्तरों का चयन करना होता है, जैसे–

   आप किस प्रकार के उपन्यास पढ़ना पसन्द करते हैं? जासूसी या सामाजिक।

श्रेणी मापनियों द्वारा व्यक्तित्व के अनेक लक्षणों; जैसे– बुद्धिमता, विनम्रता, ईमानदारी, शीलता, अनुशासनप्रियता, साहसिकता, कर्मठता, कर्त्तव्यनिष्ठता एवं चिन्तनशीलता आदि का मापन किया जा सकता है, परन्तु तभी जब प्रयोज्य एवं निर्धारक सही ढंग से श्रेणी निर्धारण करें।

व्यक्तित्व मापन में इस विधि का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है, परन्तु देखा यह गया है कि न तो अधिकतर प्रयोज्य अपने व्यक्तित्व लक्षणों के विषय में सही सूचना देते हैं और न निर्धारक सही ढंग से क्रम निर्धारण करते हैं।

3. शारीरिक परीक्षण विधियाँ

मनुष्य की मानसिक एवं शारीरिक क्रियाओं में बड़ा निकट सम्बन्ध होता है, ये एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं। तब मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं के द्वारा उसकी मानसिक क्रियाओं का अध्ययन किया जा सकता है। इस बीच वैज्ञानिकों ने मनुष्य के शरीर में होने वाले परिवर्तनों को मापने के अनेक यन्त्रों का निर्माण किया है; जैसे– नाड़ी की गति नापने के लिए स्फाईगमोग्राफ, रक्तचाप नापने के लिए प्लैनथिसमोग्राफ, हृदय की गति नापने के लिए इलैक्ट्रो कार्डियोग्राफ, श्वास गति नापने के लिए फियुमोग्राफ, त्वचा में होने वाले रासायनिक परिवर्तनों को मापने के लिए साइको गैलवनोमीटर और मस्तिष्क की क्रियाओं को मापने के लिए इलैक्ट्रो एनसिफोलोग्राम। वर्तमान में इन यन्त्रों की सहायता से व्यक्ति विशेष के परिस्थिति विशेष में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को माप कर उसकी मानसिकता का अध्ययन किया जाता है, उसकी अन्तःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है और इस प्रकार उसके व्यक्तित्व के अनेक छिपे हुए तथ्यों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है।

इस विधि में भी कई कमियाँ है। इससे व्यक्ति की केवल संवेगात्मक स्थिति का ही पता लगाया जा सकता है। इन यन्त्रों का प्रयोग विशेष प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति ही कर सकते हैं।

4. परिस्थिति परीक्षण

इस विधि में प्रयोज्यों के समक्ष उनके जीवन की कोई वास्तविक परिस्थिति या वास्तविक परिस्थिति जैसी कृत्रिम परिस्थिति रखी जाती है। प्रयोज्य इन परिस्थितियों में प्रतिक्रियाएँ करते हैं। मापनकर्ता प्रयोज्यों के मुख्यतः दो रूप हैं– समाजमिति और मनोनाटक

1. **समाजमिति विधि**– इस विधि का प्रतिपादन जे. एल. मोरेनो ने 1934 में किया था। इस विधि में किसी समूह विशेष के व्यक्तियों से उस समूह में व्यक्ति विशेषों को उनके गुणों के आधार पर, चयन करने अथवा छोड़ देने के लिए कहा जाता है, जैसे– किसी समूह में सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्ति का पता लगाने के लिए समूह के सदस्यों से निम्नलिखित कार्य कराया जा सकता है–

   उन तीन व्यक्तियों के नाम क्रमानुसार लिखिए, जिन्हें आप अपने समूह का नेता बनाना चाहते हैं।

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

इसी प्रकार उपेक्षित व्यक्ति का पता लगाने के लिए निम्नलिखित आदेश दिया जा सकता है–

उन तीन व्यक्तियों के नाम क्रमानुसार लिखिए जिन्हें आप पसन्द नहीं करते।

इस विधि द्वारा परिवार, विद्यालय, कक्षा एवं कार्यालय आदि में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं राज्य व्यक्तियों का पता लगाया जा सकता है। इससे समूह के व्यक्तियों में व्यक्तित्व के विभिन्न लक्षणों की सापेक्षिक स्थिति का भी पता लगाया जा सकता है और उनके व्यक्तित्व सम्बन्धी किसी गुण की तुलना की जा सकती है।

इस विधि में कुछ कमियाँ भी हैं। किसी भी समूह में कोई भी व्यक्ति इस प्रकार के निर्णय वस्तुनिष्ठ ढंग से नहीं लेता। परिणामस्वरूप इस विधि को विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता।

2. **मनोनाटक**– इस विधि से कुछ विशेष परिस्थितियों पर आधारित नाटकों का आयोजन किया जाता है। तत्पश्चात् जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताओं को ज्ञात करना होता है, उसके जीवन की परिस्थितियों से युक्त परिस्थितियों के किसी नाटक का चयन किया जाता है और उस नाटक में इस व्यक्ति को एक विशेष पात्र के रूप में अभिनय करने को कहा जाता है। इस नाटक में कई पात्र होते हैं। मापनकर्ता इस व्यक्ति के कार्यकलापों पर विशेष ध्यान देता है और उसके हाव–भाव के आधार पर उसकी मनोदशा का पता लगाता है। मनोनाटक समायोजन परिस्थितियों से सम्बन्धित होते हैं, इसलिए इनके द्वारा व्यक्ति की समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं का पता लगाया जाता है। इस विधि का प्रयोग मनोचिकित्सा में विशेष रूप से किया जाता है।

इस विधि में भी कुछ कमियाँ हैं। अभिनय के दौरान व्यक्ति विशेष द्वारा की जाने वाली क्रियाओं एवं हाव–भाव का विश्लेषण कर व्यक्ति की व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं का पता लगाना एक जटिल कार्य है, इसे विशेष रूप से प्रशिक्षित मापनकर्ता ही कर सकते हैं।

10.10.3 व्यक्तित्व परीक्षण की प्रक्षेपी विधियाँ

प्रक्षेपण से तात्पर्य व्यक्ति की बाह्य वस्तुओं के प्रति अपने अन्तर्मन की प्रतिक्रिया से होता है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने किया था। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार उसके चेतन मन की अपेक्षा उसके अचेतन मन से अधिक प्रभावित होता है। उसने व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन करने के लिए मन के साथ–साथ अचेतन मन से होने होने वाले व्यवहारों का भी अध्ययन करने पर बल दिया। परिणामस्वरूप कुछ ऐसी विधियों का विकास किया गया, जिनके द्वारा व्यक्ति के अचेतन मन में छिपी दमित इच्छाओं और उनके द्वारा उसके व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना सम्भव हुआ। इन विधियों को ही व्यक्तित्व मापन की प्रेक्षपी विधियाँ कहा जाता है। वारेन के शब्दों में–

प्रक्षेपी विधि मनुष्य की दमित इच्छाओं को बाह्य जगत पर आरोपित करने की विधि है।

इस प्रकार की कुछ मुख्य विधियाँ निम्नलिखित है–

1. साहचर्य प्रविधि
2. रचना प्रविधि
3. पूर्ति प्रविधि
4. क्रम या चयन प्रविधि
5. अभिव्यक्ति परीक्षण

1. साहचर्य प्रविधि

इस विधि में प्रयोज्य के सम्मुख कुछ उद्दीपक प्रस्तुत किए जाते हैं और उससे उनसे सम्बन्धित प्रतिक्रिया करने को कहा जाता है। ये उद्दीपक शब्द, वाक्य अथवा चित्र के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। इनमें सर्वाधिक प्रयोग में आने वाली विधि शब्द साहचर्य विधि है। इस विधि में प्रयोज्य के सम्मुख कुछ चुने हुए शब्द उद्दीपक के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं और प्रयोज्य को इन शब्दों से सम्बन्धित उसके मन में आने वाले शब्दों को व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है। मापनकर्ता ये शब्द एक–एक करके बोलता है, प्रत्येक शब्द की प्रतिक्रिया स्वरूप बोले गए शब्दों को नोट करता है और साथ ही इस प्रतिक्रिया में लिए गए समय को नोट करता है और अन्त में प्रतिक्रिया स्वरूप बोले गए इन शब्दों के आधार पर उसके व्यक्तित्व का आकलन करता है। यह विधि विशेष रूप से मानसिक ग्रन्थियों, मनोरोगों और अपराधों का पता लगाने के लिए उपयोग की जाती है, परन्तु इसका सही प्रयोग इस विधि में प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकते हैं।

2. रचना प्रविधि

इस विधि में प्रयोज्य के सम्मुख कुछ उद्दीपक प्रस्तुत किए जाते हैं और उससे उनके आधार पर रचना करने के लिए कहा जाता है। यह रचना उद्दीपक की प्रकृति के अनुसार वाक्य, कविता, कहानी अथवा चित्र, किसी भी रूप में कराई जा सकती है। वैसे सामान्यतः वाक्य रचना और कहानी रचना ही कराई जाती है। इसमें प्रयोज्य की रचना का विश्लेषण करके उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है।

इस विधि में प्रयोज्य के सम्मुख जो उद्दीपक प्रस्तुत किए जाते हैं, वे अस्पष्ट एवं अनेकार्थी होते हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों के आधार पर रचना करता है और इस रचना में उसके अन्तर्मन की अभिव्यक्ति होती है। इससे उसके व्यक्तित्व सम्बन्धी सही तथ्यों की जानकारी की जा सकती है, परन्तु यह कार्य जितना कहने में सरल है उतना ही करने में कठिन है। इस विधि का प्रयोग भी प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकते हैं

3. पूर्ति प्रविधि

इस विधि में प्रयोज्य के सम्मुख कोई अधूरी रचना उद्दीपक के रूप में प्रस्तुत की जाती है और उसे उसे पूरा करने के लिए कहा जाता है। ये अधूरी रचनाएँ अधूरे वाक्य, अधूरी कविता अथवा अधूरी कहानी के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है, परन्तु सामान्यतः अधूरे वाक्य और अधूरी कहानियाँ ही प्रस्तुत की जाती हैं और वाक्य पूर्ति और कहानी पूर्ति ही कराई जाती है। अन्त में प्रयोज्य की इस रचना के आधार पर उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है।

इस विधि में ऐसी अधूरी रचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, जिनको पूरा करने में व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताएँ प्रकट होती हैं इसलिए इसके द्वारा व्यक्तित्व की विशेषताओं का पता लगाया जा सकता है।

इस विधि में भी कुछ कमियाँ हैं। इस विधि से किसी व्यक्ति की सीमित

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

विशेषताओं का ही पता लगाया जा सकता है। साथ ही यह कार्य विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकते हैं।

4. क्रम या चयन प्रविधि

इस विधि में मापनकर्ता प्रयोज्य के सम्मुख कुछ वस्तुओं, चित्रों, शब्दों कथनों, मूल्यों एवं सिद्धान्तों आदि को प्रस्तुत करता है और उससे इन्हें अपने द्वारा दिए गए महत्त्व के अनुसार क्रमबद्ध करने को कहता है। प्रयोज्य सर्वाधिक महत्त्व वाले को प्रथम स्थान पर रखते हुए अन्य सभी का स्थान अंकित करता है। मापनकर्ता प्रयोज्य द्वारा दिए गए क्रम के आधार पर उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करता है।

इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके द्वारा प्रयोज्य के संवेगों, मूल्यों एवं सिद्धान्तों का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

इस विधि में कुछ कमियाँ भी हैं। यदि प्रयोज्य अपने द्वारा दिए गए महत्त्व के आधार पर क्रम न देकर समाज द्वारा दिए गए महत्त्व के आधार पर क्रम देता है, तो सम्पूर्ण श्रम व्यर्थ चला जाता है।

5. अभिव्यक्ति परीक्षण

इस प्रकार की विधियों में व्यक्ति के सम्मुख जो उद्दीपक प्रस्तुत किए जाते हैं, उनके प्रति वह अपने विचार व्यक्त करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र होता है। चूँकि ये उद्दीपक अस्पष्ट एवं अनेकार्थी होते हैं इसलिए किसी एक उद्दीपक के लिए भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की अनुक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। इस भिन्न अनुक्रिया के आधार पर प्रयोज्य के व्यक्तित्व का आकलन किया जाता है। अब तक इस प्रकार की अनेक विधियों का विकास किया जा चुका है, परन्तु उनमें से कुछ का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है, जो निम्नलिखित हैं-

1. रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण
2. मरे प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण
3. बैलक बाल अन्तर्बोध परीक्षण

इन परीक्षणों द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का सही-सही मापन करने का दावा किया जाता है। रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण की विश्वसनीयता .37 से .95 तक तथा वैधता .80 से .82 तक बताई जाती है, परन्तु इन परीक्षणों का प्रशासन एवं फलांकन अपने में कठिन कार्य है। इनका प्रशासन एवं फलांकन विशेषज्ञ ही कर सकते हैं।

****

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लैटिन भाषा के शब्द **पर्सोना** का अर्थ है-
   (1) व्यक्ति (2) व्यक्तिगत
   (3) मुखौटा (4) अपूर्व

2. **पर्सनेलिटी** शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के किस शब्द से हुई है?
   (1) पर्सनल (2) परसाइन
   (3) परसन (4) परसोना

3. प्रत्येक व्यक्तित्व प्रतिमान होता है-
   (1) बहिर्मुखी (2) अभूतपूर्व
   (3) अन्तर्मुखी (4) परिवर्तनशील

4. **Character & Personality** नामक पुस्तक किसके द्वारा लिखी गई है?
   (1) गार्डनर एवं मरफी द्वारा (2) पोलेन्स्की द्वारा
   (3) वुडवर्थ द्वारा (4) थोर्प एवं शमलर द्वारा

5. मानव व्यक्तित्व परिणाम है-
   (1) केवल वातावरण का
   (2) केवल आनुवंशिकता का
   (3) पालन-पोषण और शिक्षा का
   (4) आनुवंशिकता और वातावरण की अन्तःक्रिया का

6. व्यक्तित्व की विशेषताओं में से एक है-
   (1) बुद्धि (2) शिक्षा
   (3) सामाजिक स्तर (4) समायोजन

7. **वातावरण के साथ सामान्य एवं स्थायी समायोजन ही व्यक्तित्व है।** यह परिभाषा है-
   (1) ऑलपोर्ट की (2) बोरिंग की
   (3) मन की (4) शैल्डन की

8. कौनसा तत्त्व व्यक्तित्व की विशेषताओं में सम्मिलित नहीं है?
   (1) मनोशारीरिक तन्त्र
   (2) गत्यात्मक संगठन
   (3) असंगतता
   (4) वातावरण के साथ अपूर्व समायोजन

9. व्यक्तित्व मूल्यांकन की साधारण विधि है-
   (1) प्रश्नावली (2) प्रक्षेपणात्मक
   (3) केस अध्ययन (4) इनमें से कोई नहीं

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.	9.	
(3)	(4)	(2)	(2)	(4)	(1)	(2)	(3)	(1)	

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

10. व्यक्तित्व मूल्यांकन की सर्वश्रेष्ठ विधि है–
(1) प्रश्नावली (2) प्रक्षेपणात्मक
(3) केस अध्ययन (4) इनमें से कोई नहीं

11. समन्वित व्यक्तित्व में पाया जाता है–
(1) सुन्दर दिखने की इच्छा
(2) अच्छे वस्त्र धारण करना
(3) दृढ़ इच्छाशक्ति
(4) इनमें से कोई नहीं

12. व्यक्तित्व के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों का मत क्या है?
(1) व्यक्तित्व वह है, जो पैतृक विरासत से मुक्त रहता है।
(2) व्यक्तित्व वह है, जो जन्म से विद्यमान रहता है।
(3) संस्कृति– व्यक्तित्व को परिमार्जित करती है।
(4) व्यक्तित्व समूह संस्कृति से प्रभावित एवं परिवर्तित होता है।

13. निम्नलिखित में से व्यक्तित्व के प्रमुख अध्ययन क्षेत्र क्या हैं?
(1) व्यक्तिगत एवं समाज मनोविज्ञान
(2) व्यक्तित्व एवं सांस्कृतिक मनोविज्ञान
(3) व्यक्तित्व एवं मनोविज्ञान
(4) उपर्युक्त सभी

14. व्यक्तित्व एवं बुद्धि में वंशानुक्रम की–
(1) नाममात्र की भूमिका है। (2) महत्त्वपूर्ण भूमिका है।
(3) अपूर्वानुमेय भूमिका है। (4) आकर्षक भूमिका है।

15. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाला तत्त्व है–
(1) वंशानुक्रम (2) वातावरण
(3) उपर्युक्त दोनों (4) दोनों में से कोई नहीं

16. वांछित व्यक्तित्व होता है–
(1) अन्तर्मुखी (2) संवेगीय स्थिर
(3) बहिर्मुखी (4) एथलेटिक

17. वर्तमान में व्यक्तित्व के प्रकारों का सर्वोत्तम वर्गीकरण किसका माना जाता है–
(1) ऑलपोर्ट का (2) जुंग का
(3) मुरे का (4) शैल्डन का

18. **शरीर रचना सिद्धान्त** के प्रतिपादक थे–
(1) शैल्डन (2) क्रेश्मर
(3) ऑलपोर्ट (4) जुंग

19. व्यक्तित्व अध्ययन की विषयगत विधि है–
(1) हस्तरेखा अध्ययन (2) समाजमिति
(3) रोर्शा परीक्षण (4) निर्धारणमान

20. मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के कितने पहलू माने हैं?
(1) 2 (2) 4
(3) 5 (4) 6

21. गेस्टाल्ट दृष्टिकोण से व्यक्तित्व की व्याख्या किसने की है?
(1) मुरे ने (2) ड्रेवर ने
(3) स्टैगनर ने (4) ऑलपोर्ट ने

22. व्यक्तित्व का सर्वाधिक मान्य वर्गीकरण किया है–
(1) जुंग ने (2) हेमेन ने
(3) ऑलपोर्ट ने (4) ड्रेवर ने

23. कैटल के अनुसार व्यक्तित्व के लक्षणों की कुल संख्या है–
(1) 159 (2) 150
(3) 171 (4) 200

24. T.A.T. परीक्षण किसका मापन करता है?
(1) बुद्धि का (2) उपलब्धि का
(3) व्यक्तित्व का (4) रूचि का

25. मूल्यों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किसने किया?
(1) थॉर्नडाइक ने (2) स्टेगनर ने
(3) मुरे ने (4) रोर्शा ने

26. अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व के सम्प्रत्यय प्रस्तुत किये गये थे–
(1) एडलर द्वारा (2) हॉर्नी द्वारा
(3) फ्रोम द्वारा (4) जुंग द्वारा

27. निम्न में से व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक प्रकार है–
(1) अन्तर्मुखी
(2) सैद्धान्तिक
(3) शक्तिहीन
(4) सामाजिक

28. अन्तर्मुखी स्वभाव वाले व्यक्ति प्रायः–
(1) कम बोलते हैं।
(2) बहुत बोलते हैं।
(3) शान्त बने रहते हैं।
(4) बोलते हैं, तो बोलते ही रहते हैं।

29. बहिर्मुखी व्यक्ति होता है–
(1) आत्म केन्द्रित
(2) कम बोलने वाला
(3) आदर्शवादी
(4) सामाजिक कार्यों में रुचि लेने वाला

10.	11.	12.	13.	14.	15.	16.	17.	18.	19.	20.	21.	22.	23.	24.	25.	26.	27.	28.	29.		
(3)	(3)	(4)	(4)	(1)	(3)	(2)	(2)	(1)	(1)	(2)	(4)	(1)	(3)	(3)	(2)	(4)	(1)	(1)	(4)		

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

30. बहिर्मुखी व्यक्ति की विशेषता है–
(1) आशावादी होता है।
(2) चिन्तामुक्त होता है।
(3) अधिक सामाजिक होता है।
(4) उपर्युक्त सभी गुणों से सम्पन्न होता है।

31. निम्न विमाओं में से किस पर वह व्यक्ति उच्च प्राप्तांक प्राप्त करेगा, जो बहुत हँसमुख हो तथा सामाजिक हो?
(1) आक्रामकता (2) बुद्धि
(3) अन्तर्मुखता (4) बहिर्मुखता

32. बाल्यावस्था में बालक के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता क्या होती है?
(1) अन्तर्मुखी व्यक्तित्व
(2) व्यक्तित्व की अनुपस्थिति
(3) उभयपक्षीय व्यक्तित्व
(4) बहिर्मुखी व्यक्तित्व

33. अत्यधिक वाचाल, प्रसन्नचित्त करने वाले तथा सामाजिक प्रवृत्ति के धनी व्यक्ति का व्यक्तित्व होता है–
(1) अन्तर्मुखी (2) बहिर्मुखी
(3) सन्तुलित (4) इनमें से सभी

34. आध्यात्मिक प्रवृत्ति एवं साहित्यिक रुचि वाला व्यक्तित्व होता है–
(1) मेसोमॉर्फिक (2) अन्तर्मुखी
(3) बहिर्मुखी (4) उभयमुखी

35. अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति रुचि रखते हैं–
(1) स्वयं में (2) अपने परिवार एवं मित्रों में
(3) अन्य सभी में (4) सामाजिक कार्यों में

36. बहिर्मुखी विद्यार्थी अन्तर्मुखी विद्यार्थी से किस विशेषता के आधार पर भिन्न होता है?
(1) मजबूत भावनाएँ, पसन्दगी एवं नापसन्दगी
(2) मन ही मन परेशान होने की अपेक्षा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करता है।
(3) अपने बौद्धिक कार्यों में डूबा रहता है।
(4) बोलने की अपेक्षा लिखने में बेहतर

37. कौनसी व्यक्तित्व अध्ययन की प्रक्षेपण विधि नहीं है?
(1) रोर्शाटेस्ट (2) टी. ए. टी.
(3) मनोभिनय (4) समाजमिति

38. व्यक्तित्व का मनोविश्लेषणवादी विचार दिया है–
(1) फ्रायड ने (2) गेस्टाल्टवादियों ने
(3) कैटल ने (4) वुडवर्थ ने

39. किसी बच्चे का व्यक्तित्व, वंशानुक्रम और वातावरण का क्या होता है?
(1) योगात्मक प्रतिरूप
(2) गुणात्मक प्रतिरूप
(3) ऋणात्मक प्रतिरूप
(4) धनात्मक प्रतिरूप

40. किसके अनुसार, आज हमारा यह विचार है कि व्यक्तिगत विभिन्नताओं में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का कोई भी ऐसा पहलू सम्मिलित हो सकता है, जिसकी माप की जा सकती है?
(1) पियाजे के (2) गाल्टन के
(3) स्किनर के (4) पावलॉब के

41. किसने मानव प्रकृति के आधार पर व्यक्तित्व के दो प्रमुख प्रकार (अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी) बताए हैं–
(1) जुंग ने (2) पियाजे ने
(3) ब्रूनर ने (4) मास्लो ने

42. फ्रायड की व्यक्तित्व अध्ययन विधि कहलाती है–
(1) वस्तुनिष्ठ विधि (2) समाजमिति विधि
(3) मनोविश्लेषण विधि (4) आत्मनिष्ठ विधि

43. प्रक्षेपण विधियों में स्याही धब्बा परीक्षण का निर्माण किसने किया–
(1) लियोपाल्ड ब्लेक ने
(2) हरमन रोर्शा ने
(3) मॉर्गन व मुरे ने
(4) बिने व साइमन ने

44. व्यक्तित्व के प्रासंगिक बोध परीक्षण में कुल 30 कार्ड होते हैं, जिनमें–
(1) 10 महिलाओं, 10 पुरुषों एवं 10 दोनों के लिए हैं।
(2) 15 महिलाओं के लिए व 15 पुरुषों के लिए हैं।
(3) सभी 30 महिलाओं एवं पुरुषों दोनों के लिए हैं।
(4) 20 बड़ों के लिए व 10 बच्चों के लिए हैं।

45. व्यक्तित्व मापन की किस विधि में किसी समूह के व्यक्तियों में से पहली पसन्द का व्यक्ति चुनने के लिए कहा जाता है?
(1) रेटिंग स्केल (2) प्रश्नावली
(3) निरीक्षण विधि (4) समाजमिति

46. रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण में कितने काईस होते हैं?
(1) 5 (2) 20
(3) 30 (4) 10

47. **प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण** का निर्माण किसने किया?
(1) मॉर्गन व मुरे ने (2) रोर्शा ने
(3) बिने साइमन ने (4) इनमें से कोई नहीं

30.	31.	32.	33.	34.	35.	36.	37.	38.	39.	40.	41.	42.	43.	44.	45.	46.	47.				
(4)	(4)	(4)	(2)	(2)	(1)	(1)	(4)	(1)	(2)	(3)	(1)	(3)	(2)	(1)	(4)	(4)	(1)				

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

48. निम्नलिखित में से कौनसी बाल विकास की अवस्था प्रतिद्वन्द्वात्मक समाजीकरण का काल माना जाता है?
(1) बाल्यावस्था (2) शैशवावस्था
(3) प्रौढ़ावस्था (4) किशोरावस्था

49. व्यक्तित्व के किस पहलू का सम्बन्ध मानव की क्रियाओं से है?
(1) सामाजिक पहलू (2) कारण सम्बन्धी पहलू
(3) क्रियात्मक पहलू (4) इनमें से कोई नहीं

50. किस मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के संगठित व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र माना है?
(1) डेशील ने (2) गुड ने
(3) गिलफोर्ड ने (4) ड्रेवर ने

51. व्यक्तित्व व्यक्ति में निहित मनो-शारीरिक प्रणालियों का गतिशील संगठन है, जो उसके वातावरण के साथ अद्वितीय समायोजन को निर्धारित करता है। यह परिभाषा किस मनोवैज्ञानिक ने दी है?
(1) ऑलपोर्ट ने (2) स्किनर ने
(3) ड्रेवर ने (4) मन ने

52. व्यक्तित्व मापन के लिए व्यक्ति की सम्पूर्ण सूचनाएँ प्राप्त करने की विधि है-
(1) साक्षात्कार विधि (2) व्यक्ति इतिहास विधि
(3) निरीक्षण विधि (4) निर्धारण विधि

53. दार्शनिक और विचारक व्यक्तियों का व्यक्तित्व होता है-
(1) अन्तर्मुखी (2) बहिर्मुखी
(3) उभयमुखी (4) इनमें से कोई नहीं

54. बाल अन्तर्बोध परीक्षण को संशोधित करके भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल किसने बनाया?
(1) प्रो. शंकर ने (2) उमा चौधरी ने
(3) डॉ. आशीर्वादम ने (4) डॉ. जलोटा ने

55. बाल अन्तर्बोध परीक्षण किस आयु वर्ग के लिए विशेष उपयोगी है?
(1) 1 से 10 वर्ष (2) 3 से 11 वर्ष
(3) 2 से 14 वर्ष (4) 6 से 14 वर्ष

56. शैल्डन ने व्यक्तित्व का कौनसा प्रकार नहीं बताया?
(1) गोलाकृति (2) वृत्ताकृति
(3) आयताकृति (4) लम्बाकृति

57. कौनसा परीक्षण केवल शिक्षित लोगों के लिए उपयोगी है?
(1) खेल व नाटक (2) बाल अन्तर्बोध
(3) रोर्शा स्याही धब्बा (4) वाक्य या कहानी पूर्ति

58. रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण का निर्माण हरमन रोर्शा ने कब किया?
(1) 1915 (2) 1921
(3) 1925 (4) 1948

59. सर्वाधिक प्रयोग किया जाने वाला व्यक्तित्व परीक्षण कौनसा है?
(1) रोर्शा परीक्षण (2) प्रसंगात्मक बोध
(3) बाल प्रसंगात्मक बोध (4) समाजमिति

60. क्रेश्मर ने व्यक्तित्व का कौनसा प्रकार नहीं बताया था?
(1) एस्थेनिक (2) एथलेटिक
(3) स्थंतिक (4) पिकनिक

61. किस विधि में व्यक्ति के किसी विशेष गुण का मूल्यांकन उसके साथियों से करवाया जाता है?
(1) निर्धारण मापनी में (2) समाजमिति में
(3) निष्पादन परीक्षण में (4) समाज परीक्षण में

62. निम्नलिखित में से प्रश्नावली विधि का प्रकार नहीं है-
(1) खुली प्रश्नावली (2) बन्द प्रश्नावली
(3) आश्रित प्रश्नावली (4) मिश्रित प्रश्नावली

63. वाक्य या कहानी पूर्ति परीक्षण के निर्माणकर्ता थे-
(1) मॉर्गन व मुरे (2) पाइने व टेण्टलर
(3) बिग व हण्ट (4) ब्लेक

64. बाल अन्तर्बोध परीक्षण का निर्माण किसने किया?
(1) मॉर्गन व मुरे ने (2) जलोटा ने
(3) लियोपाल्ड ब्लेक ने (4) मोरेनो ने

65. थॉर्नडाइक के व्यक्तित्व के वर्गीकरण का आधार है-
(1) शारीरिक गठन और शक्लसूरत
(2) रचनात्मकता और मौलिकता
(3) समायोजन और बुद्धि
(4) चिन्तन और कल्पना

66. एक सन्तुलित व्यक्तित्व वह है, जिसमें-
(1) इदम् एवं परम अहम् के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाता है।
(2) इदम् एवं अहम् के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाता है।
(3) अहम् एवं परम् के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाता है।
(4) मजबूत अहम् को बनाया जाता है।

67. गिलफोर्ड के अनुसार व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक में शामिल नहीं है-
(1) सामाजिक अनुक्रिया (2) संगठन पर बल
(3) सर्वव्यापी तत्त्व (4) आय का स्रोत

48.	49.	50.	51.	52.	53.	54.	55.	56.	57.	58.	59.	60.	61.	62.	63.	64.	65.	66.	67.		
(1)	(3)	(1)	(1)	(2)	(1)	(2)	(2)	(2)	(4)	(3)	(1)	(3)	(1)	(3)	(2)	(3)	(4)	(4)	(4)		

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

68. व्यक्तित्व के प्रतिकारक सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं–
(1) मन (2) गुड
(3) किलपैट्रिक (4) आर. बी. कैटल

69. निम्न में से व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपी युक्ति नहीं है–
(1) बाल अभिबोधन परीक्षण (2) शब्द साहचर्य परीक्षण
(3) कहानी पूर्ति परीक्षण (4) संचित अभिलेख परीक्षण

70. अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति रुचि रखते हैं–
(1) अन्य व्यक्तियों में (2) स्वयं अपने में
(3) भौतिक कार्यों में (4) सामाजिक कार्यों में

71. व्यक्तित्व के मूल्यांकन की निम्न में कौनसी विधि नहीं है?
(1) प्रश्नावली परीक्षण (2) ड्रा-ए-मैन
(3) सर्वे परीक्षण (4) प्रक्षेपण परीक्षण

72. वह विधि, जो व्यक्तित्व के गुणों का अनुमान लगाने के लिये प्रयुक्त होती है, कहलाती है–
(1) मापन रेखा विधि
(2) व्यक्तिगत निदान विधि
(3) मनोनीत विधि
(4) प्रक्षेपण विधि

73. स्प्रैंगर ने व्यक्तित्व को कितने वर्गों में बाँटा है?
(1) 4 (2) 8
(3) 6 (4) 3

74. व्यक्तित्व का बहिर्मुखी-अन्तर्मुखी वर्गीकरण सर्वप्रथम किसके द्वारा प्रस्तुत किया गया?
(1) ऑलपोर्ट द्वारा (2) स्प्रैंगर द्वारा
(3) फ्रायड द्वारा (4) जुंग द्वारा

75. क्रेश्मर ने व्यक्तित्व को कितने वर्गों में बाँटा है?
(1) 5 (2) 4
(3) 2 (4) 6

76. शैल्डन के एण्डोमार्फिक वर्गीकरण में कैसे व्यक्ति सम्मिलित हैं?
(1) शक्तिहीन, दुबले-पतले, संकोची तथा अन्तर्मुखी
(2) मजबूत, सक्रिय, परिश्रमी तथा फुर्तीले
(3) मोटे, कोमल तथा गोल शरीर वाले आराम पसन्द
(4) उपर्युक्त सभी

77. अहंशक्ति, सामाजिकता, हठवादिता इत्यादि क्या है?
(1) संवेग (2) प्रेरणा
(3) शीलगुण (4) मूलप्रवृत्ति

78. एकान्तप्रिय, संकोची, आदर्शवादी तथा आत्मगत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति जुंग के व्यक्तित्व वर्गीकरण के किस वर्ग में आते हैं?
(1) अन्तर्मुखी (2) बहिर्मुखी
(3) उभयमुखी (4) उपर्युक्त सभी

79. एक विद्यार्थी व्यवहार कुशल, संकोचरहित, यथार्थवादी तथा सामाजिक क्रियाकलापों में पर्याप्त भाग लेता है, उसे जुंग के किस व्यक्तित्व वर्ग में रखा जा सकता है?
(1) उभयमुखी (2) बहिर्मुखी
(3) अन्तर्मुखी (4) उपर्युक्त में सभी

80. क्रेश्मर ने शारीरिक रचना के आधार पर व्यक्तित्व को एस्थेनिक्स, एथेलेटिक्स, डिसप्लास्टिक तथा ..... रूप में बाँटा है।
(1) प्लास्टिक (2) पिकनिक
(3) प्रफुल्ल (4) मेसोमॉर्फिक

81. स्प्रैंगर ने किस आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है?
(1) शारीरिक रचना
(2) मनोवैज्ञानिक गुण
(3) मूल्य
(4) स्वभाव

82. यदि कोई व्यक्ति प्रत्येक (अधिकांशतः) परिस्थिति में **संवेगात्मक अस्थिरता** प्रदर्शित करता है, तो मनोवैज्ञानिक रूप में कहा जा सकता है कि उसमें संवेगात्मक अस्थिरता का ..... है।
(1) गुण (2) शीलगुण
(3) मानदण्ड (4) मूलप्रवृत्ति

83. ऐसे व्यक्ति, जिनमें अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी दोनों वर्गों की विशेषताएँ पायी जाती हैं, उन्हें मनोवैज्ञानिक ने कहा है–
(1) अधोमुखी (2) सर्वमुखी
(3) उभयमुखी (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

84. मजबूत माँसपेशियों एवं हड्डियों वाले, सक्रिय, परिश्रमी तथा साहसी व्यक्ति शैल्डन के किस वर्ग में सम्मिलित है?
(1) एण्डोमॉर्फिक
(2) मेसोमॉर्फिक
(3) एक्टोमॉर्फिक
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

85. क्रेश्मर के एस्थेनिक्स वर्ग में कैसे व्यक्ति सम्मिलित हैं?
(1) मजबूत शारीरिक गठन वाले
(2) शारीरिक रूप से कमजोर, लम्बे तथा पतले
(3) मोटे तथा छोटे
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

68.	69.	70.	71.	72.	73.	74.	75.	76.	77.	78.	79.	80.	81.	82.	83.	84.	85.				
(4)	(4)	(2)	(3)	(1)	(1)	(4)	(2)	(3)	(3)	(1)	(2)	(2)	(3)	(2)	(3)	(3)	(2)				

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

86. छोटे, मोटे, चौड़े तथा गोल व्यक्ति क्रेश्मर द्वारा किये गये व्यक्तित्व वर्गीकरण की किस श्रेणी में आते हैं?
(1) एथेलेटिक्स (2) एस्थेनिक्स
(3) पिकनिक्स (4) डिस्प्लास्टिक्स

87. मजबूत, चौड़े कन्धे एवं सीने तथा सन्तुलित शरीर वाले व्यक्ति क्रेश्मर के किस वर्ग में आते हैं?
(1) एस्थेनिक्स (2) डिस्प्लास्टिक्स
(3) पिकनिक्स (4) एथेलेटिक्स

88. व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपी युक्तियों के अन्तर्गत नहीं है–
(1) रोर्शा का स्याही के धब्बों वाला परीक्षण
(2) अन्तश्चेतनाभि बोधन परीक्षण
(3) बाल अभिबोधन परीक्षण
(4) परिस्थिति परीक्षण

89. क्रेश्मर जो कि विद्वान हैं, उन्होंने व्यक्तित्व के चार प्रकार किस आधार पर बताए?
(1) मानसिक स्वास्थ्य के आधार पर
(2) मानसिक शक्तियों के आधार पर
(3) शारीरिक संरचना के आधार पर
(4) उपर्युक्त सभी

90. मिनेसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची का निर्माण सर्वप्रथम किसने किया?
(1) पोर्टर एवं कैटल ने
(2) गिलफोर्ड एवं जिमरमैन ने
(3) हाथवे एवं मैकिनले ने
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

91. छात्रों के व्यक्तित्व को मापने और परामर्श देने के लिए जिस पद्धति का प्रयोग किया जाता है–
(1) निरीक्षणात्मक पद्धति (2) साक्षात्कार विधि
(3) प्रयोगात्मक पद्धति (4) सैद्धान्तिक विधि

92. ऑलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त का उद्भव निम्नलिखित में से किसके पूर्वगामी के रूप में हुआ?
(1) मनोविश्लेषण (2) व्यवहारवाद
(3) मानवतावादी दृष्टिकोण (4) अस्तित्ववाद

93. निम्नलिखित में से कौनसा व्यक्तित्व का प्रक्षेपी परीक्षण नहीं है?
(1) सैक का वाक्य पूर्ति परीक्षण
(2) शब्द साहचर्य परीक्षण
(3) होल्ट्जमैन स्याही धब्बा परीक्षण
(4) एलेक्जेण्डर पास एलॉंग परीक्षण

94. निम्नलिखित में से कौनसी व्यक्तित्व मूल्यांकन की एक विधि नहीं है?
(1) जननिक विधि (2) मनःझन्झाकरण विधि
(3) केस अध्ययन विधि (4) प्रक्षेपण विधि

95. व्यक्तित्व की विशेषता किस रूप में बतायी जा सकती है?
(1) शारीरिक विशेषताओं के समुच्चय
(2) मनोवृत्तियों और शीलगुणों का समुच्चय
(3) परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया करने की समुच्चय शैली
(4) उपरोक्त सभी

96. पराहम् व्यक्तित्व के निम्नलिखित में से किस एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है?
(1) नैतिक (2) धार्मिक
(3) मूलप्रवृत्त्यात्मक (4) अतार्किक

97. व्यक्तित्व अध्ययन के प्राचीनतम उपागमों ने मानव व्यवहार की व्याख्या की है–
(1) मूल प्रवृत्ति के सन्दर्भ में
(2) पर्यावरणीय उद्दीपकों के सन्दर्भ में
(3) जननिक कारकों के सन्दर्भ में
(4) जन्मजात शीलगुणों के सन्दर्भ में

98. टी.ए.टी. निम्नलिखित में से किसका समुच्चय है?
(1) 31 काली व श्वेत तस्वीरें तथा एक रिक्त कार्ड
(2) 30 काली व श्वेत तस्वीरें व एक रिक्त कार्ड
(3) 32 काली व श्वेत तस्वीरें
(4) 30 काली व श्वेत तस्वीरें

99. व्यक्तित्व के प्रारूप सिद्धान्तों की सबसे पृथक्कारी विशेषता क्या है?
(1) शरीर विन्यास तथा स्वभाव में सम्बन्ध
(2) शरीर विन्यासों का वर्गीकरण
(3) प्रारूपी अभिलक्षण
(4) मनःशारीरिक उपागम

100. उपलब्धि प्रतिमावली का अध्ययन निम्नलिखित में से किस परीक्षण द्वारा किया जाता है?
(1) रोर्शा परीक्षण द्वारा
(2) टी.ए.टी. द्वारा
(3) वाक्य पूर्ति परीक्षण द्वारा
(4) ड्रा ए मैन टेस्ट द्वारा

101. निम्नलिखित किस परीक्षण में सामाजिक बुद्धि एक व्यक्तित्व आयाम है?
(1) एम.पी.आई. (2) सी.पी.आई.
(3) 16 पी.एफ. प्रश्नावली (4) एम.एम.पी.आई

86.	87.	88.	89.	90.	91.	92.	93.	94.	95.	96.	97.	98.	99.	100.	101.						
(3)	(4)	(4)	(3)	(3)	(2)	(3)	(4)	(2)	(4)	(1)	(1)	(2)	(1)	(2)	(2)						

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

102. व्यक्तित्व अध्ययन के प्राचीनतम उपागमों ने मानव व्यवहार की व्याख्या की है–
(1) मूलप्रवृत्ति से (2) पर्यावरणीय उद्दीपकों से
(3) जननिक कारकों से (4) जन्मजात शीलगुणों से

103. प्रकृति के आधार पर व्यक्तित्व का विभाजन किसने किया है?
(1) एडलर ने (2) आइन्जेक ने
(3) विलियम जेम्स ने (4) कैटल ने

104. **साक्षात्कार, संक्षिप्त वार्तालाप द्वारा व्यक्ति को समझने की विधि है।** व्यक्तित्व मापन की साक्षात्कार विधि के सम्बन्ध में यह कथन किसका है?
(1) गैरेट का (2) वुडवर्थ का
(3) हार्टशार्न का (4) पोलेन्स्की का

105. व्यक्तित्व मापन की प्रश्नावली विधि में जब प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं में देने होते हैं, तो यह कहलाती हैं–
(1) बन्द प्रश्नावली (2) खुली प्रश्नावली
(3) सचित्र प्रश्नावली (4) मिश्रित प्रश्नावली

106. किसके अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति के संगठित व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र होता है?
(1) डेशील (2) मन
(3) ऑलपोर्ट (4) ड्रेवर

107. व्यक्तित्व के किस पहलू का सम्बन्ध मानव की क्रियाओं से है–
(1) सामाजिक पहलू (2) कारण सम्बन्धी पहलू
(3) क्रियात्मक पहलू (4) इसमें से कोई नहीं

108. व्यक्तित्व मापन की कौनसी विधि में व्यक्ति का मूल्यांकन उसके सम्पर्क में रहने वाले लोगों से करवाया जाता है?
(1) परिस्थिति परीक्षण विधि (2) व्यवहार परीक्षण विधि
(3) जीवन इतिहास विधि (4) मानदण्ड–मूल्यांकन विधि

109. व्यक्तित्व मापन की किस विधि में व्यक्ति को चित्र दिखाकर उसके आधार पर लिखी गई कहानी के विश्लेषण द्वारा व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है?
(1) व्यक्ति परिसूची (2) प्रक्षेपण विधि
(3) मानदण्ड मूल्यांकन विधि (4) जीवन इतिहास विधि

110. व्यक्तित्व मापन की किस विधि में किसी समूह के व्यक्तियों में से पहली पसन्द का व्यक्ति चुनने के लिए कहा जाता है?
(1) रेटिंग स्केल (2) प्रश्नावली
(3) निरीक्षण विधि (4) समाजमिति

111. अनुक्रिया शैली के प्रभाव को नियन्त्रित करने हेतु व्यक्तित्व मापन में निम्नलिखित प्रविधियों में से किसका प्रयोग किया जाता है?
(1) बहुविकल्प प्रविधि का (2) अनुक्रमिक वर्ग प्रविधि का
(3) वलकृत अनुक्रिया प्रविधि का (4) मुक्त अनुक्रिया प्रविधि का

112. व्यक्तित्व मापनियों की वैधता में प्रमुख बाधा है–
(1) अनिश्चित अनुक्रिया श्रेणी (2) अनुक्रिया शैलियाँ
(3) परीक्षण का स्पष्ट उद्देश्य (4) व्यक्ति–स्थिति अन्तर्क्रिया

113. जिस व्यक्ति का शरीर गठन रेखीय तथा नुकीलापन लिए हुए और उसके अभिलक्षक व्यवहार में एकान्तप्रियता, शान्तिप्रियता तथा एकाकीपन का आभास मिले उसका स्वभाव शैल्डन के अनुसार किस प्रकार का होगा?
(1) कार्यप्रधान (2) प्रमस्तिष्क प्रधान
(3) अन्तरांगप्रधान (4) कुगठित

114. अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में जुंग ने किस सम्प्रत्यय का उपयोग किया था?
(1) अचेतन (2) सामूहिक अचेतन
(3) अर्द्धचेतन (4) श्रेष्ठता के लिए प्रेरित करना

115. व्यक्तित्व की अन्तर्मुखी–बहिर्मुखी विमाएँ विशेष रूप से सम्बन्धित हैं–
(1) शैल्डन से (2) आइजेन्क से
(3) कैटल से (4) विलियम जेम्स से

116. निम्नांकित में से व्यक्तित्व मापन के लिए कौनसा प्रक्षेपीय परीक्षण नहीं है?
(1) शेक्स वाक्य पूर्ति परीक्षण
(2) शब्द साहचर्य परीक्षण
(3) होल्ट्जमैन स्याही धब्बा परीक्षण
(4) एलेक्जेण्डर पास–एलाँग परीक्षण

117. व्यक्तित्व मापनी की जिस विधि में व्यक्ति के सामने कुछ अस्पष्ट एवं असंरचित उद्दीपक दिए जाते हैं और उनके प्रति की गई अनुक्रियाओं के आधार पर व्यक्तित्व का मापन होता है, उसे कहा जाता है–
(1) प्रक्षेपीय विधि (2) प्रेक्षण विधि
(3) व्यक्तित्व आविष्कारिका (4) साक्षात्कार विधि

118. फ्रायड के अनुसार जन्म के समय उपस्थित व्यक्तित्व तत्त्व को कहा जाता है–
(1) अहम् (2) रक्षा प्रक्रम
(3) पराहम् (4) उपाहम्

119. उपाहम् एवं पराहम् दोनों ही है–
(1) आनन्द चाहने वाले (2) आवेगशीलता
(3) अतार्किक (4) तार्किक

102.	103.	104.	105.	106.	107.	108.	109.	110.	111.	112.	113.	114.	115.	116.	117.	118.	119.				
(3)	(3)	(2)	(1)	(1)	(3)	(4)	(2)	(4)	(4)	(1)	(2)	(2)	(2)	(4)	(1)	(2)	(3)				

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक का प्रत्येक 15 दिन पश्चात् संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आपको सलाह दी जाती है कि इस पुस्तक की संशोधित संस्करण की फ्री PDF प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org से ही डाउनलोड करें।

यह पुस्तक प्रगण्य प्रकाशन, www.praganya.org जयपुर द्वारा प्रकाशित की गयी है एवं इसके प्रकाशन के सर्वाधिकार प्रगण्य प्रकाशन के पास सुरक्षित है।

120. फ्रायड के अनुसार निम्नांकित में कौन व्यक्तित्व का वह भाग है, जो मोटे तौर पर विवेक से मिलता-जुलता है?
(1) उपाहम् (2) अहम्
(3) पराहम् (4) लिविडों

121. कार्ल रोजर्स के अनुसार कुसमायोजन का आधार वैषम्य है-
(1) इदम् तथा पराहम् के मध्य
(2) वास्तविक स्व तथा आदर्श स्व के मध्य
(3) स्व तथा वातावरण के मध्य
(4) अचेतन तथा चेतन के मध्य

122. अहम् का प्रधान कार्य निम्नांकित में से क्या है?
(1) सामाजिक रूप से प्रस्तावित तरीकों से उपाहम् की इच्छाओं की तुष्टि करना
(2) उपाहम् की इच्छाओं को नियन्त्रित करना
(3) उपाहम् से पराहम् तक ऊर्जाओं का स्थानान्तरण करना
(4) वैसे व्यवहार को उन्नत बनाना, जो स्वार्थहीन एवं नैतिक है।

123. फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व विकास की सबसे महत्त्वपूर्ण अवधि है-
(1) जन्म से 5 या 6 साल तक
(2) 5 या 6 साल से तरुणावस्था तक
(3) किशोरावस्था
(4) वयस्कावस्था

124. लम्बे तथा दुबले-पतले कद के व्यक्ति को क्रेश्मर के अनुसार किस श्रेणी में रखा जाता है?
(1) एस्थेनिक (2) एथेलेटिक
(3) डिस्प्लास्टिक (4) पिकनिक

125. जो व्यक्ति संवेदनशील, लजालु एवं शंकालु प्रवृत्ति के होते हैं, उनकी चित्तप्रकृति को आप किस श्रेणी में रखेंगे?
(1) विसरोटोनिया (2) सोमैटोटोनिया
(3) सेरीब्रोटोनिया (4) स्किजोफ्रेनिया

126. जिस व्यक्ति का शारीरिक कद सुडौल एवं माँसपेशियाँ मजबूत होती हैं, उसे निम्नांकित में से किस श्रेणी में रखा जाता है?
(1) एण्डोमॉर्फी
(2) मेसोमॉर्फी
(3) एक्टोमॉर्फी
(4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

127. जो लोग आराम पसन्द, भोजन प्रिय तथा दूसरों का स्नेह एवं प्यार पाने को इच्छुक होते हैं, उन्हें निम्नांकित में से किस श्रेणी में रखा जाएगा?
(1) एण्डोमॉर्फी (2) मेसोमॉर्फी
(3) एक्टोमॉर्फी (4) अन्तर्मुखी

128. जो लोग सामाजिक कार्यों में हाथ बँटाने वाले होते हैं, हास्यप्रिय तथा हाजिरजवाब होते हैं, उन्हें जुंग के अनुसार किस श्रेणी में रखा जाएगा?
(1) अन्तर्मुखी (2) बहिर्मुखी
(3) उभयमुखी (4) उपर्युक्त में से कोई नहीं

129. निम्नांकित में से किसे आप व्यक्तित्व के जैविक निर्धारकों की सूची में नहीं रखेंगे?
(1) तन्त्रिका तन्त्र (2) शारीरिक गठन
(3) पीयूष ग्रन्थि (4) स्कूल

130. प्रतिबल से व्यक्ति दैनिक जीवन में किस प्रकार से बचाव करता है?
(1) मनोरचनाओं द्वारा
(2) गहरी नींद लेकर
(3) समस्या समाधान द्वारा
(4) मनोचिकित्सक की सलाह लेकर

131. कैटल द्वारा कितने मूल शीलगुणों को व्यक्तित्व के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया है?
(1) 22 (2) 23
(3) 35 (4) 16

132. वुडवर्थ ने व्यक्तित्व के शीलगुणों की संख्या कितनी बताई है?
(1) 10 (2) 11
(3) 12 (4) 15

133. प्रक्षेपण विधियों में रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण का निर्माण किया-
(1) थर्स्टन रोर्शा ने
(2) हरमन रोर्शा ने
(3) बिने रोर्शा ने
(4) साइमन रोर्शा ने

134. हिप्पोक्रेट्स ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण किस आधार पर किया है?
(1) सामाजिकता के आधार पर
(2) शारीरिक बनावट के आधार पर
(3) संवेग (स्वभाव) के आधार पर
(4) चिंतन एवं कल्पनाशक्ति के आधार पर

135. शारीरिक बनावट के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण करने वाले मनोवैज्ञानिक हैं-
(1) क्रेश्मर एवं शैल्डन (2) जुंग
(3) फ्रायड (4) एडलर

136. टर्मन ने किस आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है?
(1) सामाजिकता (2) बुद्धि लब्धि
(3) शारीरिक बनावट (4) विचारशीलता

120.	121.	122.	123.	124.	125.	126.	127.	128.	129.	130.	131.	132.	133.	134.	135.	136.					
(3)	(2)	(1)	(1)	(1)	(3)	(2)	(1)	(2)	(4)	(1)	(4)	(3)	(2)	(3)	(1)	(2)					

बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र की इस पुस्तक को दो भाग में प्रकाशित किया गया है। प्रकाशित पुस्तक के दोनों भाग प्रगण्य प्रकाशन की वेबसाइट www.praganya.org पर उपलब्ध है। आप वहाँ से फ्री PDF डाउनलोड कर सकते हैं।

137. व्यक्तित्व को उसकी सामाजिकता के आधार पर अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी एवं उभयमुखी वर्गों में विभाजित करने वाले मनोवैज्ञानिक हैं–
(1) फ्रायड (2) जुंग
(3) एडलर (4) ऑलपोर्ट

138. थॉर्नडाइक ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण किस आधार पर किया है?
(1) शील गुण
(2) शारीरिक बनावट
(3) जीवन लक्ष्य एवं उनकी पूर्ति हेतु प्रयत्न
(4) कल्पना एवं विचार शक्ति

139. छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझने के लिए अध्यापक को–
(1) बाल मनोविज्ञान का ज्ञान होना जरूरी है।
(2) उनके साथ मैत्री सम्बन्ध रखना आवश्यक है।
(3) अपनी विद्वता का प्रयोग करना होता है।
(4) समय-समय पर उनके अभिभावकों से मिलते रहना चाहिए।

140. निम्नांकित में से कौन व्यक्तित्व के मापन के लिए साक्षात्कार का उपयोग करते हैं?
(1) एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक
(2) कम्पनी का एक कार्मिक पदाधिकारी
(3) एक सामाजिक कार्यकर्ता
(4) उपर्युक्त सभी

141. निम्न को सुमेलित कीजिए–
विशेषता–
(A) नेतृत्व, राजनीतिक एवं सामाजिक प्रवृत्ति वाला
(B) चिन्तित स्वभाव वाला
(C) जिस व्यक्ति के गुण न तो अधिक तीव्र हो और न एकांगी
(D) आवश्यकतानुसार अपने विचारों में परिवर्तन कर लेने वाला
व्यक्तित्व–
(i) बहिर्मुखी
(ii) अन्तर्मुखी
(iii) उभयमुखी
(iv) बहिर्मुखी

	A	B	C	D
(1)	i	iii	iv	ii
(2)	ii	i	iii	iv
(3)	i	ii	iii	iv
(4)	ii	iii	iv	i

142. निम्नांकित में से असत्य कथन है–
(1) व्यक्तित्व केवल शारीरिक गुणों का संगठन होता है।
(2) व्यक्तित्व गुणों का एक गत्यात्मक संगठन है।
(3) व्यक्तित्व व्यक्ति को अपूर्व समायोजन करने में मदद करता है।
(4) व्यक्तित्व एक मनोशारीरिक तन्त्र है।

143. सूची-I के पदों को सूची-II के पदों से सुमेलित कीजिए और नीचे दिए गए कूट में से सही उत्तर चुनिए–

सूची-I	सूची-II
(i) टी.ए.टी	1. एडवर्ड
(ii) 16 पी.एफ.	2. आइजेन्क
(iii) ई.पी. क्यू.	3. मुरे
(iv) ई.पी.पी.एस.	4. कैटल

कूट	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
(1)	1	2	3	4
(2)	2	3	4	1
(3)	3	4	2	1
(4)	1	4	3	2

144. रोर्शा परीक्षण के बारे में निम्नलिखित में से कौनसा कथन सत्य नहीं है?
(1) रोर्शा परीक्षण एक अभिकृत्यात्मक प्रकार का प्रक्षेपी परीक्षण है।
(2) रोर्शा परीक्षण व्यक्तित्व की सम्पूर्ण रूप से नैदानिक जाँच करता है।
(3) यह व्यक्तित्व के बौद्धिक तथा अबौद्धिक दोनों ही प्रकार के शीलगुणों का मापन है।
(4) इसका मूलभूत प्रयोजन व्यक्तित्व की अन्तर्वस्तु जैसे प्रणोदन, आवश्यकता, स्वैरकल्पना, कुण्ठाओं इत्यादि को उजागर करना है।

145. व्यक्तित्व के समष्टिमूलक उपागम के बारे में निम्नलिखित में से कौनसा कथन सत्य नहीं है?
(1) यह वृहत् संख्या में प्रयोज्यों का अध्ययन करता है।
(2) यह औसतों के आधार पर लोगों का वर्णन करता है।
(3) यह नियम प्रस्तुत करता है, जो सभी लोगों के व्यवहार की व्याख्या करते हैं।
(4) यह लोगों में तुलना करता है।

146. मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व के आधारभूत स्तम्भ हैं- उपाहम्, अहम् तथा पराहम्। इन तीनों का क्रमशः प्रतिनिधित्व किया जाता है–
(1) जैविक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक आयामों में
(2) अचेतन, चेतन एवं आत्म-तादात्म्य आयामों में
(3) मुखावस्था, अव्यक्तावस्था तथा जनेन्द्रिय अवस्था
(4) प्राक् चेतन, अवचेतन तथा अचेतन

****

137.	138.	139.	140.	141.	142.	143.	144.	145.	146.												
(2)	(4)	(1)	(1)	(3)	(1)	(3)	(2)	(3)	(2)												